प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, राष्ट्रभाषा मुद्रण, काशी

प्रथम संस्करण : ११०० प्रतियाँ

संवत् २०

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
मूल्य 200.00

स्वर्गीय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को

उनकी २२वीं पुण्यतिथि पर

श्रद्धांजलि के रूप मे

# प्रकाशकीय

नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी की जिन ग्रंथमालाओं के द्वारा हिंदी को श्रीसपन्न बनाने का प्रयत्न किया है उनमें नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला का विशिष्ट योगदान है। प्राचीन ग्रंथों के खोज का कार्य आरंभ होने पर खोजविवरण के प्रकाशन के साथ ही हिंदी के विशेष लाभ की दृष्टि से सभा ने यह भी अनुभव किया कि खोज में प्राप्त चुने हुए ग्रंथों का प्रकाशन भी हो। उसने संवत् १९५७ वि० ( सन् १९०० ई० ) से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला' का आयोजन किया। उस समय इसकी पृष्ठसंख्या ६४ और मूल्य आठ आने स्थिर किए गए। वर्ष मे इसके चार अंकों के प्रकाशन का भी निश्चय किया गया था। इस ग्रंथमाला के संवत् १९७६ तक चौंसठ अंक प्रकाशित हुए। इस समय तक इस ग्रंथमाला के संपादक क्रमशः श्री राधाकृष्णदास ( संवत् १९६१ तक ), महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ( संवत् १९६५ तक ), श्री माधवप्रसाद पाठक ( संवत् १९६७ तक ) और श्री श्यामसुंदर दास ( संवत् १९७६ तक ) थे। प्रांतीय सरकार ने इस ग्रंथमाला की उपयोगिता के कारण ३०० रु० वार्षिक की सहायता पॉच वर्षों के लिये संवत् १९६१ मे देना स्वीकार किया। फलस्वरूप इसकी पृष्ठसंख्या ८० कर दी गई पर उसका मूल्य आठ आने ही रहने दिया गया। इस ग्रंथमाला मे तबतक ग्रंथ खंडशः प्रकाशित होते थे। संवत् १९७७ से इस ग्रंथमाला मे पूरे ग्रंथो का प्रकाशन आरंभ हुआ। अलवर नरेश महाराज सवाई जयसिंह ने इस ग्रथमाला के लिये ६००० रु० सभा को दिया तबसे यह ग्रंथमाला निरंतर प्रकाशित हो रही है और हिंदी के भाडार को सुसंपन्न कर रही है।

इस ग्रंथमाला में अबतक ५४ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। पृथ्वीराज रासो जैसा बृहद् ग्रंथ सभा ने इसी माला मे प्रकाशित किया। इस माला मे अब निम्नाकित ग्रंथ प्राप्य हैं :

१–भक्तनामावली, २–हम्मीररासो, ३–भूषण ग्रंथावली, ४–जायसी ग्रंथावली, ५–तुलसी ग्रंथावली, ६–कबीर ग्रंथावली, ७–सूरसागर, ७–खुसरो

की हिंदी कविता, ६–प्रेमसागर, १०–रानी केतकी की कहानी, ११–नासिकेतोपाख्यान, १२–कीर्तिलता, १३–हमीर हठ, १४–नंददास ग्रंथावली, १५–रत्नाकर, १६–रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, १७–हिंदी टाइप-राइटिंग, १८–हिंदी साहित्य का इतिहास, १६–घनानंद स्वच्छंद काव्यधारा, २०–प्रतापनारायण ग्रंथावली, २१–तुलसीदास, २२–हिंदी में मुक्तक काव्य का विकास।

'रसरतन' इस ग्रंथमाला का ५५ वाँ पुष्प है। हिंदी काव्य परंपरा की एक विलुप्त कड़ी को प्रकाशित करने में यह शोधपूर्ण ग्रंथ अपना मौलिक महत्व रखता है। आशा है हिंदी जगत् मे इसका संमान होगा।

सुधाकर पांडेय
प्रकाशन मंत्री

# आभार

चार वर्ष पूर्व जब 'रसरतन' की पोथी संपादन के लिये मेरे हाथों लगी, तब मुझे यह विश्वास न था कि यह अप्रकाशित रचना एक प्रथम श्रेणी की कृति है और इसका संपादन, प्रकाशन हमारे साहित्य के लिये एक महत्वपूर्ण घटना हो सकता है। प्राप्त हस्तलेखों का निरीक्षण-परीक्षण ज्यों ज्यों बढ़ता गया और जैसे जैसे इस महत्वपूर्ण कृति का कलेवर फटेफटाये, टूटे-अधूरे और वर्षों से उपेक्षित हस्तलेखों के चंगुल से मुक्त होने लगा; वैसे वैसे रसरतन के काव्यगत महत्व और सौष्ठव का चंद्रमा भी ग्रहण से उबरकर स्पष्ट होता गया। अबतक जिन लोगों ने भी इसके इस संपादित मूलपाठ को देखा है, वे एक हर्षमिश्रित आश्चर्य से भर उठे हैं। मध्यकालीन हिंदी साहित्य की इस अनमोल विस्मृत कड़ी को पुनः उसकी गौरवपूर्ण परंपरा से शृंखलित करने के इस कार्य मे मेरी सफलता इसके सांगोपांग विवेचन की पूर्णता में नहीं है, और न तो मेरा यह दावा ही है, यह सफलता केवल इस महत्वपूर्ण साहित्यसंपदा को यथासंभव साफसुथरी बनाकर पारखी सहृदयों के सामने रख देने भर मे है और मैं अपने कार्य के इस पक्ष से पूर्ण संतुष्ट हूँ। मुझे इस ग्रंथ के संपादन के दिनों में, साहित्य और भाषा के दोनों ही आयामों के अंतर्गत कार्य करते समय जो सारस्वत सुख और परितोष मिला है, वही इस श्रम की सर्वोत्तम उपलब्धि है। रसरतन अगले कुछ वर्षों में ही हिंदीप्रेमाख्यानककाव्यों, चारणशैली के शृंगारिक रासोकाव्यो और रीति-काव्यों के बीच के सर्वनिष्ठ सेतु के रूप में स्वीकृत-समादृत होगा। अनेक शोधकर्ता, समीक्षक और साहित्यरसिक इसकी ओर आकृष्ट होंगे। अनेक संस्करणों, संक्षिप्त, लघु और सटीक के नए शस्य से यह भूमि भी 'हरित' और 'तृणसंकुलित' होकर रहेगी—यह उचित ही नहीं, आवश्यक भी है। क्योंकि रसरतन में रस भी है, 'रतन' भी, इसलिये अधिक से अधिक श्रेष्ठ

प्रतिभा और शक्ति के लोग इस उर्वर भूमि की परीक्षा-प्रशंसा करें तो अच्छा ही है। उनका पथ सुखमय और सुविधाजनक हो सके, इसीलिये झाड़झंखाड को काटकर यह डागबेल डाल दी गई है, राजमार्ग तो अब आनेवालों को ही बनाना होगा।

यहाँ पुहकर कवि के प्रेमाख्यानककाव्य 'रसरतन' का पूर्ण, और रस-निरूपण तथा नायिकाभेद विषयक ग्रंथ रसवेलि के कुछ अंशों का संपादित मूलपाठ और समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आशा है कि यह अध्ययन कवि की अन्य कृतियों के संधान की प्रेरणा भी जगाएगा। रसरतन और रसवेलि के अतिरिक्त भी कवि का कुछ कृतित्व अवश्य रहा होगा। शिवसिंहसरोज ( लखनऊ, नवंबर १८८३ ई० के संस्करण ) में कवि का परिचय देते हुए लिखा गया है कि इन्होंने रसरत्न नामक ग्रंथ साहित्य में बनाया है और पृष्ठ १६४ पर निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया गया है—

> जल जोर महाघन घोर घटा ब्रज ऊपर कोप पुरंदर को।
> कवि पुष्कर गोकुल गोप सबै निरखैं मुख श्री मुरलीधर को॥
> धर तैं धरिबो धरणी धर को धरक्यो न हियो धरणीधर को।
> कर लै जनु कॉकर को कर को करुणाकर को करुणा कर को॥

यह सवैया 'रसरतन' का नहीं है। रसवेलि का है या नहीं, इसके निर्णय का भी कोई आधार नहीं। अद्भुतरस के उदाहरण के रूप में शायद 'रसवेलि' में आया हो। जो भी हो, इससे इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि पुहकर कवि के कुछ स्फुट छंद अभी भी मिल सकते हैं। रसवेलि के अन्य अंशों को प्राप्त करने का प्रयत्न होना चाहिए।

रसवेलि का एक और छंद जो चित्रसंख्या २० के नीचे मिला है उद्धृत किया जा रहा है। इस पद को रसवेलि के अन्य अंशों के साथ परिशिष्ट में संमिलित नहीं किया जा सका क्योंकि इसकी प्रतिलिपि बाद में मिली। डा० परमेश्वरीलाल जी गुप्त ने अपने २६-१२-६२ के पत्र मे लिखा है कि उस समय चित्र नं० २० किसी विदेशी प्रदर्शनी में गया था, इसलिये उसमें संलग्न छंद की फोटो कापी तैयार न हो सकी। कवित्त इस प्रकार है—

## धीरा

वारिज वदन पर सोहे ओस कन जैसे
अमल उमै लसी क स्त्रिमित सुहाये हौ।
कैधों कहूँ रारिनि के तेज मात्र गाढ़े भये
कैंधों कहूँ पद्मिनी के पीछे उठि धाये हौ।
पुहकर कर गहै विजन डुलावै बाल
कैसो प्रिय प्रान नाथ मेरे मन भाये हो।
अंग अंग छवि पर वारी हौं बिहारी लाल
आँनद मगन मनौ कास जीति आये हौ॥

श्रद्धेय डा० माताप्रसाद गुप्त ने रसरतन की टीका के हस्तलेख की सूचना दी और उसके कुछ अंश की प्रतिलिपि मेरे मित्र जगदीश जी ने तैयार कराके मेरे पास भेजी, इसके लिये मैं इन दोनों का कृतज्ञ हूँ। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के अधिकारियों, विशेषकर लाइब्रेरियन श्री एस० चौधुरी का भी आभारी हूँ जिन्होंने संस्था के हस्तलेख सग्रहालय मे मेरे लिये उक्त टीका को देखने की सभी सुविधाएँ प्रदान कीं।

इस ग्रंथ के परिशिष्ट मे पुहकर कवि की नायिकाभेदविषयक कृति 'रसवेलि' के कुछ अंश भी प्रकाशित किए गए हैं। यह हिंदी के लिये अश्रुत-पूर्व सूचना और सामग्री है। इसको उपलब्ध कराने में शोधार्थियों के अहेतुक बंधु डॉ० परमेश्वरीलाल जी गुप्त के सहयोग के लिये मात्र धन्यवाद कह देना उचित न होगा। उन्होंने जहाँगीरकालीन अनेक चित्रों के साथ संलग्न इस सामग्री की फोटो कापी भेजकर इस ग्रथ को और भी अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली के, अधिकारियो के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ जिन्होने उक्त सामग्री की फोटो कापी तैयार करने की अनुमति दी।

इस ग्रंथ की भाषा पर एक संक्षिप्त सा अध्ययन ही दिया जा सका है। वृहत् भाषावैज्ञानिक अध्ययन बाद मे प्रस्तुत करने का विचार है। इसके अध्ययन के लिये व्याकरणिक रूपो की अनुक्रमणी हिंदीविभाग के एम० ए० के छात्र श्री प्रेमचंद जैन और श्री रामाशीष पांडेय ने तैयार की है। इन्हें धन्यवाद उसके भाषाशास्त्रीय अध्ययन के प्रकाशन पर ही देना ठीक रहेगा।

अंत में रसरतन के पाठकों के लिये एक संक्षिप्त शब्दार्थसूची दे दी गई है, जिसे प्रस्तुत करने में मेरे मित्र श्री पद्मधर त्रिपाठी का भी सहयोग रहा।

एक शब्द रसरतन के पाठकों के प्रति। बहुत सावधानी बरतने के बावजूद प्रूफ संबंधी कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं, आदिखंड छंद १ की प्रथम पंक्ति में 'अगुन' का 'अगुन' छप गया है। कृपया सुधार लें। यदि ध्यान से भूमिका और परिशिष्ट में दी हुई शब्दार्थसूची का अवलोकन किया जायगा, तो प्रूफ की अशुद्धियों में से कई का मार्जन हो जायगा। कवि के शब्दों में यह रसरतन आपके हृदय में स्थान पा सके। बस

कथा प्रसंग कीन गुन डोरा।
नव रस रतन हार हिय जोरा॥

काशी
१०. ५. ६२

# विभागीय प्राक्कथन

## रसरतन

'पुहकर' कवि का 'रसरतन' प्रकाशित रूप मे पहली बार हिंदीसेवियों के संमुख उपस्थित हो रहा है। इसे हम शुद्ध रूप से और पूर्णतः भारतीय प्रेमाख्यानक (प्रबंध महाकाव्य या) काव्य कह सकते हैं। भारतीय परंपरा के अनेक प्रेमाख्यानकों पर निश्चय ही प्रेममार्गी सूफी कवियों की काव्यधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। ग्रंथ की भूमिका और 'रसरतन' को पढ़कर स्वतः पाठक देख सकेंगे कि किस सीमा तक सूफी प्रेमाख्यानकों ने वर्तमान प्रस्तावित कृति को प्रभावित किया है।

पर हम यहाँ दूसरी बात की ओर पाठकों की अनुशीलनदृष्टि को ले जाना चाहते हैं। सूफियों का कितना प्रभाव पड़ा है और कितना नहीं—इसकी विवेचना तो तुलनात्मक अध्ययन की रुचिवाले पंडित भविष्यत् में करेंगे ही। हिंदी के शोधकर्ताओं और समालोचकों का ध्यान उस तथ्य की ओर ले जाना अभीष्ट है जिसकी चर्चा अपने इतिहास मे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कदाचित् 'रसरतन' के प्रसंग पर सर्वप्रथम की है। इस ग्रंथ के विचित्र महत्व की ओर संकेत करते हुए उन्होने लिखा था कि हिंदी के प्रेमाख्यानक काव्यों मे इसका विशिष्ट स्थान होना चाहिए।

हिंदी साहित्य के इतिहास मे काव्यक्षेत्रीय साहित्यिक और कलात्मक महत्ता की दृष्टि से सूफियों के प्रेमाख्यानको की विशिष्ट प्रमुखता है। फिर भी विशुद्ध भारतीय परंपरा की प्रेमगाथा के विचार से उनके (सूफी प्रेमाख्यानकों के) स्वरूपनिर्माण मे भारतीयेतर तत्व भी कम नहीं हैं। भारतीय संस्कृति और समाजचेतना का पर्याप्त प्रभाव पड़ने पर भी उनकी मूलात्मा और दार्शनिक पीठिका मे अभारतीय प्रेरणा का योग भी कम नहीं है। सूफियों के प्रेमपरक काव्यों में गूँजनेवाले स्वरों में भारतीय संस्कृतिराग की मिठास मुखरित नहीं सुनाई देती है। इसी दृष्टि से महाकवि 'पुहकर' का 'रसरतन'—जैसा कि पाठक और समीक्षक स्वयं देखेंगे—एक विशिष्ट कृति है।

इसी कारण शुक्ल जी ने इसके महत्व का संकेत करते हुए लिखा है—'कल्पित कथा को लेकर प्रबंधकाव्य रचने की प्रथा पुराने हिंदीकवियों में बहुत कम पाई जाती है। (यहाँ कल्पित से तात्पर्य प्रस्तुत संदर्भ में प्रेमाख्यानक प्रबंधकाव्यों से है, जिनमें ऐतिहासिक व्यक्तियों या कथाओं का समावेश कभी कभी होने पर—प्रेमाख्यानकीय कथारूढ़ियों में प्रचलित कल्पना के व्यापार से—कथामूर्ति और भावप्रतिमा का अधिकांश और मुख्यांश निर्मित होता है। कभी कभी वे कथाएँ पूर्णतः कल्पित और कभी कभी प्रचलित लोककथाओं का थोड़ा बहुत आधार और अधिकांश कल्पितांश लेकर निर्मित हो सकती हैं।) जायसी आदि सूफीशाखा के कवियों ने ही इस प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं। पर उनकी परिपाटी बिलकुल भारतीय नहीं है। इस दृष्टि से 'रसरतन' को एक विशेष स्थान देना चाहिए'। इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए यदि हम भारतीय प्रेमगाथाओं की ऐतिहासिक धारा की ओर दृष्टिपात करें तो आचार्य शुक्ल के कथन का भाष्यार्थ समझ में आ जायगा।

### भारतीय प्रेमाख्यानक की मूलधारा

भारतीय प्रेमाख्यानकों का जो रूप आज तक उपलब्ध हो सका है उसमें ऋग्वेद का वह संवादसूक्त प्राचीनतम कहा जा सकता है जिसमें पुरूरवा और उर्वशी का कथनोपकथन वर्णित है। पुरूरवा मर्त्य है, मानवलोक का मरणशील मनुष्य है और उर्वशी अप्सरा है—देवलोक की दिव्य नारी है। चार वर्षों तक वह दिव्य अप्सरा पुरूरवा के साथ पत्नी के रूप में धरती पर रही। इसके बाद वह आपन्नसत्वा होने पर एक घटना के कारण प्रथम उषा के समान एकाएक धरती से तिरोहित हो गई। उसे ढूँढ़ते हुए पुरूरवा ने अन्य सखी अप्सराओं के साथ एक सरसी में उसे जलक्रीड़ा करते पाया। ऋग्वेद के उक्त सूक्त में यही संवाद आबद्ध है। इसकी उक्तियों का तात्पर्य कहीं कहीं अस्पष्ट और अबोध्य है।

उक्त संवादसूक्त से—जिसकी प्रेयसी दिव्या अप्सरा और नायक मानव है—इतनी ही प्रेमकथा का संदर्भसंकेत मिलता है। परंतु शतपथ ब्राह्मण में भारत की इस अतिप्रत्न प्रेमगाथा का वर्णन पुनः मिल जाता है। ऋग्वेदोत्तर साहित्य में यह कथा बारंबार पुनः वर्णित और विस्तृत होती गई। शतपथ ब्राह्मण में यह आख्यानक कुछ विस्तार के साथ मिलता है। उसके आधार पर उपर्युक्त ऋग्वेद से संकेतित अपूर्ण और खंडकथा का कुछ अधिक स्पष्ट रूप

सामने आता है। शतपथ ब्राह्मण के इस वर्णन में तत्कालीन 'लोकाख्यानक शैली' के अनेक पूर्वसंकेत मिलते हैं। वर्णनक्रम में ऋग्वेद के उक्त सूक्त की अठारह ऋचाओं मे से पंद्रह की वहाँ चर्चा की गई है। ये ऋचाएँ 'शतपथ' की शैली के रूप मे आख्यान के संदर्भ मे यथास्थान बीच बीच गुंफित हैं। प्रेमाख्यानक गाथाओं या लोकगाथाओं के विकास की दृष्टि से शतपथ ब्राह्मण के प्रस्तुत उपाख्यान का महत्व तो है ही—पर इसके साथ वर्णनपद्धति के विचार से भी उसका महत्व कम नहीं है। अतः शतपथ ब्राह्मण ( ११।५।१ ) से थोड़ा सा आरंभिक ब्राह्मणांश यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

उर्वशी हाप्सराः। पुरूरवसमैडं चकमे त ँ ह विन्दमानोवाच त्रिः स्म माऽह्नो वैतसेन दण्डेन हतादकामा ँ स्म मा निपद्यासै मो स्म त्वा नग्नं दर्शमेष न वै स्त्रीणामुपचारऽइति ॥ १ ॥

सा हास्मिञ्ज्योगुवास। ( सा ) अपि हास्माद्गर्भिण्यास तावज्ज्योग्घास्मिन्नुवास ततो ह गन्धर्वाः समूदिरे ज्योग्वाऽइयमुर्वशी मनुष्येष्ववात्सीदुपजानीत यथेयं पुनरागच्छेदिति तस्यै हाविद्युरणा शयनऽ उपबद्धाऽऽस ततो ह गन्धर्वाऽन्यतरमुरणं प्रमेथुः ॥ २ ॥

सा होवाच। ( चा ) अवीरऽ इव बत मे ऽजनऽ इव पुत्रँ हरन्तीति द्वितीयं प्रमेथुः। सा तथैवोवाच ॥ ३ ॥

( चा ) अथ हायमीक्षाञ्चक्रे। कथन्नु तदवीरङ्कथमजन ँ स्याद्यत्राह ँ स्यामिति स नग्न एवानूत्पपात चिरन्तन्मेने यद्वासः पर्यधास्यत ततो ह गन्धर्वा विद्युतञ्जनयाञ्चकुस्तं यथा दिवैवं नग्नं ददर्श ततो हैवेयं तिरोबभूव पुनरैमीत्येत्तिरोभूता ँ सऽआध्या जल्पन् कुरुक्षेत्र ँ समया चचारान्यतःप्लक्षेति बिसवती तस्यै हाध्यन्तेन वव्राज तद्ध ताऽअप्सरसऽ आतयो भूत्वा परिपुप्लुविरे ॥ ४ ॥

त ँ हेयं ज्ञात्वोवाच। ( चा ) अयं वै स मनुष्यो यस्मिन्नहमवात्समिति ता होचुस्तस्मै वाऽआविरसामेति तथेति तस्मै हाविरासुः ॥ ५ ॥

( ताँ ) ता ँ हायं ज्ञात्वाऽभिपरोवाद।

'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचाᳫसि मिश्रा कृणवावहै नु ॥' न नौ मन्त्राऽअनुदितासऽ एते मयस्करन्परतरे च नाहन्नि' त्युप नु रम सं नु वदावहाऽइति हैवैनां तदुवाच ॥ ६ ॥

तᳫ हेतरा प्रत्युवाच ।

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।

पुरूरवः पुनरस्तम्परेहि दुरापना वातऽइवाहमस्मीति' न वै त्वं तदकरोर्यदहमब्रवं दुरापा वा अहं त्वयैतर्ह्यस्मि पुनर्गृहानिहीति हैवैनं तदुवाच ॥ ७ ॥

इन पंक्तियों मे ॥५॥ तक के भाग मे उक्त ऋग्वेदीय संवादसूक्त के पूर्व की उपक्रमणिका है। उसमे उर्वशी के तीन 'समय' (पण = शर्त) बताए गए हैं जिनमे एक था (जैसा मूल मे कहा गया है) कि 'मै तुम्हें नग्न न देखूँ'। अर्थात् यदि नग्न देखा तो फिर 'मैं तुम्हारा साथ छोड़कर चली जाऊँगी'। गंधर्वों ने परस्पर बातचीत करते हुए कहा कि उर्वशी बहुत दिन मनुष्यो के बीच रह चुकी। अतः ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वह पुनः वहाँ से लौट आए। विचार कर उन गंधर्वों ने अपना अभिसंधिपूर्ण कार्यक्रम बनाया। भेड़ के दो बच्चे थे जिन्हें उर्वशी अपने सुतनिर्विशेष वात्सल्य भाव से मानती थी। रात को सोते मे भी अपनी खाट से उपबद्ध रखती थी। उन्हीं में से एक को पहले और दूसरे को बाद मे गंधर्वों ने चुरा लिया। चुराकर बारी बारी गंधर्व दौड़ भागे। उन बच्चों के चोरी जाते समय दोनों बार उर्वशी कहने लगी (संभवतः हल्ला मचाने लगी)—'वीर-पुरुष-रहित स्थान से मानों मेरा पुत्रकल्प उरण (भेड़ का बच्चा) चुराया जा रहा है। वह ऐसे चुराया जा रहा है जैसे यहाँ कोई जन है ही नहीं (कोई भी मनुष्य नहीं है, मै एकाकिनी हूँ, असहाय हूँ)।' पुरूरवा वहीं सोया था। हल्लागुल्ला और उर्वशी की असहाय वाणी सुनते ही उठकर जिस नग्न रूप में वह था वैसे ही उरणचोरों के पीछे चल पड़ा। वस्त्र पहनने में समय लग जायगा, देरी होगी—इस कारण पुरूरवा ने कपड़ा पहनने का इरादा छोड़ दिया और वैसे ही दौड़ पड़ा। ठीक इसी मौके पर गंधर्वों ने बिजली पैदा कर दी, ऐसी बिजली चमकाई कि रात के अंधेरे में दिन जैसा प्रकाश हो गया। उर्वशी की दृष्टि नंगे पुरूरवा पर पड़ गई। वह अंतर्हित हो गई। विरहजन्य मनोवेदना से विलाप करता हुआ पुरूरवा इधर-उधर चक्कर काटता और कुरुक्षेत्र के समीप अटन करता रहा। वहीं एक दिन कमलों

से भरी सरसी में आति ( जलपक्षी—संभवतः हंस )-रूप से उर्वशी अपनी क्रीड़ासखियों के साथ जलकेलि कर रही थी। उसने चक्कर लगाते पुरूरवा को पहचान लिया और सखियों से बताया कि 'यही वह मनुष्य है जिसके यहाँ मैं वास कर चुकी हूँ।' तब उन सखियों ने पक्षी के बनावटी रूप को छोड़कर अप्सरारूप में प्रकट होने का विचार किया और वे प्रकट हुईं। उर्वशी भी उन्हीं के साथ अप्सरारूप में प्रकट हुई। उसे पहचान कर पुरूरवा अपनी व्यथा और अभिलाष कहने लगा तथा उर्वशी उत्तर देने और समझाने लगी।

यहीं से 'ऋग्वेद' का उक्त संवादसूक्त आरंभ होता है जो 'शतपथ ब्राह्मण' के इस उपाख्यान में वर्णित है। आगे चल उक्त 'ब्राह्मण' में कहा गया है—"तदेतदुक्तप्रत्युक्तं पञ्चदशर्चम्बह्वृचाः प्राहुः' अर्थात् पुरूरवा और उर्वशी का उक्त सरसीसमीपस्थ उक्तप्रत्युक्त ( कथनोपकथन ) ऋग्वेद के शाखाध्यायियों मे पढ़े जाते हैं। [ ऋग्वेद की आश्वलायनशाखा की संहिता में यह सूक्त १८ ऋचाओं का है। अतः कुछ विद्वानों का अनुमान है कि 'शतपथ ब्राह्मण' मे निर्दिष्ट 'पञ्चदशर्च' सूक्त शांखायण शाखा मे रहा होगा। ] इसके पश्चात् विरहदुःख के सहन मे असमर्थ पुरूरवा के समस्त तर्क, सब आग्रह व्यर्थ हो जाते हैं। समयभंग के बाद उर्वशी लौटकर पुरूरवा के साथ रहने के लिये किसी भी तरह तैयार नहीं होती। अंत में पुरूरवा कहता है कि यदि उर्वशी उसके साथ लौटकर नहीं चलेगी तो वह पर्वत की चट्टान से कूदकर, क्रूर भेड़िए का भक्ष्य बनकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर देगा। इसके उत्तर में समझाती हुई उर्वशी कहती है कि उसे ( पुरूरवा को ) पर्वत से कूदकर वृक का भक्ष्य बनकर, जीवन का अंत न करना चाहिए। वह यह भी कहती है कि नारी का हृदय वृकों ( भेड़ियों ) के ही समान क्रूर होता है। उनकी मित्रता, उनका सहचरण कभी स्थायी नहीं होता। और अंत में समझाती है कि पुरूरवा देवकृपा से मृत्युजेता होगा और आनंदपूर्वक स्वर्ग मे सुखोपभोग करेगा। संवादसूक्त यद्यपि अचानक यहीं समाप्त हो जाता है तथापि 'ब्राह्मण' मे उर्वशी पुरूरवा को वह उपाय बताती है जिसका अनुसरण करके मर्त्य पुरूरवा गंधर्वपद पाकर उर्वशी के साथ रहने का आनंद प्राप्त करे।

इस कथा में ऋक्संहिता से ज्ञात नहीं होता कि दोनों प्रेमियों का पुनः संगम हुआ या नहीं। 'शतपथ ब्राह्मण' से केवल इतना ही संकेत मिलता

है कि गंधर्व के रूप में अंतरित होकर कदाचित् पुरूरवा स्वर्ग पहुँचा और पुनर्मिलन का आनंद उसे मिला।

यह कथा कदाचित् अत्यंत प्रसिद्ध लोकाख्यानक होने से ही **ऋग्वेद** में और तदुत्तरवर्ती वाङ्मय में बारबार गुंफित होती रही। कृष्ण यजुर्वेद की **कठसंहिता** में इसका निर्देश मिलता है। इसी प्रकार **बौधायन श्रौतसूत्र** मे भी यह आख्यानक वर्णित है। सबसे विशिष्ट और कलात्मक रूप इसका महाकवि **कालिदास** के विश्वविख्यात नाटक **विक्रमोर्वशीय** में मिलता है जहाँ यद्यपि मूल प्रेरणा **ऋग्वेद** और **शतपथ ब्राह्मण** से ही प्राप्त जान पड़ती है तथापि उसका मुख्य आधार महाभारत है। **हरिवंश पुराण महाभारत** का ही परिशिष्ट भाग है। वहाँ से कालिदास के नाटक में कथा ली गई है। **महाभारत** के अतिरिक्त **विष्णुपुराण** मे भी यह कथा मिलती है और **कथासरित्सागर** में भी इसका वर्णन उपलब्ध है।

इतने विस्तार के साथ उक्त आख्यान का परिचय देने का—केवल इतना दिखाना ही—उद्देश्य है कि भारतीय वाङ्मय के आदिकाल से ही प्रेमाख्यानकों का प्रचलन होने लगा था। बहुत संभव है कि ये प्रेमाख्यानक लोककथाओं के मूल से संकलित किए गए हों। लोकप्रचलित प्रेमगाथाएँ ही इनके मूल प्रेरणा-स्रोत थे। इस अनुमेय कल्पना का आभास **शतपथ ब्राह्मण** के उक्त आख्यानक से स्पष्ट झलकता है। उससे यह ज्ञान पड़ता है कि संभवतः **ऋग्वेद** काल में और प्रधान रूप से **शतपथ ब्राह्मण** के युग में लोक-गाथाओं के कथन की कुछ कुछ वह परंपरा थी जिसमे नायक और नायिकाओं के मुख्य वचन पद्यों मे आबद्ध होते थे और मध्य का व्याख्यात्मक, योजक एवं कथापूरक वर्ण्य अंश गद्य मे आबद्ध रहता था। यह गद्यांश थोड़ा बहुत कथा सुनानेवाले अथवा आज की नौटंकी जैसे नाट्यकथानक उपस्थित करने-वाले व्यक्तियों द्वारा भी कहे जाते थे। फलतः शब्दावली तथा उनके आकार प्रकार में परिवर्तन होते रहते थे। परतु उनके संवादपरक पद्यांश अधिक स्थायी होते थे। 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' नामक ग्रंथ मे लोकगाथाओं की चर्चा के प्रसंग में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोकप्रचलित विभिन्न प्रकार के लोकनाट्यों और श्रव्यलोककथाओं की पद्धतिरूढ़ियों का विस्तार के साथ निरूपण किया है, जिसे हम वहाँ देख सकते हैं। इसी प्रकार दिव्य और मर्त्य प्रेमीयुगल की प्रणयगाथा भी कदाचित् ऐसी ही एक कथानकरूढ़ि रही है जिसका उपयोग **ऋग्वेद** युग से लेकर **पुहकर** के **रसरतन** तक में मिलता है। 'रसरतन' का

नायक स्वप्नलब्ध अपनी प्रेयसी को ढूँढ़ता हुआ जब मानसरोवर के तट पर गगन में विश्राम कर रहा था तब उर्वशी की सलाह से—क्रीड़ाकमलों के साथ खिलवाड़ करती हुई अप्सराएँ, ब्रह्मकुंड नामक स्थान पर वास करती हुई 'कल्पलता' के प्रति स्नेहार्द्र होकर—युवराज को उसके पास ले गईं। यह कल्पलता इंद्रकोप से शापग्रस्त होकर स्वर्गच्युत कर दी गई थी। उसे पृथ्वीवास का दंड मिला था। क्रीड़ा करती हुई अप्सराएँ आकाशमार्ग से, सोए शूरसेन को ब्रह्मकुंड, कल्पलता के पास, ले गईं। वहाँ कुमार का प्रथम विवाह कल्पलता के साथ अकस्मात् हो जाता है। नायिका भी देवयोनि की शापभ्रष्ट अप्सरा ही है। कदाचित् लोककथा की वह प्रतिध्वनि भी पुरातनयुग से ही भारत के प्रेमाख्यानकों मे गृहीत हो चुकी थी जिसके अनुसार स्वर्गच्युत या पृथ्वी पर आगत अप्सराओं और गंधर्व आदि की पुत्रियों का विवाह, धरती के अति सुंदर मर्त्यों के साथ रचाया जाता था। कभी कभी मर्त्यअमर्त्य प्रेमीप्रेमिकाओं के मिलन में गंधर्व, विद्याधर आदि भी सहायक रूप से इन कथाओं मे वर्णित होते रहे हैं। बहुधा ये अपदेवता हंस, शुक आदि का रूप भी धारणकर उपस्थित हुआ करते थे। संभवतः अपने वर्ग या समाज की कन्या के स्वर्गपतित होने से दुखित होकर वे सहानुभूतिवश, सुंदर नर से उनका मिलन कराते थे। कभी कभी मर्त्य युगलों की सुंदर और अनुपम जोड़ी को मिलाने मे उन्हें परम आनंद प्राप्त हुआ करता था। गुणसौंदर्यशाली नरनारियों की युगल जोड़ी मिलाना, संभवतः, वे परम धर्म का काम मानते थे। इस प्रकार के मेलनपरक दूतकर्म करनेवालों के अनेक स्वरूप—विभिन्न लोकाश्रित भारतीय प्रेमाख्यानकों में आजतक भी मिलते चले आ रहे हैं। **रासो** में—विशेष रूप से पृथ्वीराज के विविध विवाहवर्णनों के अंतर्गत—ऐसे प्रणयसहायक और परिणयसंपादक पात्रों का वर्णन मिलता है।

उपर्युक्त **शतपथ ब्राह्मण** की कथा मे भी सरोवरस्थ हंसरूपधारी गधर्व-कन्याओ.या अप्सरिकाओं के जलविहार का वर्णन है। इसमें उर्वशी की क्रीडासहचरी सखियाँ हंस के रूप मे जलविहार करती वर्णित हुई हैं। इसमें आश्चर्य और असंभावना न देखनी चाहिए कि देवयोनि के गधर्व, किन्नर, विद्याधर और अप्सराओं के सहाय से प्रणयगाथा के विकास और कार्य-संपादन मे योग मिलता रहा है।

## नैषधचरित में लोककथा के उपादान

संस्कृत महाकाव्यों में दंडी के प्रबंधमहाकाव्य की परिभाषा का अनुसरण करनेवाले महत्वशाली महाकाव्यों में नैषधचरित का स्थान अप्रतिम है।

शास्त्रीय वैदुष्य की प्रौढ़ अप्रस्तुत योजनाओं और कविप्रौढोक्तिसिद्ध कल्पना-जन्य वर्णनाओं के कारण नैषधचरित वृहद्‌त्रयी का उत्कृष्ट महाकाव्य कहा जाता है। अलंकृत काव्यशैली और पांडित्यबल से निर्मित कल्पना के अल्पभावयुक्त चित्रों तथा अलंकारगुंफन के भार से बोझिल होने के कारण उक्त महाकाव्य में भावमयी सरस कल्पना की साधारणीकारक और तन्मयकारी वह सहज धारा नहीं मिलती जो कालिदास या वाल्मीकि मे हम पाते हैं। परंतु शक्ति, निपुणता तथा काव्यशास्त्र की शिक्षा से प्रगल्भ, पंडितकवि की सायास रचना का नैषधचरित को उत्कृष्ट रूप मानने में कोई विवाद नहीं है। शास्त्रीय प्रबंधमहाकाव्य की पद्धति लेकर चलनेवाले इस महाकाव्य मे ऐसी उक्तियाँ भी हैं जो लोककथाओं मे मिलती हैं। कथाशिल्प के संघटनसहायक ऐसे तत्व भी हैं जो नैषधचरित में लोकाश्रित काव्यों की कथानकरूढ़ि का स्वीकरण प्रदर्शित करते हैं। नल और दमयंती के हृदय में गुण-श्रवणजन्य प्रणयभाव को उद्दीप्त, तीव्र एवं विरह की गाढ़ दशा तक पहुँचानेवाला **हंस** लोककथा से ही संभवतः अवतरित हुआ है। उस हिरण्यमय हंस के द्वारा जो कार्य संपादित किया गया है उसे लोककथाओं की प्रणयगाथा का प्रतिध्वनन ही समझना चाहिए। यह भी जान पड़ता है कि महाभारत के नलोपाख्यान से गृहीत यह कथानक, संभवतः, उसी प्रकार ग्रामकथा या जनकथा हो गया था जिस प्रकार **उदयन** की ऐतिहासिक नायकाश्रित गाथा ग्रामकथा हो चुकी थी और जिसके लिये कालिदास को **उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धों** की चर्चा करनी पड़ी थी। नलदमयंती की पौराणिक कथा भी वैसी ही जनप्रिय लोक-कथा बन चुकी थी। महापंडित श्रीहर्ष ने उस लोककथा को शास्त्रीय परिभाषा से संस्कृत महाकाव्य के साँचे में साहस के साथ ढाल दिया। श्रीहर्ष के अतिरिक्त भी 'नलचंपू', 'नलोदय' आदि अनेक दृश्य-श्रव्य-काव्यों की विधाएँ इस नलकथा की लोकप्रियता और अतिशय प्रचार के कारण साहित्यिक निर्माणों का आधार बनती रहीं।

### प्रणयगाथा में अपदेवता का विनियोग

परियों और अप्सराओं को भी लोककथाओं मे अत्यधिक महत्व मिलता रहा। ये लोककथाएँ साहित्यिक, उत्कृष्ट विधाओं को प्रभावित करती हुई अपना योग देती रही हैं। भामह और दंडी की कथा-आख्यायिका-संबद्ध परिभाषा भी सातवीं आठवीं शताब्दी से ही अपनी रूढ़िमूलक कठोरता त्याग चुकी

थी और उनमें पारस्परिक भेद की दूरी भी बहुत दूर तक मिट चुकी थी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी तक, बराबर कथाओं और आख्यायिकाओं—दोनों पर लोकगाथाओं की कथानकरूढ़ियों के प्रभाव की गहरी छाप, स्पष्टतः, दिखाई पड़ती है। बाणभट्ट की कादंबरी मे अप्सराओं, विद्याधरों और किन्नरों आदि की अवतारणा संभवतः लोककथाओं के प्रचलित उपादानतत्व के प्रभाव से ही हुई है। इसी प्रकार जातिस्मरशुक भी बाणभट्ट के कथाशिल्प मे लोकगाथा से अवतीर्ण रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। पैशाची प्राकृत में लिखित गुणाढ्य की 'बड्ढकहा' यद्यपि संप्रति अनुपलब्ध है तथापि **कथासरित्सागर** तथा **बृहत्कथामंजरी** आदि में उपनिबद्ध अंतःकथाओ और मुख्य कथा को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमे लोकप्रचलित दंतकथाओं का आश्रयण निःसंकोच भाव से हुआ है। और उसी आधार पर यह अनुमान हो सकता है कि **बड्ढकहा** भी लौकिक उपाख्यानों और दंतकथाओं का उपयोग करनेवाला ग्रंथ रहा होगा। दडी का 'दशकुमार चरित्र' भी वैसा ही था। विस्तार मे न जाकर इतना ही सकेत यहाँ अपेक्षित है कि लोककथाओं के ये सभी तत्व **पृथ्वीराजरासो** की रचनाकाल तक जहाँ उपादानतत्व के रूप मे सहायक होते रहे वहाँ दूसरी ओर सूफियों के प्रेमपरक गाथाकाव्यो मे भी कथानकरूढ़ियो और कथासहायक उपकरणों के रूप मे सहायता देते थे।

यह हो सकता है कि सामान्य प्रणयगाथाओं मे उपलब्ध इस प्रकार के लोककाव्यों के उपादानतत्व किसी एक ही मूल स्रोत से भारतीय, लौकिक और शास्त्रीय—विभिन्न काव्यरूपो मे आए हों और साथ ही साथ उसी स्रोत की प्रवाहपरंपरा से सूफी प्रेमाख्यानकों मे भी प्रविष्ट हुए हों। इस संदर्भ में पुरानी मिथ (पुराणकथा) और पुरातन युगीन लोककथाओं का इतिहासमूलक अध्ययन करनेवाले पंडितों ने फारस ईरान की पुरानी प्रेमगाथाओं से इनका संबंधसूत्र और स्रोतशृंखला जोड़ने का प्रयास किया है। यह उपलब्धि असंभाव्य नहीं है। ईरानी प्रेमकथाओं और लोककहानियों का प्रभाव संस्कृतप्राकृत की उक्त विधा के कथानकाश्रित काव्यों पर और साथ ही कुछ विशेष रूप से अपभ्रशकालीन तथा अपभ्रंशोत्तरयुगीन **रासो** जैसे हिंदी काव्यों पर, और 'बैतालपचीसी, सिंहासनबतीसी, शुकबहत्तरी जैसी कहानियों पर पड़ा हो तो इसमे तनिक भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए। भारतीय कथाओं की कुछ इसी शैली से मिलती जुलती परपरा का भी आरंभ बहुत पुरातन है। 'शतपथ ब्राह्मण' के संकलनयुग से निःसंदिग्ध रूप मे उसी से मिलती जुलती

कुछ कथारूढ़ियाँ प्रकाश मे आ गई थीं। इनके लोककथाश्रित रूप 'महाभारत' आदि जैसे महापुराण महाकाव्यों में भी स्थल स्थल पर गुंफित होते रहे और उसकी अविच्छिन्न धारा भी हिंदी के मध्ययुग तक बहती रही। भारतीय प्रेमाख्यानकों मे उन पुरातन रूढ़मान्यताओ की स्पष्ट छाप और गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। इतना ही नहीं प्रेमाख्यानकों की यह परपरा बौद्धों के अवदान-कथानकों और जैनियों की धर्मकथाओं मे भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती दिखाई देती है। ई० पू० द्वितीय शती के पातंजल महाभाष्य मे 'भैमरथी', 'सुमनोत्तरा' और 'वासवदत्ता' के नाम मिलते हैं। उनमे 'वासवदत्ता' तो निश्चय ही 'प्रेमाख्यानक' रचना थी। हो सकता है अन्य दो आख्यायिकाएँ भी प्रणयकहानियाँ ही रही हों। जैनियों के धर्मप्रेरित चरितकाव्यों और पुराणनिभ ग्रंथों में उत्तरवैदिक और पौराणिक कथानक-रूढ़ियों और लौकिक प्रेमगाथाओं के उपकरणभूत, प्रेमकथाश्रित तत्वों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। **रसरतन** के स्वप्नखंड मे भी 'रति' से तीन प्रकार के दर्शनों का उल्लेख करते हुए 'काम' ने कहा है—

**काम कहै सुनु सुंदरी, दरसन तीन प्रकार।**
**स्वप्न चित्र परतिच्छ प्रिय, प्रगट प्रेम विस्तार॥**

—रसरतन—पृ० ३०

इनमे से विभिन्न प्रकार के दर्शन का स्वरूप विभिन्न जैनकाव्यों में देखा जा सकता है। **करकंडुचरित** मे चित्रदर्शन से प्रेम का स्वरूप अवतरित हुआ है। उनमे नायकों को सिंहल की यात्रा करनी पड़ती है। इसी प्रकार **सुदर्शनचरित** और **भवीसयत्तकहा** मे परस्पर प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेम का जन्म होता है। मध्ययुग की अनेक कथाओं में इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं। इन कथाओं मे भी यक्ष, गधर्व आदि अलौकिक तत्वों का समावेश दिखाई देता है। इसी काल के आसपास की रचना 'नैषधचरित' भी है। दर्शन के अतिरिक्त लोककथाओं और काव्यों में प्रेम की पीर के उद्भव का एक और कारण दिखाई पड़ता है जिसे श्रवणानुराग कह सकते हैं। नायिका या नायक एक दूसरे के गुण, सौंदर्य, शौर्य आदि को सुनकर एक दूसरे पर अत्यन्त अनुरक्त हो जाते हैं। उनमें अपने प्रेमी या प्रेमिका की प्राप्ति और मिलन की तीव्र लालसा जग जाती है। अतः वे विरहजन्य या पूर्वरागज प्रेमपीर से व्यथित हो जाते हैं। 'रासो' मे अनेक स्थानों पर श्रोत्रानुराग का उल्लेख

मिलता है। श्रीहर्ष के 'नैषधचरित' मे इस 'श्रोत्रानुराग' का प्रभाव, आरंभ से ही दृष्टिगोचर होने लगता है। श्रवणानुरागजन्य विरहपीड़ा से व्यथित नल के हृदय मे अनुपम रूपसौंदर्यवती दमयती का प्रेम इतनी गहराई तक पैठ चुका है कि उसे दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता। दूसरी ओर नल के गुणशौर्य-श्रवण से दमयंती के हृदय में भी प्रेम का बीज अंकुरित होता है और कमनीय कुमारी भी कामपीड़ा से व्याकुल हो जाती है। मन्मथशरविद्ध नल अत में अपना राजकाज तक छोड़कर मन बहलाने उपवन मे जा पहुँचते हैं। वहाँ प्रणय को तीव्र करनेवाला और मिलनपथ मे सहायताघटक स्वर्णहंस आकर अपना दौत्य आरंभ कर देता है।

इन सब परंपराओं की प्रतिध्वनि तद्‌युगीन काव्यों मे संभवतः लोक-कथाओं से ही आई रही होगी। **पुहकर** का **रसरतन** भी इस परंपरा से निश्चय ही दूर तक प्रभावित है। यहाँ कवि ने स्वप्नदर्शन को मायिक प्रत्यक्ष-दर्शन के कौशल से अधिक चमत्कारशाली और प्रभाववर्धक रूप दे दिया है। यहाँ एक ओर तो यह होता है कि पंचबाणों से संनद्ध काम स्वयं चंपावती जाकर विजयपाल की कन्या रंभा के अतःपुर में पहुँचता है और सूरसेन के रूप में रंभा की सेज पर अपने दिव्य बल से जा बैठता है। राज-कन्या की नींद टूट जाती है और सूरसेन के रूप मे काम को देखकर सूरसेन के प्रति उसके मन मे प्रेमपीड़ा भड़क उठती है। मन्मथ का मोहन नामक शर उस कार्य को तीव्रतर बनाकर चल देता है। दूसरी ओर, रति भी, काम के निर्देशानुसार रंभा के वेष में सूरसेन के पास जा पहुँचती है। सूरसेन के हृदय मे रंभा के अमिट प्रेम की आग जलाकर वहाँ से लौट आती है। इस प्रकार **रसरतन** के कवि ने अपने कथाविधान के शिल्पनैपुण्य से स्वप्नदर्शन को प्रत्यक्षाभास और मायिक प्रत्यक्षदर्शन को स्वप्नकल्प बना दिया है। स्वप्न-दर्शन का कौशल केवल स्वप्नदर्शन न रहकर प्रत्यक्ष से आलिंगित हो उठता है। आगे चलकर 'बुद्धिविचित्र' के प्रयास से रंभा और सूरसेन—दोनों को एक दूसरे के चित्र भी प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार हम कहना चाहें तो कह सकते हैं कि प्रेमकहानियो मे पूर्वराग की प्रणयपीड़ा और मिलन की आकुलता को तीव्र और तीव्रतर बनाने के लिये 'दर्शन' के सभी कौशलों का कवि ने समावेश कर दिया है। साथ ही 'बुद्धिविचित्र' द्वारा उस प्रेम को तीव्रतम बनानेवाले दौत्यकर्म भी किया गया है। रंभा के प्रणय की गहराई और घनत्व की सूचना तथा सूरसेन की प्रवृद्ध प्रेमविकलता और प्रेमपाती द्वारा

अभिलाष की अभिव्यक्ति के हो जाने से दर्शनानुराग और श्रोत्रानुराग द्विगुणित रूप में बढ़ चुके हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया उसका सारांश यह है—( १ ) भारतीय साहित्य में प्रेमपरक आख्यानकाव्य की परंपरा बड़ी पुरातन है। ( २ ) इन आख्यानों की ( आधारभूत ) उपकरण-सामग्री में कदाचित् सर्वाधिक योग, लोकप्रिय कथा गाथाओं का रहा है। ( ३ ) शास्त्रीय, सांस्कृतिक और पौराणिक आख्यान भी बहुधा इन प्रेमकाव्यों में तभी गृहीत होते थे जब लोकप्रिय होकर लोकगाथा की भूमिका धारण करके साहित्यमंच पर प्रवेश करते थे और तभी साहित्य की विविध विधाओं के रूप में अभिनय भी करते थे। ( ४ ) इनमें अलौकिक और दैवी तत्वों की—अप्सरा, गंधर्व, विद्याधर आदि अपदेवों की सहायता भी अक्सर ली जाती रही है। ( ५ ) विरह और मिलन की घटना के संपादन में नाना प्रकार की रूढ़ियों का उपयोग होता रहा है।

## प्रस्तुत ग्रंथ और उसका संपादन

इस प्रकार यह **रसरतन** सहस्राब्दियों में क्रमशः विकासमान भारतीय प्रेमाख्यानक की परंपरा, लोककाव्य में प्रेमगाथा की रूढ़ियाँ और फारस ईरान के सूफी प्रेमाख्यानक का प्रभाव—इन सबको लेकर चला। इसी का संकेत आचार्य रामचंद्र शुक्ल के उस वक्तव्य में निहित है जिसकी चर्चा आरंभ में ही की गई है। इसके अलावा शुक्ल जी की तत्वदर्शी और सूक्ष्मालोचकदृष्टि ने 'रसरतन' के साहित्यिक पक्ष के महत्व की ओर साहित्यिकों का ध्यान आकृष्ट किया। पर संभवतः ग्रंथाभाव के कारण ही हिंदीसाहित्य के महारथियों तक ने इस ओर पर्याप्त ध्यान न दिया। 'पुहकर' कवि की समीक्षा में लिखित आचार्य शुक्ल के दो वाक्य नीचे उद्धृत हैं जो प्रस्तुत ग्रंथ के वैशिष्ट्य की सूचना के संदर्भ में पर्याप्त हैं—'कविता सरस और भाषा प्रौढ़ है···पर प्राप्त ग्रंथ को देखने से यह अच्छे कवि जान पड़ते हैं'। यद्यपि शुक्ल जी ने इस कृति की साहित्यिक आलोचना इतनी ही लिखी है तथापि इतने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि **पुहकर** कवि की पाडुलिपि को, कम से कम उलट पुलट कर, देखने के बाद ही, ये शब्द लिखे गए हैं। इतने पर भी शोधकर्ताओं की भीड़ में **रसरतन** की ओर ध्यान न जाना और अब तक इसका प्रकाशन न होना कुछ कम खटकनेवाली बात नहीं है। पर विलंब से ही सही यह ग्रंथ, जहाँ तक सामग्री उपलब्ध हो सकी वहाँ तक, वैज्ञानिक ढंग से संपादित होकर तथा समीक्षापूर्ण और

शोधात्मक विस्तृत भूमिका से समन्वित होकर डा० शिवप्रसाद सिंह के प्रयास से हमारे सामने आज उपस्थित है।

ग्रंथ जिस समय छप रहा था उस समय उसकी मुद्रित फाइल साहित्य विभागीय प्राक्कथन लिखने के लिये मेरे पास आती रही। उस समय मूलग्रंथ धीरे धीरे पढ़ते रहने पर मेरे ऊपर जो प्रतिक्रियाएँ हो रही थीं तथा ग्रथ के वैशिष्ट्य और महत्व के संबंध मे जो पर्यालोचनात्मक विचार उठ रहे थे उन्हे मैं नोट करता रहा और उन्हीं के आधार पर अपने कुछ विचार लिखने की बात भी मैं सोच रहा था। परंतु सपूर्ण ग्रंथ जब सामने आया और एक सौ तिरसठ-चौसठ पृष्ठों की शोधपूर्ण, समीक्षात्मक चिंतन से भरी हुई तथा सबल शब्दों मे अभिव्यक्त भूमिका मेरे पास पहुँची तब मै बड़े मनोयोग और रुचि के साथ उसे आद्यंत पढ़ गया। और तब मैने देखा कि मै जो कुछ कहना चाहता था उससे बहुत अधिक बातें बड़े व्यवस्थित और साधार साक्ष्यों के साथ संपादक ने उपस्थित की हैं। अतः ग्रथ के विषय में विशेष कुछ कहना नहीं रह गया है। परिपाटीवश मूल काव्य और उसकी पर्यालोचित भूमिका के विषय में परिचयात्मक दो शब्द यहाँ कह देना है।

इस ग्रंथ के संबंध मे कुछ कहने से पूर्व एक बात की चर्चा यहाँ अप्रासंगिक न होगी। साहित्यकृति के आरभिक निर्माणकाल से ही उसमे अनुरागतत्व की व्यापकता सकारण है। मानवजीवन में प्रेमतत्व की महत्ता सर्वतोधिक है। पुरुषार्थचतुष्टय मे **काम** का स्थान बड़े व्यापक रूप में गृहीत है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी **भक्तिसंप्रदाय** का अत्यंत विशाल वाङ्मय प्रेमतत्व के उन्नयन का मनोवैज्ञानिक आधार लेकर चला। कृष्णभक्ति की समस्त प्रेमोपासना—बालकृष्ण का माध्यम, कांताभाव या प्रेयोभाव की भक्ति, युगलसरकार की रागमयी उपासना, गोपीभाव, सहचरीभाव, सखीभाव, सख्यभाव और सेवकभाव की भक्तिदृष्टि भी—प्रेम के ही उदात्त, दिव्य और श्रद्धाजुष्ट रूप को लेकर ही चली। इस प्रकार रागसवलित प्रेमाश्रित कृष्णभक्ति की समस्त ललित और मधुर उपासनाएँ—जिनमे लीला और केलिविलास का मधुमय प्रवाह बहता दिखाई देता है—सभी प्रेम के ही विवर्त हैं। रामभक्ति में भी रसिकसंप्रदाय या मधुरोपासना इसी प्रेमतत्व का ही श्रद्धासमन्वित और उदात्तीकृत विजृंभण है। संतों के विविध पंथ—निर्गुण और निराकार की उपासना लेकर चलते हुए भी सामान्यतः सर्वत्र प्रेम की अविचल आस्था और प्रेमतत्व का सर्वसमत व्यापक प्रभाव—अपनी रचनाओं मे गूँथते चलते हैं।

सूफियों की प्रेममार्गी शाखा मे प्रेमतत्व को बड़े ही सरस और लोकस्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। संतों और निर्गुनियों ने भी प्रेम की अलौकिक महिमा का गान, कम नहीं किया है। मध्ययुगीन हिंदी के प्रचलित प्रेमाख्यानकों का—जिनका प्रेरकस्रोत सूफियों की भावधारा है—भारत मे और विशेषतः हिंदीसाहित्य में बड़ा ही मनोरम और रुचिर काव्याभिव्यंजन हुआ है। इन सूफी कवियों ने लौकिक परिवेश के मध्य—सहजरूप और सहज-भाव के बीच—आख्यानप्रतीक के माध्यम से, प्रेमाख्यानक काव्यों का प्रणयन किया है उसका आकर्षण हिंदीसाहित्य मे अत्यत महत्वपूर्ण है। यद्यपि उसकी आध्यात्मिक तथा साहित्यिक प्रेरणा पर स्पष्टतः इसलामी और फारसी दर्शन और काव्य का प्रभाव लक्षित होता है, तथापि भारत के सूफी कवियों ने जिस आख्यान को अन्यापदेश के रूप में प्रतीकात्मक आख्यान बनाकर कथा (प्रबधकाव्य की कथावस्तु) का कलेवर निर्मित किया है उसका स्वरूप और लोकगाथापरक मूल ढाँचा भारतीय है। इन्हीं सब कारणों से प्रेमाख्यानक साहित्य का हिंदी के इतिहास मे वैशिष्ट्य है। सूफियों ने भारतीय भाषा, लोकजीवन, जनानुभूति और लोकगाथा तथा उनकी अनुभूतियों, सवेदनाओं का आश्रय लेकर जिस वाङ्मय का निर्माण किया उससे उनका महत्व अक्षुण्ण बना रहेगा।

इन सूफी प्रेमाख्यानकों की काव्यधारा ने इसलाम और हिंदू—दोनों की दूरियों को मिटाने का प्रयत्न किया। भारतीय परिवेश मे, भारतीय लोकानु-भूति का आश्रय लेकर, भारत की लोककथाओं के प्रतीक और उपदेश के सहारे, सूफीभावना को ऐसा बनाया जिसमे भारतीय जीवन, उसकी अनुभूतियों एवं हर्ष और पीड़ाओं की ध्वनि मुखरित सुनाई देती है। यदि उसके आध्यात्मिक पक्ष की दार्शनिक पर्यालोचना को अलग रख दिया जाय तो उसका भीतर और बाहर, बहुत कुछ भारतीय ही आभासित हो। यद्यपि आध्यात्मिक पक्ष के सबंध मे भी अनेक पडित मानने लगे हैं कि सूफियों का प्रेममार्गी आध्यात्मिक सिद्धात, साक्षात् या परपरया भारतीय दर्शनदृष्टि की प्रेरणा से प्रभावित होने के कारण ही कट्टर पैगंबरवादी इसलामी मजहब में पनप सका। यहाँ केवल इतना संकेत करना आवश्यक है कि सूफियों के प्रेमाख्यानकों में साहित्यिक और दृष्टिगत विशेषता और आकर्षण से मोहित होकर हमे भारतीय प्रेमाख्यानकों की परपरा और हिंदी में प्रणीत उनके वाङ्मय का विस्मरण न करना चाहिए। स्वय कवि ने अनेक प्रेमकथाओं का उल्लेख किया है—जिनके विषय मे

विस्तार के साथ ( ग्रंथसंपादक द्वारा ) चर्चा की गई है। उनमें मुख्य रूप से भारतीय प्रेमगाथाओं का ही निर्देश है। **नलदमयंती, उषाअनिरुद्ध, माधवानलकामकंदला, मधुमालती तथा पिंगला और भरथरी**—सभी भारतीय परंपरा के प्रेमाख्यानक है। **मधुमालती** के सबध में डा० शिवप्रसाद सिंह का विचार है कि वह संकेत, मंझन की **मधुमालती** की ओर, असदिग्ध रूप से, किया गया है। इसका कारण है **अप्सराओं द्वारा हरण-प्रसंग** मे साम्य। पर वह **चर्चा मंझन** की कृति से संबद्ध है—इसमे मुझे पूरा संदेह है। ऐसा लगता है कि 'मंझन' तथा अन्य मधुमालतीसंबद्ध काव्यकारों ने जहाँ से लेकर उक्त कथा की संघटना की है वह स्रोत लोककथा है। **मंझन** ने भी और चतुर्भुजदास ने भी वहीं से कथानक लेकर उसे स्वानुकूल ढाला है। **पिंगलाभरथरी** की लोकगाथा के समान ही इसका उल्लेख **पुहकर** ने किया है। इस प्रसग मे सप्रमाण मतोल्लेख करने की अभी स्थिति नहीं है। सभव हुआ तो फिर कभी इसका विस्तृत विचार किया जायगा। कथ्यरूप मे यहाँ इतना ही वक्तव्य है कि यद्यपि हिंदी मे सूफियों की प्रेमाख्यानक काव्यकृतियों का स्थान और महत्व असामान्य है तथापि उसकी चमकदमक मे पड़कर भारतीय परंपरा के प्रेमाख्यानकों को न तो भुलाना और न अवहेलनीय समझना चाहिए तथा न उनके सही मूल्याकन में ही गलती करनी चाहिए। क्योंकि संस्कृत, पाली ( बौद्ध ) प्राकृत–अपभ्रश ( जैन-जैनेतर ) वाङ्मय मे उसकी अखडधारा बहती रही है। देशी और विदेशी प्रेमकथाओं का आधार लेकर लोक मे प्रेमकथा के साहित्य का व्यापक प्रचार और प्रसार था। इतना व्यापक था यह प्रसार कि **वैतालपञ्चविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका** के तुल्य कथाकृतियाँ उन्हीं लोककथाओं के आधार पर सस्कृत के माध्यम से रचित स्थायी वाङ्मय बन गई। ऐसी परपरा और प्रेमकथा की अविच्छिन्न धारा के रहने पर प्रेमाख्यानक की प्रस्तुत ग्रंथ-सबद्ध शाखा सर्वथा अनुपेक्षणीय है, अनुसधेय है, अनुशीलनीय है। **अद्दहमान** का संदेशरासक भी उसी परपरा की एक विशिष्ट रचना है। उसका प्रणेता चाहे मुसलमान हो या हिंदू, पर उसमें अनुबद्ध प्रेमाख्यान का रूप, सर्वथा भारतीय परंपरा का उन्मेष है। मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि हस्तलेख नष्ट होने से बचे होगे तो अनेक भारतीय प्रेमाख्यानक सामने आएँगे। संभवतः राजस्थान और जैनग्रथागारों मे छिपी हस्तलेखसपत्ति में अभी जाने कितनी अनर्घ्य सपत्ति दबी पड़ी हुई है, और उसमे सभवतः पड़े हैं अनेक भारतीय प्रेमाख्यानककाव्य। अन्यत्र भी वे मिल सकते हैं। इनमें बहुतों का आधार

स्वांचल की लोककथाएँ भी हों तो आश्चर्य नहीं। **रसरतन** का मूल ढाँचा भी **हंसकथा** से आदत्त है—यह बात स्वयं कवि पुहकर ने कही है।

मैं थोड़ी विस्तृत चर्चा यहाँ कर गया जिसे करना नहीं चाहता था। क्योंकि डा० सिंह ने भूमिका मे प्रायः इन सबकी चर्चा अधिक विस्तार से की है। डा० हरिकांत श्रीवास्तव ने भी अपने शोधप्रबंध (भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य) के आरंभ में भारतीय प्रेमाख्यानकों की परंपरा का उल्लेख—कुछ विस्तार के साथ—किया है। उस प्रसग में उन्होंने वर्गीकृत विभाजन करते हुए भारतीय प्रेमाख्यानों की कुछ शैलीरूढ़ियों का सकेत किया है—शुद्ध प्रेमाख्यानक, अन्यापदेशिक काव्य और नीतिप्रधान प्रेमकाव्य।

राजस्थानी **ढोला मारूरा दूहा** और **वेलि क्रिसन रुक्मिणी री** आदि के साथ **पुहकर** के **रसरतन** को उन्होंने शुद्ध प्रेमाख्यानक के अंतर्गत स्थान दिया है। **छिताई वार्ता** को भी इसके ही आक्रोड़ में लिया है। कृष्णरुक्मिणी, माधवानल कामकंदला, उषाअनिरुद्ध आदि प्रेमाख्यानक इसी प्रवाह के काव्य हैं। इन आख्यानकों पर जाने कितने लोककाव्य, साहित्यिक ग्रंथ रचे गए—कहा नहीं जा सकता। इनमें भी जाने कितने नष्ट हो चुके होंगे, कितने अबतक अज्ञात पड़े हैं और कुछ की, फिर भी बहुत से ग्रंथों की, सूचना खोज रिपोर्टों से अबतक मिल चुकी है।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है उसके अनुसार डा० हरिकांत प्रथम शोधप्रबंधकार हैं जिन्होंने पहली बार कुछ विस्तार के साथ **रसरतन** के विषय में चर्चा की है। भारतीय 'शुद्ध प्रेमाख्यानक' काव्यो के वर्ग मे इसे रखा है—जो ठीक ही है। परंतु उनके वक्तव्यों से जान पड़ता है कि ग्रंथ के प्रकाशित न रहने के कारण अनुशीलनात्मक दृष्टि से काव्य के अध्ययन का अवसर लेखक को नहीं मिल पाया है। क्योंकि कुछ सामान्य निर्णय इतने हलके-फुलके ढंग से घोषित हैं—और जो सूचित करते हैं कि—उक्त ग्रंथ की पुरातन पांडुलिपि का संदर्भात्मक अध्ययन ही हो पाया था, जैसे—'यह मसनवी शैली मे दोहा चौपाई की पद्धति मे लिखा हुआ प्रबंधकाव्य है।' (पृ० ३६); या 'रसरतन की भाषा चलती हुई अच्छी है किंतु कहीं कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों के पुट से बहुत परिमार्जित हो गई है।...सेना के संचालन एवं युद्ध के वर्णन में कवि ने भाषा में डिंगल का पुट देकर उसे ओजस्विनी बना दिया है।...।' यहाँ कहने का तात्पर्य इतना ही है कि ग्रंथ के प्रकाशित न होने से उसके गंभीर अध्ययन

की सुविधा, श्री हरिकांत को भी न मिल पाई थी। इसी कारण चलता परिचय देकर प्रबंधकार आगे बढ़ा। कदाचित् प्रबंध के अंतर्गत प्रसंगप्राप्त क्रम में शोधकर्ता इससे अधिक और कुछ लिख भी नहीं सका होगा। पर पाठक प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका मे स्वयं देखेंगे कि **रसरतन** का कवि, भाषा का प्रयोग और छंदोयोजना मे कितना कुशल शिल्पी है। उसकी भाषा में अन्य तत्वों का कैसा मिश्रण है, तद्भव शब्दों का सहज प्रयोग कितने निर्बंध भाव से किया गया है, छंदों का विनियोग कितनी सुरुचि और क्षमता का परिचय देता है—प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका से इन सबका परिचय पाठकों को मिल जायगा। फिर भी श्री हरिकांत के १६-१७ पृष्ठोंवाले 'रसरतन'-परिचय का (जिसमे लगभग ७ पृष्ठों में कथावस्तु का विवरण है) अपना महत्व है—प्रथम विस्तृत उल्लेख होने से।

अब यह ग्रथ सुसंपादित रूप मे प्रकाशित होकर विस्तृत भूमिका के साथ सामने आ रहा है और अब निश्चय ही इसके महत्व की ओर हिंदी के सुधीजनों का ध्यान जायगा। अब इस ग्रंथ के समुचित अनुशीलन, विवेचन, पर्यालोचन और मूल्यांकन का अवसर मिल सकेगा। अबतक अप्रकाशित इस कृति के संपादन के साथ साथ डा० शिवप्रसाद की भूमिका मे भी अनुशीलन, शोध और समीक्षण की पर्याप्त सामग्री, पाठकों को मिल सकेगी।

## भूमिका का परिचय

आरंभ के ८०-८१ पृष्ठो में संपादक ने कवि, उसका जीवनवृत्त, रचनाकाल, रचनाएँ, वैदुष्य, आचार्यत्व, काव्यप्रतिभा के साथ ही आलोच्य कृति और उसके हस्तलेखों का सप्रमाण और परिचयात्मक विवरण उपस्थित किया है। इसी विवरण के अतर्गत **रसरतन** की 'कथावस्तु' और हिंदी प्रेमाख्यानक-परंपरा में **रसरतन** के वैशिष्ट्य का अभिज्ञान कराते हुए महाकवि **पुहकर** की इस कृति मे उपलब्ध—विनियुक्त और प्रयुक्त—कथानकरूढ़ियों और कथा के उद्देश्य अथच प्रतीकसंकेत का भी उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् 'पुहकर' की भावसंपदा का विश्लेषणात्मक पर्यवेक्षण करते हुए उन्होंने कवि और तत्कृत कृति की भावाभिव्यक्ति और अनुभूतिप्रकाशन के शिल्पप्रकारों का सोदाहरण उपन्यास किया है। इस संदर्भ मे हमे यह परिज्ञान होता है कि यद्यपि कवि प्रेमाख्यानकशृंखला का कालाकार होने के नाते शृंगारी परिवेशों के चित्रण में

अत्यंत कुशल, भावप्रवण एवं मर्मस्पर्शी है और शृंगारी भावना के परिकर की विभिन्न अवस्थाओं, संवेदनों और व्यवहारों के चित्रण में उच्चकोटि का सहृदय शिल्पी है तथापि शृंगार के शास्त्रीय और प्रचलित रीतिबंधनों के बीच से रास्ता बनाता हुआ भी वह जीवन की सहज और संस्कृति के मर्यादाप्रेरित भावों तथा वृत्तियों की भी रक्षा करने के प्रयत्न मे उद्‌बुद्ध और सचेत कवि है। इस दिशा में वह सदा जागरूक रहता है। प्रेम, रति और शृंगार के अंगों उपागों की भावव्यंजना के साथ साथ वह रसपरिधि और भावचक्र के अन्य क्षेत्रों की चित्रणकला में भी कुशल शिल्पी जान पड़ता है। शृंगार मे रमकर भी वह शौर्य, हास्य, उत्साह आदि भावों के अंकन में सर्वथा सफल रहा है। पारिवारिक और सामाजिक मर्यादा के प्रति वह जागरूक और सशक्त कवि है तथा मानवजीवन की अनुभूतिओं की रूढ़िबद्ध अभिव्यंजना में पर्याप्त भावुकता सहृदयता का परिचय उसने अपने काव्य मे दिया है।

## रसरतन में शृंगार

इसमें तो तनिक भी सदेह नहीं है कि **पुहकर** शृंगारी कवि हैं और उनके **रसरतन** में मुख्य प्रतिपाद्य है भारतीय जीवन में गृहस्थ के तृतीय पुरुषार्थ—काम—का रुचिर रूपचित्रण। इस तत्व का **रसरतन** मे तभी आरंभ हो जाता है—

**जब दसम बरष प्रवेस। तब अतन जतन प्रदेस॥**
**पुतरनि जो पेलत बाल। अति चरन चंचल ख्याल॥**
**तन बसन लागत धूरि। निरषंत नैननि पूरि॥**
**बिगलत अंचल चीर। तिहि धरति नाहिन धीर॥**
**सब प्रकृति उलटि अचान। फिर अंग मन मन आन॥**
**यह बैस निरपत नैन। थकि मुपह पुहकर बैन॥**

अतन मन्मथ के आते ही अंतर और बहिः—सब अचानक बदल जाते हैं। बचपन की सारी दृष्टि, सारे क्रियाकलाप, समस्त आचरण, समस्त रुचि-अरुचि—सब कुछ, कुछ दूसरा ही हो उठता है। सारी प्रकृति अचानक पलट जाती है। वह मन्मथ नारी के अंगों में आकर बैठ जाता है और मन का मंथन करने लगता है—

**निसि पुतरी सेज्या पौढ़ाई। देखि प्रात उठि रही लजाई॥**
**निरषि नैन पुन दृष्टि छिपावै। बार बार उठि अंचल लावै॥**

काम के प्रथम अवतरण से आविर्भूत वयःसंधि का चित्र बहुत ही रोचक और प्रभावशाली ढंग से—पर अत्यंत सहज शब्दों मे—वर्णित करते हुए कवि ने कहा है—

**लेषि न परति सिसुताई तरुनाई तन,**
**कौन घटि कौन बढ़ि कौन भाँति लेषिये।**
**सोभा घाम छाँह ज्यों, सुनैनी कैसे नैन ज्यों;**
**कुरंग कैसे नैन ज्यौं दुरंग वैसे देषिये॥**

इस वयःसंधि के रूपांकन मे यद्यपि युग की शृंगरी मान्यतायुक्त रूढ़ियों का प्रभाव अवश्य ही पड़ा है और पर्याप्त पड़ा है तथापि **पुहकर** के चित्र में नवकता की ताजगी भी झलकती दिखाई देती है। यहाँ कहा यह जा रहा था कि मन्मथ का जीवन के रगमंच पर प्रवेश होते ही मानव और मानवी का नेपथ्य, उसकी साजसज्जा, वेषभूषा, भूमिका तथा समस्त—सात्विक, वाचिक एवं आहार्य—अभिनय ही परिवर्तित हो जाता है। नर और नारी के पारस्परिक सहज आकर्षण का पाश—मानवमन को बाँधकर कसने लगता है। मन, चित्त सदेह समर्पण के अभिलाष से अधीर हो उठता है। तब कभी कभी ऐसा हो जाता है—

**नैन नैन ठग एक हैं, जबहिं जुरत इक साथ।**
**पुहकर बेचत चोर चित, प्रेम नृपति के हाथ॥**

तब नारी और नर का सब कुछ प्रेमशासन के अधीन हो उठता है। इस प्रेम की शक्ति, व्याप्ति और प्रभाव अमेय है—

**जिहिं तन प्रगट प्रेम तन कीनौ। सो तनु अजर अमर कर दीनौ॥**
**तिहिं तनु जोगु भोगु नहि भावै। तिहि तन सदन सुरति नहिं आवै॥**
**तिहिं तन सिरजनहार न जान्यौ। एक प्रान वल्लभ पहिचान्यौ॥**
**सो तनु और नीर नहि पीवै। सुधा स्वाति विनु नैकु न जीवै॥**
**विपै तत्तु सबु तिहि तनु त्याग्यौ। केवल प्रेम प्रीत रस पाग्यौ॥**
**कठिन पंथु जिहि अंतु न पायो। बहु विधि विविध बहुत विधि गायो॥**

**खडगु धार मारग जहाँ, गंग जमुन दुहुँ ओर।**
**प्रेमपंथ अति अगम है, निवहत हैं नर थोर॥**

पुहुकर सागर प्रेम को, निपट गहिर गंभीर।
इहि समुद्र जो नर परै, बहुरि न लागहिं तीर॥

—रसरतन-३९

कहने का सारांश यह कि प्रेम के स्वरूप और शक्ति, व्याप्ति और प्रभाव, गहराई और सीमा के साथ साथ पुहुकर उसकी दोनों रूढ़ियों से—प्रेममार्गियों के आध्यात्मिक, रहस्यपूर्ण और अलौकिक रूप से—तथा आभिजात्यवर्गीय वैलासिकता से भीतर बाहर आद्रांकित और भोगतृष्णाप्रधान, रीतिकालीन भौतिक स्थूल रूप से—पूर्णतः परिचित और प्रभावित थे। पर दोनों का संगमन भी करते चलते थे। इसके साथ साथ भावुकता और सहृदयता से सवलित उनकी उन्मेषमयी प्रतिभा, केवल रूढ़ियों की लीक पर ही न खिंचती चलकर अपने लिये स्वतंत्र और रुचिर मार्ग भी ढूँढ़ लेती थी—जिस मार्ग पर भारतीय आचारपरंपरा को साथ लेकर दांपत्य और गृहाश्रम की शीतल छाया छाई रहती है और जहाँ बाधाओं से क्लांत प्रेम, अपने लक्ष्य की सिद्धि में कृतकार्य होकर विश्राम का अनुभव करता दिखाई देता है। इसके अनेक कारणों में एक कारण यह भी है कि पुहकर पर भारतीय परंपरा के संस्कार की छाप इतनी गहरी थी कि कवि को युगरूढ़ि के प्रभाव से न तो विचलित होने देती थी और न इधर-उधर भटकने का अवकाश ही देती थी। अन्यथा उसकी कृति मे रीतिप्रवृत्ति का प्रभाव आदि से अंत तक स्थान स्थान पर देखा जा सकता है और जिसकी चर्चा ग्रंथभूमिका में की गई है। 'सूरसेन' रूपधारी मदन के स्वप्नाभ प्रत्यक्षदर्शन के बाद पूर्वराग के विरह से व्यथित रंभा की दशाओं मे से नौ दशाओं का क्रमिक और परिपाटीबद्ध वर्णन आदि ऐसे स्थल हैं जिन्हे देखकर ऐसा जान पड़ता है कि रसरतन का कवि रीतिरूढियों की शृंखला से पूर्णतः जकड़ा होगा। परंतु प्रस्तुत काव्य के प्रबंधत्वसंघटन का मनोयोगपूर्वक अध्ययन और विश्लेषण स्पष्ट कर देता है कि रीतिमान्यता से परिवेष्टित रहकर भी पुहकर प्रतिभा के स्वच्छंद विलास को विशिष्ट और समादृत स्थान देते थे।

### भावबोध

कवि के इस महत्व का परिचय, प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका के शीर्षकों—'भावसंपदा' और 'सौंदर्यवर्णन' के अंतर्गत पाठक पा सकते हैं। कामपीड़ा

से ग्रस्त अति दुःखी रंभा के विरह की नौ अवस्थाओं का लक्षणप्रमुख वर्णन यद्यपि अभिव्यक्ति में रीतिरूढ़ि की परपराग्रस्तता सूचित करता है तथापि उसके बाद ही रानी 'पुहपावती' का मातृहृदय, कामव्याधि से रुग्णा पुत्री की स्वस्थ चिकित्सा के लिये जिस प्रकार आतुर और यत्नशील हो उठता है उसमे माँ के सहज वात्सल्य का मनोरम रूप देखा जा सकता है। निकट रहनेवाली जो सहचरियाँ माता के पास रंभा की विषम दशा का संदेशा लेकर जाती हैं, वे अपनी सखी के दुःख से अत्यंत आकुल होकर रंभा की अवस्था और अपना मंतव्य बताते हुए कहती हैं—

**हम तुम सौं सब कहत सकाहीं। पै अब बनतु दुराये नाहीं।**
**बेदनि विरह विषम अति पीरा। पंचबान कर दहहिं सरीरा ॥२२३॥**

... ... ... ...

**चौदह भुवन जाहि गमु होई। जो(सो?)यह जतन करै कछु कोई ॥२२५॥**
**नव अवस्थ अंग अधिकानी। दसम अवस्थ आय नियरानी।**
**हम सब भरै कुँवर संग लागै। यहै प्रवाँनु करैं तुम आगै ॥२२६॥**
**यहि कहि सब सहचरी चलीं, बरषि नैन जलुधार।**
**संग लागि पहुँपावती, निपट विकल बिकरार ॥२२७॥**
**देखि सुता बिहवल भई, धरनि परी मुरझाइ।**
**उदित बचन आवै नहीं, बिधि सौं कहाँ बसाइ ॥२२८॥**
**जे अर्थी द्विज द्रव्य कौ, तिनहिं दियौ बहु दान।**
**नैन सलिल सुर सर थपी, करवायौ असनान ॥२२९॥**
**नहि लज्जित बेदनि कहति, सूझतु नहीं उपाइ।**
**हृदै एक निस्चै करौ, श्रीवर करैं सहाइ ॥२३०॥**

—स्वप्नखंड

इन उक्तियों में कितने सहज ढग से सखियों और माँ के मनोगत प्राकृतिक भावनाओं की सरल अभिव्यक्ति हुई है। इसमें अप्रस्तुत की योजना द्वारा आलंकारिक आरोप को महत्व न देकर कलाकार ने ऋजुगति से, पारिवारिक परिवेश में, भावों का स्वाभाविक चित्र अंकित किया है।

सभी सहेलियाँ चिंतित हैं। अनेक उपाय किए गए। पर काम न चला। समधिक लज्जावती कुमारी सपने में समीप बैठे हुए चितचोर की बात किसी से कैसे कहे ! सभी सखियों ने तरह-तरह से पूछा। पर उत्तर न मिला। अंत में

परमचतुरा और अनुभवशालिनी मनमुदिता कहती है—'सखी, तू मेरे रहते क्यों इतनी 'पीर' भोग रही है। तू मेरा विश्वास कर। लाज में जकड़ी अपने प्राणों को विरह की आग मे मत जला। मुझसे अपना दुःख बता। मैं तेरे चितचोर, मनहर को मिला दूँगी—

> हाइ हाइ हा हा री हठीली आली हेरि इति
> तजति है प्रान चैन कानलि करति है।
> बाट परी बोलिहै कै लाज ही मैं जैहै गड़ि
> विरह की आगि जल लिकट जरति है॥
> आन कै मिलाऊँ तोहि मन कौ हरनहार
> मोहन मधुप जाकी येती (जु) अरति है।
> बाल कहि वीर तेरी पीर कौ जतनु करौं
> मोही तू पाय प्यारी काहे कौ मरति है॥
>
> —स्वप्नखंड—१२३

तू मुझे पाकर भी क्यों लाज में पड़ी है, अपना मुँह नहीं खोलती। दिल की बात क्यों नहीं बताती ? क्यों जान दे रही है। कितना सहज और दुलार प्यार से भरा सयानी सखी का कथन है। इस उक्ति की स्नेहभरित ऋजुता मे ही भाव का सौंदर्य प्रकट है। अलंकार आदि के प्रयोगकौशल से उक्ति में वक्रतागत चमत्कारसृष्टि न करके कवि ने भावसंश्रित मर्मस्पर्शिता द्वारा सहज लालित्य और रमणीयता का सर्जन किया है।

इसका अर्थ यह नहीं की मध्ययुगीन काव्य की संघटनारूढ़ियों के प्रति कवि का आग्रह और मोह कम है। ऊपर की पंक्तियों में यथास्थान इसका संकेत किया गया है और भूमिका में कुछ विस्तार के साथ युगप्रेरित काव्यरचना की रीतियों के व्यापक प्रभाव की बात सोदाहरण कही गई है। इसके साथ ही साथ कवि के पांडित्यसंस्कार से प्रतिध्वनित शास्त्रीय विषयगुंफन का उदाहरण भी भूमिका में पाठक देख सकते हैं। फलित और गणित ज्योतिष एवं सामुद्रिक शास्त्र की—आवश्यकता से अधिक चर्चा, संगीतविद्या (विशेषतः नृत्यकला) के शास्त्रीय पक्ष का प्रदर्शन, कामशास्त्र, साहित्यशास्त्र और उसके अंगभूत रसों (और रसनायक शृंगार) की विशिष्ट चर्चा, सात्त्विक भाव, दशदशा, नायिका के कामशास्त्रीय तथा साहित्यशास्त्रीय भेदविभेदों का उल्लेख, नखशिख, षोडश शृंगार, द्वादश आमंडन आदि का निर्देश करनेवाले ऐसे प्रसंग हैं

जिनमें स्थान स्थान पर युगधर्मी रूढ़ि-अनुसरण और शास्त्रज्ञान के अनुयोजन का व्यापक प्रभाव लक्षित होता है। पर इन सबके साथ साथ—प्रकृत्या और मुख्य रूप से सहृदय कवि होने के कारण—युग की काव्यरीति के बंधन से घिरे रहकर भी उसकी भावमयी प्रतिमा के नैसर्गिक विलास की अभिव्यक्ति भी आदि से अंत तक, बराबर स्थान स्थान पर उभरी दिखाई पड़ती रहती है। गहराई से भरी इस भावाभिव्यंजना की भंगिमा का प्रमुख विषय शृंगार और प्रेम की परिधि में ही अधिक निखरा है। इसका कारण यह है कि कवि मुख्यतः प्रेम और शृंगार का ही गायक है। वह रसिक और भावप्रवण होने के साथ साथ मर्मदर्शी भी है। इसी कारण भावुक सहृदयता का रमणीय चित्र अंकित करने मे वह सफल होता है—

**बिरहानल मैं जड़ ह्वै जुवती**
**निसि पौढ़ि पलंक पलक्क लगायौ।**
**प्रभु पेषत प्रेम प्रसन्नि भये**
**सपने प्रिय प्रानपती दिखरायौ॥**
**अति आनँद चाहि प्रमुक्कि प्रिया**
**अरु चाहति लाल हियै उर लायौ।**
**तेही समै दग नींद नटी**
**उघरी अँखिया अँसुआँ भरि लायौ॥**

—स्वप्नखंड—२६६

विरहिणी के निरंतर चिंतन से अचेतन मन की अनुकूल सर्जना का कितना मनोवैज्ञानिक कल्पनाचित्र, कविवाणी ने अंकित किया है—इसे स्वयं सचेत पाठक समझ सकते हैं। ऐसे भावप्रेरित अभिव्यंजनों की संख्या **रसरतन** मे कम नहीं है। शृंगारपरिधि के विविध पक्षों और आयामों के जाने कितने सरस और चटकीले, सश्लिष्ट और प्रभावशाली कल्पनाचित्रों का **पुहकर** ने सजीव अंकन किया है। पर इसके साथ साथ रूढ़िप्रभावित और अलंकारशवलित ऐसी उक्तियाँ भी **रसरतन** मे कम नहीं है जिनकी धारा संस्कृत के बृहत्त्रयीनिर्माणकाल या उसके कुछ पूर्व से ही अलंकरणप्रधान काव्यों, नाटकों, कथाआख्यायिकाओं आदि मे अविच्छिन्न रूप से बहने लगी थी और जिसके प्रभाव से सूर और तुलसी जैसे महाकवि भी अपने को पूर्ण मुक्त न कर

सके। **रसरतन** के एक सामान्य उदाहरण में उक्त प्रवृत्ति की मुखर अनुध्वनि सुनी जा सकती है—

> जदिन रैनि मृगनैनि नारि सपनंतर पिष्पिय।
> रूपरास मन पास मदनमुदिता मुप दिष्पिय॥
> विरह वृच्छ उपज्यौ समूल अभिलाष नैन मन।
> सुमति सपि विथरिय मोह संताप छाहगन॥
> आलवाल आलंब बहु बनै न सलिल सींच्यौं अमल।
> प्रति जास जाम लाग्यौ वढ़न सुफल्यौ तरक्क वियोगफल॥
>
> —चित्रखड—२६

चमत्कार और अलकरण की प्रवृत्ति से बद्ध छद भी इस ग्रंथ में काफी मिलते हैं। फिर भी यथासंभव कवि चेष्टा करता है कि आख्यानकीय कथाप्रबंध की धारा और भावपक्ष की अभिव्यक्ति शिथिल और दुर्बल न होने पाए। कभी कभी वह प्रसगारोपित शास्त्रीय और लौकिक वस्तुओं की फेहरिस्त पेश करनेवाली प्रवृत्ति के मोह में—रूढ़िप्रभाव और युगसंस्कार के कारण—पड़ जाता है। पर, साधारणतः कथाप्रबंध का प्रवाह अपेक्षित गति से आगे बढ़ता चलता है। भावपक्ष की अभिव्यक्ति भी सामान्यतया निष्प्राण नहीं होने पाती है। उदाहरण के लिये एक प्रसंग नीचे उद्धृत किया जा रहा है जिसमें वियोगिनी की विरहपीर को उद्दीप्त और प्रदीप्त करनेवाली यामिनी का परपरानुसारी वर्णनचित्र उपस्थित किया गया है—

> रजनी भई अनंत। दुःखदायक निघटत नहीं।
> नहि पावत निसि अंत। उदित विकल वचननि कहै॥
>
> काल की काया कालरात की छाया मानो,
> जम जू की जाया जोगमाया सो वषानी है।
> पायौ नहीं ओर छोर ओर भय दाह परी
> जुग ही तै जाम वढ़ै येतौ अधिकानी है।
> कीधौं रैनि रूप दिसि प्राचित पिसाची आई,
> कीधौं कलियानी कलि क्रोध कै रिसानी है।
> जागै जग जोगिनी वियोगिनी कै भोगिनी
> वियोगिनी कै पुहुकर निसि उनमानि अति मानी है॥

**पुहकर उदित मयंक। निसि पूरन षोडस कला॥**
**मो मन उपजी संक। मनो मदन कर चक्र लिय॥**

**अतन जतन बहुबिध किये, रचे अनेक उपाइ।**
**बिरह बिथा बढ़ते बढ़ी, मिटै न मनमथ घाइ॥**

—चित्रखंड—८६-६३

इस प्रकार आलकारिक तथा परंपराभुक्त विरहवर्णन के प्रभाव में पड़कर भी कवि तुरत कथाधारा में आ जाता है और आख्यान प्रारंभ कर देता है—

**इहि बिधि कुँवर बिकल बेहाला। प्रान प्रिया चाहै तिहि काला॥**

इत्यादि।

कथाक्रम मे वस्तुवर्णन या आलंकारिक उक्ति यदि भाव तरल हों तो उनसे न तो अवरोध ही होता है न कथा के प्रवंधप्रवाह मे शिथिलता ही आ पाती है। **रसरतन** मे ऐसे प्रसंग भी पर्याप्त हैं। कुँअर **सूरसेन** स्वयंवर के लिये प्रस्थान करते समय पहले अपनी माता के पास आता है। यहाँ वर्णन आलंकारिक और कुछ लंबा हो गया है। पर मातृहृदय के विगलित स्नेह-तारल्य की स्निग्धता के कारण, ऐसा लगता है मानों पाठक भावधारा मे तैरने लगा है—

**प्रथम कुँवर जननी पहँ आयौ। आवत सीस चरन लै लायौ॥**
**विघुरन ताप मात कुम्हिलानी। भीजे बसन नैन के पानी॥**
**कंठ लाय गद्दवर हिय रोवै। जनु सुत वदन अच्छ जल धोवै॥**
**बच्छ बिछोह धेनु जिमि रंभै। ब्याकुल अस्तु पात नहिं थंभै॥**
**राम चलत कौसिल्या जैसे। घुमि घुमि धरनि परति पन ऐसे॥**
**अँखियाँ रहटकुंभ जिमि चाहीं। भरि भरि आवैं ढरि ढरि जाहीं॥**
**सावन घटा नैन बरसावै। गद्‌गद् गिरा बचन नहि आवै॥**

—विजयपालखंड—१८३-१८६

ऐसा जान पड़ता है जैसे पाठक भी माँ की ममता के आँसू से भींगकर स्वयं शिथिलगति हो गया है और जैसे माता की वाणी नहीं निकल पा रही है उसी प्रकार पाठक भी आगे नहीं बढ़ पा रहा है—वह भी भावमोह में पड़कर अपने आप रुककर आँसू पोछने लगा है।

प्रेमशृंगार से सबद्ध भावों की रमणीय, ललित और चारुतर अभिव्यक्ति के **पुहकर** निपुण शिल्पी हैं। उसके विविध आयामों के आभोग में आने

वाले नाना भावचित्रों और अनुभूतिप्रतिमाओं के व्यापक परिवेश में उनकी कला पर्याप्त सफल है। भूमिका के 'भावसंपदा' शीर्षक के अंतर्गत तथा यथाप्रसंग अन्यत्र भी भूमिकालेखक ने कवि के प्रतिभाजुष्ट और कल्पनाप्रवण अनुभूतिबोध का संकेत किया है। वैसे इस पक्ष का विस्तृत अध्ययन ही प्रतिपाद्य कथ्य को सामने रख सकेगा। इसी प्रकार सौंदर्यवर्णन में भी रूढ़िसंस्कृत होने पर भी कवि की कल्पनादृष्टि, भावदीप्ति में सहायक होती है— इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। ग्रंथ में पुहकर के अनेक प्रसंगयोजित नखशिखवर्णन पर्याप्त रूप में भावजागरण में सफल हैं। यहाँ शरीरसौंदर्य का केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

साँचे सो ढारी भरि भाइ कै उतारी किधौं
चित्र मैं सँवारी विविधि विधि विचारि है।
जोवन की बारी कामचंदु की उज्यारी जोन
परी सुकुँवारी मनो पान कैसी डार है॥
रूप रुचिकारी अरु तैलियो गुनन भारी
लचकि लचकि चलै जोवन के भार है।
पुहकर कहै पूरे पुन्य परवीन प्यारी
प्रीतम प्यारे कौं बनाई करतार है॥

इस सौंदर्यवर्णन में रूढ़िअनुसरण के बावजूद कुछ ऐसी ताजगी और रुचिरता है कि 'प्यारी' का रूप रुचिकारी ही नहीं वरन् कविनिर्मित उसकी वर्णप्रतिमा भी अति रम्य हो उठी है।

शृंगार, प्रेम और सौंदर्यसंपृक्त भावचित्रांकन के अतिरिक्त भक्ति, उत्साह, भय, जुगुप्सा आदि भावों के भी अच्छे और सशक्त शब्दचित्रों को यथावसर गूँथकर कवि ने अपनी सर्वतोमुखी काव्यनिर्माण की क्षमता का आभास दे दिया है। अधिक विस्तार में जाना यहाँ अपेक्षित नहीं है। यहाँ इतना ही कहना है कि भूमिका के विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत अधिक व्यापक ढंग से इन बातों की क्रमबद्ध विवेचना की गई है। 'कवि का व्यक्तित्व', 'शृंगारिकता और कामशास्त्र' एवं 'सौंदर्यवर्णन' शीर्षकों के अंतर्गत भूमिका में **रसरतन** के अध्येता—इन प्रसंगों का सामान्य परिचय पा जायँगे। शृंगार के संयोग-वियोग पक्षों में **पुहकर** की रुचि और क्षमता देखने के लिये **रसरतन** के 'अप्सराखंड' 'चंपावतीखंड', और 'स्वयंवरखंड' के वर्णन विशेष रूप से पठनीय हैं।

### प्रकृतिसौंदर्य और वस्तुवर्णन

भारतीय साहित्य के मध्ययुग से ही अर्थात् गुप्तसाम्राज्य के समय से साहित्य मे प्रकृति की सहज सुषमा के प्रति कलाकार में रागबोध धीरे-धीरे कम और उक्तिगत चमत्कारिक अलंकरण की सिसृक्षा अधिक होने लगी थी। यद्यपि बाणभट्ट और माघ कवि के समान अतिशय अलकरणप्रिय कलाकार भी हमे मिलते हैं जिनकी सहज और प्रकृतिप्रेमी भावचेतना मे प्रस्तुत और अप्रस्तुत—उभय माध्यम से प्रकृति के सश्लिष्ट, सूक्ष्मविवरणों से जुष्ट और चटकीले रूप-चित्रो मे प्रकृति के प्रति गाढ़ रागबोध का तीव्र अभिनिवेश स्पष्टतः लक्षित होता है। फिर भी अलंकरण की युगप्रेरित आसक्ति का प्रभाव निरंतर बढ़ता गया और उसने काव्यविधान की रूढ़ मान्यता का रूप ले लिया। हिंदी का अधिकांश रीतिकालीन साहित्य इसी प्रवृत्ति की रागिनी से मुखरित है।

हम देखते हैं कि प्रकृतिवर्णन मे **पुहकर** कवि भी उस युग का सामाजिक है जिस युग मे—आचार्य शुक्ल के शब्दों में—प्रकृतिसौंदर्य के प्रति सामान्यतः समाज मात्र की, और विशेषतः कारक और भावक कवियों की—वृत्ति युग-रूढ़ि की संकोचनशीलता से वेष्ठित हो गई थी। मानवहृदय की रति का आलबन न रहकर वह शृंगाररति के संयोगवियोग पक्षों का उद्दीपन करने में अधिक सक्रिय हो पड़ी थी। ऐसे ही युग मे उत्पन्न होने के कारण **रसरतन** का कवि इस मनोवृत्ति से पर्याप्त प्रभावित अवश्य रहा होगा। पर उसकी सहज सहृदयता, प्रकृति के मनोरम, ललित और अहैतुक-आह्लादकारी रूप में रमती अवश्य थी। इसकी प्रतिध्वनि भी उसके प्रकृतिवर्णन में स्थान स्थान पर सुनी जा सकती है। चाँदनी रात, वन, सरोवर, नदी, पहाड़ नवल वसत आदि के वर्णन मे उनकी रीतिरूढ़ि से मुक्त, स्वतंत्र रुचि का परिचय मिल जाता है। परपराभुक्त ऋतुवर्णन और बारहमासा आदि के काव्यगत चित्रण में भी कवि में पारपरिक परिपाटी से बाहर निकलकर स्वच्छंद विहार करने की प्रवृत्ति—कहीं कहीं झलक जाती है। पर सामान्यतः प्रकृति को उद्दीपन रूप मे देखने की परंपरा का ही वह अनुकरण करता दिखाई देता है।

वस्तुवर्णन मे भी रूढ़िप्रेरित प्रभाव के परिवेश मे विचार करता हुआ कवि—कविसमय और काव्यरूढ़ियों का अनुसरण करता है। इन वर्णनों मे चंदवरदाई, केशव और जायसी आदि के समान लबी सूची देने की प्रवृत्ति भी उसमे दिखाई देती है। फिर भी प्रस्तुत और अप्रस्तुत के

माध्यम से **रसरतन** में ऐसे भाव भी वस्तुवर्णन के प्रसंग मे अभिव्यक्त होने के लिये मचलते दिखाई देते हैं जो **पुहकर** को सहृदय और सतर्क कवि सूचित करते हैं। वे कविविधि की अपेक्षा 'साची बात' कहने के लिये अपेक्षाकृत अधिक उत्सुक जान पड़ते हैं।

## रसरतन के छंद

श्री शिवप्रसाद सिंह की भूमिका में तीन शीर्षकों के अंतर्गत उपस्थापित विवरण अत्यंत शोधपूर्ण और अनुसंधनात्मक हैं। ये शीर्षक है—१–'रसरतन और अपभ्रंश छंदपरपरा', २–'रसरतन की भाषा', ३–'रासो और रसरतन'। प्रथम के अतर्गत **रसरतन** की प्रथलब्ध छंदयोजना और वृत्तप्रयोगों का बड़ी सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से निरूपण करते हुए अद्यावधि उपलब्ध, अपभ्रंश ग्रंथों में मिलनेवाले छंदों के साथ तुलना की गई है। इसके आधार पर यह दिखाने का प्रयास किया है कि **रसरतन** में मध्यकालीन दोहा, चौपाई, सोरठा कुडलिया, कवित्त, सवैया और छप्पय आदि छंदों के अतिरिक्त इस ग्रंथ मे पचीसों ऐसे छंद मिलते हैं जो अपभ्रंश की परपरा के अनुगमन का संकेत देते हैं। इस शीर्षक के अतर्गत कुछ ऐसे छंदों के भी नाम हैं जो अन्यत्र अन्य नामों से मिलते हैं और कुछ छंद ऐसे भी हैं जो छंदों के शास्त्रीय ग्रंथों में ही प्रायः मिले हैं, लक्षणग्रंथों से अतिरिक्त लक्ष्यभूत कृतियों में वे अब तक उपलब्ध नहीं हैं। एकआध छंद ऐसे भी हैं जिनका अन्यत्र न तो नाम मिलता है न प्रयोग ही उपलब्ध है। कदाचित् वे लक्ष्यग्रंथों मे प्रयुक्त या लक्षण-ग्रंथों में निर्दिष्ट छंदों के नवीन उपभेद हैं जिनका हमें शास्त्रीय परिचय नहीं है। इससे सूचित होता है कि **पुहकर** कवि छंद के शास्त्रीय पक्ष और उसके प्रयोग-शिल्प—दोनों का ही कलाकार था। इसके साथ ही साथ सूफी प्रेमाख्यानकों के छंदप्रयोग की दोहेचौपाई वाली रूढ़ मसनवीपरंपरा को छोड़कर अपभ्रंश जैनकाव्यों की पद्धति को कवि ने अधिक रुचिकर माना और देशी छंदों का भी पर्याप्त उपयोग किया। छंदों के इस प्रयोगप्रसंग में यह भी दिखाई देता है कि **रसरतन** का कवि अभिव्यंजनीय भावों का अनुसरण करनेवाले लय और गति से युक्त छंदों का प्रयोग करने में प्रयत्नशील रहता है। इसी कारण उसके द्वारा प्रयुक्त छंदों के वैविध्य से प्रबंधधारा में उस तरह की शिथिलता नहीं आती जैसी **केशव** की **रामचंद्रिका** के छंदों से बने अजायबघर में अनेक अवसरों पर स्पष्ट लक्षित होती है। **पुहकर** की छंदोयोजना प्रबंधगति में योग देती जान पड़ती है।

**भाषा**

भाषा की दृष्टि से भी इस कलाकार ने एक विचित्र तथा संभवतः जीवंत परंपरा का परिचय दिया है। उस युग के प्रसिद्ध अधिकांश काव्यों में व्रजभाषा, अवधी, डिंगल आदि भाषाओं का व्यवहार सर्वाधिक है। पिंगल नाम से अभिहित व्रज और अवधी के संयोग से गुंफित भाषा का प्रवाह भी कुछ काव्यों या कवियों मे देखा जा सकता है। चदवरदाई आदि की पिंगलशैली से मिश्रित और चारणों मे प्रचलित, ओजोमयी व्रजभाषा या राजस्थानी से प्रभावित चारणीय व्रजभाषा का ओजस्वी रूप भी तद्युगीन या परवर्ती काव्यों मे मिलता है। पर **रसरतन** के कवि ने व्रजी और अवधी के मधुर गुंफन के साथ साथ डिंगल, और चारणगृहीत व्रजभाषा एवं अनुस्वरांत सस्कृताभास भाषा की अनुकृति को भी अपनाया है और उसने लोकभाषा और अपभ्रंशावशेष पदावली का भी बड़ा ही समीचीन उपयोग किया है।

सपादक ने अपनी भूमिका में सूत्रात्मक शैली द्वारा ग्रंथकार की भाषा-शैलीगत और व्याकरणसबद्ध—सभी प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। इसी के साथ साथ प्रयुक्त शब्दसमूह की विशेषता पर भी प्रकाश डाला है। इन सबका परिचय कराने के लिये केवल आदिखंड की भाषा का ही विश्लेषणात्मक विवेचन ही उपस्थित किया गया है। इस अध्ययनात्मक परिचय के आधार पर ऐसा लगता है कि **रसरतन** की भाषा—व्याकरण और शब्दसमूह—के प्रयोगों का ठीक ठीक निरूपण और मूल्यांकन करने के लिये स्वतंत्र ग्रंथ लिखने और शोध करने की काफी गुंजायश है। कवि **पुहकर** का शब्दकोश भी अत्यंत संपन्न है, वैविध्य और प्राचुर्य से पूर्ण है। तद्भव शब्दों का उसमे कदाचित् सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। वे तद्भव शब्द लोकप्रचलित और व्यवहारप्रयुक्त भाषा से ही समवतः लिए गए जान पड़ते हैं। ऐसे तद्भव शब्दों की सख्या भी काफी है जो तत्कालीन काव्यों मे प्रयुक्त तद्भववर्ग के शब्दों से कुछ पृथक् तो लगते हैं, पर व्युत्पत्तिक्रम से वे शब्द तत्समरूप का अनायास सकेत करते भी जान पड़ते हैं। भाषा में शब्दों की प्रभूति और तद्भव रूपों की वैविध्यविभूति होने पर भी न तो वह बोझिल हुई है, न उसमे अर्थबोध की प्रसादता ही शिथिल हुई है और न धाराप्रवाह में मदता ही आई है। यद्यपि कहीं कहीं शब्दों में तोड़मड़ोर और चारणप्रभाव के कारण केवल छदोनुरुद्ध रूपों मे कभी कभी कुछ विकृति सी दिखाई दे जाती है

तथापि उसका कारण, संभवतः, अपभ्रंश और चारण कवियों की पद्धति का **पुहकर** पर प्रभाव था। अंशतः युगरुचि भी उसमें प्रेरक रही हो तो असंभव नहीं। इसके अतिरिक्त लोकाख्यान मे लोकप्रचलित रूपों के प्रति मोह और प्रयोगाग्रह भी कारण हो सकते हैं। इन सब विषयों की सशक्त और सप्रमाण विवेचना भूमिका में की गई है।

### रासो का प्रभाव

अबतक उपलब्ध और प्रसिद्ध ग्रथों की तुलना में **रसरतन** पर **रासो** का प्रभाव कदाचित् सर्वाधिक पड़ा है। वंदनीय और स्मरणीय कवियों में चूँकि **रसरतनकार** ने **चंदवरदाई** का नाम लिया है, इसलिये पूर्वोक्त अनुमान का पुष्ट आधार भी उपलब्ध हो जाता है। यहाँ सर्वाधिक प्रभाव कहने का तात्पर्य यह है कि **रसरतन** का ध्यानपूर्वक अनुशीलन करने से स्पष्ट हो जाता है और जान पड़ता है कि **चंदवरदाइकृत पृथ्वीराजरासो** को कवि **पुहकर** अपनी काव्ययोजना के लिये आदर्श प्रबध या महाकाव्य समझता था। भाषा, वर्ण्य, वस्तुयोजना, भावाभिव्यक्ति छंदप्रयोग, शब्दरूप-व्यवहार, विविधभाषामिश्रण, तद्भवपदावली की प्रचुरता, प्रसंगानुसार ओज से मिश्रित भाषाप्रयोग, प्रासंगिक आख्यानों-उपाख्यानों के ग्रथन का कौशल आदि—अनेक पक्षों की दृष्टि से विचार करने पर ऐसा लगता है कि **रसरतन** पर **रासो** का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। **रासो** का प्रेम, प्रेमाख्यानकता, प्रेमाख्यायिका की उठान, उसका विकास, उसके घातप्रतिघात और उपसंहार आदि पर यद्यपि सूफी प्रेमाख्यानकों की शैलीगत मूलयोजना इसमे सर्वाधिक स्वीकृत है तथापि **रासो** की प्रभावव्याप्ति भी अप्रत्याख्येय है।

इस प्रभावसाम्य से हिंदीसाहित्य के इतिहास में सबसे क्रांतिकारी और परिपुष्ट जो तथ्य अनुमिति के रूप मे सामने आता है उसका बड़ा ही महत्व होगा। **रासो** की प्रामाणिकता और उसके विस्तृत रूप की असत्यता पर विवाद का क्रम अबतक चल रहा है। अधिकांश विद्वान् तो यह मानने लगे हैं कि **रासो** का मूलस्वरूप चंदवरदाईनिर्मित तो अवश्य था परंतु नागरीप्रचारिणी सभा, द्वारा प्रकाशित, उसके विशालतम संस्करण के अद्योपलब्ध रूप में इतने अधिक क्षेपकाश बाद में जोड़ दिए गए हैं कि उन्हे चुनकर अलग कर देना सामान्यतः संभव नहीं है, पर चंदकृत **रासो** के किसी न किसी मूल रूप का अस्तित्व असंदिग्ध है। दूसरी ओर कुछ विद्वान् पुरातनप्रबंधसंग्रह

आदि मे उपलब्ध दृढ़ प्रमाण का आधार मिल जाने पर भी समस्त **रासो** को जाली और अप्रामाणिक कृति मानते हैं। अबतक **रासो** के बृहत्, लघु, लघुतर आदि चार संस्करणों में से कुछ लोग किसी एक स्वरूप को प्रामाणिक और अन्य को अप्रामाणिक और कुछ पडित सभी को अप्रामाणिक घोषित कर देते हैं। 'पुरातनप्रबधसंग्रह' मे मुनि जिनविजय द्वारा उद्धृत अपभ्रंश प्रतिरूपक अंशों को देखकर ऐसा अनुमान करनेवालों का भी अभाव नहीं है कि मूल **रासो** अपभ्रंश की कृति थी।

**रासो** की प्रामाणिकता और **चंद** की रचनामान्यता आदि के विषय में जब इतने मतमतांतर अबतक भी वर्तमान हैं तब कवि **पुहकर** के **रसरतन** में **रासो** को अपना आदर्श काव्य और **चंद** को वंदनीय महाकवि स्वीकार करना और उस प्रभाव से **रसरतन का** उपबृंहण करना देखकर कुछ तथ्य स्पष्टतः अनुमेय हो जाते हैं। **रसरतन** के आधार पर यह कहना असंगत नहीं ठहरता कि **चंदवरदाई** महाकवि था, उसने **पृथ्वीराजरासो** नामक महा प्रबंध-काव्य का निर्माण किया था और भावयोजना, वस्तुग्रथन, कथा-आख्यान-उपाख्यानसयोजन; भाषाप्रयोग, विषयोपन्यासपद्धति और छदोयोजना आदि की दृष्टि से उक्त **रासो** का स्वरूप आधारतः बहुत कुछ वर्तमान बृहत् सस्करण के ही जैसा रहा होगा। चाहे उसका आकार वर्तमान महासंकरण से कितना भी छोटा क्यो न रहा हो परंतु उसके सभी प्रमुख वैशिष्ट्य उक्त सस्करण के ही समान अवश्य थे।

भूमिका मे लेखक ने **रासो** और **रसरतन** शीर्षक के अंतर्गत तुलनात्मक दृष्टि से अनेक बातों की ओर सबद्ध संदर्भ के अनुशीलकों का ध्यान आकृष्ट किया है जिससे पूर्वोक्त अनुमान की पुष्टि होती है। इसके साथ ही साथ प्रस्तुत प्रबधकाव्य का एक ओर **रासो** के साथ और दूसरी ओर प्रेमाख्यानक काव्यों के साथ अध्ययन अपेक्षित है—यह सकेत भी मिल जाता है। यदि इस दृष्टि से ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो बहुत सी शोधपूर्ण सामग्री जिज्ञासुओं के समुख आएगी।

'रसबेलि' मे उपलब्ध नायिकाभेदसंबधी छंदों द्वारा भी रीतिकालीन आचार्यपरंपरा की लुप्त शृंखला का कुछ प्रकाशन **रसरतन** द्वारा अनुसंधेय लगता है जिसकी ओर शिवप्रसाद जी ने सकेत किया है। अनुसंदिधित्सु और शोधार्थी—इस ग्रथ के प्रकाशन से उपन्यस्त पथ पर आगे बढ सकेंगे ऐसी

आशा है। हिंदीकाव्यशृंखला की भी तिरोभूत कड़ी को जोड़ने और नए निष्कर्षों की ओर बढ़ने में अवश्य ही **रसरतन** का प्रकाशन सहायक होगा—ऐसा प्रतीत होता है।

**रासो** जिस परंपरा का काव्य था—उस पद्धति के काव्य में लोकप्रचलित और गाथात्मक प्रबंधकाव्यों का जनता में प्रचार रहा हो तो यह असंभव नहीं है। 'पिंगला और भरथरी', 'आल्हा उदल' और उनसे संबद्ध अनेकानेक लोकाख्यानक काव्य—संभवतः अपभ्रंशयुग से या कालिदास के समय से ही—मुखपरंपरया जीवित और प्रचलनशील थे। कभी कभी सशक्त कवि, लोकरुचि और जनप्रेम के आग्रह को देखकर उन्हें साहित्यिक विधा में आबद्ध कर देते थे। ऐसे ही काव्यों में इतिहासाधारवाली रचना **रासो** है और कल्पनाधारवाली कृति **रसरतन** है। हो सकता है अन्य कृतियाँ भी कालांतर में सामने आएँ। माधवानलसंबद्ध अनेक रचनाएँ मिली भी हैं। अतः लुप्त परंपरा का संकेत—अवश्य ही **रसरतन** से मिलता है।

इतने दिनों तक अंधकार में पड़े हुए इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण काव्य का विश्वविद्यालय की उच्चतम कक्षाओं में अध्ययन अध्यापन, अंशतः ही सही, अवश्य होना चाहिए। इसके द्वारा विषय का गंभीर अध्ययनक्रम निरंतर चलता रहेगा और निश्चय ही अनेक साहित्यिक तथा ऐतिहासिक महत्व की उपलब्धि भी हिंदीसाहित्य को होगी—इसका हमें पूर्ण विश्वास है। सभा अपेक्षा करती है कि विद्वद्जन ग्रंथ की यथार्थ महत्ता का मूल्यांकन करने में प्रवृत्त होंगे।

रथयात्रा, २०२० वि०

**करुणापति त्रिपाठी**
साहित्य मंत्री,
ना० प्र० सभा, काशी।

# विषयसूची

[ अंक पृष्ठसंख्या के सूचक हैं ]

# भूमिका

दान्ते की भाँति चाहे अनेक कवियों ने यह कहा भले न हो कि मैं तभी लिखता हूँ जब प्रेम मुझे प्रेरित करता है और मैं वही कुछ बाहर व्यक्त करता हूँ जो प्रेम मुझे भीतर से कहने को मजबूर करता है; किंतु इतना सत्य है कि दान्ते की भाँति ही अनेक कवियों के जीवन मे प्रेम सबसे बड़ी आस्था और वही सबसे बड़ी प्रेरणा रहा है। प्रेम सभवतः विश्व के अधिकांश काव्य का उपजीव्य और उत्पाद्य दोनों ही रहा है। भारतीय वाङ्मय मे भी प्रेम का विस्तार और शासन अनिर्वचनीय है। मानव चित्त मे मानवी के लिये उत्पन्न प्रथम आकर्षण से लेकर आज तक इसके विविध रूप, रग और गंध का वर्णन काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष रहा। वैसे तो प्राचीन भारतीय वाङ्मय: वेद, पुराण तथा काव्यादि मे इसका विस्तार-प्रसार है ही किन्तु इसका व्यापक निदर्शन प्रेमाख्यानकों मे ही दिखाई पड़ा।

मध्यकालीन प्रेमाख्यानकों मे एक साथ ही प्रेम के विविध पक्ष और निरंतर परिवर्तनशील समाज के बीच उसके संघर्ष और सामंजस्य का अद्भुत चित्रण दिखाई पडता है। इन प्रेमाख्यानकों की आत्मा अवश्य ही भारतीय रही, जिसमे क्लासिक प्रणय तथा लौकिक अनुरक्ति के अनेक पहलू मिलजुल कर एक नई भाव-भूमि की सृष्टि करते दिखाई पडते है। किंतु मध्यकालीन भारतीय जीवन कई दृष्टियो से बडा उद्वेलित रहा। बाहरी सस्कृतियो के आघात-प्रतिघात के कारण इस जनजीवन मे कई तरह के स्रोत आ आकर मिलते रहे। पौराणिक भावधारा का आधिपत्य तो रहा ही, जिसमे धर्मशास्त्र और निबंध-ग्रथों का प्रभाव था, साथ ही इसमे कर्मकाड और पारलौकिक जीवन के तत्व भी घुले-मिले थे जो मनुष्य-मन को नैतिकता की एक खास संकोचनशील सीमा मे बाँधते थे। उसी समय विदेशी आक्रमणों की एक अजस्र धारा सी आरंभ होती है। इनके प्रभाव से नैतिकता का दबाव ढीला होने लगा। हाल की गाथा सप्तशती में इसकी स्पष्ट झलक दिखाई पडती है। इसी को लक्ष्य करके आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—'प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमिकों की रसमयी क्रीडाएं, और उनका घात-प्रतिघात इस ग्रंथ में अतिशय जीवित रस मे प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनों की

प्रेम-गाथाएँ, ग्रामवधूटियों की शृंगार-चेष्टाएँ, चक्की पीसती या पौधों को सींचती हुई सुंदरियों के मर्मस्पर्शी चित्र, विभिन्न ऋतुओं का भावोत्तेजन आदि बातें, इतनी जीवित इतनी सरस और इतनी हृदयस्पर्शी हैं कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट होता है भारतीय काव्य का आलोचक इस नई भावधारा को भुला नहीं सकता। वहाँ वह एक अभिनय जगत् में प्रवेश करता है जहाँ आध्यात्मिकता का झमेला नहीं है, कुश और वेदिका का नाम नहीं है, स्वर्ग और अपवर्ग की परवा नहीं की जाती, इतिहास और पुराण की दुहाई नहीं दी जाती।[1]

हिंदी का प्रेमाख्यानक साहित्य समूचे काव्येतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस साहित्य में हमारे प्राचीन लोकजीवन के अनेक उपादान अपनी संपूर्ण भावभंगी और सहज रंगीनी के साथ सुरक्षित हैं। हिंदी प्रेमाख्यानक साहित्य मूलतः मुसलमान सूफी कवियों की देन है जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक मान्यताओं को भारतीय लोकजीवनोद्भूत कहानियों के कलेवर में बड़ी सफाई के साथ अनुस्यूत कर दिया। हिंदी साहित्य का प्रत्येक पाठक सूफी कवियों की कविता के अटूट रागात्मक बंधन में बँधा है। 'हिंदू हृदय' और 'मुसलमान हृदय' के अजनबीपन को मिटानेवाले इस काव्य के प्रति हमारे हृदय की अशेष श्रद्धा का निवेदन स्वाभाविक ही था। पर सूफी प्रेमाख्यानक के ऐंद्रजालिक संमोहन में फँसकर हमने हिंदू प्रेमाख्यानकों के प्रति प्रायः उदासीनता बरती है, यह मैं न चाहते हुए भी कह देना आवश्यक मानता हूँ, क्योंकि इस औदास्य के कारण भारतीय प्रेमाख्यानकों का अध्ययन पूर्णतया एकांगी रहा है अथच इसके पूरे भावपरिवेश और काव्यरूप आदि का विश्लेषण अद्यावधि अपूर्ण ही माना जायगा। कवि पुहकर कृत रसरतन सिर्फ इसीलिये महत्वपूर्ण नहीं है कि वह एक हिंदू प्रेमाख्यानक है बल्कि उसके वस्तुतत्व और काव्यरूप का अध्ययन मध्ययुगीन हिंदी काव्य की अनेक समस्याओं को सुलझाने में सहायक होगा। रसरतन वस्तुतः इस युग के काव्य की एक ऐसी प्रतिनिधि रचना है जिसकी काया में न केवल भक्ति और रीतिकाव्य के बीच के संक्रमणयुग के अनेक तत्व विद्यमान हैं बल्कि रचनाकार की अद्भुत ग्रहणशीलता और परिपाटी प्रियता के कारण इस ग्रंथ में काव्यरूढ़ियों का अद्भुत संचयन और परंपरा का यथेष्ट निर्वाह सर्वत्र दिखाई पड़ता है। यह

१. हिंदी साहित्य की भूमिका, तीसरा संस्करण, पृष्ठ ११३

ग्रंथ जहाँ एक ओर सूफी प्रेमाख्यानक के स्पष्ट प्रभाव की घोषणा करता है, वहीं भारतीय ( हिंदू ) प्रेमाख्यानकों के वस्तुगठन और रचनाकौशल पर नया प्रकाश भी डालता है। यदि वह मध्ययुग की शृंगारिक प्रेमसाधना के स्वच्छंद रूप का हिमायती है तो उसकी अभिव्यक्ति में कामशास्त्र और परवर्ती संस्कृत आलंकारिकों के निर्मित नियमों का पूर्णतः पालन भी किया गया है। मुसलमान कवियों की रचनाओं में अभिव्यक्ति की सहजता और आध्यात्मिक मतवाद का अभिनिवेश है तो रसरतन में बाणभट्ट की कादंबरी से लेकर चंदबरदाई के पृथ्वीराजरासो तक मे परिगृहीत अलंकरण मणिकुट्टिमता और काव्यरूढियों का पुरस्सर निर्वाह दिखाई पडता है। रसरतन एक ओर कथा के गठन मे तथा छप्पय छंद की विशिष्ट पदावली के निर्वाचन मे रासो का अनुयायी है तो दूसरी ओर वह चिंतामणि, भिखारीदास, मतिराम और पद्माकर जैसे रीति के आचार्यों की परंपरा का पुरस्कर्ता भी है। केशव किंचित् पूर्ववर्ती हैं और कृपाराम का रचनाकाल यदि असंदिग्ध रूप से संवत् १५९२ है तो उन्हें भी पूर्ववर्ती कह सकते हैं, अन्यथा शेष सभी रीति आचार्य रसरतन के परवर्ती ही ठहरते हैं। यह सच है कि उसमे जायसी की सहजता नहीं है, न तो उसके सवैये और कवित्तों मे देव जैसी सूक्ष्मता है; किंतु कथा के निर्वाह और संयोजन की शक्ति न तो देव मे आई और न तो प्रांजल भाषा मे अलंकार की रमणीयता और भाव की लुनाई को मुक्तकों में समेट पाने की शक्ति जायसी को मिल पाई। इन दोनों शक्तियो को एक साथ पाकर रसरतन का कवि यदि अपने को इन दोनों की प्रतिद्वंद्विता मे खडा करना चाहे तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

रसरतन कवि पुहुकर की गौरवास्पद कृति है। इस कवि की इस महत्वपूर्ण उपलब्ध कृति का उल्लेख हिंदीशोध की प्रस्थानत्रयी में यथाप्रकार किया गया है। मैं शिवसिंहसरोज, ग्रियर्सन के 'द मार्डर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' और शुक्ल जी के इतिहास को हिंदीशोध की प्रस्थानत्रयी मानता हूँ। और जो स्थान प्रस्थानत्रयी में गीता का है, वही इसमे शुक्ल जी के इतिहास का है। अतः सरोज और वर्नाक्यूलर लिटरेचर में तो इस ग्रंथ और कवि का साधारण उल्लेख ही है[1]; पर शुक्ल जी ने थोडे शब्दों में इसके तत्व

---

१. सरोज, सख्या ४८३ और ग्रियर्सन, सख्या ८५७।

और महत्व पर काफी सटीक टिप्पणी दे दी है। वे लिखते हैं—'कल्पित कथा लेकर प्रबंधकाव्य रचने की प्रथा पुराने हिंदी कवियों में बहुत कम पाई जाती है। जायसी आदि सूफी शाखा के कवियों ने ही इस प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं। पर उनकी परिपाटी बिलकुल भारतीय नहीं थी, इस दृष्टि से रसरतन को हिंदी साहित्य में एक विशेष स्थान देना चाहिए। इसमें संयोग और वियोग की विविध दशाओं का साहित्य की रीति पर वर्णन है। वर्णन उसी ढंग के हैं जिस ढंग के शृंगार के मुक्तक कवियों ने किए हैं। पूर्वराग, सखी, मंडन, नखशिख, ऋतुवर्णन आदि शृंगार की सब सामग्री एकत्र की गई है। कविता सरस और भाषा प्रौढ है।'[1] पता नहीं शुक्ल जी के इन उत्साहवर्धक शब्दों के बावजूद रसरतन के संपादन और अध्ययन का प्रयत्न अब तक क्यों नहीं हुआ। रसरतन के बारे में फुटकल ढंग से कुछ विचार तो हुए हैं[2] किन्तु ठीक से संपादित और प्रकाशित ग्रंथ के अभाव में ये अध्ययन मर्कार्णक बन कर ही रह गए।

## कवि परिचय

पुहकर, पौहर, पौहकर, पुहुकर, पहुकर, पुष्कर आदि भिन्न भिन्न नामों से सूचित कवि पुहकर रसरतन के कृतिकार थे।

पुहकर के विषय में जो कुछ भी सूचना मिलती है, वह रसरतन में दिए हुए उनके वंश-वृत्त और आत्मपरिचय से ही। इसके आधार पर कवि के बारे में निम्नलिखित बातों का पता चलता है। कवि अपने वंश के बारे में कुछ बताने के पहले सोम तीर्थ की चर्चा करता है। यह सोम नामक तीर्थ पांचाल प्रदेश में था जो गंगा-यमुना के द्वाबे में बसा हुआ है।

गंग जमुन अन्तर उभै रम्य देश पंचाल।
सोम नाम तीरथ तहाँ ता मधि अमर-मराल॥

(आदि० ५६)

यह तीर्थ गुप्त था जिसका भेद कोई जानता न था। एक बार पश्चिम दिशा में राज करने वाले राजम भुवपाल कुष्ट से पीड़ित होकर वहाँ पहुँचे।

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण, पृ० २२८।

२. डा० हरिकांत श्रीवास्तव के हिंदी प्रेमाख्यानक काव्य, [काशी १९५५] में एक संक्षिप्त सा निबंध द्रष्टव्य है। कुछ और लोगों ने भी यत्र तत्र थोड़ा बहुत लिखा होगा, किंतु मेरे देखने में कोई महत्वपूर्ण कृति नहीं आई।

उन्होने असाध्य रोग से घबडाकर मरने का निश्चय किया और पुत्र को राज्य सौंपकर काशी को चले। रास्ते मे इसी सोमतीर्थ मे आकर वे सरोवर के किनारे रुके। प्यास से व्याकुल होकर वे सरोवर के पास पहुँचे और जल का स्पर्श करते ही उनका रोग दूर हो गया। शरीर पूर्ववत् कंचन वर्ण का हो गया। राजा ने बडा आश्चर्य किया और प्रसन्नतापूर्वक स्नान किया। रात में राजाको सोमनाथ ने स्वप्न मे दर्शन दिया। और कहा कि काम-मोक्ष प्रदान करने वाला यह तीर्थ काशी के समान है, इसलिए काशी जानेकी कोई आवश्यकता नही है। राजाने वहीं भूमिगाँव नामक नगर बसाया जिसमे चारों वर्णों के अनेक लोग बसते थे। कूप और बाग से नगर सुशोभित था। राजा ने सरोवर के घाटों को पक्का बनवाया और किनारे पर शिव मंदिर का निर्माण कराया। बाद मे चहुआण कुलोत्पन्न शाकंभरि नरेश प्रताप रुद्र ने यह प्रदेश जीत लिया और वहीं प्रतापपुर नामक एक नगर बसाया। सम्हरधनी (शाकंभरि नरेश) ने वहाँ अपने कर्मचारियों, नेगी, यजमानों के साथ राज्य किया। देशराज कायस्थ कुल में उत्पन्न श्री निवास ने इसी प्रतापपुर मे अपना घर बनाया। उनके धर्मदास और निर्मल नामक दो पुत्र थे। खरे जाति खोटहीन है, इसमे किसी प्रकार का कलंक नही, स्वयं रघुनाथ ने इसकी स्थापना की है। धर्मदास के पुत्र हुए निर्भयचंद्र जिनके पुत्र वनसिंह थे। वनसिंह के चार पुत्र थे—देवीदास, दुर्गदास, नरिंद और केशवदास। दुर्गदास के पुत्र वेनीदास और हरिवंश थे जिनकी अकबर के दर्बार मे बडी कीर्ति थी। वेनीदास के पुत्र प्रतापमल और मोहनदास हुए। हरिवंश के भी एक पुत्र था। मोहनदास के सात पुत्र हुए। पुहकर सब मे ज्येष्ठ थे जिनके मुख मे सरस्वती का निवास था। राघव रतन, मुरलीधर, शंकर, मकरंदराय और शक्ति सिंह दूसरे पुत्र थे।

कवि पुहकर जब नव वरष के हुए तो पिता ने यतिनाथ स्थापित करके पूजा कराई। बचपन अत्यंत लाड-दुलार मे बीता।

> वाल केलि रस खेल मॉझु, वसु᳭ वरस वितीती।
> पितु प्रताप वहु लाड़ कोड़, आँनद महँ वीती॥
>
> (आदि० ८२)

पिता ने एक आखून (मोलवी, उस्ताद) रखकर फारसी की शिक्षा दिलवाई। सरस्वती की कृपा प्राप्त हुई, वाणीमे वाग्विलास आया। भाषा-प्रबंध में उत्ताल गति मिली।

रसरतन मे कवि के बारे में सिर्फ इतना ही जीवन प्राप्त होता है। उनके जन्म स्थान भुइगाँव का कोई निश्चित क्षेत्र-निर्धारण नहीं हो सका है। प० रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्य मे लिखा है कि "ये परताप-पुर ( जिला मैनपुरी के रहने वाले थे; पर गुजरात मे सोमनाथ जी के पास भूमिगाँव मे रहते थे।"[1] सर्च रिपोर्ट १९०६-८ मे भी इनका निवासस्थान प्रतापपुर, जिला मैनपुरी बताया गया है। शुक्लजी ने इसी सूचना को आधार बनाया है। जब कि १९०५ की रिपोर्ट मे सोमनाथ को गुजरात, पंजाब मे बताया गया है। विनोद के पुराने संस्करण के पृष्ठ ४५५ पर और लखनऊ संस्करण के पृष्ठ ४०७ ( द्वितीय भाग ) पर भूमिगाँव को सोमनाथ गुजरात के पास कहा गया है।

१९०५ की रिपोर्ट से यह भी सूचना मिलती है कि इन्हें जहाँगीर ने किसी बात पर कैद कर लिया था, बन्दीगृह में इन्होंने यह ग्रंथ लिखा ( सं० ४८ )। इस सूचना को शुक्लजी ने इतिहास मे भी स्थान दिया है। मगर इस सूचना की प्रामाणिकता सदिग्ध है। रसरतन मे इस प्रकार की कोई बात नही दी हुई है। १९०५ की रिपोर्ट की सूचना का कोई आधार नहीं दिया हुआ है। १९०५ की रिपोर्ट से पता चलता है कि इनके पिता तीन भाई थे—प्रतापमल मोहनदास और हरिवंश। जब कि 'ब' प्रति से लगता है कि हरिवंश इनके पितामह बेनीदास के भाई थे—बेनीदास के प्रतापमल और मोहनदास नामक दो ही पुत्र थे। हरिवंश के पुत्र का नाम 'स्याम' हो सकता है।

दुर्गदास तन पुत्र बिबि काइथ कुल अवतंस।  
सुजस साहि दरबार में, बेनीदास हरिवंश॥  
बैन तनै परतापमल, मोहन महि जसि पूरि।  
एक पुत्र हरिवंश के, स्याम सजीवन मूरि॥  
( आदि० ७६, ७८ )

उसी प्रकार सर्च रिपोर्ट १९०५ की यह सूचना कि इनके दूसरे छः भाइयों के नाम सुन्दर, राघव रतन, मुरलीधर, शंकर, मकरंद राय और

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, छठाँ सस्करण, पृष्ठ २२८

सकतसिंह था, पूर्ण ठीक नहीं मालूम होता। 'व' प्रति में नाम इस प्रकार दिए गए हैं।

सुन्दर सुबुद्धि राघव रतन, मुरलीधर संकर सरस।
मकरंद राइ राजत सुभट, सकतसिंह पारस परस॥
(आदि० ८१)

यहाँ सुंदर और सुबुद्धि विशेषण है। पुत्र राघव, रतन, मुरलीधर, शंकर, मकरंदराय और शक्ति सिंह ही ठहरते हैं। कवि कह रहा है कि राघव, रतन मुरलीधर और शंकर सरीखे सुन्दर सुबुद्ध पुत्र थे। मकरंदराय प्रसिद्ध वीर थे और शक्तसिंह हाथ के पारस स्पर्श (दान) के लिए प्रसिद्ध थे। पंजाब रिपोर्ट १६२२-२४ में[1] इस क्रम से शंकर को हटा कर अन्त में 'पारसराय' नाम बढा दिया गया है। सर्वेक्षण मे डा० किशोरीलाल गुप्त ने १६०१ की रिपोर्ट की सूचनाएँ दी हैं, उनपर कुछ अलग से विचार नहीं किया है।[2]

सर्च रिपोर्ट १६१८-२० के प्रस्तुतकर्ता डा० हीरालाल ने भी इन्हें मैनपुरी जिले का निवासी बताया है। १६१७-१६ की रिपोर्ट भी इन्हे प्रतापपुर जिला मैनपुरी का ही बताती है। इस प्रकार इनके स्थान के विषय मे तीन अनुमान मिलते है। सोमनाथ-गुजरात, सोमनाथ-गुजरात-पंजाब, तथा सोमनाथ-मैनपुरी। गुजरात प्रदेश मे रहने की बात निश्चय ही 'सोम' शब्द की भ्रान्ति के कारण हुई, कवि जिस सोमतीर्थ का वर्णन कर रहा है वह गुजरात स्थित सोमनाथ के सुप्रसिद्ध तीर्थ से बिल्कुल भिन्न है। कवि के मन मे भी यह शंका रही होगी, कि शायद लोग इसे प्रसिद्ध गुर्जर देशीय सोमनाथ तीर्थ न समझने लगे इसीलिए इसे स्पष्ट करने के लिए उन्होने लिखा कि यह गुप्त तीर्थ है, उतना प्रसिद्ध नहीं है।

तीरथ गुप्त न जाने कोई। तिहि संजोग कथा कर होई॥
(आदिखंड ५७)

किंतु इस प्रकार के झगडे प्रायः शीघ्रतापूर्वक ग्रंथ अवलोकन तथा सम्यक् ढंग से विचार न करने के कारण ही उठ खड़े हुए है। कवि ने स्वयं बताया है कि

---

१. पंजाब सर्च रिपोर्ट, १६२२-२४ ई० पृष्ठ १५
२. सरोज सर्वेक्षण ४८३।४०७

यह तीर्थ पंचाल में पड़ता है। जो गंगा यमुना के द्वाबे में बसा हुआ है। पंचाल काफी प्राचीन जन-पद है। पौराणिक वर्णनों से पता चलता है कि यहाँ के राजा पुरुरवा ऐल या चंद्रवंश की शाखा से संबद्ध थे। पांचाल के प्राचीन राजाओं में सृञ्जय, च्यवन, पिंजवन, सुदास, सहदेव तथा सोमक के उल्लेख विजयों तथा दान आदि के संबंध में वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलते हैं। पंचाल जनपद बाद में दो भागों में विभक्त हो गया। गंगा के उत्तर का भाग उत्तर पांचाल कहलाता था और दक्षिण का दक्षिण पांचाल। उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी जो आजकल बरेली जिले में पड़ती है, दक्षिण की कंपिला थी जो फर्रुखाबाद जिले में पड़ती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इसका पुराना नाम क्रिवि था।[1] यह पंचाल का प्रदेश कुरु जनपद के उत्तर में था। इसीलिए दोनों का युगपत् नाम कुरुपांचाल हो गया था।

तत्रेमे कुरुपांचालाः शल्वा माद्रेय जांगला।
(महाभारत, भीष्मपर्व अ० ९)

पंचाल नाम पड़ने का कारण यह बताया जाता है कि इस प्रदेश के प्राचीन नरेश हर्यश्व ने अपने पाँच पुत्रों मुद्गल, सृंजय, बृहदिषु, यवीनर और कपिल्य के लिए इस प्रदेश को पांच भागों में बांट दिया था, इसी कारण यह पंचाल कहा गया। महाभारत से पता चलता है कि हिमालय के अंचल से चंबल तक फैले गंगा के उभयवर्ती प्रदेश को पंचाल कहा जाता था। प्राचीन दक्षिण पंचाल राज्य के पूर्वचिह्न अब कहीं लक्षित नहीं होते। केवल बदाऊँ, फर्रुखाबाद जिले के मध्यवर्ती दोआब प्रदेश में गंगा के प्राचीन गर्त की बाईं ओर अनेक भग्न इष्टकादि पाये गए हैं। उत्तर पांचाल की प्राचीन राजधानी अहिच्छत्रा पुरी में अनेक ध्यानी बुद्ध तीर्थंकर पार्श्वनाथ आदि की मूर्तियाँ पाई गई हैं। कनिंघम ने इन मूर्तियों को देख कर अनुमान लगाया था कि ये ईस्वीपूर्व तीसरी-चौथी शताब्दी में निर्मित हुई होंगी। रोहिल खंड के अंतर्गत कंपिल नगर से ये प्राप्त एक भास्कर कार्य युक्त प्राचीन चतुरस्र वेदी भारतीय म्यूजिम में रखी हुई है।[2]

---

१. मध्यदेश, डॉ० धीरेंद्र वर्मा, पृष्ठ १६-१७।
२. हिंदी विश्वकोश, स० नगेंद्रनाथ वसु।

पंचाल के उपरिलिखित विवरण से कवि पुहकर की धार्मिक मान्यता आदि के विषय मे भी थोडा बहुत स्पष्टीकरण हो जाता है। कवि ने अपनी शिक्षा-दीक्षा के विषय में लिखा है।

प्रथम वृत्ति काइस्थ लिखन लेखन अवगाहन।
विषम करन नृप सेव तुरत आयसु निरवाहन॥
द्वादस विधि अवदान सुनत नव गुन अवराधन।
छंद बंद पिंगल प्रबंध बहु रूप विचारन॥
पारसीय काव्य पुनि सैर विधि नजम नसर अवियात कहिय।
परतिच्छ देवि सारदा भई उर निवास मुख वसि रहिय॥
( आदिखण्ड ८३ )

इसके पहले कवि बता चुका है कि पिता ने यतिनाथ की स्थापना करके पूजा कराई और द्वार पर मौलवी रखकर फारसी की शिक्षा दिलाई।

नवम बरस यतिनाथ थापि पूजा करवाई।
राखि द्वारा आपून पिता पारसी पढ़ाई॥८२॥

"यतिनाथ" से जैन धर्म की ओर संकेत मानना अनुचित होगा। "नमो सिद्ध" आज भी हिन्दू बालक से पाठारंभ के समय कहलाया जाता है। पुहकर कवि ने अपने को कायस्थ बताया है और यह भी कहा है कि "विषम से विषम" राजाज्ञा का पालन करना हमारा धर्म है। इनसे यदि चाहे तो यह अनुमान कर सकते है कि पुहकर कवि किसी विषम राजाज्ञा के निर्वाह मे असफल होने के कारण राजदण्ड पा चुके थे, जैसा उपर्युक्त जनश्रुति में कहा गया है और जिसे शुक्लजी ने अपने इतिहास मे भी उद्धृत किया है।

कवि पुहकर ने अपने को नव गुणो ( धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, ज्ञान, विद्या, सत्य ) का आराधक कहा है और द्वादस अवदान का सुनने वाला बताया है।

अवदान शब्द पालि भाषा के अपदान का विकृत रूप है जिसका अर्थ होता है कोई महत्वपूर्ण उल्लेख्य योग्य बात। अवदानो मे जातक कथाओ की ही तरह बुद्ध के पूर्व जन्मो की कथाओ का वर्णन किया गया है। द्विवेदी जी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका मे अवदान साहित्य के बारे मे विचार करते हुए लिखा है—"अवदान एक समय मे बहुत ही लोकप्रिय विषय था। इस विषयके निश्चय ही सैकडो ग्रथ लिखे गए होंगे। जो काल चक्र के पहिये के नीचे पिस

गए हैं। कइयों का पता चीनी और तिब्बती अनुवादकों की कृपा से ही लगा है। अवदानों में से कई एक ऐसे हैं जिनकी भाषा अलंकृत और मजी हुई है। और जो कवित्व के सुंदर नमूने हैं'।[1] लेकिन पुहकर ने जिस "द्वादस विध अवदान" की बात की है, उसका स्पष्ट अर्थ नहीं खुल पाता, क्योंकि अवदानों के साथ द्वादस की कोई रूढ़ संख्या नहीं मानी गई है।

कवि पुहकर अपने को छंद, पिंगल और प्रबंध के रूपों का जानकार भी बताते हैं। साथ ही वे फारसी काव्य में भी काफी सैर कर चुके थे, यहाँ तक कि वे गद्य (नसर) तथा पद्य ( नज्म ) दोनों में गति रखते थे और अबियात ( बैंत ) में भी दिलचस्पी लेते थे।

## कवि का व्यक्तित्व

**राज्याश्रय**—कवि पुहकर शृंगारिक व्यक्तित्व के प्रेमी जीव मालूम होते हैं। कवि के व्यक्तित्व के निर्णय का एक मात्र आधार उसका वातावरण, चरित्रके विशेष गुण तथा सौन्दर्य बोध और उसकी रुचि ही होती है। कवि पुहकर जिस वातावरण में उपजे, पनपे और बढ़े वह निश्चित तौर से ह्रासशील सामन्तवाद से आक्रान्त था। कवि का सम्बन्ध जहाँगीर के दरबार से था, जिसका विवरण उनके जीवन वृत्त के सिलसिले में दिया गया है। उन्होने एक निकट-द्रष्टा की तरह जहाँगीर के दरबार का बड़ा सूक्ष्म वर्णन किया है। मुगल दरबार अपनी ऐय्याशी और शृंगारिकता के लिए प्रसिद्ध था। ऐसे दरबार में कवि के ऊपर वे सभी प्रकार के प्रभाव पड़े जो आश्रित कवियों के ऊपर पड़ा करते हैं। यह सच है कि पुहकर जहाँगीर के आश्रित कवि थे, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु वे स्वयं "विषय नृप सेवा" को बहुत बड़ी बात मानते थे, इससे प्रकट हो जाता है कि उनकी रुचि दरबारी कामों के करने में संतुष्ट होती थी। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि गुणी वही है जिसकी सेवा को स्वामी सराहे।

> ना जानौ पिय किहि गुन राँचै।
> कचन कौन सुहागै आँचै॥
> सेवक सकल करैं बहु काजा।
> सो सुजान जिहि बूझहिं राजा॥
>
> ( रसरतन, युद्ध खण्ड २०१ )

---

१. हिंदी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ २०५

आश्रय दाता की प्रशंसा में वे भी उसी प्रकार अतिशयोक्ति और अतिरंजना का आश्रय लेते हैं, जैसे परवर्ती रीतिकाल के कवि लिखा करते थे।

**शृंगारिकता और कामशास्त्र**—पुहकर के ऊपर इस वातावरण का दूसरा प्रभाव यह पडा कि वे आनन्द विहार के उपकरणों के प्रति बहुत आसक्त हो गए। कवि एक तटस्थ व्यक्ति की तरह राज वैभव का चित्रण नहीं करता बल्कि उसकी रुचि में भोक्ता की आसक्ति भी झलकती रहती है। यह कवि पुहकर के व्यक्तित्व की बहुत बडी विशेषता है, इसे हम गुण भी कह सकते हैं और दोष भी। गुण इसलिए कि कवि वर्ण्य वस्तु के प्रति इस लगाव के कारण कही ज्यादा मनोयोग का परिचय देता है। उसकी एक एक बारीकी को उभारने मे सफल हो सका है। दोष इसलिए कि यह आसक्ति कवि को कई स्थानों पर विकृति और नग्नता की ओर खींच ले गई है।

मध्यकालीन समाज विशेषतः सामंती संस्कृति से प्रभावित समाज, एक खास प्रकार की दिनचर्या मे अपने को सीमित कर चुका था। नागर जन के कलाविनोद बधी बँधाई परिपाटी से संचालित हुआ करते थे। वात्स्यायन का कामसूत्र ऐसे व्यक्तियो के जीवन रहस्यो की कुंजी है। इसे देखने से पता चल जाता है कि काम भावना का अतिरेक किस प्रकार जीवन की गति विधि, आदर्श और पुरुषार्थों का नियमन करता था। 'फलभूताश्च धर्मार्थयोः' कह कर इस काम को अन्य सभी पुरुषार्थों से वरीयता दे दी गई। नर नारी नायक और नायिका बन गए तथा उनके जीवन को नाना प्रकार के कृत्रिम भेदोपभेदों से खंडित करके मैथुन सुख के लिए निवेदित कर दिया गया।

काम शास्त्र के अंतर्गत नायक नायिका के अनेक भेद किये गए। नायिका स्वभावतः ज्यादा विवेच्य बनी। नायिका के पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी, मृगी, वडवा, करिणी, देवसत्वा, गंधर्वसत्वा, यक्षसत्वा, मनुष्यसत्वा, पिशाचसत्वा आदि भेद बताये गए। और उसके वर्ण, गंध, स्वर, गति, लावण्य तथा नखशिख सौंदर्य का क्रमशः नख, चरण, पाँव, जाँघ, जानु, उरु, कटि, नितंब, योनि, वस्ति, नाभि, पेट, त्रिवली, वक्ष, स्तन, कुच, हँसली, कंधा, हाथ, पीठ, ग्रीवा, चिबुक, कपोल, मुख, अधर, दाँत, जिह्वा, हास्य, नाक, नेत्र, भौंह, कान, ललाट, कपाल, केश, तिल आदि को विभिन्न भागों में बाँट कर वर्णन किया गया।

कवि पुहकर इन तमाम भेदोपभेदो से अच्छी भाँति परिचित हैं, और रसरतन मे यथावसर अपना यह ज्ञान उपस्थित करते चलते है। स्वयंवरखंड

का रम्भा-नखशिख वर्णन इसका प्रमाण है। कंदर्प निवास कामशास्त्र का एक प्रमुख विषय है। नारी के शरीर में काम सचरण की क्रिया इस प्रकार बताई गई है।

अंगुष्ठे पद गुल्फ जानु जघने नाभौ च वक्षः स्तने
कक्षा कंठ कपोल दन्त वसने नेत्रालिका मूर्द्धनि।
शुक्ला शुक्ल विभागतो मृगदृशामगेष्वनगस्थिति
ऊर्ध्वाधोगमनेन वाम पदतः पक्षद्वये लक्षयेत्

कवि पुहकर का मत उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

प्रतिदिन मदन बास फिरि बसै।
नर नारी के अँग अँग लसै॥
पदम अंगुष्ट आदि उपजाहीं।
ससि के संग सीस लगि जाहीं॥१०२॥
दक्छिन अंग पुरिष कै बढ़ै।
बाये अंग त्रिया कै चढ़ै॥
कृष्ण पक्ष दूजे अंग आवै।
मावस उतरि तँही ठहरावै॥१०३॥
तिथि विचार कर यह जिय जानौ।
मदन बास निश्चै पहिचानौ॥१०४॥

( विजयपाल खड )

कामशास्त्र का दूसरा विषय काम विज्ञान की शिक्षा है। काम शास्त्र और उसकी अग विद्याओं अर्थात् चौसठ कलाओं का ज्ञान अनिवार्य माना जाता है। सोलह शयनोपचारिक और चार उत्तर कलायें अत्यंत आवश्यक बताई गई हैं।

शयनोपचारिक कलायें क्रमशः ये हैं—

( १ ) पुरुषस्यभावग्रहणम् ( २ ) स्वराग प्रकाशनम् ( ३ ) प्रत्यग दानम् ( ४ ) नखदन्तयोर्विचारौ ( ५ ) नीवीसन्त्रनम् ( ६ ) गुह्यस्य संस्पर्शानुलोम्यन् ( ७ ) परमार्थ कौशलम् ( ८ ) हर्षणम् ( ९ ) समानार्थताकृतार्थता (१०) अनुप्रोत्साहनम् (११) मृदुक्रोध प्रवर्तनम् (१२) सम्यक् क्रोध निवर्तनम् (१३) क्रुद्ध प्रसादनम् (१४) सुप्त परित्यागः ( १५ ) चरमस्वापविधिः ( १६ )

गुह्यगूहनम्। उत्तर कलाएँ (१७) साश्रुपातं रमणायशापदानम् (१८) स्वशपथ क्रिया (१६) प्रतिस्थानुगमनम् (२०) पुनर्पुनर्निरीक्षणम्।

इन बीस कलाओं का वर्णन इसलिए किया गया कि कवि पुहकर ने इन पर विशेष ध्यान दिया है और उन्होंने विजयपाल खंड मे तीसरे अध्याय मे रंभा को ये सारी कलायें बडे विस्तार से उसकी सखियों के द्वारा सिखवाई हैं। इन प्रक्रियाओ का व्यावहारिक पुरस्सर वर्णन कवि ने स्वयंवरखंड के समागम वर्णन में उपस्थित किया है।

कामशास्त्र का प्रभाव पुहकर पर और भी कई दृष्टियो से देखा जा सकता है। कन्या विस्रंभण, रतिसदन-निर्माण, प्रणयोपचार, आलिंगन चुम्बन, नखक्षत, दंतक्षत, सुहागरात आदि के वर्णन बिलकुल रूढ़ है और ऐसे शास्त्रो मे बताये लक्षणो से पूर्णतः शासित है। कवि ने सोलह कलाओं, सोलह शृंगार, द्वादस आभरण, बत्तीस लक्षणों आदि के भी नाम गिनाये हैं। रंभा की सखियों मे मुदिता, रूप उदिता, गुणमजरी, कोकिला, अंबा तथा चंद्रविंबा अपने अपने नाम और गुण के अनुरूप तरह तरह की कलाएँ बताती है। मदनमुदित प्रिय के साथ अनग में मुदित मन रहने की सीख देती है। रूप उदित रूप-रक्षा और विकास के उपाय बताती है। गुनमंजरी गुणो का हार बना कर पिन्हाती है। कोकिला कोककला बताती है और अंबा जल-प्रकृति का रहस्य बताती है कि किस प्रकार प्रिय की रुचि मे प्रिया की रुचि मिल जानी चाहिए। चंद्र विंबा 'सरद रैन उजियारी' छवि के गुप्त भेद बतलाती है।

कवि पुहकर कोककला, और कोकिल कला: दोनो कलाओ मे अपनी गति का प्रमाण देते है। कहीं कही उन्होंने कपोत-कला की भी बात की है।

> कोकिल कल अस कोक कल कला कंठ कलराउ।
> कूका कुहुकुनि कुहुक है, क्रम क्रम कहसि सुभाव॥
>
> (विजयपाल खंड १०७)

गनीमत है कि कुछ स्थानों पर उन्हे अपना पाठक भी याद आ जाता है और वे उसकी रसिकता-प्रिय शक्ति पर विश्वास करके बाकी बातें गुप्त ही रहने देते है:

> बहुत भेद वरननि कियौ, चारि बीस अरु चार।
> पुहुकर प्रगट न कहि सके, लहै रसिक विचारि॥
>
> (वि० पा० १०६)

बहुश्रुतत्व

पुहकर एक वहुश्रुत व्यक्ति थे। रसरतन पढ़ने से लगता है कि उन्हें काफी विषयों का थोडा वहुत ज्ञान था। मूलतया वे शृंगार के कवि हैं इसलिए संयोग और वियोग शृंगार की सारी प्रक्रियाओं के वे रहस्य समझते हैं। उनके भेदोपभेद और लक्षण जानते हैं। किंतु इसके अलावा भी उनके दिलचस्पी के कई क्षेत्र हैं। ज्योतिष पुहकर का प्रिय विषय है। वे रंभा और सूरसेन की जन्म कुंडली को दृष्टि में रखकर ग्रहों की गति का विश्लेषण करके वताते है कि उनके जीवन के अच्छे बुरे कर्म-फल किस ग्रह के किस स्थान और गति से प्रभावित हुए। सूरसेन की कुंडली का विवरण देखिए।

वैठे पंडित ज्योतिष ग्याना। जन्म पत्र फल कहैं प्रमाना॥
तन रवि वुध धन भवन बखानौ। सहज भवन सनि राहु समानौ॥१२२॥
वुद्धि भवन सुर गुरु ठहरायो। चौथे शुक्र उच्च फल पायो॥
कर्म भवन पृथ्वी सुत देखा। कुल दीपक उन गन्यो विसेखा॥१२३॥

लाभ भवन पुकराज गृह, नवम केत नव जोग।
पंडित गुन फल लेखहीं, भोगी सव रस योग॥१२४॥

( आदि खंड )

इसी प्रकार उन्होंने रंभा की जन्मकुंडली ( आदि० १८३ ) का भी वर्णन है। यही नहीं कवि खास खास अवसरों पर यात्रा, राज्याभिषेक, विवाह, प्रस्थान आदि के लिए भी मुहूर्त वताता है। सूरसेन रंभा के स्वयंवर मे जाने को उद्यत हुआ। कवि पुहकर ने एक मुहूर्त यों वताया।

जेठ मास सिति पच्छमीजु तिथ दसमी दिन मानहिँ।
वितीपात गरकरन जोग आनन्द वषानहिँ॥
नखत हस्त वुधवार चंद्र कन्या वृषभानहिँ।
कहत ताहि दसहरा हरत दस पाप पुरानहिँ॥

( विजयपाल० २३५ )

केवल फलित ही नहीं गणित ज्योतिष में भी कवि का अनुराग दर्शनीय है। वैरागर खंड में उन्होंने दो कुट्टक गणित प्रस्तुत किये हैं और वडे गर्व से कहा है कि इसका उत्तर या तो सरस्वती का कोई विशेष कृपा-पात्र दे सकता है या तो वह जिसने 'लीलावती' पढ़ी हो।

मिले हते केहि विधि चढ़े, खंड खंड वहि भाँति।
मुनि केहि विधि सम सम भये, वाइस वाइस पाँति॥
जो जानै लीलावती, कै सरस्वती प्रसाद।
सो पावै या भेद कौ, नातर कठिन विवाद॥

( वैरागर खड १८३ ८४ )

कवि पुहकर संगीत और नृत्य में भी कम रुचि नहीं लेते। रुचि लेना एक बात है और विषय के शास्त्रीय पक्ष से परिचित होना बिलकुल दूसरी। मानो नृत्य गीत विषयक अपने इस ज्ञान को दिखाने के लिए ही उन्होंने अप्सराखंड मे 'अच्छरि-नृत्य' का आयोजन किया है। राजकुमार सूरसेन इस नृत्य को देखकर अपने जन्म को कृतार्थ मानता है और उसी प्रकार कवि पुहकर हमारे सामने इसका वर्णन करके अपने को धन्य समझते है। अप्सराखंड के २०४ संख्या से २१८ तक के छंद कवि पुहकर के नृत्य-उल्लास-वर्णन के साक्षी हैं।

कवि पुहकर को सामुद्रिक का भी पर्याप्त ज्ञान था। नायक नायिकाओं के वर्णन मे वे स्थान स्थान पर अपने इस ज्ञान का परिचय देते है। उन्होंने जहाँगीर को बत्तीस लक्षणों से युक्त पुरुष बताया है और बत्तीस लक्षण इस प्रकार मिलाए हैः—

पंच दीह कच नैन बॉह वर जंघ वपानिय।
वहुर केस कटि अधर उदर सूक्ष्म तुच जानिय॥
अरुन सप्त दृग ओंठ तालु नष जिभ्य चरन कर।
कंध भाल मन पलक ग्रीव वासा उन्नत वर॥
उर श्रवन पीठ विश्नोति लघु दंतिपंति इंद्री सुगनि।
गंभीरनाभि सुरचित्त मति ये लच्छन बत्तीस भनि॥

( आदिखड ३३ )

रस रतन मे ऐसे अनेक स्थल हैं जो कवि की विभिन्न क्षेत्रो मे प्रसरित रुचि, अध्यवसाय और बहुश्रुतत्व का परिचय देते है।

## भावप्रवण संस्कारी चित्त

ऊपर के विवरण से यह भ्रम हो सकता है कि पुहकर चमत्कार प्रिय, प्रदर्शनात्मक रुचि के कवि थे; किंतु ऐसी बात नहीं है। कवि पुहकर का

व्यक्तित्व विरोधाभासों का अद्भुत स्तवक है। वे रीतिकालीन कवियों की परंपरा में गृहीत नहीं किये जा सकते, किंतु वे लक्षणकार थे। रस, नायिका भेद उनके प्रिय विषय हैं, और मौका आने पर वे इनके विषय में पूरी जानकारी देने में कभी चूकते भी नहीं। किंतु आचार्यत्व प्रदर्शन के इन क्षणिक प्रयत्नों से प्रेम कथा का रचनात्मक प्रवाह कभी बाधित नहीं होता। कवि का मन कथा के एक सूत्रात्मक अखंडित रस परिपाक में इतना तल्लीन है कि अलंकार नायिका भेद तथा अन्य प्रकार के चमत्कारों के प्रदर्शन की प्रवृत्ति ऊपरी वीचि विलास की तरह वर्तमान रह कर भी मूल धारा की गति को कभी क्षति नहीं पहुँचाती। सच तो यह है कि पुहकर इतने भावप्रवण कवि हैं कि उनके मन के संवेग किसी भी प्रकार की रुकावट सह ही नहीं सकते। वे शृंगार के सूक्ष्म स्तरों के कवि हैं। उनकी वाणी में भोक्ता कवि की वास्तविकता और अनुभव की गहराई है। वे विरह और संयोग दोनों ही अवस्थाओं के सूक्ष्म द्रष्टा हैं, इसी कारण रसरतन प्रेम के उभय पक्षों के चित्रण की मार्मिकता और सजीवता से स्पंदित है।

यह सही है कि रसरतन के कवि का प्रेम वर्णन शास्त्रीयता और रूढ़ियों से आक्रांत दिखाई पड़ता है। किंतु यदि गहराई से देखा जाय तो यह भी भ्रम ही सिद्ध होगा। पुहकर एक संस्कारी चित्त के कवि थे। उन्होंने काव्य के संस्कारों को अपनी आत्मा में उतार लिया था। परिणामतः सहज वर्णन भी उनके संस्कारों की छाप से मुक्त न रह सके। मेरी दृष्टि में तो हिंदी में बहुत कम कवि हैं जिनकी रचनाओं में सहजता और अलंकरण का, अकृत्रिम ग्राम्यता और संस्कार का, निरावृत्त प्रेम और उच्छल सौंदर्य का. ऐसा अच्छा समन्वय और संतुलन दिखाई पड़े। कवि पुहकर रूढ़ियों, कवि - प्रौढोक्तियों, कवि-समय आदि के विरोधी नहीं हैं, बल्कि सचेष्ट समर्थक हैं, किंतु यह परंपरा-प्रियता उनकी मौलिक रसवत्ता को कभी आक्रांत नहीं करती। यह मामूली सफलता की बात नहीं है।

## आध्यात्मिक मान्यताएँ

आचार्य शुक्ल ने रसरतन के महत्व का एक कारण यह भी बताया था कि यह हिंदू कवि द्वारा लिखा हुआ भारतीय प्रेमाख्यानक है। हिंदी में अधिकतर प्रेमाख्यानक सूफी मुसलमान कवियों ने ही लिखे हैं, जिनमें एक खास प्रकार की आध्यात्मिकता का संपुटन सर्वत्र वर्तमान रहता है। प्रश्न हो

सकता है कि क्या रसरतन पर भी प्रतीकात्मक शैली के अध्यात्म का कोई असर दिखाई पडता है।

पुहकर का आध्यात्मिक मान्यता के प्रति कोई सचेष्ट लगाव नहीं दिखाई पडता। वे पंचदेवोपासक उदार हिंदू ही प्रतीत होते हैं। रसरतन के आरंभ में उन्होंने निर्गुण निरूप की वंदना की है तो सगुण कृष्ण का कीर्तन भी। शिव की वंदना उनको अक्सर प्रिय है। महिषासुर गंजनि का पुनीत स्मरण भी वे अपना कर्तव्य मानते हैं।

कवि के लिए "कुन्देदु तुषार हार" धारण करने वाली भगवती सरस्वती का ध्यान तो अनिवार्य है ही, और फिर पुहकर कवि को तो गर्व है।

परतिच्छ देवी सारदा भई उर निवास मुख वसि रहिय।

(आदिखंड ८३)

पुहकर हिन्दू शास्त्रानुमोदित कर्म के सिद्धान्त को मानते हैं। मान्य देवताओं के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति है। युद्ध खंड मे अवश्य प्रतीकात्मक अध्यात्म का कुछ प्रपंच दिखाई पडता है। और मुझे लगता है कि इस पर सूफी रहस्यवाद का भी कुछ असर है। कवि वन के फल फूल लता वृक्ष आदि को लक्ष्य करके कहता है।

बौहुर होँहि नव पल्लव हरे। फूलहिं फलहिँ सकल रस भरे।
बहुर पीत ह्वै है रँग पाके। तव फिर काम न आवहिँ ताके ॥१९१॥
वाउ एक बहिहैं इक वारा। एकहिं वार होहिं पतझारा।
जो रँग सुरँग सु थिर न रहाई। जो उपजत सो विनसत भाई॥१९३॥
मन जनु जान कंत है मेरा। यह वह नाइक सबहीं केरा।
जोर दिष्टि चितवै चष फेरी। रानी होहिँ पलक महँ चेरी ॥१९५॥
जिहि तिरिया कहँ होहि बड़ाई। ताकौँ साँचु रूप तरुनाई।
सो सुहाग सब ऊपर राजै। जिहिँ नाइक कर कृपा विराजै ॥१९६॥
एकु चित्त करि सेवहु ताही। जानहु रव सब ऊपर आही ॥१९७॥

सखियो की इस सीख को सुनकर रंभा उत्तर देती है :—

हौं निरगुन पिय अति गुनवंता। क्यों करि कहौ कै मेरौ कंता।
जानौ नहीं जगत विधि सेवा। जथा सक्ति कर पूजौं देवा ॥२००॥
ना जानै पिय केहि गुन राचै। कंचन्न कौन सुहागै आँचै ॥२०१॥

यहाँ कवि ने प्रेम मार्ग की प्रधानता तो दिखाई ही है। 'मदन' को सबके ऊपर बताया है। सूफी कवियों की परिपाटी के अनुसार ब्रह्म यहाँ नारी नहीं है, पुरुष है। यह प्रकार स्पष्ट कर देता है कि कवि [illegible] स्वीकार नहीं करता। उनकी मान्यता भारतीय ही है।

इसी खंड में आगे मायानगर का रूपक भी दिखाई पड़ता है। [illegible] के पास मायानगर है। कुमार सूरसेन अपनी [illegible] से मिलने जाते समय मायानगर के पास पहुँचता है।

इहि मारग कोई निवह न जाई। मायापुरी कठिन पुन आई ॥[illegible]॥
उत्तर पंथ अगम अति भारी। गिरवर गहन विपन बन झारी।
मदन देव राजा बलवंता। जीते भूप बहुत गुन वंता ॥[illegible]॥
उलट जात तौ जात बड़ाई। नागकुंड पुन नियरे नाई।
फेर उलट नाही पैसारा। सकल देव माया विस्तारा ॥[illegible]॥
जो निवहै इहि तहँ दरद्वारा। भेटहि जाइ अमर पुर रारा ॥[illegible]॥

स्पष्ट है कि यहाँ कवि ब्रह्मप्राप्ति में माया और मदन को बाधक मानता है। और इनसे डर कर भाग जाने को जीवन की निरर्थकता बताता है। जीवन की सार्थकता इस गढ़ को तोड़ने में है, क्योंकि तभी मनुष्य 'अमरत्व' को प्राप्त कर सकता है। जिसका प्रतीक कल्पलता है।

वैरागर खंड में भी एक स्थल ऐसा है जो कवि की दार्शनिक और आध्यात्मिक मान्यता पर प्रकाश डालता है। वैरागर नाम में भी एक दार्शनिक संकेत है। कवि कहता है कि इस वैरागर का [ वैराग्य ऐसा श्लेष से लगता है ] मार्ग बड़ा अगम है। इस हीरक क्षेत्र के दो रास्ते हैं। दोनों का वर्णन कवि से ही सुनिए।

दूर देस बहु आइ न नीरा। कहत जाहि वैरागर हीरा।
ताहँ गवन विधि मारग आही। हीर खेत नर चाहत जोही।
एक पंथ नियरे नहिं तासू। विरले निवह सकत नहिं जासू।
उच्च उतंग सिखर अति घाटा। खडग धार सूक्षम अत वाटा॥
ताहर समुद गहिर गंभीरा। दुहुँ दिस वाट दरदच्छन तीरा॥
बीच न कहूँ बसनकर ठाऊँ। बसगत ग्रेह नगर नहिं गाऊँ॥
इक चित चलै नगर ठहरावै। करहि न डीठ दाहने बाँयै॥
चलै चरन गिरिहिते गिराई। बूड़ै उदधि रसातल जाई॥

निवहै आइ निपट अति नीरा। लहै वेग वैरागर हीरा ॥
उहि पग सुगम न निवहै भारा। निवहै नहीं कुटुम परिवारा ॥
जोगी जती जाइ उहि पंथा। तजहिं वसन मुकुतन करि कंथा ॥
अंबर छाडि डिगंवर होई। उहि अगमन मग निवहै सोई ॥
( वैरागर खंड ८७-९१ )

यह योगी यतियों का दिगंवर पंथ है, जहाँ कुटुंब परिवार छोड कर ही चलना पडता है। दूसरा पंथ उन वनजारों का है, सीधा-सुगम। इस पंथ में पंच विकारो के चोरों का डर अवश्य है, पर सावधान सचेत रहने से आदमी पार लग ही जाता है।

दूजै पंथ चलै वनजारा। लादौ वनज संग परिवारा ॥
मारग सरल तीर वहु ठाऊँ। ठाँव ठाँव वसै सब गाऊँ ॥
पंच चोर वर ये अति आहीं। सोवत सौज मूसि लै जाहीं ॥
तिहिं सँग चोर आहिं बहु ठाटा। पाथक सब मिलि बाँधत घाटा ॥
जागै पंथ सकल निसि माहीं। तिहिं कहँ कछू चोर भय नाहीं ॥
पहुकर पथिक पयान करि, सावधान चित होइ।
जो सोवै ते मूसिये, जागत छलहिं न कोई ॥
( वैरागर खंड ९३-९७ )

वैरागर खंड मे ही अंतिम हिस्से में एक नट-नाटक देख कर सूरसेन के गुरु चिंतामणि के मन में सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और प्रलय के सभी दृश्य क्रमशः उत्पन्न हुए। यह सृष्टि भी किसी अदृश्य नट की लीला ही तो है।

पुरुष प्रकृति शिवशक्ति भन, मातु पिता जिय जान।
गुन माया नटवत रच्यौ, सो नट नटी वखान ॥

उस नट ने सत, रज, तम गुणों के मेल से सृष्टि की। त्रिगुन की डोरी बनाई। उसी ने नर और नारी की सृष्टि की, मोह का वंधन उपजाया। विना खंभे और विना ईंटो के सहारे उसने अद्भुत महल का वितान ताना। चौदह खंड इस महल मे सूर्य और चंद्रमा के दो दीपक जला कर रक्खे। जल के ऊपर बना यह मंदिर कितना अद्भुत है। जल को हवा से सुखाकर माटी के मूर्ति गढ़ता है, अग्नि से तपा कर रंग डालता है। गगन से शब्द लेकर उसमे वाक्शक्ति डालता है, और अनेक रूपों की सृष्टि करता है। इन चौरासी लक्ष प्रकार की मूर्तियों से अनेक तरह के खेल रचाता है।

इक घट गंगा जल भर्यौ, एक भर्यौ जल और ।
प्रतिभा से सम दुहुन मे, चंद नहीं नहिं ठौर ॥
सब ऊपर इक धाम है, जानत सकल जहान ।
पूरब पच्छिम चार दिस, सौंप मंत्र संधान ॥
परब्रह्म परमात्मा, जो गुरु दियो बताय ।
अलख अगोचर प्रकट है, सब घट रह्यो समाय ॥
( [illegible] )

परमेश्वर तहं पंच है, जगत विदित यह बात ।
निगम दिया नरकर लिए, आपुन खोजत जात ॥ ( [illegible] )

चिंतामणि इमि सचरैं, ऐसो यह संसार ।
विष्णु भक्ति वैराग्य युत, ताहि न ल्यावहु वार ॥ ( [illegible] )

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि पुहकर दर्शन को मानने वाले थे, हाँ उन्होंने सृष्टि की प्रक्रिया मे सांख्य की धारणाओं को स्वीकार किया है । भक्ति को जीव की परममुक्ति का साधन मानते हैं ।

## आचार्यत्व

हम संक्षेप मे यहां पुहकर के आचार्यत्व पर भी कुछ कह देना चाहते हैं । पुहकर केशव को छोड़कर बाकी सभी रीतिकालीन आचार्यों के पूर्ववर्ती हैं । इसीलिये उनके इस पक्ष का महत्व भी बढ़ जाता है । पुहकर ने रसवर्णन भी किया है और नायिकाभेद का निरूपण भी । ग्रंथ मे सखी, दूती, मंडन, सहेट आदि की भी पुरस्सर चर्चा है । सोलह श्रृंगारों का भी निरूपण है । उन्होंने इस दिशा मे संस्कृत आचार्यों से कोई भिन्न बात नहीं कही है और यह दोष सिर्फ उन्हीं को नहीं, रीतिकाल के अधिकांश आचार्यों को लगाया जा सकता है । पुहकर श्रृंगार को रसराज मानते हैं ।

गननायक गनपति गुरु, ससिनायक उजियार ।
दिननायक रवि जानिये, रसनाइक सिंगार ॥१०॥
( आदि खड )

इस श्रृंगार रस के दो पक्ष हैं—संयोग और वियोग । नायक नायिका एक दूसरे के दर्शन से आकृष्ट होते हैं । दर्शन तीन प्रकार के होते है—

काम कहै सुनु सुंदरी, दरसन तीन प्रकार।
स्वप्न चित्र परितिच्छ प्रिय, प्रगट प्रेमविस्तार ॥१५॥
(स्वप्न खंड)

विरह की दस अवस्थाएँ इस प्रकार हैं—

प्रथम उपजि अभिलाप बहुरि चिंता सुमिरन गनि।
गुनत गुनिय गुनकथन दुसह उद्वेग जासु भनि॥
तापर प्रगटि प्रलाप और उन्माद बखानहिं।
विषम व्याधि वपु बढ़ै जागत जड़ता जिय जानहिं॥
कवि कहत निधन दसमी दसा, जबहिं होत मन आनि बस।
पुहुकर प्रकास मनमथ्थ के, सु विप्रलंभ सिंगार रस॥

इसके बाद क्रम से सभी अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। यही स्वप्न खंड के अंतर्गत 'नव अवस्थ वर्ननो नाम' आठवाँ अध्याय है।

नायिका भेद का वर्णन पूर्णतया रसमंजरी के अनुसरण पर किया गया है। वैरागरखंड में सूरसेन और उनकी दोनो पत्नियो के स्वागत के अवसर पर जो नागरिकाओं की भीड़ आई, उसमें पुहकर को ११५२ प्रकार की नायिकाएँ दिखलाई पड गईं।

आई नगर नारि सब नागरि। रूप सरूप गरुव गुन आगरि।
चित्रिन हस्थिन संखिनि धाई। पद्मिनि अंगविलोकनि आई॥१६६॥
मुग्ध मध्य प्रौढा वर नारी। रूप रासि जोबन उजियारी।
अष्ट नारि रसभेद बखानी। तें आई देखन रतिरानी॥१६७॥
पतिस्वाधीन कहीं त्रिय सोई। पति जिहि प्रेम सदावस होई।
सुख संयोग परस्पर प्रीती। मदन मनोहर आनंद रीती॥१६८॥

पुहुकर ने स्वीया, परकीया, सामान्या के लक्षण बताए हैं। स्वीया त्रिविध—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। मुग्धा द्विविध—अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना। मानी त्रिविध—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। मान के लघु, मध्यम, गुरु तीन भेद हैं। वे सोलह प्रकार की नायिकाओं में प्रत्येक अष्टविध—प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका और अभिसारिका। ये उत्तमा, मध्यमा और अधमा भेद से कुल ३८४ प्रकार की हो जाती है। पुनः दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या भेद से कुल ११५२ प्रकार की नायिकाएँ बताई जाती हैं।

अंत में कवि कहता है—

बहु विध अंतर भाय वहि, मो मुख बरनि न जाय।
अष्ट नारि बरनन कियौ, सूछम सुगम सुभाय ॥१८४॥

पुहुकर ने सोलह शृंगार का वर्णन इस प्रकार किया है—

प्रथम सुमज्जन चारु चीर कंचुकि हिय सोहै।
अंजनु तिलकन भाल, करन कुंडल मन मोहै ॥
बनि बेसरि वेनी रसाल मनि कंठ विराजै।
छुद्रघंटिका बनी हार मोतिन के छाजै ॥
नुपूर नवीन पुहुकर सुकवि मुख तमोल चातुरिय भनि।
कवि कहत ग्रंथमति जानि कै सु ये षोडस सिंगार गनि ॥
(अप्सरा खंड ७६)

१२वीं शताब्दी के वल्लभदेव की सुभाषितावली में (कीथ के मतानुसार) षोडश शृंगार की चर्चा की गई है—

आदौ मज्जन चीर हार तिलकं नेत्राञ्जनं कुंडले।
नासामौक्तिक केशपाशरचनासत्कंचुकं नुपुरौ ॥
सौगंध्यं करकङ्कणं चरणयोः रागोरणन्मेखला।
ताम्बूलं करदर्पणं चतुरता शृंगारकाः षोडशाः ॥

सोलह शृंगार के साथ ही साथ पुहुकर ने द्वादश आभरण की भी चर्चा की है—

सीसफूल ताटंक कंठभूषन मनिमडित।
पहुपहार उर मुक्तमाल अप्छरि छबि खंडित ॥
कर कंगन अंगमृद केस कय्यूर बाहु बनि।
छुद्रघंटि कटि डोर चरन नुपुर अप्पय धुनि॥
सिंगार सरस सोरह सहज सुख सुहाग पिय मनहरन।
नवरंग संग पुहुकर सुकवि सोभित द्वादस आभरन ॥
(अप्सरा खड ७७)

पुहकर कवि ने नायिकाभेद विषयक एक अलग ग्रंथ भी लिखा था, यह बात अबतक सुनी न गई; किन्तु जहाँगीरकालीन कुछ चित्रों के नीचे उनका परिचय देनेवाले कवित्त मिले हैं। जिनके रचयिता कवि

पुहकर ही हैं और इन कवित्तों को देखने से पता चलता है कवि पुहकर ने 'रसवेलि' नामक एक नायिका भेद विषयक ग्रंथ भी लिखा था। जिसके कुछ थोड़े से छन्द उदाहरण के रूप में इन चित्रों के साथ बच रहे है, पर इतना भी कवि पुहकर के आचार्यत्व का प्रमाण देने के लिए अपर्याप्त नहीं है।

## कवि के प्रेरक पूर्वज कवि

कवि पुहकर एक सुरुचिसंपन्न कवि थे। उन्होंने प्राचीन शास्त्र और साहित्य पर पुष्कल अध्यवसाय किया था। फलतः उनके काव्य में अध्ययन परिष्कृत वैदुष्य और काव्योरोजित सौंदर्यबोध दोनों ही दिखाई पड़ते हैं। कवि पुहुकर के कुछ प्रिय कवि है। इनकी सूची देखने से भली भाँति पता चल जाता है कि कवि का आदर्श और उद्देश्य क्या था। रसरतन के आरंभ मे कवि ने अपने पूर्वज कवियों की वंदना करते हुए लिखा है—

प्रथम शेष अरु व्यासदेव सुखदेवहँ पाय। ।<br>
बालमोकि श्रीहर्ष कालिदासहँ गुन गायौ।<br>
माघ माघ दिन जेमि बांन जयदेव सुदंडिय।<br>
भानुदत्त उदयेन चंदबरदाइक चडिय।<br>
ये काव्व सरस विद्यानिपुन वाक्क बानि कँठह धरन।<br>
कबिराज सकल गुनगनतिलक सुकवि पौहकर वंदत चरन ॥१२॥

शेष, व्यास, शुकदेव और वाल्मीकि ऋषि हैं, कवि उनकी वंदना करता है। श्रीहर्ष, कालिदास के गुन गाता है। माघ माघ दिन की तरह हैं 'जिमि गरीब के देह पर माघ पूस को घाम'। इसके बाद आते है कादंबरीकार बाण, गीतिगोविंद के रचयिता जयदेव[1], दशकुमारचरित के दंडी, रसमंजरीकार भानुदत्त, दार्शनिक उदयनाचार्य[2] और चंडीवाले चंदबरदाई, ये सभी सरस

---

१—गीतगोविन्दकार जयदेव के अलावा एक दूसरे जयदेव कवि थे। वे भी शृंगारिक कविता लिखते थे।

२—उदयन मूलतया दार्शनिक थे पर इन्होंने न्यायकुसुमांजलि में कविताएँ भी लिखी हैं। फिर पथविपथ कहीं भी चलते हुए अपने रास्ते को ही पथ माननेवाले कवि की गर्वोक्ति क्या भूलने की वस्तु है—

वयमिह पदविद्या तर्कमान्वीक्षिकीं वा सुपथि च विपथे वा वर्तयामः स पन्थाः।<br>
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा नहि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः ॥<br>
—न्यायकुसुमांजलि।

काव्यविद्या के निपुण है, इन्होंने वाणी को कंठ में धारण किया। ये सभी कविराज गुणगण तिलक हैं, सुकवि पुहकर इनके चरणों की वंदना करता है।

पुहकर श्रीहर्ष की तरह गूढ़ अर्थव्यंजना के पक्षपाती हैं। कालिदास से उन्होंने सौंदर्यचित्रण सीखा है, माघ से अर्थगौरव, बाण से कथासयोजन, जयदेव से श्रृंगार और रति का चित्रण, दंडी से आलंकारिकता, भानुदत्त से नायिकाभेद, उदयन से सृष्टि की उत्पत्ति के सिद्धांत और ईश्वरप्राप्ति के साधनों का निरूपण और महाकवि चंदबरदाई से पिंगल की अनोखी अभिव्यक्ति—छप्पय, पद्धरी और त्रोटक की अद्भुत भंगिमा। इस कथन की सत्यता को वही समझ सकता है जो इस काव्य का आद्योपांत पारायण करे।

इन कवियों की सूची में दो नाम बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। एक भानुदत्त का और दूसरा चदबरदाई का। भानुदत्त रीतिकालीन हिंदी आचार्यों के प्रमुख प्रेरणास्रोत रहे हैं। भानुदत्त का संभवतः यह पहला स्पष्ट उल्लेख है जो उस काल में व्याप्त उनके महत्व की पूरी अभ्यर्थना करता है। कहा जाता है कि नंददास ने 'रसमंजरी' का उल्लेख किया है किंतु यह रसमंजरी भानुदत्त की है, इसे प्रमाणित करने का कोई आधार नहीं है। नंददास ने लिखा है—

रसमंजरि अनुसारि कै, नंद सुमति अनुसार।
बर्नन बनिताभेद कहँ, प्रेमसार बिस्तार॥

इस 'रसमजरी' को नंददास ग्रंथावली के संपादक पं० उमाशंकर शुक्ल भानुदत्त की रसमंजरी ही मानते हैं और उन्होंने दोनों के उदाहरणों में साम्य दिखाने का बहुत प्रयत्न किया है।[1] जो भी हो भानुदत्त के स्पष्ट उल्लेख का श्रेय पुहकर को ही देना पड़ेगा।

चदबरदाई का नाम आना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। रासो जैसे महान् ग्रंथ के रचनाकार का यह कम दुर्भाग्य नहीं रहा है कि उसके अस्तित्व को नकारनेवाले अनेक निबंध समय समय पर अनवरत निकलते रहे। मोतीलाल मेनारिया ने रासो को १७०० के बाद का जालीग्रंथ बताने का न जाने कितना प्रयास किया। ऐसी स्थिति में विक्रमी संवत् १६७३ के एक कवि द्वारा चंद-बरदाई का उल्लेख मामूली बात नहीं है। उल्लेख ही नहीं उसे महान् कवियों की चमचमाती हुई पंक्ति में रखकर वंदनीय मानना उसके अक्षुण्ण यश का

१—नंददास ग्रंथावली, प्रथम भाग, पृ० ३६।

अकाट्य प्रमाण है। उसे 'चंदबरदाइक चंडिय' कहना तो मानो चंडी के वरदान की निजंधरी कथा की भी पुष्टि है। चंडी के इस वरदपुत्र की पुहकर ने सिर्फ वंदना ही नहीं की, उसकी शैली का पुरस्सर अनुसरण भी किया। छप्पयों के नमूने ऊपर दिए जा चुके हैं। तद्भव शब्दों पर अनुस्वार लगाकर उन्हें संस्कृत का जामा पहनाने के लिये चंदबरदाई बदनाम है। 'कुरानं च पुरानं' लिखनेवाले चंदबरदाई की शैली मे पुहकर द्वारा लिखी हुई यह सूर्य-वंदना देखिए—

नमो देव देवं दिवानाथ सूरं।
महातेजसोभं तिहूँ लोक रूपं।
उदै जासु दीसं प्रदोसं प्रकासं।
हियौ कोक सोकं तमं जासु नासं॥
( स्वप्न खंड २३४ )

अथवा शिवस्तुति की ये पक्तियाँ—

कपाल माल व्यालग्रीव चंद्रभाल सोहनं।
त्रिलोकनाथ कालनाथ विश्वनाथ मोहनं।
अनंग भंग राग रंग संग जासु सुंदरी।
मसानभूमि सैनि साज गूढ़ कंदरा दरी॥
( चपावती खंड १६० )

इतना ही नहीं शब्दो को तोडने मरोडने मे भी पुहकर के रूप में चंद का एक प्रतिद्वंद्वी सामने आ गया है। द्वितीयावस्था के लिये दुतियविवस्त (स्वप्न० ५६४), दाडिम > दारौ ( आदि० २०३ ), विहंगवर के लिये विगावर (युद्ध० १३६ ), उद्वेलित के लिये उडलित ( युद्ध० ३५४ ), वर्ष एक के लिये बरसक ( वैरा० २८ ), तिमिंगल के लिये लिमगन ( स्वयं० १२४ ), इरावती के लिये यौरावत आदि। शब्दो के अंगभंग और खीचतान का नमूना युद्धखंड के इस पद्य मे देखिए—

जबै राग बंधी बजौं राग मारू।
कियौ अच्छरी अच्छ मंगल्ल चारू।
दुहूँ ओर निस्सान सो बज्जे जुझारू।
उठै जीव जोधान जूझंत चारू॥२४३॥

परै एक घाइल्ल घूमंत धाई।
तिनै देखि सूरान के चित्त चाई॥
फटौ खोपरी गुंद फेलंत पिंडी।
मनौ माथ मारग्ग फूटी दहिंडी॥२५१॥॥

चंद से पुहकर की शैली का साम्य दिखाने के लिये इन प्रसंगों को उद्धृत किया गया। इनके आधार पर सोचना कि पुहकर की भाषा भी चंद की तरह ही ऊबडखाबड है, कवि के साथ घोर अन्याय होगा। क्योंकि पुहुकर ने एक ओर यदि पिंगल की चारणशैली को अपनाया है तो दूसरी ओर व्रजभाषा की मँजी हुई सवैये कवित्त की मनोरम शैली को भी। वस्तुतः पुहुकर समय और अवसर के अनुसार भाषा के प्रयोग मे पूरे माहिर थे। उन्होंने भाषा को भाव की अनुगामिनी बनाया है अनुशासिनी नहीं।

## लेखक की रचनाएँ

पुहकर की मुख्यरचना **रसरतन** ही है। वैसे एकाध खोज रिपोर्ट में उनकी एक रचना नखशिख भी बताई गई है; किंतु नखशिख कोई अलग रचना नहीं है, वह रसरतन के स्वयंवर खंड का 'नखसिख वर्नन नामक' तीसरा अध्याय ही है।

इधर कवि पुहकर के एक नये ग्रंथ का पता चला है। यह ग्रंथ है नायिका-भेद पर आधारित **'रसवेलि'**। रसवेलि कितना बडा ग्रंथ था, यह जानने का कोई आधार नहीं है। मगर यह एक पूर्ण ग्रंथ अवश्य था, जिसमें कवि ने भिन्न भिन्न नायिकाओं के लक्षण और उदाहरण दिये हैं। कवि पुहकर रसमंजरीकार भानुदत्त से बहुत प्रभावित थे और यह असंभव नहीं है कि उन्होंने 'रसवेलि' ग्रंथ रसमंजरी के ही ढग पर उसी की प्रेरणा से लिखा हो। ऐसी हालत में यह अनुमान करना निराधार न होगा कि इस ग्रंथ में भी नायिका-निरूपण, सखी मंडन, उपालंभ, शिक्षा, परिहास, दूती, नायक, शृंगार, संयोग, विप्रलंभ, तथा स्मरदशा निरूपण रहा होगा। क्योंकि रसरतन मे भी कवि ने आवश्यक स्थलो पर इन विषयों पर न सिर्फ ध्यान रक्खा है बल्कि इनके शास्त्रीय पक्ष पर अपने मत भी प्रकट किये हैं।

'रसवेलि' नामक ग्रथ की सूचना यहाँ हिंदी में पहली बार प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रंथ काल प्रवाह मे लुप्त ही हो चुका था कि सहसा जहाँगीर-

कालीन कुछ चित्रों के नीचे कवि पुहकर के कुछ छंद मिल गए। ये चित्र नायिका-भेद को दर्शाने के लिये ही बनाए गए थे। मेरे मित्र डा० परमेश्वरीलाल गुप्त ने कृपापूर्वक इन चित्रों के नीचे के छंदों की फोटो-कापी मेरे लिए उपलब्ध कर दी। डा० गुप्त को ये चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली के चित्र-कक्ष में दिखाई पड़े। उन्होंने इस फोटो-कापी के साथ यह भी लिखा है कि प्राचीन चित्रों के साथ संलग्न सामग्री बहुत बड़ी है किंतु खेद की बात है कि हिंदी के विद्वानों और शोधकों का ध्यान इधर नहीं गया है। पता नहीं इन चित्रों के साथ संलग्न सामग्री का ठीक से निरीक्षण किया जाय, तो कितनी अलभ्य कृतियाँ पूर्ण या अपूर्ण रूप में सामने आ सकती है।

पुहकर कवि की इस रसवेलि को चित्रकार सुखदेव ने चित्रित किया था या इन चित्रों के नीचे पुहकर के कवित्त लिखकर दस्तखत किया था जैसा कि ३७ वें चित्र के नीचे लिखे छपद के साथ दी हुई पुष्पिका से प्रतीत होता है। छपद और संलग्न पुष्पिका इस प्रकार है।

राजति अलक सुकंठ मनहु सारद पर बारद।
सुहृद भुंमि सुभ देस सलिल सज्जन श्रुति आरद॥
प्रगट पत्र बहु नेद मदन अंकुरि करि सोहै।
ललित लता लहलहै सुनत रसिकन मन मोहै॥
रसवेलि बरनि पुहकर सुकवि गिराफूल आनद लसत।
अलि गन सुमत्त वर जग सुहरष ये प्रसिद्ध जुग जुग हँसत॥
इति रसवेलि पूर्णः। लिष्पित चित्रु दसकत सुखदेव चित्री।
गुरुप्रताप श्री राम कृपा सहाय रहै सदा।

प्रश्न हो सकता है कि यह रसवेलि पुहकर कवि की ही क्यों मानी जाये। प्रथम तो हिंदी में कोई और, पुहकर नाम का कवि हुआ है या था, यह प्रश्न नहीं उठता। पुहकर नाम के किसी दूसरे कवि के बारे में हिंदी संसार को कोई सूचना नहीं है। दूसरे प्रत्येक पद के साथ पुहकर की भणिता दी हुई है। रसरतन पढ़नेवाला व्यक्ति भली भाँति जान जायेगा कि यह भाषा, ये शब्द, यह विश्वास पुहकर कवि का ही है। फिर रसवेलि का एक पद ऐसा भी है जो रसरतन के एक पद से पूर्णतः साम्य रखता है, किंचित हेर फेर के साथ। वह हेर फेर इसलिए कि नायिका भेद के वर्णनों के आलंबन राधा कृष्ण न[illegible] हो चुके हैं इसीलिए रसरतन के उस पद में राधा कृष्ण का प्रसंग जोड़ दिया गया है।

रसरतन का पद इस प्रकार है—

आवति आये घर जाति उन संग लागि
नैनन की निद्रा किधौं नाह अनुगामिनी।
कर की कमान काम कान लगि तान वान
मारत निसान प्रान कैसे रहै कामिनी॥
कहै कवि पुहकर प्रीतम पियारे पिउ
बिछुरै तैं दुसह दुहेली भई जामिनी।
सूनी भई पिया बिनु सूनी हौं विरह बाल
ऊनी भई सेज तब दूनी भई जामिनी॥
( युद्ध खंड ५१ )

अब जरा इसी के साथ रसवेलि का २४ वाँ पद सामने रख कर देखिए—

आवति है आये घर जात पुनि संग लागि
नैननि की नींद कैधों नाह अनुगामिनी।
कर की कमान काम कान लागी तान वान
मारत निसान प्रान कैसे सहै कामिनी॥
कहै कवि पुहकर मुरली धरन कान्ह
बिछुरैं तै दुसह दुहेली भई दामिनी।
उठी भारी पिया बिनु सुनि हे विरह वैरी
सूनी भई सेज तब दूनी भई जामिनी॥

अब भी किसी को इन पदों के कवि के बारे में शंका हो तो उन्हें दूसरा पद देखना चाहिए। इस पद में कवि एक पंक्ति में कहता है—

पुहकर त्रिभुवन नाथ कवि चित्र प्रिय
ऐसे मिलि जाहु जैसे मिलै जलु रंग मैं।

कौन है यह त्रिभुवननाथ जो काव्य और चित्र दोनों का प्रेमी है। जहाँगीर को चित्रों में किसी चित्र को सराहती मुद्रा में अंकित देखनेवाले तुरंत कहेंगे कि यह त्रिभुवननाथ विशेषण जहाँगीर का विशेषण ही नहीं नामार्थ भी है।

तो यह है कवि पुहकर की दूसरी कृति रसवेलि, जो काल के जबड़ों से, अपूर्ण रूप में ही सही, इसलिये बचकर बाहर आ सकी कि जहाँगीर कालीन

किसी सुखदेव नामक चित्रकार ने अपने या किसी और के बनाए हुए चित्रों के नीचे इसके कवित्तों को उदाहरण के रूप में अंकित कर दिया था। हो सकता है कि यह कार्य चित्रप्रिय बादशाह की आज्ञा से किया गया हो। नीचे पदों की संख्या और कोष्ठकों में चित्रों के कैटलग-नंबर दिये जा रहे हैं।

अंतिम चित्र से पता चलता है कि कुल ३७ चित्र रहे होंगे। किंतु अभाग्यवश इनमें से कुल चौबीस ही उपलब्ध हैं।

२ [ ५१.६३।१ ] ३ [ ५१.६३।२ ] ४ [५१.६३।३] ५ [ ५१.६३।४ ]; ६ [ ५१.६३।५ ] ८ [ ५१.६३।६ ] ९ [ ५१.६३।७ ] १० [ ५१.६३।८ ] ११ [ ५१.६३।९ ] १२ [ ५१.६३।१३ ] १४ [ ५१.६३।१२ ] १६ [ ५१.६३।११ ] २१ [ ५१.६३।१४ ] २२ [ ५१.६३।१५ ] २३ [ ५१.६३।१६ ] २४ [ ५१.६३।१७ ] २५ [ ५१.६३।१८ ] २६ [ ५१.६३।१९ ] २७ [ ५१.६३।२० ] २८ [ ५१.६३।२१ ] २९ [ ५१.६३।२२ ] ३१ [ ५१.६३।२३ ] ३२ [ ५१.६३।२४ ] ३७ [ ५१.६३।१५ ] यानी मूलतः ३७ चित्रों मे ३७ छंद थे लेकिन १३ चित्रों के प्राप्त न होने से सं० १, ७, १३, १५, १७, १८, १९, २०, ३०, ३३, ३४, ३५, ३६ के पद प्राप्त नहीं हुए।

इस ग्रंथ के साहित्यिक और शास्त्रीय पक्ष पर 'पुहकर का नायिकाभेद वर्णन' प्रसंग मे विचार किया जायेगा।

———

# रसरतन की विभिन्न पांडुलिपियाँ और यह पाठ

( १ ) रसरतन की पांडुलिपियों की सूचनायें यदाकदा हिंदी हस्त-लेखों की खोज रिपोर्टों मे प्रकाशित होती रही है। सबसे पहली सूचना १६०५ ई० की रिपोर्ट मे छपी थी। वैसे एक सूचना १६०२ की रिपोर्ट मे थी, किंतु सूचना संख्या १६१ में जहाँ इसकी प्रतिलिपि के बारे मे विवरण प्राप्य था, लिखा है कि 'दीमकों से विनष्ट'। इसलिये १६०५ की सूचना ही सबसे प्राचीन कही जायगी। १६०५ की पांडुलिपि सूचना संख्या ४८ के अनुसार देशी कागज पर २३२ पन्नों की थी जो ८½ × ६½ के आकार के प्रत्येक पर १७ पक्तियाँ थीं। श्लोक संख्या ४४३७ बताई गई है। पांडुलिपि छतरपुर के दीवान शत्रुजीत सिंह के पास सुरक्षित बताई गई है। जिसका लिपिकाल १८६२ संवत् दिया हुआ है।

अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है:—

'संपूर्ण समाप्त संवत् १८६२ अश्वन मासे कृष्ण पक्षे तिथौ चतुर्थीयाम भौमवासरे लिप्यते कायस्थ छोटेलाल, मिरजापुरे, गंगा निकटे, विंध्य क्षेत्रे। अस्थि तटं मलंगज मंगल ददातु।'

( २ ) सर्च रिपोर्ट १६०६–८ मे पुनः सूचना छपी। जिसमे पांडुलिपि के बारे मे सूचना संख्या २०८ मे बताया गया कि यह २६६ पन्नों की ८½ × ६½ आकार की १५ पंक्ति पृष्ठवाली ३००० श्लोकों की प्रति है जो श्री हनुमत मिरढ्हा चरखारी के पास सुरक्षित है। इस सूचना मे रचना काल १६१८ ई० यानी १६७५ संवत् बताया गया है।

( ३ ) तीसरी सूचना १६१७–१६ की रिपोर्ट मे छपी। इसमे भी ( संख्या १४० ) कवि का रचना काल १६१८ ई० बताया गया। संपादक ने लिखा कि 'यह एक विचित्र बात है कि यह पांडुलिपि जो बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, बी० ए०, एल-एल० बी, प्रयाग के निजी पुस्तकालय मे मिली वह एकदम वैसी ही है जो बाबू जगन्नाथ प्रसाद छतरपुर के पास से मिली जिसके बारे मे १६०५ की रिपोर्ट में संख्या ४८ मे विचार किया गया है। श्री पुरुषोत्तमदास टंडन से प्राप्त प्रतिलिपि का लिपिकार कोई छेदीलाल कायस्थ

हैं जिन्होंने आश्विन् कृष्ण ४, १८९२ संवत् को मीरजापुर, गंगातट, पर इसे पूरा किया। स्पष्ट है कि बाबू जगन्नाथप्रसाद ने टंडन जी को यह पांडुलिपि भेंट की थी।

इस पांडुलिपि का रूपाकार इस प्रकार बताया गया है। देशी कागज, २३२ पन्ने, आकार ९″ × ६″, १७ पंक्ति-पृष्ठ, २७६० श्लोक। लिपिकाल १८९२ संवत्।

( ४ ) चौथी सूचना १९२०–२२ की रिपोर्ट में छपी। सूचना संख्या १२८ के अनुसार प्रति में कुल ९८ पृष्ठ हैं, आकार ८$\frac{3}{4}$″ × ६$\frac{1}{4}$″ प्रत्येक पृष्ठ में १३ पंक्तियाँ ११२१ श्लोक, अपूर्ण। सुरक्षित नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

( ५ ) पाँचवीं सूचना पंजाब प्रांत मे हिंदी हस्तलेखों के खोज विवरण के १९२२–२४ की रिपोर्ट मे छपी। इसमे ग्रंथ के रूपाकार के विषय में कोई सूचना नहीं दी हुई है। संपादक ने कवि परिचय, वंश विवरण, आदि पर अवश्य विचार किया है।

इस प्रकार रसरतन के संबंध में उसकी पांडुलिपियों के विषय मे जो सूचनाएँ प्राप्त हैं, उनसे मालूम होता है कि पाँच पांडुलिपियों की जानकारी मिल चुकी है।

मैंने जिन पांडुलिपियों को इस पाठ के आधार रूप मे स्वीकार किया है उनका विवरण इस प्रकार है।

## 'अ' प्रति

यह प्रति पूर्णतः खंडित है, अर्थात् इसमे आरंभ और अंत के कई पृष्ठ तो त्रुटित हैं ही, बीच के कुछ पृष्ठ भी त्रुटित है। आरंभ मे आदि खंड के ३४ छंद तक के पत्र त्रुटित हैं। प्रति यहाँ से लगातार ठीक चलती है आदि खंड में ही १५९ संख्या पद के बाद पुनः त्रुटित है। अ प्रति चित्रखंड की छंद संख्या २२६ से पुनः चालू होती है। और अंतिम रूप से यह प्रति चंपावती खंड की छंद संख्या ३० तक चलकर पूर्णतः चिरखंडित हो जाती है।

जाहिर है कि इस प्रति का विवरण किसी भी सर्च-रिपोर्ट मे नहीं दिया गया है। यद्यपि यह प्रति त्रुटित है किंतु रसरतन ग्रंथ की अद्यावधि प्राप्त प्रतियों मे यह सर्वाधिक प्रमाणिक और पुरानी मालूम होती है। पुरानी कहने का कोई खास आधार तो नही है क्योंकि प्रति मे लेखन काल की सूचना प्राप्त नहीं होती किंतु कोई भी हस्तलेखों से परिचय रखनेवाला व्यक्ति इसे प्राचीन प्रति

कहने के लिए वाध्य होगा। लिपि पद्धति, लिखावट, कागज, सभी इसके प्रमाण हैं। इसके एक पृष्ठ का ब्लाक पुस्तक के साथ सयुक्त है, जो इन बातो का प्रमाण देगा।

## 'ब' प्रति

यही प्रति इस पाठ का मूल आधार है। यह प्रति देशी कागज के २४१ पत्रों की ८½×″ ६½″ आकार की है। बीच मे एक स्थान पर आदिखंड में छंद संख्या १२२ से १२४ तक की पक्तियों मे वर्णित जन्मकुंडली को समझाने के लिए एक कुंडलीचक्र और कुछ नये छद अलग पत्र पर लिख कर जोडे गए है। इस पत्र को छोडकर वाकी पांडुलिपि एक ही लिखावट की है जिसके अंत में लिपिकार और लेखनादि के वारे में यह पुष्पिका दी हुई है।

'इति शुभम्। सम्वत् १९६१ अगहनमासे कृष्णपक्षे
तिथि चतुर्थी ॥ ४ ॥'

रविवासरे श्रीमान महाराज कोमार श्री दिवान सत्तरजीत जू देव की आज्ञानुसार—

हस्ताक्षर
**कुँवर कन्हैया जू**
**उपनाम ( वलभद्र ) कवि।**

स्पष्ट ही यह प्रति भी उसी परंपरा की है जिसमे सर्च रिपोर्ट १९०५ तथा १९१७-१९ की प्रतियाँ आती हैं। वाबू पुरुषोत्तमदास टडंन और वावू जगन्नाथ प्रसाद की प्रतियों को लेकर १९१७-१९ की रिपोर्ट मे संपादक ने वडा आश्चर्य प्रकट किया था। १९०५ वाली रिपोर्ट मे प्राप्त पांडुलिपि को संपादक ने वावू जगन्नाथ प्रसाद की प्रति कहा है किंतु रिपोर्ट सूचना संख्या ४८ मे इसे शत्रुजीत सिंह के पास सुरक्षित वताया गया है। इस प्रति के मूल लिपिकार कायस्थ छोटेलाल हैं। इसे ही संपादक ने भ्रम से छेदीलाल लिखा है। छोटेलाल नाम १९०५ के हस्तलेख विवरण संख्या ४८ में पुष्पिका में दिया हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि १९०५ वाली और १९१७-१९ वाली रिपोर्ट्स मे वर्णित हस्तलेख एक ही हैं। एक नहीं हैं तो एक दूसरे की नकल हैं। लगता है दीवान शत्रुजीत सिंह के वहाँ से इस ग्रंथ की कई नकलें हुई थीं। क्योंकि हमारी व प्रति भी शत्रुजीत सिंह की आज्ञा से ही तैयार

कराई गई थी, जो रूप आकार मे पहले दोनों हस्तलेखों के समान होते हुए भी पन्नों की संख्या में भिन्न है। यही नहीं इसमें लिपिकार भी भिन्न है। यह प्रति भी कायस्थ छोटेलाल द्वारा प्रस्तुत प्रति की नकल ही मालूम होती है। परंतु इसे किसने लिखा, यह स्पष्ट नही होता। हस्ताक्षर करनेवाले कुँवर कन्हैया जी, उपनाम बलभद्र कवि लिपिकार भी हो सकते हैं, या उन्होंने दीवान साहब की आज्ञा से किसी से लिपि करा कर उसे मूल से मिला कर सही करते हुए अपने हस्ताक्षर कर दिए है। लेकिन ये हस्ताक्षर यदि कुँवर कन्हैया के हाथ के हैं तो लगता है कि लिपिकार भी वही है, क्योंकि हस्ताक्षर की लिखावट और हस्तलेख की लिखावट बहुत साम्य रखती है। १६०९ की सूचना में ग्रंथ में ४४३७ श्लोक बताए गए हैं। यह गणना पूर्णतः काल्पनिक लगती है। १७-१६ की रिपोर्ट में छंद संख्या २७६० बताई गई है। हमारी ब प्रति की छंद संख्या कुल २७६८ है। ८ छंद अधिक इसलिये है कि मैंने एक अर्धाली की अधूरी चौपाई को भी, जिस पर प्रति मे छंद संख्या नही दी है, पूरा छंद मान लिया है।

मैंने ऊपर कहा है कि ब प्रति भी कायस्थ छोटेलाल द्वारा लिखी प्रति की नकल मालूम होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है किंतु भाग्यवश कायस्थ छोटेलाल की लिखी प्रति की रिपोर्टर ने बडी विशद सूचना प्रस्तुत की है। मै यहाँ वह पूर्ण सूचना ज्यों की त्यों इसलिये दे देना चाहता हूँ ताकि इससे ब प्रति के आधार पर प्रस्तुत इस पाठ का विषयानुक्रम पूरी तरह मिलाया जा सके। आदि अंत के अंश भी रिपोर्ट मे दिए है। उसे भी यहाँ दे दिया गया है। अंतिम अंश में दोनो प्रतियो मे छंद संख्या की समानता भी द्रष्टव्य है।

**आदि**—श्री गणेशाय नमः ॥ श्री परम गुरुभे–नमः ॥ अथ रसरतन काव्य पौहकर कृत लिप्यते ॥ छप्पय ॥ सगुन रूप निर्गुन निरूप वौह गुन विस्थारन ॥ अविनासी अवगति अनादि अघ अटक निवारन ॥ घट घट प्रगट प्रसिध्धि गुप्त निरलेप निरंजन ॥ तुम त्रिरूप तुम त्रिगुन तुमहि त्रैपुर अनुरंजन ॥ तुमहि आदि तुम अंत हो तुमहि मध्य माया करन ॥ यह चरित नाथ कहँ लगि कहौ नाराइनि असरन सरन ॥ १ ॥ घोप तरुनि भ्रंगार मात करुना मुनि पंडित ॥ आपु हास रस जुक्त भान मवत्रा वल पंडित ॥ बाल वेस अदभुत चरित्र वृज वासिन जान्यौ ॥ मेघ वीर वलिभद्र रुद्र सुरपति भय मान्यौ ॥ अति प्रताप वीभस्त हुव गौत्र गोप मतः करन ॥ पौहकर प्रताप तिरपुर प्रगट

सु नव रस वस गिरधर सरन ॥ २ ॥ सुख समुद्र सब जगत मग्न वत्सल प्रति पालन ॥ धरैं गवरि अरधंग प्रेम विस्तारन कारन ॥

अंत—पुहुकर वेद पुरान मिलि कीनौ यहै विचार ॥ इहि संसार असार मे राम नाम निज सार ॥६१॥ वैरागर वैराग वपु हीरा हित हरि नामु ॥ प्रीति जोति जिय जगमगै हेरे त्रिविधि तनु तामु ॥६२॥ सत संगति सत बुद्धि उर विवि घरनी सग लाइ ॥ ग्यानवान प्रस्थान करि तजै विषै सुप भाइ ॥६३॥ तातैं तत्तु लहै सुकृत सूझि देषि मन मांहि ॥ कोई तेरे काम नहि तू काहू को नाहिं ॥६४॥ पर धन पर दारा रहित पर पीरहि मन लाहि ॥ काम क्रोध मद लोभु तजि विजय निसान बजाहि ॥ ६५ ॥ पहुकर भवसागर गरूव निपटहिं गहिर गंभीर ॥ राम नाम नौका चढ़ै हरिजन लागे तीर ॥६६॥ इति श्री रस-रतन काव्ये कवि पहुकर विरंचिते वैरागर खंडे ग्यान वैराग्य सत्ता राज्य तत्त वर्ननो नाम षोडसमोध्याय ॥१६॥ सम्पूर्ण समासं ॥ संवत् १८६२ ॥ अथ अथ नमासे ॥ शुक्ल पक्षे तिथौ चतुर्थीयां ॥४॥ भौमवासरे ॥ लिष्यते कायस्थ छोटेलाल ॥ शाकीन मिरजापुरे ॥ गंगा निकटे विंध्य क्षेत्रे ॥ अस्थि तटं मलगंज ॥ मंगलं दयातुः ॥

१७२. कल्पलता की बारहमासी
१८१. शुक संदेश
१८२. चंपावती नगर वर्णन
१८७. दंपति संवाद
१८६. वन विहार
१६०. आखेट वर्णन
१६१. सैन्य वर्णन
१६२. युद्ध शिवमाल योद्धा वर्णन
१९७. सह गौन वर्णन
१६८. कलपलता सूरसैन मिलन
२०३. चन्द्रसेन उत्पत्ति
२०४. शिशु लीला वर्णन
२०५. दूत संदेश
२०७. सूरसेन राजा दूत संवाद
२०८. कुंवर दर्शन
२१०. पयान वर्णन
२११. पंथ वर्णन
२१२. वैरागर आगमन
२१५. गृह प्रवेश वर्णन
२१६. जागरन
२१८. नव नायिका
२२०. दिग्विजय
२२१. संतान वर्णन
२२२. राज तिलक
२२३. चन्द्रसेन दर्शन
२२४. नट नाटक कौतूहल
२२२. ज्ञान वैराग्य सत्ता राज्य

नोट—ऐतिहासिक उद्धरण—नूरदीन गाजी सक वंदी ॥ जिहि के राज कथा रस वधी ॥ जुग जुग तासु वरध धर राजू ॥ तिहि सन कियौ कथा कर साजू ॥२७॥ येक सहस ऊपर पैंतीसा ॥ सन रसूल सो तुरकन दीसा ॥ अग्नि सिंधु रस इन्द्र प्रवाना ॥ सो विक्रमु सवतु ठहराना ॥२८॥

इस सूचना को ध्यान से पढ़ने पर लगेगा कि इस पाठ के लिये प्राप्त व प्रति और १६०५ या १९१७–१६ की सूचनावाली यह प्रति वस्तुतः एक ही मूल प्रति की दो नकलें है। या व प्रति १६०५ की सूचित प्रति की नकल है। इसमें किसी भी प्रकार के संदेह की कोई गुंजायश नहीं रह जाती।

'स' प्रति—वही है जिसकी सूचना १६२०–२२ की रिपोर्ट मे छपी है। स प्रति भी मूलतः व प्रति की परंपरा में ही है। लेखन संबंधी कुछ अंतर अवश्य है। किंतु यह अंतर पाठ की दृष्टि से महत्वपूर्ण विल्कुल नहीं है। व प्रति मे प्रायः द्ध को ध्य लिखा गया है, स प्रति मे हमेशा द्ध ही रहा है। कभी कभी स प्रति मे तद्भव रूपों को तत्सम बना देने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। यानी कहना चाहें तो कह सकते हैं कि स प्रति का लिपिकार कहीं ज्यादा सचेत और शब्दों की मूल प्रवृत्ति से अभिज्ञ व्यक्ति है। यह परिवर्तन लिपिकार ने अपनी मर्जी से नहीं किया है बल्कि उसके पास जो मूलप्रति थी उसकी लिखावट में ही ये अंतर विद्यमान थे, ऐसा प्रतीत होता है।

स प्रति के रूपाकार के विषय में हम आरंभ में ही १९२०–२२ की रिपोर्ट की प्रति के विवरण मे बता चुके हैं। यह प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा, के संग्रह में विद्यमान है। इस प्रति से ब प्रति की भिन्नता इस संस्करण के पाठांतर मे दिखा दी गई है। कई स्थानों पर स प्रति के शब्द ज्यादा व्यावहारिक और कम भ्रष्ट हैं, उन्हे मूल पाठ मे संमिलित कर लिया गया है और उनके स्थान पर ब प्रति के विकृत शब्दो को पाठांतर मे नीचे दे दिया गया है। यह प्रति अपूर्ण है, इसलिये उसकी सहायता सिर्फ चित्रखंड तक के पाठ निर्णय मे ही मिल सकी है। चित्रखंड समाप्त होते होते यह प्रति भी समाप्त हो जाती है।

१९२०–२२ की रिपोर्ट मे सूचना एकत्र करनेवाले व्यक्ति ने कुछ गलत बातें भी नोट कर दी है। लिखा है—'कवि पौहकर का आत्म वर्णन, नाम पुस्तक और समुद्र मंथन का वर्णन, बागेश्वर प्रसाद का वर्णन, स्यात ये कवि के आश्रयदाता हो ....।' बागेश्वरप्रसाद कोई व्यक्ति नही है कवि बागेश्वरी सरस्वती के प्रसाद यानी कृपा की बात कर रहा है।

**'द' प्रति**—द प्रति स का ही अक्षरशः लिपिकरण है। इसे किसी व्यक्ति ने बहुत हाल मे सामान्य कागज पर प्रचलित स्याही मे उतार दिया है। यह प्रति भी नागरीप्रचारिणी के पुस्तकालय मे सुरक्षित है। प्रति अपूर्ण है, जहाँ से स प्रति समाप्त होती है, वहीं यह भी समाप्त हो जाती है। स प्रति की अंतिम पंक्ति अपूर्ण है, वैसे ही द की भी।

## अ और ब प्रतियों के विषय में

भाग्यवश इस पाठ के तैयार करने मे अ प्रति का सहारा मिला। अ प्रति रसरतन काव्य के शुद्ध पाठ की कुंजी है; किंतु यह प्रति पूर्ण नही है। जैसा मैने ऊपर निवेदन किया ब, स, और द तीनों समुपलब्ध प्रतियाँ एक ही परंपरा की है। तीनो के पाठ, छंदसंयोजन आदि एक जैसे हैं। तीनो प्रतियो मे छंद संख्या एक जैसी है। एक से सौ तक अंक देकर पुनः एक से आरंभ करने की पद्धति तीनों मे चलाई गई है। ब से स और द के छंदों से अत्यंत अल्प अंतर दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिये आदि खंड के ७ वें छंद मे स द प्रतियों मे अर्धाली का क्रम बदला है। ४२ संख्या-वाले छप्पय मे ब प्रति मे दूसरी और तीसरी पंक्तियाँ मिलकर एक हो गई हैं, स द में ऐसा नही हुआ है। ५४ संख्या दंडक में नीचे की पंक्ति ब मे बिलकुल

अशुद्ध है। स द का पाठ 'जैसे साहजहाँ साह जहाँगीर के' फिर भी कुछ ठीक है। वैसे अ प्रति मे यह स्पष्ट है। आदि खंड के १०९-१० संख्या के छंद स द में नहीं हैं। इस प्रकार के अत्यंत सामान्य अन्तर व प्रति और स द के बीच दिखाई पडते हैं जो पाठशोध के लिए बहुत सहायक नहीं हो पाते। इसी को दृष्टि मे रखकर मैंने इन तीनों प्रतियों को एक परंपरा की बताया है। हाँ यह कहा जा सकता है कि स द प्रतियाँ व का पुनर्लेख नही हैं। किंतु जिस प्रति से यह लिखी गई है, वह या उसकी पूर्वज प्रति व की किसी न किसी पूर्वज प्रति से मिलती जुलती अवश्य रही होगी।

अ प्रति बिलकुल भिन्न परंपरा की है। व परंपरा से कहीं अधिक शुद्ध सही और सुसंस्कृत परपरा की प्रतिनिधि होने के कारण अ प्रति में अशुद्धियाँ कम से कम हैं। अनेक स्थानों पर व प्रति के अशुद्ध पाठो को शुद्ध करने में अ प्रति से सहायता मिली है।

अ प्रति में छंद संख्या एक से आरंभ होकर अटूट क्रम मे चलती है। उसमें खंडों मे अलग अलग छंद संख्याएँ हैं, पर सबको समेट कर एक अटूट छन्द संख्या भी चलती रहती है। और यह छंद संख्या व प्रति से अक्सर भिन्न हो जाया करती है। उदाहरण के लिये अ प्रति के आरंभ के अंश त्रुटित हैं। ३७ संख्या के पद को अ में अडतीस कहा गया है। ३८ संख्या के पद को व प्रति दंडक और अ सवैया बताती है। व स द प्रतियों से अ के पाठांतर पर ध्यान दीजिए। निमिदण्ड [अ, नृपदंड आदि २९] बिबिलाल [अ, कविलास आदि० ४२] नुर साहब ते बजि खात [अ, साहि तेज विख्यात आदि ४८] मेरु सुमेर फॅनिंद मेदिनि पर छाजै [अ, जब लगि अचल सुमेर फनिंद फन मेदिनि छाजे, आदि ५२]। आदि खंड के १२१ वे छद के बाद व प्रति में 'षड्दरसन' की व्याख्या करने के लिये एक दोहा ऊपर से जोड दिया गया है, जो अ मे नहीं है। यह दोहा स और द में भी नही है। उसी प्रकार व प्रति में १२१-१२४ वाले छंदो के बाद दो नई चौपाइयाँ और एक नया दोहा भिन्न कागज पर जोड़ दिया गया है जो किसी भी प्रति मे नहीं हैं। किसी व्यक्ति ने, जो ज्योतिष मे कुछ दिलचस्पी रखता था, पुहकर के द्वारा वर्णित ग्रहगति और फल को बदल कर अपने हिसाब से कर दिया है।

यह ध्यान देने की बात है कि व प्रति मे जितने भी बड़ी बडी पंक्तियोंवाले छंद हैं, यथा छप्पय, दडक या सवैया, कवित्त, कुंडरिया आदि, वे अक्सर अशुद्ध हो जाते हैं, ऐसे सभी स्थलो पर अ प्रति की मदद से इन्हे शुद्ध किया

गया है। ब प्रति स्वयं भी काफी स्पष्ट थी, इसलिये रसरतन के इस पाठ को तैयार करने में ज्यादा बाधाएँ नहीं हुईं। कुछ विशिष्ट पाठभेद और निर्णय इस प्रकार हैं।

१—आदि खंड में १४१ संख्या पद और उसके आगे वर्णन में अ प्रति के पाठ को इसलिये स्वीकार किया गया है कि ब परम्परा की प्रतियों मे निचली पंक्तियों मे पुनरुक्ति आ जाती है। अ प्रति मे ऐसा नहीं होता।

२—ब प्रति मे सर्वत्र विषय की सूचना देने के लिये 'अथ अमुक…' दिया गया है, अ मे यह पद्धति नहीं है। पाठकों की सुविधा के लिये ब प्रति की इस पद्धति को स्वीकार कर लिया गया है।

३—कहीं कहीं अध्यायों की क्रमसंख्या और नाम मे फर्क है किंतु चूँकि अ प्रति त्रुटित है, इस कारण ब प्रति को ही प्रामाणिक मान लेना पडा है।

४—अ प्रति मे विजयपाल खंड मे दोहा संख्या ८ के स्थान पर एक भिन्न दोहा दिया हुआ है, किंतु चूँकि वही दोहा आगे २२ वी संख्या मे दोनो प्रतियो मे था, इसलिये इसे प्रति की अशुद्धि मानकर पाठांतर मे दे दिया गया है।

५—विजयपाल खंड छंद संख्या ११ मे ब प्रति मे 'रोम रोम की सिपत बतावै' चरण को दुहरा कर अर्धाली पूरी की गई है। वहाँ पर अ प्रति का पाठ ही ठीक है।

६—विजयपाल खंड मे छंद वयूह मे लिखे हुए ५४-५७ संख्या के पदों का पाठ ब प्रति मे बिल्कुल अशुद्ध है। इसे अ प्रति के हिसाब से शुद्ध किया गया है। इन नामो के विषय में जहांगीरनामा, अलबरूनीकालीन भारत आदि ग्रंथों से भी सहायता ली गई है।

७—इसी खंड मे उपर्युक्त देश वर्णन के ठीक बाद अ प्रति मे एक दोहा और तीन चौपाइयाँ विशेष मिलती है। जिनमें स्वयंवर सामग्री एकत्र करने का वर्णन है। इसे पाठांतर मे दिया गया है, किंतु यह मूल पाठ का अंग भी हो सकता है।

८—विजयपाल खंड का १०७ संख्यक दोहा दोनों प्रतियों में अशुद्ध सा प्रतीत होता है। यह दोहा रतिसंयोग संबंधी है। रसबेलि मे रतिप्रसंग मे इसी प्रकार की एक पंक्ति आती है [ देखिए, रसबेलि छंद संख्या ५ ] वहां भी 'कुहुकि कुहुकि उठै कामिनी' यह पाठ है। 'कूका कूकनि

कुहुक है' इस पंक्ति का अर्थ यह है कि रति क्रीडा के दो रूप है। कोक कला और कोकिल कला। इसलिये एक मे कूक है, दूसरे मे कुहुक है।

९—विजयपाल खंड का १३३ छंद ब प्रति मे नहीं है। यह आवश्यक प्रतीत होता है, संदर्भ की दृष्टि से इसलिये इसे मूल पाठ मे स्वीकृत किया गया।

१०—विजयपाल खड का १८१वाँ पद भी, जो ब मे नही है स्वीकार किया गया है, क्योंकि उसमे बताया हुआ तिथिक्रम बाद के २३५ संख्यक छप्पय मे भी दिया हुआ है।

११—विजयपाल खड का २१८ संख्यक छप्पय भी ब प्रति मे बहुत अशुद्ध है। दोनो मे दूसरा चरण भिन्न है। मैंने अ प्रति के पाठ को इसलिये ठीक माना कि ब की पंक्ति का कोई सार्थक अर्थ नहीं प्रतीत होता। ब प्रति मे दिया हुआ है 'कमठ द्वार लग्गिहि किवार मेदिनि सो भरक्किय'। जबकि अ का निम्नलिखित पाठ प्रसंग मे पूर्णतः समीचीन और सार्थक प्रतीत होता है—

विकसि कमल सकुचंत कोक कुल वपू धरक्किय

१२—२३५ संख्या का तिथिक्रम वर्णन करनेवाला छप्पय अ प्रति का ज्यादा शुद्ध नही लगता। मैने ब वाले पाठ को ही ठीक माना है। विचारणीय दोनो हो सकते है।

१३—२४५ सख्या मे एक श्लोक अ प्रति मे है, ब मे नही है। इस तरह की विकृत संस्कृत पदावली को किसी छंद मे ढालकर एक पद बना लेने की प्रवृत्ति इस ग्रंथ मे और स्थानो पर दिखाई पडती है। इस कारण इसे स्वीकार कर लिया गया है।

१४—अप्सरा खंड के आरंभ की सूचना किसी भी प्रति मे नहीं है। न तो यह अ मे है, न तो ब में। ब प्रति में स्पष्ट ही यह भूल है क्योंकि बाकी खंडो के आरंभ मे ही 'अथ अमुक खंड' ऐसा लिखकर यह बात स्पष्ट कर दी गई है। अ प्रति में ऐसा नही किया गया है। यह अवश्य है कि यहाँ से ब प्रति मे छंद संख्या पुनः एक से शुरू होती है, जैसा कि अन्य खंडो के आरंभ में होता रहा है, इससे अनुमान होता है कि

यहाँ से कोई नया खंड आरंभ होता है। चूंकि खंडों का क्रम आरंभ में ही एक छंद में बता दिया गया है, और बाद के अध्यायों की समाप्ति पर उन्हें अप्सराखंड के अंतर्गत बताया गया है, इस आधार पर यहाँ से अप्सरा खंड मान लिया गया है।

१५—अप्सराखंड मे १०६ संख्यक सवैया को अ प्रति के आधार पर शुद्ध किया गया है। ब प्रति मे 'रया कासी करति' गलत है, इसके स्थान पर अ प्रति मे है 'श्रम रीकरनि' जो उचित प्रतीत हुआ।

१६—ब मे अप्सराखंड छंद सं० ११४ मे 'फूल धरे' को दो बार लिखकर पादपूर्ति की गई है जबकि अ मे 'फूलझरी छुटि फूल झरे' बहुत सुंदर पाठ है। खास तौर से इसलिये कि रसरतन के कवि को आतिशबाजी बहुत पसंद है और फिर यह सभी जानते है कि जहाँगीर कालीन अनेक चित्रों में फूलझरी को छुटाते हुए दिखाया गया है।

१७—इसी खड का छंद नं० १४७ का सवैया ब प्रति मे कितना भ्रष्ट था, इसे पाठांतर देखकर ही समझा जा सकता है।

१८—अप्सराखंड मे छद संख्या २१२ से २१४ तक के पद जिनमे नृत्य और वाद्य के ताल सुर बताए गए है, ब मे बिलकुल भ्रष्ट हैं।

१९—इसी खंड का २२७ संख्यक दोहा अ मे नही था। इसे प्रसंगोचित समझकर स्वीकार कर लिया गया है।

इन कतिपय प्रमुख पाठांतरो से भी पता चल जायेगा कि अ प्रति कितनी महत्वपूर्ण और शुद्ध है। अभाग्यवश प्रति अपूर्ण थी, इसलिये टूटे हुए अंश के आगेवाले पाठ विवश होकर ब प्रति के हिसाब से ही निर्धारित करने पड़े हैं; किंतु उन अंशो को भी पुहकर की भाषा, छंदरचना की प्रवृत्ति, वर्णन में बहुप्रयुक्त प्रिय शब्दो की स्थिति और अन्य तरीको के आधार पर यथासंभव ठीक और शुद्ध बनाने का प्रयत्न किया गया है। यह सत्य है कि एकाध और पूर्ण प्रतियाँ मिल गई होतीं, तो इस पाठ को बहुत हद तक प्रामाणिक बनाने में सफलता मिल जाती। इन पांडुलिपियो के आधार पर जो कुछ भी हो सका है, वह विज्ञ जनो को संतोष दे सकेगा, ऐसी आशा अवश्य है।

———

# रसरतन का रचनाकाल और ऐतिहासिक संदर्भ

कवि पुहकर ने 'छत्र सिंहासन वर्णन' के अंतर्गत रसरतन का रचनाकाल बताते हुए निम्नलिखित चौपाई दी है।

एक सहस ऊपर पैंतीसा। सन रसूल सों तुरकन दीसा ॥
अग्नि[3] सिंधु[7] रस[6] इंदु[1] प्रमाना। सो विक्रम सम्वत् ठहराना ॥
(आदि खंड २८)

यही पाठ सभी उपलब्ध प्रतियों मे मिलता है। नागरी प्र० सभा की सभी खोज रिपोर्टों[1] मे जिसमे रसरतन में सूचनाएँ दी हुई हैं, यही पाठ मिलता है। १९०६-८ की रिपोर्ट मे कुछ भिन्नता है जिसमे कवि को १६१८ ई० का बताया गया है। यहाँ १६७३ विक्रम संवत् के स्थान पर अग्नि की संख्या पांच मानकर १६७५ कहा गया है। विक्रम संवत् के साथ ही साथ कवि ने हिजरी संवत् भी दिया है जो १०३५ है। किंतु सभी प्रकार की गणनाओं के आधार पर देखने से लगता है कि यह सन् गलत है। १६७३ विक्रम संवत् १६१६ ईस्वी में पड़ता है, और उस वर्ष हिजरी १०२५ होना चाहिए। १९१७-१९ की रिपोर्ट के संपादक को यह अशुद्धि खटकी थी और उन्होंने इसके बारे मे लिखा 'इसका रचनाकाल कवि ने विक्रम संवत् १६७५ बताया है जिसका समानांतर सन् रसूल १०३५ कहा गया है। सन् रसूल निश्चित ही हिजरी सन् है; किंतु विक्रम वर्ष १०३५ हिजरी मे न पड़कर १०२८ मे पडता है। १०३५ सन् संवत् १६८२ मे पडता है। यह एक गडबडी है जिसके विषय मे मैंने दीवान बहादुर स्वामी कन्नू पिल्लई से परामर्श किया किंतु कोई संतोषजनक समाधान न मिल सका।[2]'

---

१. १९०१, १९०६-८, १९१७—१९१९, १९२० २२ तथा पंजाब में हिंदी पुस्तकों की खोज रिपोर्ट १९२२-२४।

२. १९१७ १९ रिपोर्ट सूचना संख्या १४०।

जाहिर है कि यहाँ संपादक ने रचनाकाल १६७५ संवत् मान कर यह निष्कर्ष निकाला है। १६७३ विक्रम संवत् १०२५ हिजरी में पड़ता है। उस साल मंगलवार प्रथम जिल्क़द: के दिन १० नवंबर सन् १६१६ ईस्वी था।[1] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ १०२५ हिजरी में लिखा गया जो जहाँगीरनामे का ग्यारहवाँ जलूसी वर्ष था। उस साल १६७३ विक्रम संवत् अथवा १६१६ ईस्वी मे इस ग्रंथ की रचना हुई। लगता है लिपिकर्ताओं ने 'पच्चीसा' के स्थान पर 'पैंतीसा' पाठ कर दिया। यह पाठ अब तक की प्राप्त सभी पांडुलिपियों मे मिलता है, यह सही है; किंतु ये सभी पांडुलिपियाँ एक परंपरा की हैं, इस कारण यह अशुद्धि सब मे दिखाई पड़ती है। मूल पाठ यों होना चाहिए—

एक सहस ऊपर पंचीसा, सन रसूल सो तुरकन दीसा।
अग्नि सिंधु रस इंदु प्रमाना, सो विक्रम संवत ठहराना॥

पुहकर ने एक पंक्ति मे शाहजादा शाहजहाँ का नाम लिया है। बारहवें जलूसी वर्ष मे गुरुवार मेह महीने की दसवीं को, जो हमारे बारहवें जलूसी वर्ष मे, ११ शव्वाल सन् १०२६ हि० होता है, तीन पहर एक घड़ी दिन व्यतीत होने पर शुभ मुहूर्त मे खुर्रम ने प्रसन्नता के साथ माँडू दुर्ग मे प्रवेश किया और हम दोनों ग्यारह महीने ग्यारह दिन पर मिले।[2] गुरुवार २७ वीं को नूरजहाँ बेगम ने हमारे पुत्र शाहजहाँ के विजय के उपलक्ष में जलसा किया। जिसमे तीन लाख रुपये खर्च हुए।[3] इसी के बाद शाहजहाँ विद्रोही हो गया और 'फर्जंद' शाहजहाँ को जहाँगीर ने 'बेदौलत' कहे जाने का फर्मान दिया। जाहिर है कि उसके विद्रोही होने के पहले यानी हिजरी १०२६ के पहले पुहकर ने ये पंक्तियाँ लिखी थीं।

कहै कवि पुहकर करिसप कैं कुल भानु,
अचिरज कौन रघुवंश रघुवीर के।
अकबर साहि जू के साहि जहाँगीर जैसे,
जैसो साहिजादौ साहिजहाँ जेहगीर कै॥
(आदि ५४)

---

१. जहाँगीरनामा, ना० प्र० सभा संस्करण, संवत् २०१४ पृष्ठ ४०४। संवत सुदी ८ संवत १६७५ के दिन शुक्र ८ शहरियर सन् १०२७ हिजरी था (पृष्ठ ६) इस प्रकार १६७५ के लिए १०२८ मानना भी ठीक नहीं होगा।

२. वही पृष्ठ ४५६ वही ३. पृष्ठ ४५६।

पुहकर जहाँगीरकाल के कवि थे। कवि ने छत्र सिंहासन वर्णन के अंतर्गत जहाँगीर की प्रशंसा की है। इन वर्णनों को देखने से लगता है कि कवि ने ये वर्णन केवल रूढ़ि निर्वाह के लिये, अपने समय के बादशाह की स्तुति के लिये, यों ही नहीं कह दिए हैं, बल्कि उन्होंने जहाँगीर के दर्बार को निकट से देखा था। कवि बादशाह का आश्रित था, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता, पर उसकी दर्बार तक पहुँच थी, ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रसंग से एक बात और निवेदन कर दूँ। आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि "कहते हैं कि जहाँगीर ने किसी बात पर इन्हें आगरे में कैद कर लिया था। वहीं कारागार में उन्होंने रसरतन नामक ग्रंथ संवत् १६७३ में लिखा, जिसपर प्रसन्न होकर बादशाह ने इन्हें कारागार से मुक्त कर दिया"[1]। शुक्लजी ने इसे जनश्रुति कहा है, और यही ठीक भी है क्योंकि न तो इस ग्रंथ से और न तो किसी दूसरे सूत्र से इस बात की पुष्टि होती है। यह असंभव है, ऐसा कहना भी ठीक न होगा क्योंकि जहाँगीरनामा देखनेवाला हर व्यक्ति जानता है कि कितनी सामान्य बात पर लोग कैद कर लिए जाते थे और उसी तरह से किसी मामूली बात से प्रसन्न होकर बादशाह उन्हें छोड़ भी देता था।

जहाँगीर की पाँच रानियाँ थीं। कवि लिखता है :

तिमिर वंस अवतंस साहि अक्बर कुल नन्दन।
जगत गुरू जगपाल जगत नाइक जगवन्दन॥
साहिनशाह आलम पनाह नरनाह धुरंधर।
नेग वृत्ति दिल्ली नरेश त्रिय चारि जासु घर॥
अर्धंग अंग पंचम वरनि तरनि तेज महि चक्कवै।
नर राज मनहुँ पंचम सहित सुंपचह मिलि महि भुग्गवै॥
(आदि० ३१)

ऐतिहासिक मत है कि जहाँगीर ने पाँच विवाह किए थे। पहला विवाह सन् १५८५ ई० में राजा भगवानदास की पुत्री मानमती से हुआ। १५८६ में तीन विवाह और हुए। एक जोधपुर के राजा उदयसिंह उर्फ मोटा राजा की पुत्री जगत गोसाइन से, दूसरा बीकानेर के राजा रामसिंह की पुत्री से तथा

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण, पृष्ठ २२८

तीसरा सईदखाँ काशगरी की पुत्री से हुआ, इस प्रकार ये चार विवाह सामान्य हुए। पाँचवा विवाह विशिष्ट था जो १६११ मे नूरजहाँ बेगम से हुआ, और यही 'बरनि' बादशाह की 'अर्धंग अंग' थी, इसमे सन्देह नहीं।

बत्तीस लक्षणो से युक्त, जहाँगीर को कवि ने वीर, दानी, न्यायपरायण और सभी गुणो से विभूषित बताया है। किन्तु सर्वाधिक सविस्तर वर्णन उन्होंने जहाँगीर की सेना का किया है। दल ( सेना ) और अदल ( न्याय ) का बयान करते समय कवि पुहकर प्रियव्रत, पृथु, पुरूरवा आदि नरेशो को भी जहाँगीर के सामने भुला देने को विवश हो जाते है। जहाँगीर के युद्धो का पूरा विश्लेषण करने पर इतिहासकार इस निर्णय पर पहुँचते है कि जहांगीर की विजययात्रा १६०६ से १६२२ ई० तक लगातार जारी रही। उसने बंगाल का विद्रोह दबाया। मेवाड विजय किया। अहमद नगर पर हमला किया, कांगडा जीता। कंदहार पर विजय प्राप्त की। यह समय मोटे रूप से १६६३ विक्रमी से १६७६ विक्रमी तक कहा जा सकता है, पुहकर ने १६७३ मे यानी इस विजययात्रा के करीब करीब मध्य मे अपने ग्रंथ का प्रणयन किया। इसलिये उनके ऊपर जिस वस्तु का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा, वह थी जहाँगीर की फौज। इसीलिये वे इस अपार सेना को देखकर आश्चर्य से कह उठते हैं—

> अबिरल बानी गनै पुहकर कवित्त कौन,
> मन के मनोरथ अलोल चित्त चाइ की।
> सहस बदन चतुरान सकै न गन
> फौजे जहाँगीर जू की मौजें दरियाइ की॥
> [ आदि० ३८ ]

पुहकर के कवित्तों की अविरल बानी, मन के मनोरथ, चित्त के चाव कौन गिन सकता है। जहाँगीर की नदी की लहरों की तरह उमड़ती सेना को तो शेषनाग और ब्रह्मा भी नहीं गिन सकते। फिर भी कवि पुहकर ने अनुमान तो लगाया ही :

> बीस लाप तुष्पार सहस सत्तरि सुंडाहल।
> पंच लाख रथ सुरथ सज्जि बिवि कोटि पयद्दल॥
> तीन लाख निस्सान मेघ भादो जिमि गज्जहिं।
> अति असंख सेना समूह उडगन गन लज्जहिं॥

चहुँ ओर अष्ट योजन कटक संक भान धसमस धरनि ।
दिग्पाल हलहिं व्याकुल कमठ गगन रैनि मुंदी तरनि ॥
( आदि० ३७ )

बीस लाख घोडे, सत्तर हजार हाथी, पाँच लाख सुसज्जित रथ और दो करोड पैदल सेना की विजय यात्रा ने क्या क्या परिणाम दिखाये :

दुरजन देस रह्यो नहिं कोई । देस पती मिल किंकर होई ॥
उत्तर देस अठारह पानै । ते नृप दण्ड सदा सिर मानै ॥
( आदि० ३६ )

यह अठारह देश कौन कौन थे ? गुलेरी जी ने, सिद्ध हेमव्याकरण के प्रसंग में कि परीक्षा में 'अक्लिन्न' निकलने पर राजा ने ३०० लेखकों से तीन वर्ष तक प्रतियाँ लिखवा कर अट्ठारह स्थानों में पठन पाठन के लिये भेजी, 'अठारह पानै' का विवरण इस प्रकार दिया है :

'अठारह देश—कर्नाट, गुर्जर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंधु, उच्च, भँभेरी, मरु, मालव, कौंकण, राष्ट्रकीर, जालंधर; सपादलक्ष, मेवाट, दीप, आभीर, [ जिनमंडन का कुमारपाल प्रबंध, पत्र ८१ ( १ ) ]"

पुहकर का यहाँ मतलब धुर दक्षिण के कुछेक स्थानों को छोडकर सम्पूर्ण भारतवर्ष से प्रतीत होता है ।

जहाँगीर जब सैर शिकार को भी निकलता था तो लंका में शंका और खुरासान में भय व्याप्त हो जाता था ।

सैल सिकार जो करै पयाना । संकत लंक डरै पुरसाना ।

एक दूसरे छप्पय में उन्होंने लंक, अलक, मसाम, बंदकसान, पुरसान के भयभीत रहने की बात लिखी है । कर्नाट, लाट, केरल, फारस, सिंहल के सकुचित होने तथा हिन्दू राजाओं द्वारा रमणी और पुत्र भेंट कर बादशाह के शरणागत होने का वर्णन किया है । जहाँगीरनामा में कर्णाटक ( पृष्ठ २६२, ४७४, ५०२, ५३१ ), खुरासान ( ६७, १४७, २६३, ३१०, ३३८, ४८५, ५१६, ६६६, ७४६, ७६४ ), बदख्शा ( १२, ४४, ५१, ५८-५६, तथा अनेक पृष्ठों पर ), फारस ( ७५३ ७५४ तथा अनेक स्थानों पर ) आदि स्थानों के बारे में विशेष वर्णन दिया हुआ है । जहाँगीर ने सिंहल पर चढ़ाई करने का मनसूबा बाँधा [१], यह इतिहास प्रसिद्ध है ही ।

---

१. पुरानी हिंदी, ना० प्र० सभा २००५, पृष्ठ १४०-४१

सेना के बाद कवि का ध्यान जहाँगीर के शासन और न्याय की ओर गया है। अदलेजहाँगीर इतिहासकारों के नजदीक जैसा भी मूल्य रखता हो, जहाँगीरनामा में उसकी प्रशंसा भूरि भूरि मिलती है। जहाँगीरनामा में खुद जहाँगीर उसकी प्रशंसा करते हुए नहीं अघाता। उसने पहले जलूसी साल के बयान के शुरू में ही लिखा है "जिस घड़ी हम स्वेच्छा से सिंहासन पर बैठे, उस समय जो पहली आज्ञा की, वह न्याय की जंजीर लगाने की थी। जिसका एक सिरा शाह बुर्ज के कंगूरे में दृढ़ किया हुआ था, और दूसरे को नदी के तट पर ले जाकर पत्थर के खंभे में, जो बन चुका था, बाँध दिया गया था। वह इसलिये था कि यदि न्यायालयों के अध्यक्ष निर्णय करने में विलंब करें तो न्यायेच्छुक तथा शीघ्रता करनेवाला इस लटकती जंजीर तक आकर थोड़े ही दिनों में अपने काम को पूरा कर न्याय को पा जाय। इस जंजीर को बहुत व्यय कर सोने की बनवाई थी जो चालीस गज लम्बी थी और जिसमें साठ घंटियां लगी थीं, उनकी तौल १० मन के लगभग है।"[१]

उसी वर्ष में जहाँगीर ने प्रजा के सुख के लिये बारह नियमों की घोषणा की। इन नियमों का जिक्र भी उसने जहाँगीरनामा में विस्तार से किया है। जकात ( कर ) क्षमा कर दी जिससे शासन को आठ सौ मन सोने की प्राप्ति होती थी। रास्तों पर सुरक्षा का प्रबंध कराया। मद्य-निषेध कराया ( हालाँकि खुद बहुत पीता था ) प्रजा के घर में बलात् प्रवेश और अधिकार को रोका। दवा दारू का प्रबंध कराया। पशुबलि और मांसभोजन सप्ताह में दो दिन बन्द करवा दिया आदि आदि।[२]

पुहकर कवि ने जहाँगीर के इन कार्यों को नजदीक से देखा होगा। वे कहते हैं—

> दल बरनन बहु विध कियौ, अदल न बरन्यो जाय।
> गैया नैया छोर सो. दापे संग लगाइ॥
> मूषन अरु मजारि मिलि, संग साहु बसे चोर।
> त्रिक बकरी इक ठाँ करी, कोइ करै नहीं जोर॥
> बीर अभय पंथी चलै, रवि न सतावै ताहि।
> प्रगट्यो परम पुनीत कलि, जहाँगीर पति साहि॥

---

१. जहाँगीरनामा पृष्ठ १४-१५

२. जहाँगीरनामा पृष्ठ १५ से २१

मैं न कछू कवि विधि कही साँचि कही सब बात।
सरल सिंह निर्विस उरग साहि तेज विष्यात॥
ज्यों पयोधि मौजे करै अरब परब दिन देइ।
छाँड्यो ठंड जगाति कौ धर्म अंस रस लेइ॥

( आदि खंड ४५-४६ )

कवि पुहकर ने जहाँगीर के एक शौक का भी बड़ा मजेदार वर्णन किया है। जहाँगीरनामा में सैर-शिकार का वर्णन तो भरा पड़ा है ही, हारे हुए नरेशों, सामंतों, सेनापतियों और जागीरदारों के निरंतर उपहार-भेंट उपस्थित करने का भी विस्तृत वर्णन है। हाथी घोड़े, लाल हीरे, आभूषण, तलवार-कृपाण, आम-अंगूर तथा किस्म किस्म के पशुपक्षी रोज बादशाह को भेंट में मिलते थे और वह सब का मुआइना करता था और उपहार देनेवाले की तारीफ करता था।

सातवें जलूसी वर्ष का बयान करते हुए उसने एक स्थान पर कमायूँ के राजा लक्ष्मीचंद द्वारा भेंट की गई वस्तुओं की लिस्ट इस प्रकार दी है। पहाड़ी टट्टू, शिकारी पक्षी, बाज, जुर्रा आदि, कस्तूरी की नाभि, मृग, मृग की खाल, खाँडे, कटार, आदि।[1] १२ आजर को कूच विहार से जागीरदारों की ओर से जो भेंट आई उसमें चौरानवे हाथी थे, जिनमे से कुछ मैंने अपने हयसाल में रख लिए।[2] इन्हीं बातों को लक्ष्य करके पुहकर कवि कहते हैं—

चित्रक खग मृगराज गज, सुक सिचान बहु भाँति।
आम पास दरबार मैं, परै ते पाँतिन पाँति॥

( आदि० ५० )

रसरतन में ब्रह्मकुंड के पास कवि पुहकर ने माया नगर का जो युद्ध वर्णन किया है, उस पर जहाँगीर के कांगड़ा और कुमायूँ विजय का प्रभाव प्रतीत होता है। बाद मे सूरसेन अपने पुत्रों को जब राज्य वितरित करता है, तो कवि कहता है—

माया देस पुर नगर कुमाऊँ।
पर्वत राज्य दीन चित चाऊँ॥

( वैरागर खंड २४० )

---

१. जहाँगीरनामा पृष्ठ २८८।
२. वही, पृष्ठ ३३।

इस स्थान मे प्राप्त होनेवाली वस्तुओं के बारे में कवि ने कहा है—

कनक आदि सब धातु प्रमाना। उपजहिं बहुत जु बाज सिचाना ॥
उपजहि सुरह धेनु धन पूरी। बिजन बाल मृगमद कस्तूरी ॥
उपजहिं तुरग गूढ़ गज ठाटा। सुघर मधुर मधु सोभित हाटा ॥
कदलि सानु अरु विद्रुम वेली। सोंठ पीपरैं सहज सकेली ॥
(युद्ध खंड ३२८-३२९)

पुहकर कवि की यह सूची जहाँगीर द्वारा वर्णित कुमायूँ के राजा से प्राप्त वस्तुओ की सूची से कितना आश्चर्यजनक साम्य रखती है। यह इतिहास प्रसिद्ध है कि जहाँगीर ने कांगडा विजय के बाद अपनी साम्राज्ञी नूरजहाँ के नाम पर नूरपुर नामक नगर बसाया। सूरसेन ने भी मायापुर को विजय करके कल्पलता के निवासस्थान के पास एक नगर बसाया—

तिहिं ठॉ आइ निकट नहिं ग्रामू।
केवल कलपलता कर धामू ॥
सूरसैन तहँ नगर बसावा।
परम रम्य सोभा अति पावा ॥
(युद्ध खंड ३२९)

मुगलकालीन इतिहास और संस्कृति के विद्यार्थी के लिये रसरतन का एक और भी महत्त्व है। कवि ने सेना, अस्त्र-शस्त्र, घोडे, और उनके साजो, रणवाद्यों, डंके, निसान आदि का जो वर्णन किया है, वह उस काल की परंपरा से पूर्णतः प्रभावित है। भवन, जलाशय, मस्जिद आदि के निर्माण के लिये जहाँगीर मशहूर था। विशेष रूप से जल-गृह और ज्योति-नहरों का वह बडा शौकीन था। कवि पुहकर ने रसरतन में अनेक स्थानो पर इस प्रकार के जलाशयो का वर्णन दिया है।[1]

उत्सव के अवसरो पर अगरबत्ती, ऊदबत्ती, गुग्गुल, लोहबान आदि के जलाने का रवाज आज भी प्रचलित है, तब भी था। जहांगीर ने लिखा है कि पर्वेज के निकाह मे हिंदुस्तानी तौल मे दस मन ऊद तथा सुगंधित द्रव्य खर्च हुए।[2] निशान, शहनाई, डंका के वर्णनों मे तो जहांगीरनामा का हर जलूसी वर्ष गूँजता ही रहता है।

---

१. देखिए वस्तुवर्णन शीर्षक परिच्छेद।

२. जहाँगीरनामा, पृष्ठ ४६।

आतिशबाजी आज भी प्रचलित है, मुगल काल में भी प्रचलित थी। बान और आतिशबाजी छूटती थी। जहाँगीर ने लिखा है 'मैंने इन शत्रुओं के विरुद्ध वर्गिओं की एक सेना भेजी। रात्रि में वे बान और आतिशबाजी छोड़ने से नहीं चूकते थे।'[1] पुहकर के वर्णनों से इनकी तुलना कीजिए—

**शहनाई, निसानादि**

> बजे शृंग सारंग भेरी मृदंगा।
> बजै बाँसुरी शंख शहनाई संगा॥
>
> ( युद्ध खड, २४६ )
>
> बजै बाँसुरी संख शहनाइ तूरं।
> भये शब्द दिग्पाल के कर्ण पूरं॥
> भई पंच हज्जार दुंदुभि धुक्कारं।
> उठै नीर पाताल चालि वार पारं॥
>
> ( विजयपाल खंड १६७ )

**अगरबत्ती, सुंगधित द्रव्यादि**

> चोवा भेद जिवादिहिं लीनो। केसर मिलै अरगजा कीनौ॥
> चंपक बेलि गुलाबनि हार। फूल सेज वह रचीं अपार॥
> मलयागिरि उद्दीप सुखराती। चहुँदिसि बरै अगर की बाती॥
>
> ( अप्सरा खंड ८४-८५ )

**आतिशबाजी**

हथफूल, हवाई आदि छूटने लगीं। चारों तरफ आतिशबाजी का जाल छा गया—

> बरैं तहँ लच्छिन लच्छ मसाल।
> उठै अति आतसवाजुव जाल॥
> छुटैं हथफूल हवाइनि गुंज।
> दुरौ दुति इंदु तमी तम पुंज॥
>
> ( स्वयंवर खंड १४१ )

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि पुहकर ने जहाँगीरकालीन मुगल दरबार की गतिविधि, उत्सव, त्यौहार तथा खेलतमाशों आदि को बहुत नजदीक से देखा और उन्होंने अपने इस अनुभव का इस ग्रंथ में अनेक प्रकार से उपयोग भी किया।

---

१. जहाँगीरनामा पृष्ठ २८६।

# कथावस्तु

कवि पुहकर रसरतन में प्रेम की वह अपूर्व कथा कहना चाहते हैं जहाँ वैरागर के राजा सोमेश्वर के पुत्र सूरसेन और चंपावति-नरेश विजयपाल की तनया रंभावती के बीच अद्भुत संयोग कराने के लिये भुवनमोहन पुष्पधन्वा काम को स्वयं दूत बनना पड़ा।

नृप तनया रंभावती, सूर पृथ्वीपति पूत।
बरनौं तिनकौं प्रेम-रस, मदन भयौ तहँ दूत॥

(आदि० १०२)

सोमवंशी राजा सोमेश्वर पूर्व दिशा मे राज्य करते थे। प्राची दिशा अनन्य महत्वशालिनी है, क्योंकि इसी दिशा मे सूर्य का उदय होता है। वैरागर का प्रदेश अमूल्य हीरों के लिये और वीर सुंडाहलो (हाथी) के लिये प्रसिद्ध था। राजा सब प्रकार से वैभवसंपन्न था; किंतु पुत्र का अभाव उसे शूल की तरह सालता था। इसी लिये एक बार वह रानियों के साथ काशीपुरी आया। चिंतामणि पंडित को गुरु बनाया जिन्होंने उसे मनसा, वाचा, कर्मणा शिवसेवा करने का उपदेश दिया। राजदंपति ने लगन पूर्वक शिवार्चा आरंभ की। शिव प्रसन्न हुए और उनकी कृपा से पटरानी कमलावती ने गर्भ धारण किया। समय आने पर कमलावती के गर्भ से कुमार ने जन्म लिया। पंडितों ने जन्म लग्न का विचार करके भविष्यवाणी की कि राजकुमार बहुत गुणी होगा, चक्रवर्ती नरेश बनेगा; किंतु बारह वर्ष पूरा करके जब कुँवर तेरहवें मे प्रवेश करेगा तो त्रिया-विरह मे दुखी होगा। वियोग से अतिशय कष्ट होगा, वैद्य और दूसरे गुनीजन इसका उपचार सोच न पाएँगे। तीन वर्ष तक वियोगी रहेगा। पुनः वह योगी होकर भटकेगा, और अंत में चौथे वर्ष संजीवनी (प्रिया-संयोग) पाकर सभी प्रकार के दुःखों से छुटकारा पा सकेगा। दो नारियां गृहिणी बनेंगी और चार पुत्र होंगे जो पृथ्वी का शासन करेंगे। यह कुमार कुल की शोभा बढ़ावेगा। रूप मे काम, ज्ञान मे गोरख दान से बलि, साहस मे विक्रमादित्य, शस्त्रप्रयोग में अर्जुन, बल में भीम, व्रत में भीष्म, विद्या मे भोज, सौंदर्य मे चंद्रमा और शौर्य मे सूर्य की तरह

प्रदीप्त होगा। पाँच कम सौ वर्ष की आयु होगी। राजा ने पंडितों को दान देकर विदा किया। कुमार सूरसेन के पालन-पोषण के लिये धायें रक्खीं जो प्रेम से दूध पिलाती थीं। कुमार दिन दिन बढ़ने लगे। पाँच बरस के हुए तो बाँस की धनुही और लाख के बान लेकर चिड़ियों को मारकर खलिहान करने लगे। आठ बरस के होने पर विद्यारंभ हुआ। वेद, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, छंद, और संगीत शास्त्र का अध्ययन किया। अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी। नाटक, रसायन, मल्लयुद्ध, मायायुद्ध आदि चौदह विद्याएँ सीख लीं। तेरहवें वर्ष की संधि निकट आई। अंग अंग मे तरुणाई फूट पड़ी। संगीत और काव्य में मन पगा रहने लगा। उसी समय राजा ने मंत्रियों से विचार विमर्श करके यह तय किया कि कुमार से कोई प्रेम की बात न करे, वे कभी किसी तरुणी को देखने न पाएँ।

उधर चंपावती मे राजा विजयपाल का राज्य था, जिसे समुद्र वलय की तरह घेरे हुए था। प्रजा सुखी थी, देश मे सुख शांति थी। गुर्जर देश का वह राजा सब प्रकार से संपन्न था। उसके अंतःपुर मे एक से एक रमणीय त्रियाएँ थीं, कल्पवृक्ष पर आश्रित लताओं की तरह, पर सभी निष्फल थीं। राजा को संतति न थी। एक बार जब राजा दीन भाव से बैठा हुआ था, एक सिद्ध आया। राजा ने अर्घ्य देकर सत्कार किया और मन की अभिलाषा व्यक्त की। सिद्ध ने चंडीपूजा का उपदेश दिया और भविष्यवाणी की कि एक कन्यारत्न का जन्म होगा। समय पाकर जिस प्रकार स्वाति बूँद सीप मे मुक्ता का रूप धारण करती है, उसी प्रकार पटरानी पुष्पावती के गर्भ मे चंडी की कृपा से कन्या का आगमन हुआ। स्वाति नक्षत्र मे वह कन्या जन्मी। ज्योतिषी बुलाए गए। लग्न शोध कर पंडितों ने कहा कि यह कन्या भाग्य-शालिनी रानी होगी, जिसकी कहानी पृथ्वी मे युगो तक चलेगी। दस वर्ष बीत जाने पर, ग्यारवाँ वर्ष अवर्ष के समान होगा, तन मे पीड़ा और मन मे मूढ़ता व्याप्त होगी, जब कन्या चौदहवे मे प्रवेश करेगी, तब रोगनाश होगा और कुटुंब की चिंता बीतेगी। नृप ने कन्या का सभी प्रकार 'लाड़-गोड' किया. कोई कसर न रहने दी, सुत से अधिक सुता को प्यार मिला। जब रंभा ने दसवें वर्ष में प्रवेश किया कि अचानक मनमथ अंग मे प्रविष्ट हो गया। वयसंधि का यह रूप त्रिभुवन को विजय करने के लिये उद्यत होने लगा। अंग मे धूपछाँही सौंदर्य बढ़ने लगा। भौंहें नुकीली हो गईं, आँखें कान तक खिंचने लगीं। कमल पत्र पर बैठे चंचल भौंरे की तरह आँखें उड़ने को पर तोलने

लगीं। कुंडल की चमक कपोलों पर प्रतिबिंबित होने लगी। श्वेत दसनपंक्ति सुधा से सींचे दाडिम की तरह मालूम होती। यौवन जल में झाँकती कमल-कली की तरह फूटने लगा।

एक समय अपने पति की सेज पर सुख से सोई रति ने पूछा—नाथ, समूचा त्रिभुवन तुम्हारे आधीन है, सुर, नर, नाग, मुनि कोई भी तुम्हारे प्रेम पाश से मुक्त नहीं है। कृपा करके यह बताइए कि तीन लोक में कौन तरुण और तरुणी सर्वाधिक सुन्दर है। पत्नी की बात सुनकर मदन ने कहा कि पृथ्वी पर अनेक रत्न हैं, इनमें कौन कम है कौन अधिक यह विवेक नहीं हो सकता; फिर भी चंपावती नरेश विजयपाल की कन्या रंभा और बैरागर के राजा सोमेश्वर का पुत्र सूरसेन निश्चय ही अद्वितीय है। पति की बात सुनकर रति ने हठ किया कि दोनों का संयोग करा दीजिए। मदन सोचने लगे। जहाँ इन दोनों के बीच सैकडों योजन का अन्तर है, संयोग कैसे हो सकेगा। काम ने कहा—'हे सुन्दरी, दर्शन तीन प्रकार के होते है। स्वप्न, चित्र और प्रत्यक्ष। तुम बैरागर जाकर रंभा के वेश में सूरसेन को दर्शन दो, मैं सूरसेन का रूप धर कर रंभा को मोहित करूँगा। रति ने पति की आज्ञा मान कर सूरसेन को रंभा का रूप दिखाया। और उन्हे प्रेम समुद्र में डुबो कर चली आई।

मोहन, सोहन, उन्मादन, उच्चाटन और मारण शर लेकर कामदेव चंपा-वती चले। चाँद, चाँदनी और चंदनचर्चित अंग लेकर अनंग रंभा विजय को निकले। अर्धरात्रि के समय, द्वारपालों को अचेत छोड़, काम अंतःपुर में रंभा की सेज पर जाकर बैठ गए। उच्चाटन बाण के लगते ही नींद उचाट हुई रंभा इस अपरूप रूप को देखती रह गई। वह नाम धाम पूछना चाहती थी कि मनमथ ने मोहन शर का संधान किया। बैन थकित रह गए, लोचन विजड़ित हो गए। अबला को अधीर बनाकर मदन अंतर्धान हो गए। प्रातः काल राजकुमारी की यह दशा देखकर सखियाँ परेशान हो गईं। एक कहती हवा लगी है, एक कहती कि जूड़ी है, कोई कहती भूत का भय है, कोई कहती किसी की नजर लग गई है। एक दौड़ कर उपचार के लिये चली, एक बेहोश होकर गिर गई, एक रंभा रंभा की रट लगाए रही, एक आँसुओं से नहा गई। तभी आकाशवाणी हुई कि सखियो, खेद दूर करो, धीरज रखो, 'सूर विथाहर' बनेंगे। रानी को खबर मिली। गुनी विप्रजन बुलाये गए। उपाय आरंभ हुए। राजा बहुत उदास हो गए। बैदों ने उसीर जल, कुंकुम आदि का

लेप लगवाया, खस का पंखा झलवाया, चन्दन लगवाया, भानुकिरणों के लिये पूरा अवरोध बनवाया; किंतु कुछ लाभ न हुआ। एक मास बीत गया। मदनमुदिता नामक चतुर सखी ने कुछ सोचा, राजकुमारी की दशा देखकर उसने प्रेमपीडा का अनुमान किया। स्वेद, स्तंभ, रोमांच, वेपथु, स्वरभंग, अश्रुपात, विवर्णता, और प्रलय आदि स्मरदशाओं का रंभा के शरीर में संधान पाकर उसने सखियों से अपनी शंका बताई। सभी रंभा के पास गईं। मदनमुदिता ने छलपूर्वक नलदमयंती, कामकंदला, उषा अनिरुद्ध की कथा सुनाई। अंतिम कथा को सुनकर रंभा आकृष्ट हुई। मदनमुदिता ने अपनी कसम दिलाकर चितचोर का नाम पूछा। रंभा ने सूरसेन के रूप का वर्णन किया, स्वप्न की बात बताई, पर नायक का नाम धाम न बता सकी। रंभा का विप्रलंभ अभिलाष, चिंता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता को पार करके निधन की दसवीं अवस्था छूने लगा। लाचार मदनमुदिता रानी के पास गई। सारी बात बताकर उसने यह राय दी कि अनेक चित्रकार देश देशांतर भेजे जायँ, वे सभी रूप गुणवान् राजकुमारों का चित्र बनाकर ले आएँ, इसी बीच मदन ने रंभा को एक बार पुनः दर्शन दिया और यह बताया कि मैं इसी पृथ्वी का निवासी हूँ। मुदिता की राय मान कर रानी ने मंत्री सुमतिसागर को बुलवाया। राजा से छिपाकर अनेक चित्रकार राजकुमारों का चित्र बनाने के लिये भेज दिए गए।

इधर मनभावन प्रिय के चित्र की आशा में रंभा विसूरती रही। उधर विरह में सूरसेन तडप रहे थे। आँखों से नींद चली गई, अंग से कांति। न उन्हें रात दिन का अंतर मालूम होता था, न सूर्य और चंद्रमा का फर्क जान पडता था। जिस दिन से राजकुमार ने स्वप्न में रंभाकृति रति को देखा उसी दिन से विरह वृक्ष अंकुरित होने लगा। नैनों के जल से वह सींचा जाता रहा और दिन प्रतिदिन बढ़ते बढते आज ऐसा हो गया कि उसमे वियोग के फल लग गए। राजकुमार के मनवर्ती मित्र उनकी यह दशा देखकर अतिशय खिन्न हो गए। राय रघुवीर आदि राजपुत्रों ने बहुत प्रकार समझाया। स्वप्न की निस्सारता के उपदेश दिए, किंतु कोई लाभ न हुआ। कुमार के मनोविनोद के लिये गजकौतुक किए गए। लक्ष्यवेध, मृगक्रीड़ा आदि कई तरह के खेल तमाशों मे चित्त को भुलाने का प्रयत्न किया गया, पर सब व्यर्थ। राजा सोमेश्वर ने गुनी पंडितों को बुलाकर वैराग्यजनक उपदेश दिलवाए पर उनसे भी कुछ शांति न मिली। कुँवर के शरीर में विरह उद्वेग नाना प्रकार से

प्रकट होने लगा। शरीर छीजने लगा, मन मलिन रहने लगा। इस प्रकार एक वर्ष और छः महीने बीत गए। तभी देश देशांतर के राजकुमारो का चित्र बनाते हुए बुद्धिविचित्र नामक चित्रकार वैरागर पहुँचा। राजधानी की सुषमा देखकर वह ठगा सा रह गया। नगर प्रवेश करते समय अनेक सगुन हुए। उस दिन वह देवदत्त ब्राह्मण के घर ठहरा। देवदत्त राजभवन के पुजारी थे, उन्होंने राजकुमार की दुःखद अवस्था का वर्णन किया। स्वप्न की बात बताई। बुद्धिविचित्र को रंभा की ऐसी ही अवस्था का स्मरण आया 'सूर हरहिंगो पीर' की भविष्यवाणी याद पड़ी और उसने देवदत्त से राजकुमार को दिखाने का आग्रह किया। एकांत में बुद्धिविचित्र ने राजकुमार से उनके रोग का कारण बताया। राजकुमार चैतन्य होकर बैठ गया। चित्रकार ने रंभा की अनुकृति बनाकर दिखाया। चित्र मे आठ सखियो के साथ रंभा बैठी थी। राजकुमार ने देखते ही पहचान लिया। वह चित्र देखकर मंत्रमुग्ध ताकता रह गया। नैनों से चित्र अलग न कर पाता, कभी हृदय लगा कर शांति पाता। अंत मे उसने अपने मित्र का नाम ग्राम पूछा। चित्रकार ने कहा कि यह राजकुमारी रंभा है जो चंपावतिनरेश विजयपाल की एकमात्र कन्या है। बुद्धिविचित्र ने रंभाजन्म, लग्नफल आदि की बाते बताई। एकादश वर्ष मे यौवनांकुर की स्थिति बताई और उस रात के स्वप्न का हाल कहा जिसके कारण राजकुमारी विरह वेदना से अतिशय संतप्त हुई। मदनमुदिता आदि सखियो की परेशानी का वर्णन किया और वे सब बाते बताई जिनके कारण देशदेशांतर में चित्रकार भेजे गए। बुद्धिविचित्र ने राजकुमार को सौगंध दिलाई कि यह भेद किसी से न कहें क्योंकि यदि राजा विजयपाल को पता चला तो वे कन्या को गंगा मे बहा देंगे। उसने राजकुमार का एक चित्र बनाया और चंपावती लौट जाने की आज्ञा माँगी। राजकुमार बहुत दीन भाव से बुद्धिविचित्र को बिदा करने के लिये तत्पर हुए। बुद्धिविचित्र ने कहा कि राजा विजयपाल शीघ्र ही सुतास्वयंवर का अनुष्ठान करेंगे, तब कुमार को राजमर्यादा के साथ चंपावती आकर प्रिया का वरण करना चाहिए। शीघ्रता मे काम बिगड जाने का अंदेशा है। चलते वक्त कुमार ने बुद्धिविचित्र को रंभा के नाम एक पत्र और अपनी नामांकित मुद्रिका भेंट दी तथा कलाकार को बहुमूल्य उपहार दिए।

बुद्धिविचित्र चंपावती पहुँचा, वहाँ वह मंत्री सुमतिसागर से मिला। दोनों साथ साथ अंतःपुर के बहिः द्वार तक गए। मुदिता को बुलाकर चित्र

पत्र और मुद्रिका राजकुमारी के पास भेज दी गई। रानी ने मुदिता से प्रसन्न-कारक वार्ता सुनकर राजा से सुतास्वयंवर करने के लिए आग्रह किया। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक रानी की बात मान ली और राज्यमत्री को स्वयंवर रचने की आज्ञा दी। राजनिमन्त्रण लेकर अनेक अनुचर देशदेशांतर के नरेशों को सूचना देने के लिये चल पडे। विजयपाल के राजभवन के सामने तम्बू-कनातों की भीड लग गई। अनेक प्रकार की साज सामग्री एकत्र होने लगी।

इधर रंभा की सखियाँ उसे व्यवहारकुशलता का उपदेश देने लगीं। कोई प्रिय को रिझाने और वशीभूत करने का उपाय बताती। कोई शृंगार के नये नये और आकर्षक तरीके। पहले देवता और गुरुजन का पूजन सिखाया। फिर शील की शिक्षा दी। लज्जा, पतिसेवा, आदि के नियम बताए। रूप उदित ने मनोहर रूप की सुरक्षा के उपाय बताए। नारीसुलभ गुणों की व्याख्या की गई। रंभा ने संस्कृत और प्राकृत काव्य की शिक्षा ली। रूपक और छंदभेद सीखे। संगीत का ज्ञान पाया। सौगंधिक, तांबूल, पुष्पहार आदि बनाने की कलायें सीखीं। वशीकरन का मूल गुर नम्र वचन है, इसलिये मधुर बोलने की राय दी गई। कोक कला का भी पूरा उपदेश मिला। मदन के प्रमुख स्थान और उसको उद्दीप्त करने के ढंग बताए गए। चौरासी मुद्रायें बताई गई। प्रिय के अप्रिय वचनों को भी सह जाने की सम्मति मिली। प्रेम करके उराहना देना उचित नहीं है इसलिये यदि प्रिय सिर पर 'तरवार' दे तो उसके पद पर 'सिर वार' देने की शिक्षा मिली।

इधर सूरसेन ने मत्री से विजयपाल द्वारा आयोजित स्वयंवर की सूचना देते हुए वहाँ जाने की इच्छा व्यक्त की। मत्री गुनगंभीर राजकुँवर के संकेत पर राजा सोमेश्वर के पास गए और उन्हे विविध प्रकार समझा कर राजकुमार को चंपावती भेजने के लिये तैयार कर लिया। वैशाष महीने के कृष्णपक्ष की पंचमी तदनुसार पुष्य नक्षत्र गुरुवार के दिन विजयप्रयाण का निश्चय हुआ। पुत्र को विदा करते समय रानी कमलावती का कंठ भर आया।

सूरसेन की सेना चली। बाजो की आवाजों से दिगंत भर उठा। बाँसुरी, शंख, शहनाई की आवाज गूँजने लगी। झूमते हुए मदमंत्त हाथी चले। जिनके सिंदूरमंडित कुंभ पहाड के समान लगते। काले काले हाथियों के दाँत बादल में उडती बग-पाँति की तरह प्रतीत होते। गंडस्थल से नीर झरता जिस पर भौंरे गुंजार कर रहे थे। दूसरी ओर ताजी जाति के, तीव्र गतिवाले

तुरंगों पर पलानें ( काठी ) कसी गईं। अरबी, तुर्की, आदि तरह तरह के लाल, श्वेत, दुरंग, सुरंग घोडे हिरनोंकी तरह चौकडी भरते हुए चले।

सूरसेन अपनी सेना के साथ विस्तृत पथ पार करते हुए मानसरोवर के तट पर पहुँचे। जिसके किनारे वहुत सुंदर और ताल-तमाल-साल के पेड़ों से आच्छादित थे। कमल फूले थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे। दूसरे दिन एकादशी थी, इसलिये कुँवर ने वहाँ विश्राम-स्नान करने का निश्चय किया। उसी दिन अर्द्धरात्रि के बाद अप्सरायें वहाँ जल-क्रीडा करने के लिये आईं। नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित वे नारियाँ ऐसी लग रही थीं मानो विद्युत दमक उठी हो। चाँदनी रात थी। नील गगन, नील जल और नील कानन की नीली छाया। आकाश में उजले तारे थे और कानन मे मालती, बेला और कुद के फूल। ये अप्सरायें रंभा की सलाह मानकर क्रीडाकमलो से खिलवाड करती हुई, मंदिर की ओर बढ़ी, जहाँ उन्होने आश्चर्य के साथ देखा कि एक अनुपम सुदर युवक बहुमूल्य पलंग पर सोया हुआ है। सूरसेन का आकर्षक रूप देख कर अप्सराएँ ठगी सी रह गईं, तभी उन्हे अपनी अभिशप्ता सखी कल्पलता भी याद पडी जो इंद्र के शाप से स्वर्गच्युत होकर पृथ्वी पर ब्रह्मकुंड नामक स्थान पर निवास करती थी। अप्सराओं ने सोचा कि यदि इस प्रकार के अनंगमोहन रूप वाले युवक से कल्पलता का विवाह हो जाय, तो निश्चय ही अभिशाप वरदान मे बदल जाएगा। इसी उद्देश्य मे प्रेरित होकर अप्सराओं ने पलंग उठाया और उसे आकाश मार्ग से ब्रह्मकुड की ओर ले चलीं। अप्सराओं द्वारा परिगृहीत वह पलंग आकाश मे यो घूम रहा था, जैसे इलात चक्र डोल रहा हो। कल्पलता के पास पहुँचकर अप्सराओं ने उसे जगाया और कुशल समाचार के बाद उसे उधर आकृष्ट किया जहाँ पलंग पर एक मदनमूर्ति लेटी थी। अप्सराओं ने सूरसेन और कल्पलता का गंधर्व-रीति से विवाह कराना निश्चित किया और तदनुरूप साज-सामान एकत्र करने लगीं। उन्होंने हाथ मे कंगन बाँधा और प्रेम की गाँठ कस दी। रात्रि का अंत समीप आया जान सुरसुंदरियाँ नवदंपति को प्रेमक्रीडा के निमित्त एकांत मे छोड कर गगन से उड चलीं। कल्पलता की सखी ने उसका सभी प्रकार शृंगार किया। षोडश शृंगार और द्वादश आभरण मे अलंकृत होकर वह प्रियमिलन को चली। प्रिय को जगाकर उसकी आरती उतारी, सखियों ने मंगल गान गाया। सूरसेन कल्पलता के रूप को देख कर आश्चर्य में पड गए। उन्हें लगा कि वह निश्चित ही रंभा है। जो मनुष्य के मन में बसता है,

वही नेत्रों से दिखाई पड़ता है। कामोद्दीप्त तरुण-युगल ने एक दूसरे को आलिंगन मे ले लिया। दोनों की सुरति केलि के वर्णन में कवि पुहकर ने अपनी काम कला विदग्धता का संपूर्ण परिचय उपस्थित कर दिया। स्मर क्षेत्र के उस अद्भुत युद्ध का वर्णन कवि ने पूरी सफाई के साथ प्रस्तुत किया है। सुरति के बीच में कल्पलता की 'चतुराई' से कुँवर के मन में शंका उपजी कि यह रंभा नहीं। इसी लिये कुमार ने उसका परिचय पूछा। कल्पलता ने बताया कि वह इंद्रसभा की एक प्रसिद्ध अप्सरा है। एक बार नृत्य के समय राजा नल को देखकर वह विमोहित हो गई, नृत्य मे बाधा पड़ी। लय तान भूल गई। इंद्र ने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया पृथ्वीवास का दंड मिला। अश्रुजल से वस्त्र भीग गए। इंद्र का हृदय द्रवित हुआ और उन्होंने कहा—मनुष्य तेरा पति होगा, जो सुप्रसिद्ध नरेश होगा। मेरी कृपा से तुझे कभी सुख और भोग मे कमी न होगी।' मानसरोवर के किनारे आपको देखकर अप्सरा सखियों को मेरी याद आई, और वे आपको यहाँ उठा लाई। कल्पलता के पूछने पर कुमार ने अपना परिचय दिया। बाद में कुमार के आग्रह पर कल्पलता ने अपनी अप्सरा-सखियों से स्वर्गीय नृत्य दिखवाया। एक दिन सोये हुए कुमार के गले मे रत्नजटित 'उरवसी' में रंभा का चित्र देख कर कल्पलता ने इसका भेद पूछा। कुमार ने बात छिपा ली। कहा कि यह चंपावती राजा की कन्या है, जिसका स्वयंवर होनेवाला है। एक चित्रकार ने यह चित्र दिया था। कुछ दिनों के बाद कुमार रंभा की याद से संतप्त होकर एक साधु-मंडली के पास गया जहाँ उसने चंपावती का मार्ग पूछा। पता चला कि चंपावती बहुत दूर है और रास्ता बड़ा विकट है। कुमार ने योगी का वेश धारण किया, नाथ-सिद्ध का रूप बनाकर गंतव्य की ओर चल पड़ा। नदी, पहाड़, जंगल को पार करता चलता गया। उसकी वीना की आवाज सुनकर हिंसक पशु मुग्ध हो जाते। हिरन और सर्प साथ साथ चलने लगते। सूरसेन गर्मी-शीत की बिना परवाह किए शंकर का ध्यान करते हुए चंपावती को चलते गए।

इधर प्रातःकाल होने पर जब बैरागर के मंत्री गुनगंभीर ने शैया के साथ कुमार को लापता देखा तो बड़ी चिंता मे पड़ गए। सारी सेना मे कुहराम मच गया। सभी बिलख बिलख कर रोने लगे। मंत्री ने सोचा कि हो न हो कोई अप्सरा कुमार को उड़ा ले गई। उन्हे चित्ररेखा की याद आई जो अनिरुद्ध को उठा लाई थी। मधु और मालती की कथा भी याद पड़ी और

यही सोच कर उन्होंने सेना को चंपावती की ओर प्रस्थान करने की आज्ञा दी ।

बहुत दिनों तक मार्ग की पीडा झेलते हुए कुमार सूरसेन एक अद्भुत अनूपम बाग में पहुँचे। वहाँ चतुर माली थे और पौधों को सींचने के लिये रहँट चल रहे थे। नाना प्रकार के फल-फूलवाले वृक्ष थे, सामने स्वच्छ जल का रमणीय सरोवर था, जिसके किनारे पत्थरों के बने थे। वहाँ नाना प्रकार की हाव-भाववाली सुंदरियाँ जल भर रही थीं। सूरसेन ने वहीं बैठ कर बीना बजाना आरंभ किया जिसे सुनकर मृग-मीन अधीन हो गए। कुँवर का रूप देख कर तरुणियाँ वैचित्य से भर उठीं। सूरसेन ने चपावती नगरी में प्रवेश किया, उनके आने की खबर जल भरनेवालियों के द्वारा पहले ही फैल चुकी थी। अब उनकी मादक बीना की ध्वनि ने तो सब का चित्त ही चुरा लिया। पुरवासियो से विश्राम योग्य स्थान का पता पूछते हुए कुमार शिव-मंदिर पहुँचे, वहाँ उन्होंने शिव की स्तुति की।

इधर लग्न का समय निकट आने लगा, देश देश के महीप कुमारी के स्वयंवर के निमित्त आने लगे। सूरसेन का कोई संदेश न मिला। सूरसेन की वीणा के स्वर नगर पर निरंतर इंद्रजाल डाल रहे थे, कोई उस प्रभाव से मुक्त न रह सका। रंभा की सखी गुनमंजरी इस अद्भुत योगी का रहस्य जानने आई। सूरसेन ने उसे देखकर और विचक्षण समझ कर एक गाथा पढी जिसमें विरह की दु:सह अवस्था का वर्णन था। गुनमंजरी ने भेद समझा और राजकुमारी की लज्जा तथा मर्यादा की सीमाओं का वर्णन किया। गुनमंजरी दौडी दौडी अंतःपुर गई जहाँ उसने सारा भेद मदनमुदिता को बताया। मदनमुदिता ने योगी का रंग ढंग सुन कर सोचा कि हो न हो यह छद्म वेश मे कुमार सूरसेन ही है। रंभा की आज्ञा पाकर मदनमुदिता सूरसून से मिलने चली। रभा की अष्टसखियां एक साथ शिव-मंदिर पहुँची। उसने कुमार से रंभा के प्रणय की बात कही; पर कोई भी योगी-नृपति नहीं चाहता, ऐसी शंका भी व्यक्त की। कुमार ने बुद्धिविचित्र का पता पूछा और मुदिता से राजकुमारी से मिलने की आकांक्षा व्यक्त की। मुदिता ने रंभा से कुमार के आने का समाचार दिया और बताया कि सेना पीछे आ रही है, चिंता की कोई बात नहीं है. साज सामान में कोई कमी नहीं है। रानी पुष्पावती की आज्ञा से रंभा विवाह के पहले शिवकृपा-याचना के लिये मंदिर पहुँची। चंपावती की सेना कुमारी के अंगरक्षक के रूप में मंदिर में

चारों तरफ खड़ी थी। प्रथम मिलन के अवसर पर दोनों अवाक् एक दूसरे को देखते रह गए। मालती के कुंज की आड़ में खड़ी वह बाला नैन से देखने पर नैन में समाती प्रतीत होती। रंभा लौटी तो कुमार बेहोश हो गए। मदनमुदिता ने सावधानी से सब काम करने की सलाह दी। कुमार उसी समय वैरागर से आती हुई अपनी सेना और मित्रों आदि से मिले। मंत्री ने कुमार को अच्छी प्रकार केसर आदि के उबटन से मलवाया और स्नान कराया। वैरागर की सेना चंपावती नगर की ओर चली और सरोवर के किनारे विश्राम किया। चंपावती नरेश ने मंत्री को बुलाकर सूरसेन और उनकी सेना के लिये सब प्रकार के स्वागत के आयोजन की आज्ञा दी।

चंपावती नरेश ने शुभ दिन पर मंडप रचा कर कन्या के स्वयंवर के लिये आगत नरेशों का बुलावा दिया। रंभा की सखियों ने उसका सब प्रकार से मंडन किया। रंभा की नखशिख सुंदरता देखते ही बनती थी। शरीर की चंपक कांति लाल चूनर में चौगुनी बढ़ रही थी। ऐसी अनुपम अप्सरा रूपमोहिनी तरुणी निश्चय ही बड़ी तपश्चर्या के बाद उपलब्ध होती है। उधर मंडप में अनेक राजा निरंतर आते जा रहे थे। उन अनेक नरेशों के बीच वैरागर के कुमार सूरसेन का तेज सूर्य के समान उद्दीप्त हो रहा था। कुमारी ने मंडप में प्रवेश किया। अनेक नरेशों के सामने से होती हुई वह सूरसेन के सामने पहुँची और गले में जयमाल डाल कर सूरसेन के पैरों में झुक गई। सूरसेन और रंभा का विवाह सभी रीतियों के साथ आनंद और उल्लास के बीच सम्पन्न हुआ।

चंपावती नरेश ने कन्या को पराई होते देख सूरसेन से याचना की कि वे कृपापूर्वक तब तक चंपावती में रहें जब तक रंभा पुत्र का मुँह न देख ले। विजयपाल ने उस भावी पुत्र को संपूर्ण राज्य सकल्प कर दिया। मंत्री ने राजा की आज्ञा मानकर कुमार से चंपावती रहने का आग्रह किया। कुमार रात्रि में शयन के लिए चित्रशाला में गए जो अनेक प्रकार के कलापूर्ण चित्रों से भरी हुई थी। प्रथम समागम के समय आशंकिता रंभा सखियों के द्वारा छलपूर्वक चित्रशाला में कुमार के पास भेज दी गई। जीवन की सारी कामनाएँ पूर्ण हुईं और कष्टकारक विरह की दुःसह पीड़ा मिलन के चरणों में तिरोहित हो गई। बाद में अपने मित्रों से कुमार ने कल्पलता से अपने विवाह की कहानी सुनाई; पर रंभा से इसे छिपा रखा।

प्रिय वियोग में कल्पलता की रातें दूभर हो गईं। एक के बाद एक महीने बीतने लगे। बादल आए, घिरे और बरसे। पृथ्वी चारों तरफ हरियाली

से ढँक गई। संयोगिनी नारियों ने अपने अपने प्रियजनों के साथ हिंडोले सजाए, पर कल्पलता विरह के झूले में झूलती रही। भादों की काली रातें बीती, पर पिय नहीं आया। आश्विन में पंथ बंध खुल गए। सुहानी चाँदनी छाने लगी, कार्तिक में दीपमाला सजी, पर कल्पलता का घर अँधियारे में डूबा रहा। अंत में लाचार होकर उसने विद्यापति नामक शुक को अपना विरह बताकर चंपावती भेजा। ऐसे विलक्षण शुक को बाग में देखकर रंभा ने पकड़ लिया और बड़े प्यार से सोने के पिंजरे में दूध भात खिलाकर रक्खा। कीर ने नायक के 'विसासी' होने का वर्णन करते हुए एक गाथा पढ़ी। रंभा को कुछ शक हुआ, और उसने पूरा विश्वास दिलाकर पति से इसका रहस्य पूछा। कल्पलता की कहानी सुनकर रंभा का जी भर आया और उसने कुमार से आग्रह किया कि वह कल्पलता को शीघ्र ले आए। शिकार खेलने का बहाना करके कुमार ने मंत्री द्वारा विजयपाल से आज्ञा माँगी और सेना लेकर ब्रह्मकुंड को चल पड़ा। साथ में परिचारिकाएँ और रंभा भी थी। नाना प्रकार की वनक्रीडा करते हुए कुमार माया नगर की सीमा पर पहुँचे, जहाँ मदन का राज्य था। उसने आगे जाने का मार्ग देने से इन्कार किया। जिससे दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध छिड़ गया। अविजेय राजा मदन कुमार सूरसेन के हाथों मारा गया और सूरसेन ने युद्ध में कटे अनेक मुंडों का माल्यार्पण करके शिव को प्रसन्न किया। कल्पलता और रंभा की भेंट यों हुई जैसे दो बहनें परस्पर मिली। कुमार अपनी दोनों रानियों के साथ चंपावती लौट आया। समय पाकर रंभा के गर्भ से कुमार चंद्रसेन ने जन्म लिया, जिसकी खुशी में याचक अयाचक बने। कल्पलता भी ने पुष्कल दान दिए।

बेटे की जुदाई में राजा सोमेश्वर और रानी कमलावती का बुरा हाल था। वे बार बार कलियुग को कोसते जिसमें बेटे जन्मदाता माँ बाप को भूलकर पत्नी से रम रहते हैं। उन्होंने पुरोहितपुत्र पुरुषोत्तम को संदेश लेकर चम्पा-वती भेजा, ताकि वे माँ बाप की अवस्था बताकर कुमार को शीघ्र वैरागर वापिस ले आएँ। माँ बाप की पुकार पर कुमार ने राजा विजयपाल के बहुत आग्रह पर भी एक दिन के लिये चंपावती से और रुकना स्वीकार न किया। रंभा और कुमार की विदाई के समय सारा राज परिवार बिलख बिलख कर रो पड़ा। रंभा नारियों से मिली, रोई और पतिगृह के लिये चल पड़ी। शिविका में रानियाँ चलीं, कुछ चुने हुए जन साथ हुए, बाकी सेना और दहेज सामग्री पीछे आने के लिये छोड़

दी गई। सूरसेन वैरागर पहुँचे। रानी कमलावती का आँचल स्नेह दूध से भींग गया। सूरसेन ने अपने और रानियों के लिये एक अद्भुत महल का निर्माण कराया जिसमें रुक्म के कोट थे, सोने की दीवालें। स्फटिक का सरोवर, मूंगे के किनारे। मर्कत की सीढ़ियाँ। रानियों के मध्य सुशोभित कुमार महल में आए तो चंद्रमा सूर्य के युगपत् उदय से कमल कुमुद वन मे विभ्रम छा गया। कमलावती रानी का भाग जाग गया था जिसके घर ऐसी बहुयें आईं जिन्हे देखने के लिए नगर की ग्यारह सौ बावन प्रकार की नायिकाएँ उमड पड़ी। सूरसेन ने पिता की आज्ञा से पश्चिम दिशा को भी जीत लिया इस प्रकार वे चक्रवर्ती नरेश हो गए। कुमार के चार लडके थे। जब सूरसेन ने तीस वर्ष तक युवराज पद का भोग कर लिया तो राजा सोमेश्वर की मृत्यु हो गई। राजा की मृत्यु से कुमार बहुत दुःखी हुए; परन्तु किसी प्रकार धैर्य धारण किया। राजकार्य सँभाला। उनके शासनकाल मे प्रजा सुखी थी, कहीं भी रोग दुःख न था। रंभा ने चंद्रसेन को बुलाया, जिसे बचपन ही में वह चंपावती छोड आई थी। सूरसेन के राज्य मे कला उन्नति के शिखर पर थी। एक बार एक नटमंडल आया। जिसका खेल देखने के लिए प्रजा उमड पडी। बाइस खंड महल मे यह खेल रचाया गया। ऊपरी खंड मे भीड बढने लगी। बाद मे ऊपर के लोग डर कर नीचे आये और सभी खंडो में एक अद्भुत गणित से बाइस बाइस पंक्तियों मे समान संख्या के लोग खड़े हो गए। एक बार दूसरे गुनी नट ने सृष्टि की उत्पत्ति का सारा विधान नाटक मे दर्शाया जिसे देखकर और गुरु चिंतामणि का उपदेश सुनकर राजा सूरसेन को वैराग्य हो आया और उन्होंने सारा राज्य पुत्रों में बाँट कर चिंतामणि को संग ले रानियों के साथ काशीवास का निश्चय किया।

———

# हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यपरंपरा और रसरतन

हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यपरंपरा न सिर्फ नाना वैविध्यपूर्ण सामग्री से परिपुष्ट है बल्कि उसके भीतर तरह तरह के देशी-विदेशी प्रभावों की अद्भुत सम्मिश्रित रंगीनी भी है। इसी लिये हिंदी प्रेमाख्यानक परंपरा के अध्येता के लिये इसकी पृष्ठभूमि में वर्तमान और इसके स्रवथ रूप में स्वीकृत संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश परंपराओं तथा फारसी प्रेमाख्यानकों का अध्ययन भी अनिवार्य हो जाता है। इस प्रेम या प्रणय के मूल में काम अथवा इच्छा शक्ति का विलास है। यही कामशक्ति महद् उद्देश्यों से परिचालित होकर जीव के भावजगत् में पूर्णकाम ईश्वरी सत्ता का आविर्भाव कराती है और यही गलत या निम्न उद्देश्यों से प्रेरित होकर मिथ्या काम या बौद्ध परिभाषा में 'मिच्छाचार' का रूप धारण करती है। भारतीय ऋषि इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे इसी कारण उन्होंने कामशक्ति को हेय या आवर्ज्य मान कर कभी भी उसकी कदर्थना नहीं की। उन्होंने अमोघ सृष्टिकारक शक्ति के रूप में इसकी वंदना की—

कामस्तग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
(ऋ० १०।१२९।४)

कामशक्ति को हेय रूप में, बाद में, इसके गलत अर्थ की व्याप्ति और मिच्छाचार से पीडित समाज के प्रति शुभेच्छा की भावना से प्रेरित होकर, चित्रित किया गया। आवर्जनामूलक उपदेशों ने हमारे जीवन को कितना पंगु और स्थिर अथवा निष्प्राण कर दिया, यह एक दूसरा प्रश्न है। गीता ने 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ' (७।११) कह कर एक बार पुनः समाज में प्रणय के सही रूप और उसकी अदम्य जीवनी शक्ति को प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया। रसरतनकार काम की शक्ति और उसके अनंत प्रभाव से पूर्ण परिचित है। तुलसी ने योगअग्नि से ज्ञानदीप प्रदीप्त कर मनादिक विकारों के विनाश का उपदेश दिया। उत्तरकांड में उन्होंने सात्विक श्रद्धा धेनु के दूध से विराग के नवनीत को प्राप्त करने की पद्धति बताई है और उसे पूरी तरह बाती आदि से सजा कर जलाने का विधान किया है।

एहि विधि लेसै दीप, तेज रासि विज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब॥

कवि पुहुकर ने भी एक दीप जलाया है···उनका भी एक उद्देश्य रहा है। उनके सामने भी मनुष्य के जीवन का और उसके उन्नयन का प्रश्न रहा है। किंतु वे आवर्जना की पद्धति के द्वारा मनुष्य जीवन को मंगलमय बनाने के पक्ष में न थे। इसी लिये उसके जीवन में एक नई ज्योति देने के लिये उन्होंने 'मदनदीप' जलाने का उपक्रम किया। उन्होंने लिखा—

बानी बाति सनेह दै, गुन गाहकन समीप।
मरन अग्नि उद्दीप कर, किय कवि पौहकर दीप॥
( आदि खंड १६ )

वे जानते थे कि जो परम सत्ता ब्रह्मा के रूप में सृष्टि का सृजन करती है, विष्णु के रूप में पालन करती है, रुद्र के रूप में विनाश करती है वही काम रूप से क्रीडा करती है इसी कामरूप महाक्रीडा का वर्णन कवि का लक्ष्य रहा है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये अनेक प्रसिद्ध कथाओं में से एक को कवि ने अपनाकर अपने उद्देश्य की पूर्णता का प्रयत्न किया—

ब्रह्म रूप सिरजै जगत, विष्नु रूप प्रतिपाल।
काम रूप क्रीड़ा करी, रुद्र रूप महाकाल॥
काम रूप क्रीडा करै, ते कलि कथा अनेक।
मन भोरौ, थोरी सुमति, पौहकर बरनत एक॥
( आ० ख० १६-१७ )

इस दृष्टि से रसरतनकार बाणभट्ट के दृष्टिकोण से अधिक प्रभावित प्रतीत होता है। बाणभट्ट ने कादंबरी में काम की अदम्य शक्ति को स्वीकार कर उसे तपःपूत बनाने का उपदेश दिया। कादंबरी के एक सांस्कृतिक अध्ययन में इसी बात की ओर लक्ष्य करते हुए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—'मन की अप्रतिहत शक्ति काम है। सृष्टि की कामना ही सिसृक्षा है। वही मन का रेत या वीर्य है। काम विश्व का मूल है। कामतत्त्व ही कादंबरी है। मन सोम है। काम सुरा है। कादंबरी काममयी सुरा है। कामशक्ति के रूप में मन की सबसे दुर्धर्ष अजय्य शक्ति है। चंद्रापीड़ सोमतत्त्व है। मदिरा की पुत्र कादंबरी सुरा है। पारमेष्ठ्य शक्ति समुद्र के मंथन से सोम और सुरा

दोनों का जन्म होता है। सुरा वारुणी है। सोम देवी है। सुरा ही तपाने से सोम में परिणत होती है। सुरा मादक रूप है। सोम उसी का स्वच्छ प्रशांत रूप है. सोम का सुराभाव केवल तप द्वारा ही प्रशांत बनता है।[1]

भारतीय अर्थात् हिंदू प्रेमाख्यानकों के इस सही रूप को समझने का प्रयत्न नहीं किया गया। सूफियों के रहस्यवाद ने हमें इतना आकृष्ट किया कि हमने अपने प्रेमकाव्यों को सस्ते स्तर की प्रेमकथाएँ मान लीं और यह एक मिथ्या धारणा बना ली कि प्रेम के भीतर से ईश्वरीय सत्ता के संपर्क का रास्ता विदेशी प्रभाव की देन है। यह सही है कि भारतीय प्रेमाख्यानकों में रहस्यात्मक तत्त्व ( मिस्टिसिज्म ) की प्रधानता नहीं दिखाई पड़ती; किंतु प्रेम का जो रूप सूफी प्रेमाख्यानकों में प्रेम के उन्नयनशील रहस्यवादी पद्धति के बीच से प्रस्फुटित होता था, वह हिंदू काव्यों में प्रेम की नैसर्गिक महत्ता और उसके व्यापक प्रभाव को सही ढंग से स्वीकार करने के कारण अपने आप आविर्भूत हो जाता था। कालिदास ने प्रेम के विषय में जब यह कहा था कि शरीर के प्रति स्थूल आसक्ति प्रेम का विषय नहीं है, बल्कि आत्मिक सौभाग्य प्रेम का उद्देश्य है, तो उन्होंने भारतीय परंपरा में स्वीकृत प्रेम की महत् शक्ति की घोषणा की थी—

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥
( कुमार० ५।१ )

वस्तुतः भारतीय प्रेमाख्यान सर्वदातपःपूत काम अथवा प्रेम की अभ्यर्थना करते हैं। इन काव्यों में प्रेमी समूची स्थूल तथा मानसिक बाधाएँ पार करता हुआ जीवन में अद्वितीय एकाग्रता और उत्सर्ग का परिचय देता हुआ अपने प्रणय की अग्निपरीक्षा में सफल होने का प्रयत्न करता है। यह प्रणय आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'अपना मधुर और अनुरंजनकारी प्रकाश जीवनयात्रा के नाना पथों पर फेंकता है। प्रेमी जगत् के बीच अपने अस्तित्व की रमणीयता का अनुभव आप भी करता है और अपने प्रिय को भी कराना चाहता है। प्रेम के दिव्य प्रभाव से उसे अपने आसपास चारों ओर सौंदर्य की छाया

---

१. कादंबरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, चौखम्भा विद्याभवन, संवत् २०१८, पृष्ठ ३४५–४६।

फैली हुई दिखाई पडती है, जिसके बीच वह बडे उत्साह और प्रफुल्लता के साथ अपना कर्म सौंदर्य प्रदर्शित करता है। यह प्रवृत्ति इस बात का पूरा संकेत करती है कि मनुष्य की अंतःप्रकृति मे जाकर प्रेम का जो विकास हुआ है वह सृष्टि के बीच सौंदर्य विधान की प्रेरणा करनेवाली एक दिव्य शक्ति के रूप में'। ( चिंतामणि, प्रथम भाग, ८९ )

प्रेम के इसी रूप को लेकर हिंदू प्रेमाख्यानक कवि अपने काव्य का सृजन करता है। किंतु सर्वत्र इसी आदर्श का पालन किया गया है, ऐसा कहना ठीक न होगा।

भारतीय प्रेमाख्यानक की परंपरा बड़ी पुरानी है। संभवतः उर्वशी और पुरूरवा की कहानी विश्व का प्राचीनतम प्रेमाख्यान है जिसका संकेत ऋग्वेद में प्राप्त होता है। पेजर ने इसे संसार की प्राचीनतम कथा माना है और उनका कहना है कि हंसपरी ( स्वान फेयरी टेल्स ) कथाएँ, जो संसार के प्रायः सभी भागों मे किसी न किसी रूप मे पाई जाती है, इसी से प्रभावित अथवा विकसित हुई हैं।[1] इस कथा को उपजीव्य बनाकर कई काव्य नाटक आदि लिखे गए। कालिदास का विक्रमोर्वशीय इसी कथा का साहित्यिक क्लासीकी रूपांतर है। नल दमयंती का आख्यान भी बडा प्रसिद्ध रहा है। महाभारत के नलोपाख्यान से विकसित होकर संस्कृत मे नैषधचरित मे तथा बाद मे अनेक अपभ्रंश और हिंदी कथा-काव्यों मे इसके रूप का निखार विस्तार होता रहा[2]। उषा अनिरुद्ध की प्रेम कथा भी कम आकर्षक नहीं थी। हरिवंश पुराण मे इसका सविस्तर वर्णन है। वैसे किसी न किसी रूप मे यह एकाधिक पुराणों मे वर्णित है। इस कथा का भी परवर्ती काल मे बडा व्यापक प्रचार था।[3] कवि पुहकर ने इन कथाओ को सुना था, इनके बारे मे लिखे हुए आख्यानकों को पढ़ा भी था। उन्होंने इन कथाओं को इस प्रकार स्मरण किया है:—

दमयंती नल प्रीति कहानी, भाषति सरस मधुर मुख बानी।
बहुत अनंद प्रेम गुन गावै, एक एक अच्छर समुझावै॥

---

१. कथा सरित्सागर की भूमिका ( दि ओशेन ऑव स्टोरीज़ सन् १९२४, पृ० २९९। )

२. नलदमन ( सूरदास ) नल चरित्र ( मुकुंद सिंह ) नलदमयंती चरित्र ( सेवाराम ) आदि।

३. उषा कथा (रामदास), उषा चरित ( मुरलीदास )।

माधव काम की कीर्ति बखानी, जिहि सुनि मन विसरावै रानी ।
उषा कथा जबै अनुसारी, तब चितई भरि नैन कुमारी ॥
( स्वप्न० ११८-११६ )

माधवानल कामकंदला की कथा पर आधारित अनेक प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गए । इसमे सब से प्राचीन गणपति का कामकंदला है । जो संवत् १५८४ मे लिखा गया । १६०० के आसपास किसी अज्ञात कवि ने माधवानल कामकंदला नाम से एक काव्य लिखा जो लखनऊ के याज्ञिक संग्रह मे सुरक्षित है । कुशललाभ ने इसी नाम से एक काव्य १६१२ संवत् मे लिखा । राजकवि केसि का माधवानल नाटक सं० १७१७ में लिखा गया जिसकी पांडुलिपि साहित्य संमेलन प्रयाग के संग्रहालय में है । दामोदर की लिखी माधवानल कथा १७३७ मे रचित हुई जिसे गणपति, कुशललाभ की कंदलाओं के साथ गायकवाड ओरियंटल सीरीज में प्रकाशित किया गया है, इसी ग्रंथ में आनंदधर का लिखा हुआ माधवानल आख्यानम् भी प्रकाशित है । कवि आलम की माधवानल कामकंदला संवत् १६४० में लिखी गई और बोधा कवि ने विरह वारीस संवत् १८०६-१५ मे इसी कथा को अपना आधार बनाया । इस सूची से स्पष्ट मालूम हो जायगा कि कामकंदला की कथा मध्ययुग की कितनी लोकप्रिय और आकर्षक वस्तु रही है । इस कथा का आरंभ कब हुआ, इसके विकास का ऐतिहासिक क्रम क्या है, भिन्न भिन्न समय मे लिखी गई रचनाओ मे यह कहानी सामाजिक परिवेश और जनरुचि के कारण किस प्रकार बदलती गई ? ये प्रश्न अद्यावधि अनुत्तरित पड़े हैं । माधवानल कथा के विषय मे जो कुछ भी गवेषणा हुई है वह माधवानल कामकन्दला ( गायकवाड़ सीरीज XCVIII ) की भूमिका और एकाध छिटफुट निबंधों तक ही सीमित है । श्री कृष्ण सेवक कटिनी ने बड़ौदा के प्राच्य विद्या संमेलन, १६३३ मे एक निबध पढ़ा था जिसमे उन्होंने माधव और कंदला कथा का ऐतिहासिक आधार ढूँढ़ने का प्रयत्न किया था । उनके मत से १२वीं शताब्दी के आरंभ मे मध्यप्रदेश के बिलहरी ( पूर्वनाम पुष्पावती ) मे माधव का जन्म हुआ । पिता का नाम शंकरदास था । कंदला का जन्म डोगरगढ़ ( खैरागढ़ रियासत ) के समीप कामसेन पुरी ( पूर्वनाम कामावती ) में हुआ ।[1] बोधा ने इस कथा के स्रोत के विषय मे लिखा है—

---

१. प्रोसीडिंग्स एंड ट्रैन्जैक्शंस आव द सेवेंथ आल इंडिया ओरियंटल कान्फरेंस बड़ौदा, दिसबर १६३३ ।

सुन सुभान अब कथा सुहाई। कालिदास बहु रुचि सहँ गाई ॥'
सिंहासन बत्तीसी माहीं। पुरिन कही भोज नृप पाहीं ॥
पिंगल कहँ बैताल सुनाई। बोधा खेत सिंह सहँ गाई ॥
रुचिर कथा सुनु हे दिल साहिर। इश्क हकीकी है जग जाहिर ॥

सिंहासन बत्तीसी के सभी प्रकार के पाठों का जब तक वैज्ञानिक रीति से अनुसंधान नहीं किया जाता, तब तक यह स्रोत भी आनुमानिक ही रहेगा।' वैसे ऊपर के पद से यह स्पष्ट है कि बोधा कवि ने 'सिंहासन बत्तीसी माँहीं' यह कथा देखी थी।

जो भी हो कामकदला पर आधारित आख्यानक मध्ययुगीन संस्कृति के बदलते हुए रूप को स्पष्ट करने में बहुत सहायक हैं। इनकी शैली, भाषा, वर्णनपद्धति, कविसमय, रूढ़ियाँ, कथानक अभिप्राय, सामाजिक परिस्थितियाँ और सांस्कृतिक परिवेश सभी हमारे सामने १२ वीं शताब्दी से १८ वीं तक के भारतीय जीवन में शनैः शनैः उपस्थित होते हुए परिवर्तनों के अभिसाक्ष्य हैं। कवि पुहुकर ने इस कथा पर आधारित आख्यानकों को देखा था, क्योंकि बहुत सी रूढ़ियाँ जो गणपति और कुशललाभ के आख्यानकों में वर्तमान हैं, पुहुकर ने भी स्वीकार कर ली हैं। यह सही है कि इन सब का स्रोत इनसे भी पहले वर्तमान भारतीय प्रेमाख्यानकों की सार्वजनिक परंपरा थी, जहाँ से इन सबने प्रेरणा और सामग्री ली, किंतु कुछ विशेष परिस्थितियों के सृजन में पुहुकर ने कामकदला कथा को अपना उपजीव्य अवश्य बनाया था।

पुहुकर ने तीन और कथाओं का संदर्भ दिया है। मधुमालती, अग्निमित्र यौरावत ( इरावती ) तथा पिंगला और भरथरी की कथा—

चित्ररेख अनुरुद्ध कौं लाई, जब ऊषा मनमथ्थ सताई।
मधुमालति सौं कुँवर मिलावा, सो कविता गुन गाननि गावा ॥
( चपावती खड ७८ )

चित्रे जहाँ सर्व सर्वानी, परम प्रीति नहिं जात बखानी।
रति रतिनाथ चित्रु पुनि कीन्हा, उषा हित अनरुध मनु लीन्हा ॥
चित्रित सकल प्रेम रस प्रीती, माधौ कामकंदला रीती।
अग्निमित्र यौरावत धाता, भरतरि प्रेम पिंगला राता ॥
( स्वयंवर खण्ड, २३३-३४ )

संस्कृत में महाकवि भवभूति का लिखा मालतीमाधव नामक नाटक प्रसिद्ध है। भाषा में मधुमालती नाम से पहली रचना चतुर्भुजदास कायस्थ की बताई जाती है। जिसका समय डा० माताप्रसाद गुप्त १५५० वि० सम्वत् के करीब मानते हैं। उसके बाद मंझन कवि ने मधुमालती लिखी। मधुमालती अपने समय की बडी लोकप्रिय रचना थी जिसका पता जायसी के पद्मावत और बनारसीदास के अर्धकथानक के उल्लेखों से चलता है।[1] मधुमालती का उल्लेख उसमान ने १६७२ सम्वत् चित्रावली मे तथा दुखहरनदास ने पुहुपावती (१७२६ सम्वत्) मे भी किया है।

उन उल्लेखों के बारे में एक विवाद है कि इन कवियों ने किस मधुमालती की ओर संकेत किया है। मधुमालती की कथा बहुत व्यापक रूप में लोकप्रिय रही है, और समय समय पर उसमे परिवर्तन भी होते रहे हैं, इसलिये निश्चित रूप से कुछ कह सकना तो कठिन है। किंतु इतना सत्य है कि पद्मावत के कवि जायसी मंझन के पहले अपनी रचना लिख चुके थे इसलिये उनका संकेत मंझनकृत मधुमालती की ओर नहीं है। मधुमालती के संपादक डा० शिवगोपाल मिश्र ने लिखा है—'यह संकेत (जायसी का) चतुर्भुजदास की मधुमालती की ओर भी नहीं क्योंकि चतुर्भुजदास की रचना के नायक नायिका कथा भर मे कहीं वियुक्त वर्णित नही हुए। और न नायक कहीं भी योगसाधना करता है। शेष तीनों उल्लेख मंझनकृत मधुमालती की ओर संकेत करते हैं'।[3]

कवि पुहकर भी मधुमालती की ओर संकेत करते हैं और यह संकेत बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। मधुमालती का जिक्र पुहकर ने एक खास प्रसंग में किया

---

१. साधा कुँवर मनोहर जोगू। मधुमालति कहँ कीन्ह वियोगू॥

—पद्मावत

२. तब घर मे बैठे रहै, जाहिं न हाट बजार।
मधुमालति मिरगावती, पोथी दोइ उदार॥
ते बाँचहि रजनी समै, आवहिं नर दस बीस।
गावैं अरु बातैं करहिं, नित उठ देहिं असीस॥

—अर्धकथानक

३. मझनकृत मधुमालती, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९५७ पृष्ठ १०

है। रसरतन का नायक सूरसेन अपनी प्रेमिका रंभा के स्वयंवर में जाते समय मानसरोवर के किनारे शिविर डालकर विश्राम करता है। रात्रि में अप्सराएँ वहाँ जलक्रीडा करने आती हैं, और शिविर मे सोए राजकुमार के रूप पर मुग्ध होकर उसे अपनी शापग्रस्त मानुषी जन्मप्राप्त सखी कल्पलता के साथ विवाह करने के लिये उठा ले जाती हैं। प्रातः होने पर मंत्री, सामंत और सेनापति चिंतित होते हैं, तब गुनगंभीर नामक मंत्री पूर्वकथाओं में इसी प्रकार की घटनाओं का स्मरण कर इसे अप्सराओं की कारस्तानी बताता है और उदाहरण के लिये उषाअनिरुद्ध और मधुमालती की कथा का जिक्र करता है। हमें अब यह देखना है कि पुहकर के समसामयिक ( १६७३ विक्रमी ) अथवा उसके पहले के किस कवि या कवियों ने मधुमालती कथा में अप्सराओं द्वारा शय्याहरण का वर्णन किया है। मंझनकृत मधुमालती के अप्सरा खंड में यह कथा आती है, रसरतन का शय्याहरण भी अप्सरा अथवा अछ्छरि खंड में वर्णित है।

भवभूति के मालतीमाधव नाटक मे अप्सराओं द्वारा शय्या अपहरण का कोई दृश्य नहीं है, हाँ प्रेमी प्रेमिका मे विछोह होता है अवश्य, पर किसी दूसरे तरीके से। मालती को अघोरघंट की हत्या का बदला लेने की गरज से कपालकुंडला उठा ले जाती है। नवें अंक में माधव को अपनी प्रिया के विछोह में जंगल जंगल घूमते दिखाया गया है।

मधुमालती कथा पर आधारित अनेक काव्य मिलते हैं। मंझन के अलावा इसी कथा पर दक्खिनी के सूफी कवि नुसरती ने 'गुलशने इश्क', संवत् १७१४ में, जान कवि ने मधुकर मालती संवत् १६६१ मे, बँगला कवि अमीर हमज़ा ने मनोहर मधुमालती संवत् १८५० में, तथा गोविंदचंद्र चट्टोपाध्याय ने मधुमालती संवत् १६०१ में लिखी। ये रचनाएँ रसरतन की परवर्ती हैं। रसरतन से पहले लिखी गई रचना जो प्राप्त है वह चतुर्भुजदास की मधुमालती है, जिसमे शय्याअपहरण का दृश्य नहीं है। पद्मावत मे जायसी ने जिस मधुमालती का जिक्र किया है, उसके नायक का नायिका से वियोग हुआ किंतु शय्याअपहरण का संकेत नहीं है, हो भी नहीं सकता था। चतुर्भुजदास की नायक नायिका में वियोग का वह रूप नहीं है जो परवर्ती मधुमालती कथाओं मे है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि 'मैने चार ऐसी प्रतियाँ देखी है, जिन मयसे ( मधुमालती के ) नायक का ऐसा नाम लिखा है जिसे खंदावत, कुंदावत, कंडावत, गंधावत, इत्यादि ही पढ़ सकते है। केवल एक हस्तलिखित

प्रति ( पद्मावत की ) हिंदू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे ऐसी है जिसमें साफ मनोहर पाठ है[1]। शुक्ल जी ने यह बात जायसी के मधुमालतीवाले संकेत में नायक के खंडावत नाम के विषय में लिखी है। और इन सभी आधारों पर शुक्ल जी मंझन को जायसी के कुछ पहले रखना चाहते हैं। मंझनकृत मधुमालती के संपादक डा० शिवगोपाल मिश्र शुक्ल जी के इस कथन को निराधार बताते हैं और उनके मत से मंझनकृत मधुमालती का रचनाकाल संवत् १६०२ निश्चित और प्रमाणित है।[2]

इन सब बातों पर विचार करने पर लगता है कि पुहकर ने जिस मधुमालती का संकेत किया है वह मंझन की हो सकती है। जायसी का संकेत फिर भी समस्या ही बना रह जाता है। पद्मावत की जिस प्रति मे मनोहर दिया हुआ है, वह बाद का परिवर्तन भी हो सकता है। यदि जायसी निश्चित ही मंझन की रचना के पहले पद्मावत लिख चुके थे तो 'खंडावत मधुमालती' की कथा का अलग से संधान होना चाहिए···पुहुकर ने शय्या अपहरणवाले दृश्य के संदर्भ मे मधुमालती का नाम तो लिया है किंतु नायक का नाम नहीं दिया···शय्याहरण के दृश्य के महत्व को स्वीकार करते हुए मैं रसरतन पर मंझनकृत मधुमालती का प्रभाव मानना आवश्यक समझता हूँ। इस प्रसंग में एक और विवाद चलता है कि परवर्ती कवियों ने मधुमालती के महत्व को स्वीकार करके उसी की ओर संकेत किया—क्या तब तक पद्मावत उतना लोकप्रिय नहीं था। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि पद्मावत के पहले मधुमालती की अधिक प्रसिद्धि थी।[3] इसका कारण बिल्कुल स्पष्ट है। पद्मावत का सूफी रहस्यवादी महत्व जो भी रहा हो, कथा मे अलाउद्दीन का प्रवेश और पद्मिनी के अपहरण की जो कुचेष्टा वर्णित है, उसने हिंदू चित्त को रमने नहीं दिया और जायसी ने कहीं भी अलाउद्दीन को उसकी कुचेष्टा के लिए निंदित नहीं किया है। यह बात शुद्ध प्रेमाख्यान को दूषित कर देती है···हिंदू प्रेमाख्यानों मे नायक नायिका के बीच बाधा डालनेवाले या तो राक्षस माने जाते रहे हैं या खल। मेरी दृष्टि से जायसी का पद्मावत इसी कारण मध्यकाल के हिंदू

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, छठा संस्करण, २००७ वि० पृ० ६८; ६६

२. मंझनकृत मधुमालती पृष्ठ १३

३. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६६

पाठक के मन को, जो विदेशी आक्रमण को अभी भूला न था, अच्छी तरह रमा न सका।

रसरतन मे दो अन्य महत्त्वपूर्ण प्रेमाख्यानों का निर्देश है। अग्निमित्र इरावती का आख्यान मध्ययुग में बहुत लोकप्रिय रहा होगा, ऐसा इस संकेत से ध्वनित होता है। किंतु हिंदी में इस कथा पर आधारित काव्य नहीं लिखे गए यह आश्चर्य की बात है।

इरावती अग्निमित्र की दुर्ललित प्रेमिका थी, इसका पता तो कालिदास के मालविकाग्निमित्र से ही चल जाता है। अग्निमित्र अशोकदोहद के समय मालविका से छिपकर प्रेमालिंगन करना चाहता है, इरावती यह देखकर इतना कुपित होती है कि अपनी स्वर्णकांची ( करधनी ) से राजा को मारने के लिये उद्यत हो जाती है, उस समय राजा गिडगिडा कर कहता है कि आँखो में आँसू भरे, क्रोध से लाल, और अपने नितंवों पर से अनादर के कारण छूटी हुई करधनी से मुझको पीटने को उद्यत यह इरावती ऐसी लग रही है जैसे घनी वदली विजली गिराकर विंध्याचल को तोड़ना चाहती है—

वाष्पासारा हेमकाञ्चीगुणेन श्रोणीविम्वादप्युपेक्षाच्युतेन।
चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता मां विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम्॥
( माल० ३।२१ )

राजा उस करधनीयुक्त हाथ को पकड कर कहता है—'हे घुँघराले वालों-वाली, तुम मुझ अपराध करनेवाले को दंड देते देते रुक क्यों गई, इस समय क्रोध के कारण तुम्हारी शोभा और भी वढ़ गई है—

अपराधिनि मयि दण्डं संहरसि किमुद्यतं कुटिलकेशि।
वर्धयसि विलसितं त्वं दास जनायाद्य कुप्यसि च॥
( वही, २२ )

हिंदी मे इस अद्भुत प्रेमीयुगल के प्रेमकथा को आधार बनाकर स्वर्गीय महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' इरावती नामक उपन्यास लिख रहे थे, जो असमाप्त ही रह गया। इस कथा की ओर मध्ययुग में कवियो का ध्यान आकृष्ट नही हुआ, यह आश्चर्य की वात है। किंतु कथा लोकप्रिय अवश्य थी, इस ओर संकेत करके पुहकर ने एक अमूल्य आख्यान को विस्मृत होने से वचा लिया है।

भरथरी और पिंगला की कथा को आधार बनाकर कोई काव्य हिंदी में लिखा गया हो, यह मुझे स्मरण नहीं आता। किंतु यह कहानी लोककाव्य का विषय रही है, इसे सभी जानते हैं और आज भी गावों मे घूमनेवाले 'जोगी' सारंगी बजा बजाकर इस लोककाव्य को एक अद्‌भुत दर्द-मिश्रित ढंग से गाते हैं और अपनी प्रियतमा से भिक्षा माँगनेवाले योगी राजा भरथरी की वैराग्यपूर्ण बातों से रानी के टूटे हुए दिल की व्यथा को तारों मे झंकृत कर देते हैं।

संस्कृत प्रेमाख्यानों की परंपरा का यत्किंचित् संकेत पहले किया जा चुका है। संस्कृत का कथा और आख्यायिका साहित्य भी एक प्रकार से प्रेमाख्यानक ही कहा जा सकता है। बौद्ध और जैन साहित्य मे भी इस प्रकार की परंपरा रही है। कट्ठहारि जातक में भी प्रेमाख्यान वर्णित है। राजा ब्रह्मदत्त लकड़हारिन के प्रेम में पड जाता है। शुभा की कथा थेरीगाथा में अपना विशेष महत्त्व रखती है। जैन वाङ्मय की मल्ली की कथा, तरंगवती, लीलावती, भविसयत्तकहा, मयणपराजय, आदि कथाओं मे भी प्रेम तत्त्व की परिपुष्टि दिखाई पडती है।[1]

इस परंपरा मे सूफी संतों के प्रभाव के कारण कुछ नये तत्त्व भी संमिश्रित हो गए। इस प्रकार भारतीय प्रेमाख्यानक परंपरा मे एक ओर संस्कृत पुराण, कथा, इतिहास तथा महाकाव्यों का योग है, तो दूसरी ओर इसमे जैन, बौद्ध कथाओं का संगम भी। इस पर लोककथाओं का असर भी कम नहीं पड़ा। इसकी शैली मे चरित काव्यों के तत्त्व हैं तो फारसी ऐतिहासिक काव्यों का उपादान भी। मध्यकाल में नाना प्रकार की जातियो के संमिश्रण मे इनके कलेवर में न जाने कितने प्रकार के देशी विदेशी सांस्कृतिक तत्त्व आयत्त हो चुके हैं। भारतीय प्रेमाख्यानक संपूर्ण एशियाई संस्कृति की प्रतिफलन पीठिका हैं, इनमे अनुस्यूत तत्वों के समाजशास्त्रीय, पुरातात्त्विक और ऐतिहासिक अध्ययन का अभी आरंभ ही हुआ है। यह विपुल ज्ञानराशि अनेकानेक सुधी जनों के श्रम और शक्ति का आह्वान करती है।

पुहकर का रसरतन इसी महत्वपूर्ण परंपरा की एक मूल्यवान कड़ी है। इसी कारण इसकी शैली, वस्तु, कथाभिप्राय और नायकत्व का अध्ययन पूरे

---

१. विस्तार के लिये देखिए : भारतीय प्रेमाख्यानक की परंपरा, परशुराम चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९५६।

भारतीय आख्यानकों के पूरे परिवेश को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिए। यह संक्षिप्त निबंध इस समस्या और अध्ययनगुरुता की ओर यत्किंचित् संकेत भी कर सके, तो बहुत है।

रसरतन पौराणिक महाकाव्यात्मक शैली मे लिखा हुआ एक प्रेमाख्यान है। इसे महाकाव्य भी कहा जा सकता है। सिर्फ इसलिये नहीं कि मध्ययुगीन महाकाव्यो का रूप बहुत कुछ विकसित अथवा परिवर्तित होकर इतना लचीला हो गया था कि उसकी सीमा मे सभी प्रकार की बड़ी काव्यात्मक कृतियाँ समाहित हो जाती थी; बल्कि इसलिये कि संस्कृत महाकाव्यों के रूढ़ लक्षण भी इस काव्य में काफी हदतक सुरक्षित दिखाई पड़ते हैं। महाकाव्य के लक्षणों के विश्लेषण और विवेचन के बाद जो कुछ महत्त्वपूर्ण नियम हम निर्धारित कर सकते है; वे इस प्रकार है—

इतिहास अथवा कथा से उद्भूत कथानक, नायक क्षत्रियकुलोत्पन्न देवता अथवा द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुणसम्पन्न, महान् वीर, विजीगीषु, शक्तिमान्, नीतिज्ञ, कुशल राजा होना चाहिए। जिसका उद्देश्य चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति हो, जो अलंकृत भावो और रसों से भरा हुआ और बृहद् आकार का सर्गबद्ध पंचसंधियों से युक्त काव्य हो। अर्थानुरूप छंद, समस्त लोकरंजकता आदि गुणों से भूषित काव्य अनिवार्य शर्त है[1]। ये बाते मुख्य हैं, बाह्य लक्षण तो और भी अनेक निर्धारित किए जा सकते है।

कवि पुहकर अपने काव्य के अंतः और बहिः पक्ष का संकेत देते हुए जो बातें बताते हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके मन में महाकाव्य के लक्षण स्पष्ट विद्यमान थे, जिन्हें उन्होने यथासंभव अपनाया। कथा की अभिव्यक्ति के माध्यम की दृष्टि से, नायक के चरित्र तथा उसके जीवन के विभिन्न पक्षों की दृष्टि से, विराट् कनवैस और उस पर कवि की मणिकुट्टिम पच्चीकारी को देखते हुए रसरतन को महाकाव्यात्मक शैली का प्रेमाख्यान कहना अनिवार्य हो जाता है। यह काव्य कुल नौ सर्गों या खंडों मे विभाजित है। इनका क्रम कवि ने इस प्रकार बताया है—

---

१. महाकाव्य के लक्षण के लिये देखिए भामह काव्यालंकार १।१६।२१; दण्डी का काव्यादर्श १।१४।१६; हेमचंद काव्यानुशासन अध्याय ८; विश्वनाथ साहित्य दर्पण ६।३१५-२८ तथा रुद्रट काव्यालंकार ( अ० १६।२-१६ )।

आदि स्वप्न अरु चित्र विजै अच्छरि चंपावति।
वहुरि स्वयंवर खंड सूर वरनौं रंभावति॥
जुद्ध खंड विस्तरौं जहाँ दुहुँ दिसि दल सज्जिय।
भरौ पात्र जोगिनी सारु छत्री कर वज्जिय॥
आनंद कंद वैरागरहँ तात मातु वहु मोद मन।
नवखंड प्रगट नव खंड महँ सु यह प्रसिद्ध नव रसरतन॥

(आदि खंड ६६)

इस काव्य का उद्देश्य कवि ने स्पष्ट रूप से नव रसों का परिपाक दिखाना स्वीकार किया है। इसी कारण इसका नाम उन्होंने 'रसरतन' रक्खा।

वहि समुद्र चौदा रतन, मथे असुर सुर सैन।
इहि समुद्र नव रस रतन, नाम धरौ कवि तैन॥

तथा—

नवरस भेद आहिं इहि माहीं। वहुत अर्थ कछु थोरो नाहीं॥
यह तो समुद गहिर गँभीरू। लेहि बुद्धि भाजन भरि नीरू॥

कवि रूपक के माध्यम से इस नवरस नवनीत की उपलब्धि की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहता है कि मैंने गुणसमुद्र को प्रेम की डोरी बनाकर ज्ञान की मथानी से मथा।

गुन समुद्र मंथान ग्यान मंथानिय ढुंढिय।
जेतु हेतु गहि हाथ रतन नवरस मथ कढ्ढिय॥
वागेसुर परसाद प्रघट क्रम क्रम सव दिष्पह।
अलप वुद्धि कहँ हेत धीर मुँहि दोस न दिज्जह॥
गुरु नाम सुमर पौहक्कर सुकवि गरुव ग्रंथ आरंभ किय।
रस रचित कथा रसकनि रुचित रुचिर नाम रसरतन दिय॥

(आदि खंड २०)

सूफी कवियों की तरह पुहुकर सहज रूप से अनलंकृत भाषा में काव्य लिखने के पक्ष मे न थे। उन्होंने ग्रंथ के आरंभ मे जिन महाकवियों का स्मरण किया है, उनका प्रभूत प्रभाव कवि की शैली पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत आलंकारिको ने महाकाव्य में नाना प्रकार के भावानुकूल छंद और शब्दवैचित्र्य तथा अर्थवैचित्र्य को आवश्यक गुण माना (काव्यानुशासन अध्याय ८)। कवि पुहकर भी इस मत को स्वीकार करते है। उन्होंने लिखा है :

वानी निरस जो जुक्ति बिनु रहत कहत कवि छंद ।
पै न हरै मन रसिक को ज्यों रजनी बिनु इंदु ॥
पौहकर सकल कवित्त करि प्रघट अर्थ गुन गूढ़ ।
उक्ति विवेक बिसेष धरि गूढ़ करै ते मूढ़ ॥
( आदि० २४-२५ )

वे उक्ति के वैचित्र्य के पक्षपाती थे, किंतु उस उक्ति को जो रचना को गूढ़ और अस्पष्ट कर दे, गुण नहीं मानते थे। छंदों का वैविध्य इस काव्य में देखते ही बनता है।

उन्होंने मूलतया रसों के विविध रूपों की सृष्टि ही काव्य का प्रयोजन माना। रस को वे काव्य की आत्मा मानते हैं। उन्होंने रसों के संपूर्ण भेदोपभेदों को नियोजित करने के लिये ही मानों इस काव्य की रचना की।

कहूँ वीर बीभत्स बखाना। कहूँ भयानक अद्‌भुत आना ॥
वरनौं उभय ओर की प्रीती। अरु सिंगार विरह कै रीती ॥
विप्रलंभ संयोग सिंगारा। वरनौं उभै वोर विस्तारा ॥
कहूँ कहूँ करुना रस पावा। कहूँ विचार परमारथ गावा ॥
हास विलास वरन बहु भाँती। सांति सुनै सोई मन सॉंती ॥
( आदि० ८६-९२ )

## दंतकथा

अब कथासंयोजन की दृष्टि से इसके रसरतन पर विचार किया जाय। रसरतन एक 'दंतकथा' अर्थात् काल्पनिक कथा है। कवि स्वयं कहता है :

पहले दंत कथा हम सुनी। तिहि पर छंद बंद हम गुनी ॥
श्रवनन सुनी कथा हम थोरी। कछुवक आप उकति तै जोरी ॥
( आदि० खड ८८ )

'कथा' शब्द का प्रयोग यद्यपि काफी शिथिल ढंग से होता है, किंतु इसके भी स्वरूप आदि के विषय में काफी विचार हुआ है। वैसे प्राकृत अपभ्रंश में, बहुत सी रचनाओं को कथा या 'कहा' कहा गया है। लीलावई कहा, समराइच्च कहा, भविसयत्त कहा आदि। संस्कृत आचार्यों ने कथा और आख्यायिका मे भेद किया था। रुद्रट संस्कृत कथा का गद्य में लिखा जाना आवश्यक मानते हैं। हालाँ कि अन्य भाषाओं की कथाएँ भी उनके सामने थीं। जो पद्य में लिखी जाती थीं। भामह ने गद्य और पद्य में लिखी जानेवाली कथाओं की

शैली को दृष्टि में रखकर कथा के लक्षण और प्रकार का निर्णय किया। उन्होंने लिखा कि सुंदर गद्य में लिखी सरस कहानीवाली रचना को आख्यायिका कहा जाता है। यह उच्छ्वासों में विभक्त होती है। वक्ता स्वयं नायक होता है। उसके बीच बीच मे वक्त्र और अपवक्त्र छंद आते हैं। कन्याहरण, युद्ध तथा अंत में नायक की विजय का वर्णन होता है।[1] संस्कृत के अधिकांश आचार्य कथा का गद्य मे लिखा जाना आवश्यक मानते हैं;[2] किंतु रुद्रट तथा हेमचंद्र ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंशादि भाषाओं में कथा पद्यबद्ध होती है।

हेमचंद्र ने स्पष्ट कहा—

धीरशांत नायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।
(काव्यानुशासन, अध्याय ८)

इन सभी आचार्यों में रुद्रट का मत ही सर्वथा उपयुक्त और युक्तियुक्त प्रतीत होता है। रुद्रट ने लिखा है कि कथा के आरंभ मे देवता और गुरु की वंदना होनी चाहिए। फिर ग्रंथकार को अपना और अपने काव्य का परिचय देना चाहिए। कथा लिखने का उद्देश्य बताना चाहिए। सभी शृंगारों से विभूषित कन्यालाभ ही इस कथा का उद्देश्य होता है।

श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरून्नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया॥
सानुप्रासेन ततो लघ्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुर वर्णक प्रभृतीनि॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपंचितं सम्यक्।
लघु तावत् संधानं प्रक्रान्तकथावताराय॥
कन्यालाभ फलां वा सम्यग् विन्यस्य सकल शृंगारम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन॥
(रुद्रट काव्यालंकार १६।२०-२३)

कथा की इससे स्पष्ट परिभाषा मिलना कठिन है। इन आचार्यों की सभी

---

१. भामह काव्यालकार १।२५–२८
२. काव्यादर्श (दंडी) १।२३–२८, विश्वनाथ साहित्यदर्पण, ६।२६

समीक्षाओं को सम्यक् रूप से रखकर विचार किया जाय तो निम्नलिखित प्रधान लक्षण इस प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं।[1]

( १ ) कथा संस्कृत में गद्य में होती है, प्राकृत, अपभ्रंशादि में पद्य में भी।

( २ ) कथा में कन्यालाभ अर्थात् प्रेम, अपहरण, विवाह आदि वर्णन अनिवार्य हैं।

( ३ ) कथानक स्पष्ट और प्रवाहयुक्त भाषा में गुंफित होना चाहिए।

( ४ ) ऐतिहासिक कथाओं में कल्पना पर अंकुश हो सकता है, मगर दंतकथाएँ तो कल्पना शक्ति की उपज ही है, उनमें किसी भी प्रकार का अंकुश नहीं होता।

( ५ ) शैली की दृष्टि से कथा एक अलंकृत काव्यकृति है।

रसरतन का कवि रुद्रट की परिभाषा का पुरस्सर अनुसरण करता प्रतीत होता है। उन्होंने आरंभ में देवताओं की वंदना की है। सूफी प्रेमाख्यानों की तरह शाहेवक्त की स्तुति की है। छत्रसिंहासन वर्णन में जहाँगीर की प्रशस्ति इसी बात की द्योतक है। पुनः कवि ने अपने वंश का पूरा परिचय दिया है। सम्यक् प्रकार से कथाशरीर का न्यास किया है। बीच में एक संक्षिप्त अंतराल प्रकारांतर कथा का है जब सूरसेन को अप्सराएँ मानसरोवर से उठाकर ब्रह्मकुंड से जाती हैं। प्रेम तथा शृंगार का वर्णन तो कवि का अभीष्ट है ही। कन्यालाभ के इस महत्व को कवि पुहकर समझते हैं इसी लिये तो वे कहते हैं—

जिहि कारन भव दधि मथ्यौ, अरु दुप सह्यौ अपार।
जप तप सो त्रिय पाइ कै, त्रिपित भये तिहि वार॥

( स्वयंवर खंड ३२६ )

नायक सूरसेन कन्यालाभ के इस प्रसंग को समुद्रमंथन तुलित करता है और बड़े गर्व से कहता है कि

मथ्यौ सिंधु मिलि दानव देवा। वहु विध करी वहुत विधि सेवा॥
इक इक रतन सवनि मिल लाए। तेमे रतन चतुर्दस पाए॥

---

१. विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य।

कोई विपु लै जु सुधा लै कोई। कोइ गज तुरंग धेनु धन होई ॥
काहू कलप तरोवर लीना। नाम नाथ कमलावति कीना ॥
मैं प्रभु कृपा प्रसाद तैं, सव पाये इक ठौर।
रत्न चंद रस गेह मम, वाटनहार न और ॥
( स्वयंवर० ३२६-३१ )

असल में कवि पुहकर रंभाप्राप्ति को समुद्रमंथन से रत्नप्राप्ति मानकर ही अपने इस काव्य का नाम रसरतन रखते हैं। यह रस न सिर्फ साहित्य का नव रस है, वलिक प्रेम रस भी है। उन्होंने रसरतन के आरंभ मे (आदि खंड २०) एक छप्पय मे ज्ञानसमुद्र के मंथन का जो रूपक वाँधा है, उसकी परिणति रंभाप्राप्ति मे होती है। समुद्र से प्राप्त चौदह रत्न रंभा मे एकत्र समन्वित हो जाते है, पुहकर कवि सोल्लास शृंगारसज्जित इस कन्या का वर्णन इस प्रकार करते है—

जुवति वृंद मनि गनित गुनन कमला गज गामिनि।
पारिजात परमल सुअंगम मन मथ मद कामिनि ॥
विरह व्याध वर वेध धनुक भृकुटी विधु आननि।
लोचन लोल तुरंग अधर अमृत रंग वाननि ॥
त्रिवलीय संप विस मान जन कामधेनु सम सील भनि।
गुन नाम सील रंभा कुँवरि सो अंग चतुर्दस अंग वनि ॥
( स्वयंवर० ३३२ )

## रसरतन की कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढ़ियाँ मध्यकाल के प्रायः प्रत्येक कथा-काव्य मे पाई जाती है। ये रूढ़ियां हमारे जीवन की अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक गुत्थियों को स्पष्ट करनेवाली है। इनका यदि सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाय तो हमारे जीवन के विविध अंगों, अस्पष्ट प्रथाओ और रीति-रवाजों, आदि से संबंधित अनेक प्रश्नो का समाधान हो सकता है। कथानक रूढ़ि अथवा कथाभिप्राय का प्रयोग हिंदी मे 'मोटिफ' के लिये किया जाता है। चित्रकला में इनका प्रयोग बहुत पहले से होता रहा है। कलाकृतियो मे सजावट के लिये बनाए गए रूपाकारों को जो किसी चल या अचल, सजीव या निर्जीव, प्राकृतिक या काल्पनिक वस्तु पर आधारित होते थे, 'मोटिफ' कहा जाता था। प्रत्येक देश के साहित्य में भी इस प्रकार के कुछ 'मोटिफ' होते हैं जिनका प्रयोग परंपरागत तरीके से रूढ़ रूप में

होता रहता है। ये 'मोटिफ' स्थूल रूप से बड़े आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय तथा पूर्णतः काल्पनिक प्रतीत होते हैं किंतु उनका विश्लेषण करके प्रतीक पद्धति पर अध्ययन किया जाए तो इनसे संस्कृतियों के मिश्रण और अंतरावलंबन का बहुत कुछ रहस्य स्पष्ट हो जाता है। मध्यकालीन रूढ़ियों के विषय में श्री एम० ब्यूमफिल्ड ने सन् १९१७–२४ के बीच जर्नल आव अमेरिकन ओरियंटल सोसाइटी में प्रकाशित अपने निबंधों में तथा पेंजर ने कथा सरित्सागर के नए संस्करण की टिप्पणियों में विस्तार से विचार किया है। श्री एम० एन० दासगुप्त तथा श्री एस० के० डे० ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में संस्कृत काव्यों में प्राप्त होनेवाले कथाभिप्रायों का अध्ययन किया है। हिंदी में इस ओर लोगों का ध्यान सबसे पहले आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आकृष्ट किया और हिंदी साहित्य का आदिकाल में उन्होंने रासो की कथानक रूढ़ियों का विश्लेषण किया।

रसरतन में भी अनेक कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है।

( १ ) वंध्या दंपति को ईशाराधन या किसी तांत्रिक आदि के वरदान से पुत्र होना—इस रूढ़ि का प्रयोग पुहकर ने सूरसेन तथा रंभा दोनों के जन्म की कथा में किया है। राजा सोमेश्वर और पटरानी कमलावती को शिवाराधन से पुत्र प्राप्त होता है। उधर चंपावती-नरेश विजयपाल को सिद्ध की आज्ञा से चंडीपूजा का उपदेश मिलता है और चंडीकृपा से रंभा नामक कन्या का जन्म होता है।

( २ ) स्वप्नदर्शन—रंभा को कामदेव सूरसेन के रूप में दर्शन देकर मोहविद्ध करता है और उसी प्रकार रति रंभा के रूप में सूरसेन को स्वप्न दिखाकर आकृष्ट करती है।

( ३ ) आकाशवाणी—विरहविदग्ध रंभा की अवस्था निरंतर गिरती जाती है तभी उसकी सखियों को सबोधित करके आकाशवाणी होती है कि 'सूर बिथा हर' होंगे, धैर्य रखो।

( ४ ) अभिज्ञान या सहदानी—बुद्धिविचित्र नामक चित्रकार वैरागर जाकर सूरसेन को रंभा का चित्र दिखलाता है जिसे पहचानकर उसकी उन्मत्तावस्था दूर हो जाती है, उसी प्रकार सूरसेन के चित्र को देखकर रंभा अपने स्वप्नमित्र को पहचान लेती है।

( ५ ) स्वयंवर के माध्यम से सूरसेन को बुलाने का उपक्रम किया जाता है।

( ६ ) सूरसेन को मानसरोवर के किनारे से उठाकर अप्सरायें ब्रह्मकुंड ले जाती हैं जहाँ वे उनके साथ अपनी शापित सखी कल्पलता का गंधर्व विवाह की पद्धति से ब्याह रचा देती हैं। यह रूढ़ि सबसे पहले उषा अनिरुद्ध उपाख्यान में प्रयुक्त हुई थी।

( ७ ) अप्सरा नृत्य—सूरसेन अपनी विवाहिता अप्सरा पत्नी कल्पलता से आग्रह करके उसकी सखी अप्सराओं का स्वर्गीय नृत्य देखता है।

( ८ ) राजकुमार सूरसेन कल्पलता के प्रेम से रंभा को भूलता नहीं। वह साधुओं से चंपावती का पता पूछ कर योगी वेश मे चल पडता है।

( ९ ) सूरसेन की वीना की आवाज से पशुपच्छी मोहित हो जाते हैं। यह स्वर संमोहन चंपावती की नागरिकाओं को विवश कर देता है, और वे विपरीत आचरण करने लगती हैं।

(१०) शिवपूजा के बहाने रंभा सूरसेन से आकर मिलती है।

(११) कल्पलता के विरह का संदेश लेकर विद्यापति नामक शुक चंपावती आता है। पक्षियों के द्वारा संदेश भेजने की रूढ़ि बहुत प्रचलित है।

(१२) बारहमासे की पद्धति में कल्पलता का विप्रलंभ वर्णन।

ये रसरतन की कुछ प्रसिद्ध कथानक रूढ़ियाँ हैं, जिन्हे देखकर कोई भी प्रबुद्ध पाठक यह अनुमान कर सकता है कि कवि पुहकर ने किस प्रकार इन प्रसिद्ध अप्रसिद्ध रूढियों को अपने कथानक मे अच्छी तरह स्थापित करके उसके भीतर चमत्कार और कुतूहल की सृष्टि की है।

## कथा का उद्देश्य और प्रतीकसंकेत

वैसे तो रुद्रट के अनुसार कथा का मुख्य उद्देश्य कन्यालाभ ही है; किंतु रसरतन का कवि इस उद्देश्य से ऊपर उठकर अपनी कृति को जीवन की सार्थकता के महत् उद्देश्य से भी जोड देना चाहता है। चूँकि रसरतन की शैली में महाकाव्य की शैली का भी प्रभाव है, इसलिये महत् उद्देश्य की स्थापना भी कवि का लक्ष्य रही है। ग्रंथ के अंत में कवि ने इस उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यह संसार असार है। इसमें मुक्ति पाना ही

र० र० भू० ६ ( ११००–६२ )

जीवन का लक्ष्य है। इसी लिये अंत में पुहकर इस प्रेमकाव्य को मात्र प्रेम-काव्य ही नहीं रहने देना चाहते; बल्कि एक भिन्न प्रतीकार्थ भी देना चाहते हैं। उनके हिसाब से वैरागर वैराग्य का रूप है। सूरसेन जीव है। उसकी दो पत्नियाँ सत्संगति और सद्बुद्धि हैं। और इनके सहारे प्रीति की ज्योति जलाकर कवि ईश्वर को प्राप्त कर लेना चाहता है।

वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरिनाम।
प्रीत जोत जिय जगमगै, हरै त्रिविध तनु ताम॥
सतसंगति सतबुद्धि उर, विव घरनी सँग लाय।
ज्ञान वान प्रस्थान करि, तजै विषै सुख पाय॥
(वैरागर० २५१-२५२)

इस प्रतीकसंकेत को सूफी प्रेमाख्यानकों के प्रभाव का द्योतक मानना बहुत उचित न होगा; क्योंकि प्रतीक शैली का प्रयोग हिंदू, बौद्ध, जैन कवियों ने भी बहुत किया है। वैराग्य का यह रूप हिंदू वर्णाश्रम व्यवस्था का एक अविभाज्य अंग रहा है। इसी कारण रसरतन का अंत भी शांत रस में ही होता है। कवि को अंत में जैसे अपने जीवन की निरर्थकता का एकाएक आभास हो आता है और वे इसके परिमार्जन के लिये व्यग्र हो उठते हैं—

चला जात पृथ्वी संसारा। विनसत देह न लागै वारा॥
सुर नर नाग राय अरु राने। जे उपजै ते सबै समाने॥
आगे पाछै सबै समाहीं। हमहीं बैठे मारग माहीं॥
अच्छिर चार कहे इहिं ठाऊँ। रहै हमार पृथी में नाऊँ॥
(वैरागर० ३४५-४६)

———

# भावसंपदा

कवि पुहकर विविध भावों के सृजन और उनकी अभिव्यक्ति में पूर्ण कुशल थे। वैसे तो रसरतन मे कई रसों का समावेश है; किंतु उसका मूल रस शृंगार ही है, अतः यह उचित ही है कि शृंगार के दोनों पक्षो से संबंधित अनेक भावों की कवि स्फुरणा करे और उन्हें कथा के मूल ढांचे और जीवंत परिवेश मे भली भाँति नियोजित करने का प्रयत्न करे। भाव की गहराई कवि की अपनी अनुभूति पर आधृत रहती है। सूरसेन और रंभा के प्रेम का पथ प्रेमी की स्वभावज कठिनाइयों से हमेशा ही आक्रांत रहा। इस प्रणय के सभी रूपों के चित्रण में कवि पुहकर ने बडी जागरूकता और कुशलता का परिचय दिया है। विविध भावों की यह अभिव्यक्ति अक्सर कवि की मौलिक उद्भावनाओं से स्पंदित है; किंतु उसमे प्राचीन यशःकाय कवियों की प्रेरणा और प्रभाव का भी कम महत्वपूर्ण हाथ नही रहा है।

रंभा जिस दिन स्वप्न मे सूरसेन की मूर्ति मे काम को देखती है, उसी दिन से उसके तन मन मे एक अजीब प्रकार की उन्मादिता प्रकट होने लगती है। रंभा की इस अवस्था को कामदेव ने भी सोचा था, जब उन्होंने एक अबोध बाला पर अपने सभी विषम पंचशरो को निक्षिप्त किया। अंतिम बाण मारते समय एक क्षण के लिये कामदेव भी पछताया होगा। कवि कहता है—

दस घटिका तिहि तीर, छबि निरखत मनमथ रह्यौ।
अबला करी अधीर, अंतर अंतर ध्यान हुव॥
उनमादक जो बान बिय, ते पुनि त्रिय तन लाय।
बिरह जलधि मैं डारिकै, मदन चल्यौ पछिताय॥
(स्वप्न० ३८-३६)

कामदेव का यह पश्चात्ताप सचेत कलाकारिकता का सूचक है, क्योंकि इसे प्रकट करके कवि ने पाठक के हृदय मे अपनी नायिका और उसकी मनहेतुक पीडा के प्रति उच्छल सहानुभूति का भाव जगा दिया। स्वप्नविक्षुब्ध रंभा निश्चेत पाषाणी की तरह ठगी सी रह गई। उसकी दशा को देखकर सखियों मे एक अजीब किस्म की खलबली और घबराहट फैल गई। [illegible]

संस्कार, विश्वास और अनुभववाली ये सखियाँ रंभा के प्रति असंदिग्ध प्रेम और शुभेच्छा के कारण किस प्रकार परेशान हो गईं, इसका वर्णन पुहकर इस प्रकार करते हैं—

एक कहैं बाय एक सोचति उपाइ अंग,
एक कहै भयो जुरु जूडी औ जनाई है।
एक कहैं भूत भय सपिनी की भंका भई,
एक कहै लोनो अति काहू डीठि लाई है।
एक कहैं आज लाल चूनरी पहिरि साँझ,
गई फुलवारी माँझ तहाँ भरमाई है।
एक कहैं योजगी है एक कहैं छली काहू,
एक कहै काहू करतूति करवाई है।

( स्वप्र० ५० )

कोई कहती है हवा लग गई, कोई ज्वर का जाडा समझती है, कोई भूत-भय का अंदेशा बताती है। कोई कहती है नजर लग गई। लाल चूनरी पहनकर सुगंधित फूलों के बाग में गई थी, वहाँ भरम गई। एक बहुत इत्मीनान से कहती है कि किसी ने ईर्ष्या के कारण अपना भूत इसके ऊपर करवाने की करतूत की है। और तब सभी सखियाँ अजीब तरह से घबरा जाती हैं—

एक चलै धाइ एक परै मुरझाइ धर,
एकै कहैं हाइ हाइ कौन यहाँ आई है।
एकै गहै पाइ एकै बदन बलाई लेइ,
हा हा इत हेरि नेक कौने डरवाई है।
उठि अकुलाइ एकै बैठहि अरस्याइ फेरि,
कछू ना बसाइ विधि कैसी धौं बनाई है।
रंभा रंभा नाम एकै रसना लगाइ रही,
एक सखी नैन के प्रवाह जल न्हाई है॥

( स्वप्र० ५१ )

इन पदों में न सिर्फ घबराहट का सूक्ष्म चित्रण है, बल्कि एक गत्वर क्रियाव्यापार का बहुत ही बिंबात्मक रूप उपस्थित कर दिया गया है। यह चित्रात्मकता बहुत थोड़े कवियों को प्राप्त हो पाती है। इधर सखियों की इस

प्रकार की किंकर्तव्यविमूढ़ कर देनेवाली अवस्था थी, उधर रंभा के मन में तीव्र वेदना ने अद्भुत मूढ़ता उत्पन्न कर दी—

कामरस माती उन्माती सी बिहाल बाल,
प्रेम के समुद्र माँझ मगन परी है जू।
भूली सी फिरति ज्यों कुरंगिनी कुरंगनैनी,
मानो सरपंचनैनी जीवनि हरी है जू।
अंजनु बनायौ भाल चंदन सौं आँजे दृग,
सकल सिंगार बिपरीत सो करी है जू।
बीरी लावै कान नहिं ग्यान न सयान कहू,
बारुनी के पान ज्यों विधान बिसरी है जू॥
(स्वप्र० २०१)

विरह की उन्मादावस्था को प्राप्त रंभा का यह चित्र पुहुकर की सूक्ष्म कलाकारिता का प्रमाण है।

कवि ने रूढ़ियों का पुरस्सर अनुसरण करते हुए रंभा के शरीर पर होनेवाले उपचारों की गिनती भी गिनाई है। विरह ज्वाला की यह अतिरंजना बिहारी और दूसरे रीतिकालीन कवियों में जिस पराकाष्ठा को पहुँची, उसका रूप पुहकर में भी दिखाई पड़ेगा—

चंदन चिनगी घनसार मानौ सार धार,
बिमल कँवल कल कल न परत है।
सीर सों उसीर लागे कंकुमा करौत ऐसे,
पवन दवनु मानो देखत डरतु है॥
तीर ऐसो नीर तरवारि सों तुसार तन,
नेजा ऐसो सेज मानो जीवनु हरत है।
फूलन तें सूल होहिं दाहन दुकूल अंग,
घरी घरी घटै मानों घरी सी भरत है॥

रंभा की शारीरिक शक्ति का जलभरी घड़ी की तरह धीरे धीरे एक एक बूंद टपक कर घटना चमत्कारिक लग सकता है, पर इसमें पीड़ा की गहन विवृति भी है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

रंभा के शरीर और प्राणों की यह अवस्था जिस प्रेम ने की, उसे कवि सराहेगा ही क्योंकि उसे मालूम है कि प्रेम ईश्वर प्रदत्त महान् शक्ति है जो मनुष्य को अजर अमर बना देती है—

जिहि तन प्रगट प्रेम तन कीनो। सो तनु अजर अमर कर दीनो॥
तिहिं तन जोग भोग नहिं भावै। तिहि तन सदन सुरति नहिं आवै॥
तिहि तन सिरजनहार न जान्यौ। एक प्रान वल्लभ पहिचान्यौ॥
सो तन और नीर नहि पीवै। सुधा स्वाति बिनु नैक न जीवै॥
बिसै तत्त्व सब तिहि तन त्यागो। केवल प्रेम प्रीतरस पागो॥
कठिन पंथ जिहि अंत न पायौ। बहु विधि विविध बहुत विधि गायौ॥
(स्वप्न० ९९-१०१)

सखियाँ रंभा से उसके चितचोर का नाम जानना चाहती हैं, और वह अबोध बालिका लज्जा से गड़ जाती है। कहे भी तो क्या कहे। उसने न तो आभरण लिए, न यह मौलिक सौंदर्य। बस मन ले गया। जीभ, नैन, कानों की शक्ति ले गया—

सखि तसकर वह जन मन होई। नहि तसकर बस करि सषि सोई॥
सषि अभरन अरु मौलिक अंगा। केवलु मन हरि लै गयौ संगा॥
रसनाकरन नैन हरि लीनै। गुनहि छिड़ाई पंगु सब कीनै॥
विद्युत दसनि हसनि छवि देखी। सो मम हृदय आनि अवरेखी॥
सूरति मैन नैन अनियारे। प्रान काढि लै गयौ हमारे॥
और न नाम कह्यो बिसवासी। कौन आइ किहि ठाँ कर वासी॥
(स्वप्न० १४२-१४४)

विसासी ने नाम बताया न धाम। कुछ लिया भी नहीं सिर्फ मन चुरा ले गया। इसी तरह का एक श्लोक भानुदत्त की रसमंजरी में भी आता है—

मुक्ताहारं न च कुच गिरेः कङ्कणं नैव हस्तात्।
कर्णात् स्वर्णाभरण मयि वा नीतवान्नैव तावत्॥
अद्य स्वप्ने बकुलमुकुलं भूषणं सन्दधानः।
कोऽयं चौरो हृदयमहरत्तन्नितन्न प्रतीमः॥
(रसमंजरी १३४)

स्पष्ट है कि पुहकर ने इस श्लोक से प्रेरणा ली है, अनुवाद नहीं किया है।

रंभा की इस दारुण अवस्था से कामदेव का मन द्रवित हो आया और उन्होंने एक बार पुनः स्वप्न में सूरसेन के रूप में रंभा को दर्शन दिया। नाम धाम भी बताया। किंतु अभी रंभा भर आँखों उस छवि को देख भी नहीं पाई थी कि प्रिय अंतर्धान हुआ और आँखों की नींद टूट गई—

बिरहानल मैं जड़ ह्वै जुवती निसि पौढि पलंक पलक्क लगायौ।
प्रभु पेषत प्रेम प्रसन्न भये सपनै प्रिय प्रान पती दिपरायौ॥
अति आनंद चाहि प्रमुक्ति प्रिया अरु चाहति लाल हियै उरलायौ।
ताहि समै दृग नींद नठी उघरीं अँखियाँ असुँवा भरि आयौ॥

(स्वप्र० २६६)

देव के "झिहिरि झिहिरि झीनी बूँद है परति मानौ" कवित्त के प्रशंसकों को इस सवैया पर भी ध्यान देना चाहिए।

कवि पुहकर ने रंभा के वियोग में पीड़ित सूरसेन की अवस्था का चित्रण भी बड़ी सहानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है। प्रेम की अनन्यता सूरसेन के हृदय में इस प्रकार घर कर चुकी है कि उसे रंभा के अलावा कुछ भी नहीं दीखता। वह उसी के ध्यान में पूर्ण रूप से निमग्न हो चुका है—

तुही मेरौ धन ध्यान तेरोई करत दिन,
तुही मेरो प्राण प्रान तोही में वसतु हैं।
तुही मेरैं चैन चैनु चरचा चलावै कौनु,
तुहीं मेरे नैन नैन तोही को चहतु हैं।
पुहकर कहैं तुही तुही दिन रैन कहौं,
तेरी धुनि सुनिवे को स्रवन दहतु हैं।
तुही मेरी प्यारी होत न हृदै ते न्यारी,
परम अयानैं लोग बिछुरी कहतु हैं॥

(निद्र० १५६)

प्रेम की यह अनन्यता ही शृंगार को स्थूल विकृति से उबार कर उन्नयनशील ऊर्ध्वमुख आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करती है। कवि पुहकर ने शृंगार के इस सक्षम कंचनकारी रूप को अपने काव्य में भली भाँति उभारने का प्रयत्न किया है। इस विप्रलंभ के व्यापक प्रभाव में प्रशांत चित्त को पुहकर ने अग्नि में डाले हुए पारे के समान कहा है जिस पर उपचार और सीख का कोई असर नहीं होता—

पुहकर डाह वियोग, प्रान विरह बस होहिं जब ।
का समझावहिं लोग, अग्नि न थिर पारो रहे ॥
(चित्र० ६१)

चित्रकार वुद्धिविचित्र जब कुमार को रंभा का चित्र बनाकर दिखलाता है तब उसकी अटूट विरह व्यथा कुछ शांत होती है और वह इस चित्र को देख कर जिस दीनता और भावावेश का परिचय देता है, उसे देखकर चित्रकार भी ठगा सा रह जाता है। इस प्रकार की चचल और भावातुर परिस्थितियों में भी पुहकर पारिवारिक मर्यादा को भूल नहीं पाते, यह बहुत बडी बात है। कवि पुहकर विवाहिता स्वकीया के साथ रति का जितना भी गाढ़ और नग्न चित्रण करें, उन्हें विवाहपूर्व किसी नारी की मर्यादा का पूर्ण ध्यान बना रहता है। वुद्धिविचित्र इसी कारण सूरसेन से आग्रह करता है—

विजैपाल भूपति सुर ग्यॉनी। तपत तेज मानौ वृषभानी ॥
जो यह भेद नैक सुन पावै। तौ तनया लै गंग बहावै ॥
(चित्र० २१४)

और तब स्वयंवर का दिन आता है। रंभा की सखियॉ उसे युवती नारी के योग्य सभी कलाओं की शिक्षा देती हैं। यह शिक्षा सिर्फ यौवनरक्षा और पतिप्रेम तक ही सीमित नहीं रहती। शील, स्वभाव और गुरुपूजा की भी शिक्षा मिलती है—

प्रथम सिखावहिं सुर गुर पूजा। सील स्वभाव सिखावहिं दूजा ॥
दृढ़ कर लाज सिखावहि नारी। सुरति समै परिहरियै प्यारी ॥
मन वच क्रम कीजै पति सेवा। पति तै और वियौ नहिं देवा ॥
जौ निश्चै पतिव्रत मन धरहीं। सो तिरिया भवसागर तरहीं ॥
(विजय० ७२-७३)

पति-पत्नी के बीच का सारा स्वारस्य प्रीति-पारस्पर्य और उसकी नित नूतनता पर ही आधारित है। इस लिए 'नवीनो नेह' के नित्य निर्वाह के लिये प्रिय के अप्रिय वचनो को मानने की भी शिक्षा दी गई। पुहकर के ये दो पद्य तो जैसे इन प्रेम-शिक्षा के अनमोल रत्न ही है—

अप्रिय वचन प्रियतम करि मानि लीजै,
नित ही नवीनो नेह नेह पै निवाहनो।

कहै कवि पुहकर औगुन गुनिनि गारे,
प्यारे कौ छबीलो गुप चौप करि चाहनो।
रसहू ते रोस भारी गारी सो परम प्यारी,
कलह-कठोर काम अंगनि कै दाहनो।
लीजिए ढराइ संग भींजिए अमृत रस,
कीजिए जौ प्रीति तौ न दीजिए उराहनो॥

प्रेम विधाता की अद्भुत सृष्टि है इसमें रोस और रिस भी गुण बन जाते हैं। इन्हें सँभालने और प्रसन्नता में बदलने की उदारता चाहिए। न तो मधुकर को कमल में कंटक का बोध होता है और न तो पतंग को दीपक की जलन का। इस सारे रहस्य का भेद है समर्पण।

कल्पलता को छोड़कर कुमार सूरसेन चंपावती को चल देता है। उसके वियोग में कल्पलता की जो अवस्था होती है उसका वर्णन भी कवि पुहकर ने उसी सहृदयता से किया है जिससे वे मिलन के आनंदपूर्ण क्षणों का किया करते हैं। कल्पलता की अवस्था सिर्फ विरहिणी की ही नहीं है बल्कि आत्मग्लानि में डूबी उसी शापित अप्सरा की है जिसके उड़ने की शक्ति छीन ली गई है।

झरत नैन झर सावन जानौ। पिय पिय रटति पपीहा मानौ॥
तलफति तलफ अनाथ अकेली। दिन दूभर अरु नैन दुहेली॥
निर्गुन निठुर नाह निरमोही। कौन चूकि जिय जान बिछोही॥
अप्सरि सक्ति हरी सुर राजा। नातर फिरति पहुमि तुव काजा॥
(चंपावती० २६।३१)

और तब उसकी सखियां उसे प्रबोधती हुई अनेक प्रेम कथाओं का उदाहरण देती समझाती है कि जो प्रभु विरह के समुद्र में डालता है वही पुनः मेल भी कराता है।

नल दमयंती मिली जो आई। माधव काम कंदला पाई॥
मधुकर संग मालती मेला। करै नाथ तौ निपट सुहेला॥
(चंपा० ४०)

किंतु कल्पलता इन सांत्वना भरे उपदेशों से कहाँ तक शांत रहती। उसे मालूम था कि इस तरह की प्रीति आश्विन के मेघ की तरह अस्थिर होती है।

पुहकर अश्वनि मेह। परछाँही की छाँहरी॥
निरमोही को नेह। तीनौ तुरत पलट्टियौ॥
(चपा० ३७)

कल्पलता के विरह को कवि ने भारतीय सांस्कृतिक मर्यादा के अनुकूल ही चित्रित किया है। इस विरह पर फारसी या सूफी कवियों के विकृति का, जिसे शुक्ल जी ने बहुत जुगुप्सित बताया है, कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। कल्पलता अपने दुःख मे संसार को जलते भुनते नहीं देखना चाहती। वह इसे अपना भाग्यदोष मानकर ही सह लेती है।

पुहकर मित्र विदेसिया, लैजु गयौ चित चोरि।
पाहन लीक ललाट की, काहि लगाऊँ खोरि।
(चपा० ५१)

पुहकर सिर्फ व्यक्तिगत राग और आकर्षण से उत्पन्न मानसिक चंचलता और उदासी के चित्रण मे ही प्रवीण नहीं है बल्कि समूह के चित्त में इस भावना के कारण उत्पन्न अस्थिरता को भी वे सफलता से बाँधने मे समर्थ हो सके है। सूरसेन के आकर्षक वीणावादन से उन्मत्त चंपावती नागरिकाओं की अवस्था 'कामिनीमोहन' छंद के माध्यम से इस प्रकार चित्रित की गई है।

देखि सोभा रही रीझि प्यारी। मगन भूले चलै चित्त हारै त्रिया॥
संग छांड़े मृगी जेमि भूली फिरैं। हार टूटे हियैं भूमि मोती गिरैं॥
छूटि वेनी गई वार बधै नहीं। नेह लाग्यौ नयो मैन अग्नी दही॥
प्रान दीनै जहाँ वीन बानी सुनी। पानु कीनै मनो माधुरी वारुना॥
जीप जंपै नहीं बिसुरी वत्तियाँ। नैन आँसू चलैं दाह दैं छत्तियाँ॥
रित्तु पावस्स ज्यौं नीर नदी बहै। प्रीति पूरी हियै काबि कित्ती कहै॥
(चंपा० १२५-१२७)

प्रेम मे का यह विचित्र नशा है। यह वारुणी तो है किंतु, माधुरी भी। जिसे पीकर बातें बिसर जाती हैं, बोल नहीं निकल पाते। नैन मे आँसू और छाती मे दाह भर जाता है। पावस की नदी की तरह राग में बहती ये नागरिकायें अपनी अवस्था कहें भी तो किससे और कैसे?

नगर की यह अवस्था अतिशयोक्ति को भी छूती है; किंतु उसके रूप में पारिवारिक अनुभूतियों का ऐसा सुंदर चित्रण है कि अतिरंजना खटक नहीं पाती; उद्वेग का यह रूप कभी कभी तो हास्य से भी दमक उठा है।

अंजन दियै एकही नैना। भूली एक कछू कहि वैना॥
पति गृह तिया जिमावन लागी। तन मन लीन अतन अनुरागी॥
बिसरै चित्त न पेषहिं बारी। भोजन दियौ भूमि मैं डारी॥
इक त्रिय पान षवायत नाहाँ। सुंदर रूप वस्यौ मन माहाँ॥
जतन जतन करि वीरी कीन्ही। सो तजि मुष्प चुनौती दीनी॥
दीपक एकु उदीपन आई। दिया छोड़ि आंगुरी लराई॥

अज और इंदुमती के जोडे को नगर की सडकों से गुजरते हुए देख ऐसी ही दशा नगर की नारियों की भी हो गई थी।

स्वयंवर में हाथ मे जयमाल लेकर प्रत्येक राजा के सामने से निकलती हुई रंभा को कवि पुहकर 'चंद्र चिराग' के समान कहते हैं। इंदुमती के स्वयंवर के ऐसे ही वर्णनों से जो लोग परिचित है उन्हे 'दीपशिखा' कवि कालिदास का स्मरण बरबस हो जायेगा। पुहकर ने लिखा है।

छवि रूप कहाँ लगि ओप गनो। संग डोलत चंद्र चिराक मनो॥
जिहि भूपहिं चाहि पमुक्कि चलै। मुप होहिं मलीन तजंतु वलै॥
(स्वय० ६७)

कालिदास की इंदुमती दीपशिखा के समान चलती हुई जिस नरेश को छोडकर आगे बढ़ जाती थी वह मार्ग की अट्टालिका के समान एक क्षण आभा से प्रकाशित होकर दूसरे ही क्षण अंधकार में डूब जाता था।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेंद्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्ण भावं स स भूमिपालः॥
(रघु० ६।६७)

स्पष्ट है कि पुहकर ने कालिदास की इस उपमा को भ्रष्ट करके रख दिया है।

पुहकर पारिवारिक जीवन की सूक्ष्मताओं के भी पारखी कवि थे। रंभा के विवाह के समय चंपावती नरेश विजयपाल का कन्या-विछोह पुहकर कवि की लेखनी से चित्रित होकर पर्याप्त संवेदनीय हो गया है—

ले उसाँस बोलत नृप बैना। भरे बारि वर वारिज नैना॥
संपति सुता न संचति साहीं। परवस परी कछू वस नाहीं॥

द्वादस बरस लाड़ लड़वाई। सो तनया अब भई पराई ॥
पुत्री पुत सब बातन ऊना। होहिं भँडार सदन दोउ सूना ॥
( स्वय १५६-१५७ )

उत्साह वर्णन नामक १० वें अध्याय ( स्वयंवर खंड ) के अंतर्गत कवि पुहकर ने जेवनार का जो वर्णन किया है, वह पुरस्सर रूढ़ि निर्वाह मात्र है। उनका लंबा 'मेनू'' पाठकों की जीभ से लार टपकाने में भले सफल हो जाये, साहित्य की दृष्टि से इसे सस्ती रुचि का प्रदर्शन ही कहेंगे। मानो हलवाई की दूकान का विवरण छाप दिया गया हो। उन्हें इतने पर भी संतोष नहीं होता—

त्रिपित भये भोजन सब कोई। बरनत बियौ ग्रंथ इक होई ॥

चलिए गनीमत है कि कवि ने एक दूसरा ग्रंथ भोजन सामग्री के संबंध में तैयार करने का कष्ट नहीं उठाया। कवि के वर्णन में मुगलकालीन मुसलमानी खाद्य-सामग्री का भी यथेष्ट परिचय मिल जाता है। प्याली, रकेबी में भर भर कर तरि करेज, सूला ( शोरवा ) तीवर, लवा, बटेर का मसालेदार गोश्त काफी चटखारा था।

विविध माँस चकतारे कीने। सूला रुचिर मांगि पुनि लीने ॥

कवि पुहकर को दधि में उदारता से डाली हुई शकर तो बहुत ही पसन्द है। उन्हें लगता है कि मानों प्रेम के भँवर में चंद्रमा उलझ गया हो—

मगन मिठा दधि मैं दये, जेवँति अति आनंद।
मनौ प्रेम चहलै परे, निकसि सकत नहिं चंद ॥
( स्वयं० २०८ )

पगे हुए मखाने भी थे, और 'सिखरनि शरवत छन्ना पानी' भी। और अंत में पान भी मिला ही। पान के तत्कालीन ढंग में रुचि रखनेवालों के लिए ये पंक्तियाँ, शायद रुचिकर हों।

सुप सुवास तंबोल मँगाए। आदरसहित थार भर लाये ॥
पान पचास बनाये बीरा। उज्ज्वल अमल दिपहिं जनु हीरा ॥
फूलनि संग सुपारी बासी। मुतिया जरित चून सुख कासी ॥
एला लौंग ललित कस्तूरी। भरे कपूर दई रुचि पूरी ॥
( स्वयं० २१७-२१८ )

कवि पुहकर शृंगार के अलावा दूसरे भावों के वर्णन में भी अपनी काव्य-शक्ति का परिचय देते हैं किंतु उनका मन तो निश्चय ही शृंगार मे ही रमा था। उन्होंने वीर, वीभत्स, हास्य आदि के भी संक्षिप्त चित्रण यथावसर अवश्य किए हैं। पुहकर ने पारिवारिक मर्यादा, गुरुसंमान, पति-पत्नी-प्रेम आदि विषयो पर भी अपनी भावनाएँ व्यक्त की है। कल्पलता और रंभा के पारस्परिक प्रेम और बहनापे के भाव को अधिक गहराई से चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकाल के उस समाज मे जहाँ बहुपत्नीत्व की प्रथा थी; कविके लिये यह एक विचारणीय और दिलचस्प विषय था कि वह किस प्रकार एकाधिक पत्नियो के बीच प्रेम सौहार्द को बनाये रखने की शिक्षा दे पाता है।

संक्षेप में, कवि पुहकर बहुविध भावनाओं मे रुचि रखने वाले उच्चकोटि के भावप्रवण कवि थे, जिन्होंने अपनी अनुभूतियों को अध्यवसाय से काफी सुसंस्कृत और परिष्कृत भी किया था।

---

# सौंदर्यवर्णन

सौंदर्यचित्रण में कवि पुहकर की दृष्टि रूढ़ि निर्वाह पर अवश्य रही है; किंतु रूप-चित्रण में वे कभी अपनी निजी आभूतियों और उमंगों की उपेक्षा नहीं करते थे। रूप को कवि पुहकर एक समर्थ शक्ति के रूप में स्वीकार करते थे, इसी लिये इसके चित्रण में उनकी सजगता और जागरूकता भी प्रत्यक्ष लक्षित होती रहती है। कवि के लिए रूप कामदेव की अपरिमेय शक्ति का विजयगान है। इसलिये इसके सार्वभौम प्रताप को कभी भी झुठलाने का प्रयत्न नही करना चाहिए।

सौंदर्य वर्णन का समारंभ रंभा के वयःसंधि-चित्रण से आरंभ होता है। रंभा का यह रूप मानो मनमथ की ज्योति फानूस में रक्खी हुई है। शैशव और यौवन की संधि-आभा के लिये कितनी सुंदर उपमा है—

> सैसव ताई जतन तनु, प्रगट तरुनता होति।
> दुतहिं देपि फाँनूस ज्यों, पुहकर मनमथ जोति॥
>
> (आदि खंड १६८)

वयसंधि का यह रूप कवि पुहकर के शब्दों में इस प्रकार साकार किया गया है—

> भौंह चक्र पच्छिम अनियारे। मद खंजन जनु वान सँवारे॥
> स्रवन सींव लोचन रतनारे। पदम पत्र पर भँवर बिचारे॥

चमकते हुए कुंडल की कपोलों पर छाया पड़ती रहती है। मंद स्थित में झलकते दाँत अमृत से सींचे दाड़िम बीजों की तरह लगते हैं। उरोजों पर फेंके आँचल को देखकर कवि को एक अनुपम उपमा सूझ जाती है—

> जुग उरोज कछु दई दिखाई। उपमा इक मेरे मन आई॥
> कमल कली सोभा सुखदाई। जोवन सर झीने पट झाँई॥
>
> (आदि० २०४)

अधरों की लाली देख कर तो कवि को लगता है कि इन्होंने संपूर्ण विश्व जीतने की आकांक्षा से कामदेव की आज्ञा से 'पान का बीड़ा' उठाया है—

पुहुकर अधरन अरुनता, किहि गुन भई अँचान।
जग जीतन को मदन पै, लिये पैज करि पान ॥

( आदि० २०६ )

मदन की विजयगाथा के रूप में चित्रित रंभा का यह सौंदर्य विरह की अवस्था में किस प्रकार पीड़ा से विगलित होता रहा, इसे कवि ने रंभा के वियोग की दसो अवस्था के चित्रण में दिखाया है। जिस मदन ने अपनी अनिर्वचनीय शक्ति को प्रकट करने के लिये इस रूप की सृष्टि की, उसी को उसके विरह-पयोधि में जान कर डुबो भी दिया।

रंभा के रूप का विशद नखशिख चित्रण स्वयंवर खंड के अंतर्गत इसी नाम के अध्याय में किया गया है। यह चित्रण कई दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। एक तो कवि ने इस पूरे वर्णन को कवित्तों मे उपस्थित किया है। इस प्रकार के गठे हुए कवित्त, विशेषकर रूपवर्णन संबंधी, इसके पहले नहीं लिखे गए। यह संभवतः व्रजभाषा के मजे हुए कवित्तों में सनिवेशित पहला नखशिख वर्णन है। इस दृष्टि से विचार करने पर इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

मज्जनोपरांत रंभा के शरीर पर शोभा की राशि एकत्र हो गई। उसके गोरे गोरे गात की आभा के सामने केशर, चंपा और दीपक की ज्योति भी मलिन होने लगी। सुगंधि, कोमलता और प्रकाश का एकत्र संमिलन। पद्मिनी नायिका के शरीर की गंध से अलि उन्मत्त होकर मँडराने लगे। और चंद्रमुख देखकर तो चकोर भी ललचा उठे। मनुष्य तो मनुष्य इस रूप को देख कर मुनि और सिद्ध भी आश्चर्य विजडित हो जाते। रंभा के नख मानो कामदेव की आरती के दीप हों। अथवा पंचबाण ही है या महावर लगे पग जैसे वर्षागम पर वीर-वधूटी उभर आई हों।

अरुण एडी की शोभा का क्या कहना। मनो शीशी में रंग डोल रहा है। ऐसी ही एक उपमा कवि ने रसवेलि मे भी दी है—

बाल दसा मधि जोवनु को रंग
यौं झलकै जनु जावक सीसो।

( पद संख्या ५ )

चटक मंद चाल देख तो कबूतर तथा मतवाले हाथी तक पराजय मान लें। और मराल तो क्या ठहरता। और नुपुर ?—

नुपुर झनक्क रव घूँघुर घनक्क घोर
घाइल कर प्रान राखे पाइल जु पाइ की।
पीवैं तैं पराग उन्मत्त किलकारी मानो
पकज के मध्य अति सावक सुभाइ की॥

घूँघुर के शब्द, नूपुर की झनक, और पायल की ध्वनि जैसे कवि पूरी तरह श्रव्य बना देना चाहता है। और जेहरी [ पाजेब ] तो जैसे रंभा के वपु पर आरोहण करने को उद्यत कामदेव की जडाऊ सीढ़ी ही है। क्षीण कटि की सूक्ष्मता के वर्णन के समय तो पुहकर परेशान ही हो गए। न तो यह कटि नैन में आती थी न तो मनमें ही। दुखी के प्राणों से भी अधिक क्षीण यह कटि वैसी ही है जैसे विरही का वल [ अभाव ] और विरहिणी का हास विलास। कहीं योग, युक्ति, जप, ज्योतिष आदि का ज्ञान एकत्र हो तो इस कटि की क्षीणता का पता लगाया जा सके। विहारी की नायिकाएँ भी पुहकर की इस चमत्कारिकता के आगे पानी पानी हो सकती हैं। रंभा की त्रिवली कवि के त्रिवेनी के समान शांतिदायक प्रतीत होती है। दोनो उरोजो के बीच मोतियो की लर मे गुँथा हुआ गोल लाकेट तो ऐसा प्रतीत होता है मानो सुमेरु गिरि की श्रेणियो के बीच मे मखतूल के झूले मे चंद्रमा झूल रहा है। यद्यपि यह उत्प्रेक्षा रूढ जैसी ही लगती है; किंतु इसमे परिष्कृति रुचि और मौलिकता का पूर्ण संयोग भी दिखाई पडता है—

नगन की ज्योति उर लसै लर मोतिनि की
चकचौंधि होति मनि गन गुन जालजू।
कैधौं मखतूल झूल झूलति हिंडोरा मानो
सिखिर सुमेर बीच बारिधि को बालजू॥

( स्वय० ४९ )

गाल के तिल का वर्णन करते समय तो कवि पुहकर उसके स्थूल बाह्य और मानसिक आतरिक सभी गुणो का एकत्र समन्वय कर देना चाहते है। यह 'डिठौना' जैसे उन्होने खुद बहुत सचेत मन से अपनी कल्पना की इस सुदरी के गाल पर दृष्टिदोष परिहार के लिये लगा दिया है।

चापौं सुहाग कौ कि भाग अनुराग कौ है
हिय को हुलास किधौं पिय को खिलौना है।

कैधौं तन तामस दुरौहे मुख दीप तन
कैधौं कंज कुंज पाइ पौढ़ो अलि छौना[1] है।
कैधौं कवि पुहुकर कंत के रिझाइवे कौ
सौतिन सताइबे को कीनौ कुछ टौना है।
चातुरी कौ भाउ किधौं दाउ प्रेम पासि कौ है
डीठिहू की डीठि किधौं चिबुक डिठौना है।
(स्वयंवर० ५१)

ऐसा ही एक सुंदर बिंब उन्होंने पारदर्शी श्वेत रंग की कंचुकी मे ढँके उरोजों के लिये भी प्रस्तुत किया है—

चुपरि चुनाई चोली सेत श्री साफ छबि
छाजत कवीन मन उकति को धायौ है।
मेरे जान हेम गिरि सिखिर उतंग बिबि
ता पर तुपार पूरि पातरो सो छायौ है।
(स्वयंवर ४५)

लाल अधरों की अरुणिमा तक ही कवि सीमित नहीं रह जाता बल्कि उसके माधुर्य और विकास के लिये भी 'उक्ति' ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है—

अधर अनूप बिय विद्रुम बँधूप बिंब
मेरे जान चंद्र खंड दोऊ लै मिलाये हैं।
ऊष तै पऊप तै मऊष तै हैं मीठे अति
सरस रसाल गुनि गीतन मे गाए है।

ऊख से, पियूष से और चंद्रकिरणों से भी अधिक मीठे इन अधरों की मिठास और रसालता जैसे फिर भी अवर्णित ही रह गई। इसलिये पुहकर कहते हैं कि ये उतने मीठे हैं जितने लोकगीतों मे इनकी मिठास का गान हुआ है। यह एक बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि है, जिसे रूढ़ि निर्वाह मात्र कह देना उचित न होगा। पुहकर कवि का नखशिख वर्णन भाषा की अद्भुत रवानी, चित्रात्मकता और कवि की सुरुचिपूर्ण सौंदर्य दृष्टि के कारण अत्यंत आकर्षक हो गया है। इसमे परंपरा निर्वाह भी है, अलंकारों का बहुल प्रयोग भी तथा नखशिख वर्णन की पुरानी रूढ़ियों का अनुसरण भी; किंतु इन सबके भीतर एक ऐसा उच्छल आनंद भी है जो कवि के भावों को जलीभूत होने से बचा लेता है। रीतिकालीन अनेक कवियों ने इन्हीं पिटेपिटाए अलंकरण उपादानों

१. मूल पाठ मे यह पंक्ति भूल से छूट गई है। कृपया सुधार लें।
र० र० भू० ७ (११००-६२)

का प्रयोग किया है किंतु उनकी रचना प्रायः निर्जीव इसलिये हो जाती है कि कवि के मन पर सौंदर्य का समष्टिगत सजीव जीवंत प्रभाव नहीं रहता। पुहकर के छंद कहीं कहीं लचर भी हो जाते हैं। वह जिस उमंग में पहली अथवा दूसरी पंक्ति लिखते हैं, उसी मे बाकी पंक्तियाँ समन्वित नही कर पाते। यह दोष है। किंतु इस दोष से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि कवि सौंदर्य के गतिशील रूप से इतना उत्तेजित है कि वह इस वेग को पूरी तरह उतारने में सक्षम नहीं हो सका है।

रूपवर्णन के और भी अनेक प्रसंग रसरतन मे भरे पडे है। नारी रूप के साथ ही साथ पुरुष रूप का वर्णन भी कवि का प्रिय विषय रहा है। आदि खंड में छंद संख्या ३२ से ३५ तक कामदेव का रूपवर्णन, चित्रखंड में १६२ छंद से १६६ तक चित्रकार बुद्धिविचित्र द्वारा बनाए हुए चित्र में रंभा की संक्षिप्त नखशिख शोभा, विजयपाल खंड में छंद २१० से २१७ तक कुमार सूरसेन का रूपवर्णन, अप्सरा खंड मे छंद ६७ से ७५ तक कल्पलता का श्रृंगार-वर्णन, चंपावती खंड मे प्रवानिक छंद २४२ से २४८ तक शिवपूजा के लिये जाती रंभा का रूपवर्णन आदि प्रसंग तथा स्वयंवर खंड में सूरसेन का दूलह रूप १३५-१४४, इसी खंड में रंभा का रत्युत्तर रूपवर्णन २८६-३०२ तथा अंत में कवि द्वारा मित्रमहोत्सव वर्णन ३१६-३२१ इस बात के साक्षी है कि कवि पुहकर किसी भी ऐसे अवसर को हाथ से निकलने नहीं देना चाहते थे, जहाँ वे मनुष्य के उल्लसित सौंदर्य का वर्णन कर सकें। बहुत कम कवि ऐसे होते हैं जो मानवरूप की इतनी विशद और तरह तरह की छवियों का इतना सजीव अंकन कर सकें। रूपवर्णन की सूक्ष्मता नायक नायिका के प्रथम दर्शन के उस क्षण में प्रस्तुत की गई है जब रंभा को फूलों के बीच देख कर कुमार सूरसेन उसके भुवनमोहन रूप के ऐंद्रजालिक प्रभाव से विथकित-सा हो जाता है—

> चंद उजियारी प्यारी नेकु न निहारी परै
>
> चंद की कला तैं दुति दुनी दरसाति है।
>
> ललित लतानि मैं लता सी लगै सुकुँवारि
>
> मालती सी फूलै जब मृदु मुसकाति है॥
>
> पुहकर कहै जित देखिए बिराजै तित
>
> परम विचित्र चारु चित्र मिलि जाति है।
>
> आवै मन माहि तब रहै मन ही मैं गड़ि
>
> नैननि विलोकै बाल नैननि समाति है॥

# निसर्गनिरीक्षण

कवि पुहकर उस मध्ययुग के कवि थे, जिसमें निसर्ग का स्थान जीवन के स्पंदन से च्युत होकर मात्र अलंकरण का रह गया था। यह बड़े आश्चर्य का विषय रहा है कि मध्ययुग के हिंदी कवियों ने प्रकृति की इतनी अवहेलना क्यों की। भारतीय काव्य मे प्रकृति मानव जीवन के ही एक अविभाज्य अंग के रूप में हमेशा महत्व पाती रही है। आदि काव्य रामायण मे इसके उदात्त रूप का सुंदर वर्णन है। कालिदास तो निसर्ग के कवि ही कहे जाते है। उन्होंने प्रकृति के कोमल और मसृण पक्ष को अपनी सूक्ष्म कला के द्वारा निखार और परिष्कार प्रदान किया। आचार्य शुक्ल ने हिंदी कवियो की प्रकृति-विषयक उदासीनता की ओर लक्ष्य करते हुए लिखा है कि 'हिंदी कविता का उत्थान उस समय हुआ जब संस्कृत काव्य लक्ष्यच्युत हो गया था इसी से हिंदी की कविताओ मे प्राकृतिक दृश्यों का वह सूक्ष्म वर्णन नहीं है, जो संस्कृत की प्राचीन कविताओ मे पाया जाता है[1]।' वस्तुतः सामंतवादी पतनशील संस्कृति के बीच राजप्रशस्ति और विक्षोभक रूढ़ शृंगार वर्णन के लिये जितना अवकाश था, उतना प्रकृति के लिये नहीं, क्योंकि उस काल मे कवि का स्थान जीवनद्रष्टा का नही, जीवनच्युत दरबारी का रह गया था, जो नष्टे और रुग्ण मन के राजानरेशों के लिये कामोत्तेजक रसायन बना रहे थे। आचार्य बनने का हौसला, प्रबंध काव्यों का अभाव और अतिशय एकांगी शृंगारिकता ने प्रकृति को काव्य का विषय ही नहीं रहने दिया। शुक्ल जी के ही शब्दों मे 'अलंकार और नायिका भेद के लक्षण ग्रंथ लिखकर अपने रचे उदाहरण देने मे ही कवियों ने अपने कार्य की समाप्ति मान ली[2]'; किंतु पुहकर इन रीतिकालीन कवियो से कुछ भिन्न प्रवृत्ति के जीव थे। यह सच है कि पुहकर के काव्य में भी रूढ़ अलंकरण की प्रधानता है जो उस समय के हिंदू परंपराभुक्त प्रत्येक कवि मे दिखाई पडती है, फिर भी प्रबंध रचना की विशेष रुचि के कारण वे प्रकृति को पूरी तरह विस्मृत नहीं कर सके हैं। यही नहीं, कहीं कहीं मन की

---

१. चिंतामणि, काशी, संवत् २००२, पृष्ठ २५

२. वही, पृष्ठ २५

स्वच्छंद धारा में निमग्न होने पर प्रकृति के मोहक रूप को भी देख सके हैं और उसे भाषा की सहजता और कल्पना की रंगसाजी में अच्छी तरह बाँधने में सफल हुए हैं।

पुहकर के काव्य में चित्रित प्रकृति को हम दो दृष्टियों से देख सकते हैं, (१) प्रकृति के वे चित्रण जो आलंबन के रूप में आए हैं, (२) वे जो मात्र अलंकरण के रूप में व्यवहृत किए गए हैं। इसी दूसरे वर्ग के अंतर्गत अलग से बारहमासा और षड्ऋतु-वर्णन पर विचार किया जाएगा।

आचार्य शुक्ल को मध्यकालीन हिंदी कवियों की प्रकृतिविषयक उदासीनता ने काफी पीडा पहुँचाई है; पता नहीं यदि उन्होंने रसरतन को प्रकाशित रूप में देखा होता और उसके कुछ प्रकृति वर्णनो का रसास्वादन करते तो क्या निर्णय देते; परंतु इतना तो कहा ही जा सकता है कि एकाध स्थलों पर पुहकर का प्रकृति वर्णन सेनापति को चुनौती देता प्रतीत होता है। सेनापति के विषय में कही हुई आचार्य शुक्ल की ये पंक्तियाँ अनायास याद आ जाती है कि 'ऋतुवर्णन तो इनके ( सेनापति ) ऐसा और किसी शृंगारी कवि ने नहीं किया है। इनके ऋतुवर्णन में प्रकृतिनिरीक्षण पाया जाता है[1]।' मुझे पूरा विश्वास है कि रसरतन के इन अंशों को यदि शुक्ल जी देखते तो उन्हें रीतिकालीन काव्य में प्रकृति की घनघोर उदासीनता से जो ग्लानि हुई थी, कुछ कम हो गई होती।

कवि पुहकर चाँदनी रात में शांत मानसरोवर और उसके किनारों पर छाई हुई हरियाली का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि नील गगन, नीलमणि की तरह नील जल और नील कानन की एकत्र शोभा का क्या कहना। यह शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो यह सब किसी एक ही अदृश्य रूप की परछाइयाँ हैं। मानसरोवर के फूलो से लदे हुए किनारे जल में प्रतिबिंबित हो रहे हैं मानों ये छाया की दो फैली हुई भुजाये हैं। ऐसा लगता है कि नाग लोक के बीच में नीचे ऊपर स्वर्ग लोक छा गया है। ये तीनो लोक शिव की तीन बड़ी बड़ी नील आखो से प्रतीत हो रहे हैं—

निर्मल नील गगन मन मोहै। इतहि नील कानन अति सोहै॥
सरवर नील नील मनि झाई। तरवर तीर बिंब सुषदाई॥
( अप्सरा० ८ )

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, छठा सस्करण, पृष्ठ २२३

आकाश में श्वेत नक्षत्र, कानन में मालती, बेला और कुंद के श्वेत पुष्प और इन से लदे हुए वृक्षों का सरोवर में झाँकता हुआ प्रतिबिंब—

सोई सोभा गगन अवनि पुनि सोई सोभा,
तैसिये पताल सोभा एक उनहारि है।
पुहुकर कहै कुछ बरनी न जात मो पै,
मेरे मन आई सो कही मैं विचारि है।
मानसर तीर तरु फूले हैं अनेक फूल,
ताकौं प्रतिबिंब रह्यौ भुजा सी पसारि है।
नाग लोक मॉंझ अध ऊरध अमर लोक,
तीनौ लोक मानौ तीन नैन त्रिपुरारि है॥
(अप्सरा० १२)

चाँदनी रात मे सरोवर के किनारे की पुष्पाच्छादित वृक्षराशि भी मानो एक छायालोक ही है। इसलिये कवि जल के प्रतिबिंब, चाँदनी मे स्नात वृक्ष, लतादि और नक्षत्रखचित आकाश तीनों को एक दूसरे की 'उनहारि' मानता है। और किनारों के प्रतिबिंब को भुजाओं के समान बताना तो सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का अद्भुत प्रमाण है ही। अंत में इन पाताल (जल मे धसी छायाएँ), पृथ्वी और अमरलोक के दृश्य-त्रय को शिव के नेत्रों से उत्प्रेक्षित करके तो कवि ने इस शांत सुषमा में एक अद्भुत पवित्रता और महिमा ला दी है। स्थूल ऐंद्रिक सौंदर्य अतींद्रिय रहस्य मे अवगुंठित हो गया है। यहाँ सहसा कालिदास का स्मरण हो आता है। गंगायमुना के संगम स्थल का नाना प्रकार के उपमानों के सहारे वर्णन करते हुए कवि अंत मे लिखते हैं—

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शवलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशाः॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः॥
(रघुवंश १३। ५६-५७)

नील श्वेत, श्वेत नील जल का परस्पर संमिलन एक अद्भुत रंग की सृष्टि करता है। सभी उपमान एक एक कर इन वर्ण संयोजन को स्पष्ट करते हैं, कवि को लगता है कि शायद सौंदर्य की सूक्ष्मता आ जाने पर भी, इसकी

पवित्रता और गरिमा छूट गई इसलिये अंतिम श्लोक में वे उपमान के रूप में अपने आराध्य शिव को ही उपस्थित कर देते हैं जिनके कपूरंगौरांग शरीर पर भस्म के समिलन से उसी प्रकार की श्वेतनीलाभ छटा छाई रहती है।

पुहकर ने वन, नदी, पहाड़ और अन्य प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन भी बड़ी सूक्ष्मता से किए हैं। वैसे यह कहना शायद सही नहीं होगा कि उनके वर्णन सर्वत्र सूक्ष्म निरीक्षण को आधार मानकर ही चले हैं। किंतु इन वर्णनों से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि कवि के मन में प्रकृति के प्रति एक साहचर्य और आकर्षण का भाव वर्तमान था। युद्ध खंड मे कुमार सूरसेन अपनी सेना के साथ जगल से होता हुआ गुजरता है, तो कवि को वन की सुषुमा हठात अपनी ओर खींच लेती है—

सोभित विपिन वसन्त अनूपा। कूजित विहँग विविध विधि नूपा॥
नवल वसन्त नवल पिक जोरी। नवल संग गुन आगर गोरी॥
सहचर नवल नवल सब संगी। नाइक नवल नवल नव रंगी॥
पेखित वन अद्भुत असथाना। रंभावति मन आनंद माना॥
(युद्ध० १८८-८९)

नवल वसंत के नवल उन्माद का यह वर्णन विद्यापति के ऐसे ही एक वर्णन से बहुत साम्य रखता है—

नव वृन्दावन नव नव तरुगन नव नव विकसित फूल।
नवल वसंत नवल मलयानिल मातल नव अलि कूल।
विहरइ नवल किसोर
कालिन्दि पुलिन कुंज वन सोभन नव नव प्रेम विभोर॥

मध्यकालीन कवियों ने प्रकृति का चित्रण बहुत रूढ़ ढंग से किया है। इसका प्रमुख कारण यह था कि ये अपने स्वतंत्र अनुभव और निरीक्षण को उतना महत्त्व नहीं देते थे, जितना आचार्यों द्वारा निर्धारित नियमों के पालन और वस्तुओं के परिगणन को।

## बारहमासा

रसरतन में कल्पलता के विरहवर्णन के प्रसंग में बारहमासा का अवतरण कविपरिपाटी निर्वाह का ही प्रयत्न कहा जाएगा; किंतु पुहकर के

बारहमासे में विरह की पीडा का स्वर भी इतना प्रधान तो अवश्य है कि किसी भी सहृदय पाठक को दुःख की अनुभूति करा सकता है।

बारहमासा और षड्ऋतु वर्णन दोनों ही प्रकृतिचित्रण के रूढ़ प्रकार हैं। भारतीय साहित्य मे प्रकृति के समष्टिगत रूप का आलंबन के रूप मे प्रभूत चित्रण हुआ है; किंतु बाद में प्रकृति को आलंबन के प्रमुख स्थान से हटाकर उसे उद्दीपन विभाव मे ही केंद्रित कर दिया गया। ऐसा कई प्रकार के सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से ही हुआ होगा, इसमें संदेह नहीं; किंतु इसे हम प्रकृति चित्रण की प्रवृत्ति का ह्रास ही कहेंगे। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि ऐसा 'अनुमान होता है कि कालिदास के समय से या उसके कुछ पहले से ही दृश्यवर्णन के संबंध में कवियो ने दो मार्ग निकाले। स्थल-वर्णन में तो वस्तुवर्णन की सूक्ष्मता कुछ दिनो तक वैसी ही बनी रही; पर ऋतुवर्णन मे चित्रण उतना आवश्यक नहीं समझा गया जितना कुछ इनी गिनी वस्तुओं का कथनमात्र करके भावों के उद्दीपन का वर्णन। जान पड़ता है कि ऋतुवर्णन वैसे ही फुटकल पद्यों के रूप मे पढ़े जाने लगे जैसे बारह-मासा पढ़ा जाता है'।[1]

षड्ऋतु और बारहमासे के सभी रूपों का काव्यगत विश्लेषण करते हुए यदि उनके रूपों के लाक्षणिक तारतम्य को दृष्टि में रखकर देखें तो निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती है—

( १ ) षड्ऋतु और बारहमासा दोनों ही उद्दीपन के निमित्त व्यवहृत काव्य प्रकार हैं। किंतु सामान्यतः षड्ऋतु का वर्णन सयोगशृंगार और बारहमासे का विरह मे होता है।

( २ ) षड्ऋतु वर्णन ग्रीष्म ऋतु से आरंभ होता है। बारहमासे की पद्धति के प्रभाव के कारण कई स्थानों पर वर्षा से भी आरंभ किया गया है। बारहमासा प्रायः आषाढ़ महीने से आरंभ होता है।

( ३ ) इन काव्यो की पद्धति बहुत रूढ़ हो गई है। कविप्रथा और कविसमय का पालन बहुत कड़ाई से होता है। इसलिये मौलिक उद्भावना की कमी दिखाई पड़ती है।

---

१. चिंतामणि, दूसरा भाग, काशी संवत् २००२, पृष्ठ २६

इन काव्यरूपों का मध्यकालीन साहित्य में ही नहीं बाद तक भी बहुत व्यापक प्रचार प्रसार था।[1] पुहकर ने षड्ऋतु और बारहमासे को एक मे मिला देने का प्रयत्न किया है। उन्होंने भी बारहमासे का आरंभ आषाढ़ महीने से ही किया है। युद्ध खंड के दूसरे अध्याय मे जो 'बारहमासा वर्णन' नामक अध्याय ही है, कवि लिखता है—

प्रथमहिँ आइ असाढ़ जनावा। विरहिन विरह त्रास मन आवा॥
रितु आगम अलि दीन दिखाई। मानो मदन फौज चढ़ि आई॥

वर्षा के वर्णन में आषाढ मे मेघों का घुमडना, गरजना, बिजली का कौंधना, बूँदों की झडी, बगुलों की पाँत का उडना तथा सावन में मेघ और मेदिनी का संमिलन, धरती की हरियाली, हिंडोले, पपीहे की पुकार आदि का वर्णन किया गया है। भादों के वर्णन में प्रायः भयंकरता रहती है। यहाँ भी मेघगर्जन सिंह की दहाड के समान बताई गई है। साथ ही अजस्र मेघ की झड़ी और कालरात्रि की भयानकता आदि का भी वर्णन किया गया है। ये सभी वस्तुएँ रुढ़ है। आश्विन मे अगस्त नक्षत्र का उदय, वर्षा का घटना, रास्तों का सूखना, कास-कुमुद का फूलना, चन्द्रमा की शुभ्रता, धमारी और रास का मचना, आदि प्रसिद्धियों का यहाँ भी पालन किया गया है। एक छंद में पूरी लिस्ट भी दिखाई पडती है।

रितु सरद सुहाई, जय जग आई, जोति जुन्हाई उद्दितियं।
उज्जल रस नीरं, औरनि भीरं, सुरसरि तीरं उन्मत्तीयं॥
चात्रिक जल आसं, सूरप्रकासं, वल्लभ आसं, तन वासं।
सोहैं नर नारी, पीयहि पियारी, जोवनवारी संभोगं॥

( युद्ध० ३८-३९ )

राजशेखर की काव्यमीमांसा में शरद् ऋतु के वर्ण्य विषयों की लिस्ट से इसकी तुलना करने से मालूम हो जाएगा कि रूढ़ि क्या थी और कवि लोग आँखें मूँदकर कैसे उसका निर्वाह किया करते थे। शरद् ऋतु के वर्ण्य विषय—

---

१. विस्तार के लिये देखिए 'सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य', पृष्ठ ३३२–३३७

उपानयन्ती कलहंसयूथमगस्त्यदृष्ट्या पुनती पयांसि।
मुक्तासु शुभ्रं दधती च गर्भं शरद्विचित्रैश्चरितैश्चकास्ति॥
अत्रावदातद्युति चन्द्रिकाम्बु नीलावभासं च नभः समन्तात्।
सुरेभवीथी दिवसावतारो जीर्णाभ्रखण्डानि च पाण्डुराणि॥
(काव्यमीमांसा, १८ वाँ अध्याय)

वही कलहंसों का आविर्भाव, अगस्त का उदय, जलाशयों की स्वच्छता, शुभ्र चन्द्र ज्योत्स्ना, आदि।

कातिक महीने में दीपमालिका जली पर, कल्पलता का प्रिय उसके घर को अँधेरे मे डालकर चला गया। सूरज तुला राशि मे क्या गया, विरहिणी को विरह की तुला पर चढ़ा गया। अगहन की शीत रातें आ गईं। वृश्चिक राशि आई। विरह का वृश्चिक अंग को डंक मार गया। धूप मे ऊष्म मीठी हो गई लेकिन विरहिणी के लिये तो प्रियपीयूष अप्राप्य ही हो गया। धूप की कटु शीत तो अंग के अनंग से और भी अधिक प्रज्वलित हो जाती है—

औरन तन तापन करै, वारि वरोसी घाम।
विरहिन अंग प्रजार कै, सेकत है कर काम॥
(युद्ध० ६५)

माघ महीने में विरहिणी का तन-मन घरी घरी घटता रहा। भानु ने स्वयं कामपथ का अनुसरण किया, इसी कारण उसका तेज नष्ट हो गया। फागुन मे फाग मची। चाँचरि और धमारी खेलते लोगों का उत्साह पृथ्वी पर छा गया। चैत्र महीने मे वसंत की सुषमा से पृथ्वी ढँक गई। अंकुरित पत्र हरित नील रंग धारण करने लगे मानों मदन के हाथियों के दल कान हिलाकर चल रहे हों—

अंकुरित पत्र तरु हरित नील। हलि चलत मनों दल मदन पील॥
रँग अरुन फूल किसुंक विधान। जनु कटक मोंझ सोभित वितान॥
सोभित्त सरस छवि अंब मौर। सिर ढरहिं मनो मनमथ्थ चौर॥
केवरौ मलति मालती जाइ। जनु मैनवान राखिय बनाइ॥
गुंजरत भ्रमर कोकिल सुकीर। जनु भनत बंदि जन विप्र धीर॥
लपटाइ लता लागी तमाल। जनु करत त्रिया कर अंकमाल॥
(युद्ध० ८०-८२)

इस वर्णन से कालिदास के निम्न श्लोक की तुलना करने पर पता चल जाएगा कि कवि पुहकर किस श्रेणी के स्वाध्यायप्रिय व्यक्ति थे—

आम्री मञ्जुलमञ्जरी वरशरः सत्किंशुकं यद्धनु-
र्ज्या यस्यालिकुलं कलङ्करहितं छत्रं सितांशु सितम्।
मत्तेभो मलयानिलः परभृता यद्वन्दिनो लोकजि-
त्सोऽयं वो वितरीतरीतु, वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः॥
( ऋतुसंहार षष्ठ सर्ग २८ )

आम के बौर ही जिसके बाण हैं, टेसू का धनुष, भौंरों की पाँत की डोरी, मलयाचल पवन ही मतवाला हाथी, कोयल गायक और शरीर न रहते हुए भी संसार को जीतनेवाला कामदेव ही योद्धा है, वसंत से युक्त वह आपका कल्याण करे।

पुहकर के बारहमासे की सब से सुंदर वस्तु बीच बीच के दोहे और सोरठे हैं जिनके माध्यम से कवि बदलते हुए प्रकृति दृश्यों को विरहिणी के मनोभावों से जोड़ देता है। जैसे—

सावन आवन कीन, पिय आवन पेपत नहीं।
विरह अधिक दुख दीन, सुन सुक स्याम सहाइ विनु॥
भादौं गहिल गंभीर, मघा मेघ उनमत्त अति।
बरखत लोचन नीर, नारि अकेली सेज मैं॥
पुहकर माघ अतीत हुव, दिवस बढ़ै घटि राति।
मो घट साँसन साँस अति, घटी घटी घट जाति॥
षट रितु बारह मास गै, पुनि फिर आइ असाढ़।
मनमथ पीर न छिन घटी, विरह दिनै दिन बाढ़॥

———

# वस्तुवर्णन

## कविसमय की रूढ़ परिपाटी

कविता को ईश्वरीय सृष्टि का अवास्तविक अनुकरण कह कर भले ही तिरस्कृत किया जाय, किंतु यह तो स्वीकार करना ही होगा कि आसपास की देखी अदेखी सभी प्रकार की वस्तुओं के बारे में मनुष्य के मन में एक अमिट जिज्ञासा का भाव है और इसी लिये इन वस्तुओं के वर्णन उसके अंतश्चक्षुओं के संमुख कभी वास्तविक कभी किंचित् या अधिक कल्पनानुरंजित दृश्य उपस्थित करके उसके मन को परितृप्त करते रहे हैं। अतः वस्तु वर्णन काव्य का, चाहे वह किसी भी विधा का काव्य हो, एक अविभाज्य अंग रहा है। भारतीय साहित्य में वस्तु वर्णन की सूक्ष्मता और रंगीनी एक स्तुत्य वस्तु रही है, संस्कृत के कवियों ने वस्तुओं के बाह्य जड रूप को ही विश्लेषित विवेचित नहीं किया था बल्कि उनके अंतस्तल में व्याप्त चेतना सत्ता की एकरूपता को भी परिलक्षित किया था। कालांतर में वस्तु वर्णन की परिपाटी रूढ़ होने लगी। अध्ययन मौलिकता की प्रेरणाशक्ति के रूप में नहीं अनुकरण के साधन के रूप में प्रयुक्त होने लगा। एक की देखादेखी दूसरे में पद्धति और पैटर्न का अनुवर्तन होने लगा और एक समय ऐसा भी आया कि आचार्यों ने खास खास वस्तुओं के वर्णन में क्षेत्र और आयाम और परिप्रेक्ष्य की सीमाएँ निर्धारित कर दीं। जाति, द्रव्य, क्रिया, देश और काल के वर्णन में न सिर्फ मिथ्या सीमाएँ बना दी गईं बल्कि इन्हें अवास्तविक ढंग से चित्रित या वर्णित किए जाने को ही कविकर्म मान लिया गया। अशास्त्रीय, अलौकिक, परंपरायात अर्थ को ही कविनियम या कविसमय मान लिया गया। यायावरीय राजशेखर ने इसे उचित और आवश्यक ठहराते हुए लिखा कि 'प्राचीन विद्वानों ने, सहस्रों शाखावाले वेदों का अंगों सहित अध्ययन करके शास्त्रों का तत्त्वज्ञान करके, देशांतर और द्वीपांतरों का भ्रमण करके जिन वस्तुओं को देख, सुन और समझ कर उल्लिखित किया है, उन वस्तुओं और पदार्थों का देश, काल और कारणभेद होने पर या विपरीत हो जाने पर भी उसी प्राक्तन अविकृत रूप में वर्णन करना कविसमय है।' यायावरीय के मन में कविसमय की धारणा तो

स्वीकार करने के आधार स्वरूप जो भी कारण रहे हों, इसमें संदेह नहीं कि बाद में तो कवियों ने इसे बने बनाए 'मसाले' के रूप मे इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि कवि की निरीक्षण शक्ति कुंद होती गई और खानापूरी करके निश्चित वस्तुओं का नाम भर गिना देना वस्तुवर्णन की इयत्ता समझ ली गई।

कवि पुहुकर इसी परंपराविहित परिपाटी के मानसपुत्र थे। इसी कारण उनके वस्तुवर्णन मे निश्चित पद्धति या पैटर्न का पूर्णतया परिपालन दिखाई पडता है। कविसमय के अंतर्गत स्वर्ग्य, भौम और पातालीय तीन विभाग किए जाते है। इसमे भी भौम कविसमय को उसके विस्तार और वैविध्य के कारण प्रधान माना गया है। भौम कविसमय जातिरूप, द्रव्यरूप, गुणरूप और क्रियारूप से चार प्रकार का होता है और इनमें प्रत्येक के तीन भेद होते हैं—(१) असत् का उल्लेख, (२) सत् का अनुल्लेख और (३) नियम।

नदियो में कमल, जलाशयों मे हंस तथा पर्वतों मे सुवर्ण, रत्न आदि का वर्णन असत् निबंध है। पुहकर के काव्य से नदी, जलाशय और पर्वतों के वर्णनों के उद्धरण इस बात की पुष्टि करेंगे कि कवि ने उपर्युक्त नियमों का किस कडाई से पालन किया है। रसरतन में सरोवर के वर्णन अनेक बार आते हैं। मानसरोवर का वर्णन है, जहाँ सूरसेन ने चंपावती यात्रा में विश्राम किया था, और जहाँ से उसे सुषुप्तावस्था में उठा कर अप्सरायें ब्रह्मकुंड ले गईं। चंपावती नगर के उपकंठ में भी सरोवर है, जहाँ वैरागर की सेना के साथ उसने स्वयंवर के अवसर पर विश्राम किया; पुनः वैरागर में उसने अपनी रानियों के लिये जो महल बनाया उसमें भी सरोवर बनवाया गया था। मानसरोवर के वर्णन की विशेषताएँ निसर्गनिरीक्षण के अंतर्गत देखी जा सकती है। शेष दोनो सरोवरों का वर्णन देखिए—

बनी जहँ पारि जटी नग हीर। प्रफुल्लित पंकज भौंरनि भीर।
महा जल जूथ घनै जल जंतु। मनो पथ सागर नाहिनु अंतु॥
तरुवक सारस हंस चकोर। चकवा चकई जहँ सारस मोर॥
( चपावती० ११२ )

यहाँ न सिर्फ कमल, भौंरे और हंस ही हैं, बल्कि पक्षियों की एक लंबी तालिका भी प्रस्तुत कर दी गई है। वैरागर के अंतःपुर के सरोवर की छटा भी कुछ ऐसी ही है—

अंगनि ,चौक फटिक मनि साजा । ता मधि अमल सरोवर राजा ॥
विद्रुम पारि रची दिसि चारी । मरकत मन की सिढ़ी सँवारी ॥
नाना वरन सरोवर सोहैं । दिजकुल केलि करत मन मोहैं ॥
( वैरागर० १४०–१४१ )

और जब सूरसेन अपनी दोनों रानियों के साथ इस सरोवर के पास आए तो दो चन्द्रमाओं के बीच सूर्य के युगपत् दृश्य ने अलंकारों ने ऐंद्रजालिक दृश्य ही खड़ा कर दिया—

प्रथम आइ अगन भये ठाढ़े । सरवर देखि हरष मन बाढ़े ॥
दोउ भामिनि सँग देखन लागीं । कंत प्रीति सरवर अनुरागीं ॥
भये विवस कोकनद कोका । पल महँ आनंद पल महँ सोका ॥
विहँसत सकुचि कमल विहसाई । कुमुद सकुच पुनि सकुचत नाईं ॥
कोक वधू मानति रति केली । बहुर अमित फिर चलहि अकेली ॥
पुनि फिर आइ मिलन पिय संगा । बिछुरि मिलन वाढ्यो आनंगा ॥
अलि कुल निरख अचंभो होई । दिन अरु रैन न जानत कोई ॥
बहु छविभेद सबन्ह मिलि चीन्हा । विय ससि बीच उदय रवि कीन्हा ॥
( वैरागर० १४५–१४८ )

सरोवर की तरह ही बाग-वृक्ष, भवन, आदि के वर्णन में भी रूढ़ियों का निर्वाह किया गया है। कुमार सूरसेन चंपावती नगर के पास उपकंठ में स्थित बाग को देखता है। उसका वर्णन करते हुए कवि ने वृक्ष, फल-फूल, लतादि का कोई बिम्बग्राही दृश्यविधान नहीं किया है। केवल नाम परिगणन से ही जैसे संतुष्ट हो जाता है—

सुन्यो पुर मित्र बढ्यो अनुराग । विलोकित नैन मनोहर बाग ॥
रह्यो सुख संपति आनँद मेलि । घनै फुल फुलहिं लसै द्रुम बेलि ॥
सदा फर दाड़िम सोभित अंब । बनै वर पीपर नीम कदंब ॥
महारंग नारंग निम्बू संग । लता जनु अमृत सींचि लवंग ॥
जभीरी गलगल श्रीफल सेव । फलै कदली फल चापहिं देव ॥
पजूरिनि पारक ताल तमाल । सुधा सम दाख अनूप रसाल ॥
चमेलिय चंपक बेल गुलाब । बँधूप सरूपित सोभित लाल ॥
( चंपावती० १००–१०३ )

इसी स्थान पर बाग को सींचने के लिये कूप में रहँट चल रहा था, जिसे देखकर कवि का मन कुछ दार्शनिक भी हो गया है—

माली मुदित बिजच्छितु भारी। चलहिं रहॅट सींचहिं बनबारी॥
बैठो जाइ कुँवर इक ठाऊँ। पूछन हेत नग्र कर नाऊँ॥
निरपि नैन देखहिं जो बारी। कौतिक मगन भयौ अति भारी॥
रहॅट फेरि गुन घरी बनाई। बाँधी एक जोरि सब लाई॥
सकल चपल पलु धीर न गहई। पन इक अध पन ऊरध रहई॥
सीधो एक एक बिपरीती। एक घरी इक आवहिं रीती॥
इहि गुन डोर बँधो जल आवै। तिहि जल तैं बिस्थार बढ़ावै॥
कुँवर चरित्र सबै यह देख्यौ। बहु बिध अर्थ हियै महँ लेख्यौ॥
(चंपावती० ९१-९७)

ये सभी वर्णन कवियों के लिये बनेबनाए मसालों पर ही आधृत हैं। भूमिका के अंतर्गत इन विषयों की लिस्ट गिना दी गई है। इसी को ऐसे कवि निरंतर दुहराते तिहराते रहते थे।

केशव ने जो पुहकर के करीब करीब समकालीन ही थे, कविप्रिया के सातवें प्रकरण में नगर, वन, बाग, गिरि, ताल, सरिता आदि के वर्णन में परिगण्य वस्तुओं की सूची दी है, जिसे देखने से पता चल जाएगा कि यह व्यापार कितना रूढ़िग्रस्त और नीरस हो गया था।

पुहकर ने चंपावती नगर का भी वर्णन बड़े विस्तार से किया है। नगरवर्णन में केशव के अनुसार निम्नलिखित वस्तुओं की परिगणना होनी चाहिए—

खाँई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी कूप तड़ाग।
वारनारि असती सती, वरनहु नगर सभाग॥
(कविप्रिया ७।४)

पुहकर की इतनी विशेषता जरूर है कि उन्होंने अपने को इतना सीमित नहीं कर लिया। रूढ़ियों का अनुसरण किया अवश्य; पर व्यापक और परंपरा से स्वीकृति पद्धति के साथ। उदाहरण के लिये उन्होंने कोट, अट्टालिका, भवन, नागरिकाओं और वेश्याओं का वर्णन तो किया ही, पर साथ ही विभिन्न हाटों का भी वर्णन किया। उन्होंने इस दिशा में मानसोल्लास, कादंबरी,

कीर्तिलता, वर्ण रत्नाकर, पृथ्वीचंद्र चरित्र आदि ग्रंथों में वर्णित पद्धति को स्वीकार किया। हाटों का वर्णन देखिए—

पटंबर मंडित सोभित हाट। रच्यो जनु देव सुरप्पति घाट॥
कहूँ नग मोतिय वेचत लाल। करैं तहं लच्छिय मोल दलाल॥
कहूँ गढ़ै कंचन चारु सुनार। कहूँ नट नाटिक कौतिक हार॥
कहूँ पट पाट बनै जरतार। कहूँ हय फेरत हैं असवार॥
कहूँ गुहैं मालिनि चौसर हार। कहूँ तिसवारत हे हथियार॥
कहूँ वरई कर फेरत पान। कहूँ गुनी गाइन साजत गान॥
कहूँ पढ़ै पंडित वेद पुरान। कहूँ नर तानत बान कमान॥
कहूँ गनिका गन रूप निधान। कहूँ मुनि ईस करै तप ध्यान॥
चल्यौ नगरो सब देखत सूर। कहूँ मृगमद सुगंध कपूर॥
रहै इक नागरि नैन निहार। चले इक पाट गवाप उघार॥
( चंपा० १४६-१५३ )

कीर्तिलता में विद्यापति ने जौनपुर का जो विस्तृत वर्णन किया है, उससे इसकी तुलना की जाय तो मालूम हो जाएगा कि पुहकर ने परवर्ती हिंदी कवियों का नही पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों का अनुसरण किया है।

सूरसेन विवाहोपरांत चित्रसारी मे प्रथम समागम के लिये प्रवेश करता है। चित्रशाला अथवा रंगशाला का भी वर्णन पूर्ववर्ती साहित्य मे रूढ़ हो चुका था—

लखि रहइ भूमि मृग पहुँमिपाल। अति रुचिर रुचितवर चित्रसाल॥
राखिय सुगंध भरि करि वनाइ। अंगनह मध्यि सरवर सुभाइ॥
गुंजरत भृग रसवास लीन। मृगशाल नाद स्वादहि अधीन॥
परजंक मंड तहँ चित्त चार। मनि मुक्त हीर मानिक जराइ॥
चहुँ ओर चित्र पुतरीय चारि। परवार हेतु जनु अमर नारि॥
इक हथ्थ पाइ इक हथ्थ चौरि। इक कर सुगंध गहि मुकुर औरि॥
पचरंग पाट सीरक विछाइ। वहि रूप ओप वरनी न जाइ॥
वहु फूल सूल सम धरि बनाइ। पट झीन झारि चादर चुनाइ॥
गिंडूव जुगल दुहुँ ओर साज। सुर सरित सेज दोउ कूल राज॥
झलकंति मुक्ति झालर अपार। चंदोव चंद जनु जगजतार॥
( रसरती० २३३-२३८ )

यह है चित्रशाला, जिसमें तरह तरह के चित्र बने हुए थे जिनका वर्णन छंद संख्या २३० से २३७ में मिलेगा। इसमें दशावतार के चित्र थे, साथ ही अनेक देवी-देवताओं के। अग्निमित्र इरावती, भरथरी पिंगला, काम कंदला आदि के कथाचित्र भी अंकित थे। धवलधाम बहुत प्रकार के फूलों से छाया हुआ था। धवलगृह, चित्रशाला, प्रासाद के दूसरे अंगों आदि के विषय में जिनकी ज्यादा दिलचस्पी हो वे डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल की प्राचीन ग्रंथों की पूर्वकृत टीकाओं की नवीन टीकाओं को पढ़ें, जिनमें खाके-नक्शे आदि भी मिल जाएँगे।

केशव की कविप्रिया के आठवें प्रभाव में वर्णित राज्यश्री के उपकरणों से परिचित व्यक्ति को पुहकर के इसी विषय से संबद्ध उपादानों के वर्णन पढ कर लगेगा कि यहाँ भी वही नाम परिगणनवाली पद्धति ही अपनाई गई। हाँ यह अवश्य है कि पुहकर के वर्णन में मुगलकालीन अनेक वस्तुयें जुट गई हैं। राजसिंहासन की शोभा का वर्णन मित्रमहोत्सव में देखा जा सकता है—

सिर सोहत छत्र चँवर सिंहासन आसन वास विसेषि कियं।
बहु भूषन रत्न रुचिर रचि कुंडल कुंतल मडित मंडिश्रियं॥
मुकुता मनि ग्रीव गिरावर वारिद वैननिवानी चंगपती।
बत्तीसौ लच्छिन लच्छिलसै तन, ज्यों गुन अच्छरि लीलवती॥
रथ हेवर हीर समद सुंडाहल अति बल पतनि पंति परे।
बहु विक्रम स्वान सिचान सिंह मृग पच्छिय पिंजर आनि धरे॥
तहँ राजत राजकुमार सभासद सुन्दर राज सुजान सबै।
कवि पुहकर तेज प्रकास विलोकित लज्जित अंग अनग तबै॥

(स्वयंवर० ३१९७-३२१)

सूरसेन की सेना के, हाथी, घोडे, शिविर, ध्वज, निशान, भेरी-मृदंग आदि का वर्णन विजयपाल खंड के १९६ संख्यांक पद्य से २१७ तक देखना चाहिए।

हाथी—

चले मत्त मैमत्त घूमंत मता। मनौ बद्दला स्याम माथै चलंता॥
बनी बग्गरी रूप राजंत दंता। मनौ बग्ग आसाढ़ पाँतैं उड़ंता॥

लसै पीत लालै सुढालै ढलक्कैं। मनो चंचला चौंध छाया फलक्कैं ॥
गिरी शृंग के कुंभ सिंदूर मंडे। घटा अग्र पातैं मनो मारतंडे ॥
वहहिं जोर छंछाल ते मद नीरं। लगे गंड गुंजार ते भौर भीरं ॥
किये कुंडली कुंड सुडाहलीयं। लसौ चौरमरि जो शृंगार कीयं ॥
(विजयपाल० १९८।२०१)

घोड़े—

पलानैं तहाँ तेज ताजी तुरंगा। परै उच्च उच्छाल मानो कुरंगा ॥
कथाहे सुलालं दुरंगा सुरंगा। खरै स्वेत पीतं तथा सावरंगा ॥
(विजयपाल० २०३)

पुहकर एक सचेत कवि अवश्य थे, क्योंकि वे जानते थे कि कवि विधि और यथार्थ में क्या अंतर होता है। उन्होंने जहाँगीर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह मैं बिल्कुल यथार्थ कह रहा हूँ। इसे कविविधि नहीं मान लेना चाहिए। इसमें शक नहीं कि उन्होने 'कविविधि' का पुरस्सर अनुकरण और परिपालन किया है; किंतु उनके मन में कवि विधि का अर्थ स्पष्ट था, यही उनकी विशेषता है—

मैं न कछू कवि विधि कही, साच कही सब बात।
सरल सिंह निर्विस उरग, साहि तेज विख्यात ॥

—००—

२० २० नू० ८ (११००-६२)

# रसनिरूपण और नायिकाभेद

जैसा कि आरंभ मे 'कवि परिचय' देते हुए, पुहकर के आचार्यत्व पर विचार करते हुए कहा गया है कि उन्होंने रसवर्णन और नायिकाभेद पर विशेष ध्यान दिया है, यहाँ हम संक्षेप में इन विषयों पर कवि के योगदान पर विचार करेंगे। कवि को नवरसों की एकत्र एक क्रिया या व्यक्ति मे सहज निष्पत्ति का रूप इतना आकृष्ट करता है कि उन्होने कई स्थानों पर इस तरह के 'नवरस युक्त' वर्णन किए हैं। आरंभ के दूसरे छप्पय में कृष्ण की 'नवरस वस गिरिधर सरन' कह कर स्तुति की गई है। उसी प्रकार आदि खड के ही १७४ संख्या छप्पय में 'नवरस प्रतिच्छ चंडी चरन' कह कर दुर्गा की वंदना की गई है। वैसे तो कवि ने और भी रसों का यत्रतत्र वर्णन किया है; किंतु मुख्य वर्ण्य रस शृंगार ही रहा है। वीर, भयानक, वीभत्स आदि रसों का स्फुट रूप युद्ध खंड में देखा जा सकता है। उन्होंने इन रसों के विषय मे आदि खंड ८९-९० संख्या के छंदों में भी संकेत दे दिया है। शृंगार रस को रसराज मानकर कवि उसके अतुल प्रभाव की व्याख्या करता है और उसके दोनों रूपों संयोग और वियोग का वर्णन करता है। कवि का तो यही उद्देश्य ही है—

नृप तनया रंभावती सूर पृथ्वी पति पूत।
वरनौं तिनकौं प्रेमरस, मदन भयौ तहँ दूत ॥

विरह—

विरह की आकस्मिकता, पूर्व राग से उत्पन्न विरह की अतींद्रिय पीडा को लक्ष्य करके कवि कहता है—

अर्धचंद्र आकास वान लुंभियह हिमाकर।
उभय अग्र विवि धाइ अंग लागत विरहिन वर ॥
विषय दुसह अरु कठिन गूढ़ पुनि मंत्र न मानहि।
द्वै गुन पंच अवस्थ सुदेस प्राचीन बखानहिं ॥
अभिलाप आदि पुहकर सुकवि एक एक वरनन कियौ।
अवलंब एक पचि सज्जियौ सुविधि विचार विरहिन हियौ ॥
(आदि० १४८)

इन स्मर दशाओं का अलग अलग वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

( १ ) अभिलाष—

अभिलाख बखानत धीर हियं। जहँ पूरन प्रेम प्रकास कियं ॥
गहिरै परि रूप समुद्र जलं। चित्त आवतु फैननि तेन थलं ॥
मनु प्रानपती अनुचार करै। तनु पूरन आयु अवद्धि भरै ॥
अति लज्जित सुंदर काम वसं। चित चाहति चाहन रूप रसं ॥
तिहि भावतु भौन न सँग सखी। जिहि नैन निरन्तर प्रीत वसी ॥
विधि वंधि वषगन यौं चलियौ। नट के कर ज्यौं करपत्त लियौ ॥
सदा रहत मन चित्त मैं, मन तैं पंडित वित्त।
ताहि कहत अभिलाप कवि, इत उत चलहि न चित्त ॥

यह है कवि पुहकर का अभिलाप-वर्णन। 'संगमेच्छाऽभिलाषः' रसमंजरीकार ने यह संक्षिप्त लक्षण बताया है किंतु कवि पुहकर, जो काव्यकार है और अपनी कविता के बीच में इन दशाओं का चित्रण कर रहे है, कितना विशद और चित्रात्मक वर्णन करते हैं। विधि द्वारा निर्दिष्ट इस अवस्था मे नायिका यो चलती जैसे नट हाथ में करपत्र लेकर। यह अनन्यता और एकाग्रता का चित्र है। रसमंजरी की तुलना के साथ पुहकर के लक्षण नीचे दिये जा रहे है।

( २ ) सन्दर्शनसन्तोषयोः प्रकार जिज्ञासा चिन्ता। ( रसमंजरी, १२४ )

अब जरा कवि पुहकर का चिंता-लक्षण देखिए—

मिलन होत चिंतनु करहि, जतन विचारहि बाल।
सो अवस्थ चिंता कहत, कोविद काव्य रसाल ॥
नहि निरखत नैननि सजनु, सकत न विरह निबाहि।
विरहिन चित चिंता करहि, क्यौं करि देखौं ताहि ॥

( [illegible]० १५८-१५९ )

( ३ ) प्रियाश्रित चेष्टाद्युद्बोधितसंस्कार जन्य ज्ञानं स्मृतिः।

अर्थात प्रिय अथवा प्रिया की अनुभूतपूर्व चेष्टाओं आदि द्वारा उद्बोधित संस्कार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान स्मृति [illegible] है। [illegible] कहते हैं—

निसि बासर बिसरै नहीं, लोभ लग्यौ जिहि जाहि ।
प्रानपती सुमिरन सदा, सुमृति कहत कवि ताहि ॥
रूप रासि मन भावतो, सुदिन चढ्यौ चित आइ ।
दंतु महावत चित्त ज्यौं, क्यो सहि उतर न पाइ ॥

( ४ ) विरहकालिककान्ता विषयक प्रशंसा प्रतिपादनम् गुणकीर्तनम् ।

सुहृद संग गुन बिस्तरै, प्रीतम प्रीत नवीन ।
सो अवस्थ गुन कीरतनु, कोविद कहत कवीन ॥
मुदिता सौं रंभावती, कहति सुनहि सखि बैन ।
इहि विधि रूप सरूप मै, कहूँ न देख्यौ नैन ॥

( ५ ) कायक्लेश जनित सकल विषय हेयता ज्ञानमुद्वेगः ।

कायक्लेश से उत्पन्न होनेवाली समस्त विषयों के प्रति हेयता ( त्याग ) की वृत्ति को उद्वेग कहते हैं ।

बिरह बिकल तन मैं परै, दाहन दुखद अनेग ।
गेह बिषै बिष समलगै, सो अवस्थ उद्वेग ॥

( ६ ) प्रियाश्रित काल्पनिक व्याहारः प्रलापः ।
कल्पनायाः कारणमन्तःकरण विक्षेपः ।
तस्य च निदानम् उत्कंठा ।

भानुदत्त के विचार से प्रिय के विषय मे व्यर्थ की चर्चा प्रलाप है । विक्षिप्ति ही उसका कारण है । विक्षिप्तावस्था उत्कंठा के कारण होती है । इसलिए प्रलाप का मूल कारण उत्कंठा है ।

पुहकर कहते हैं—

बिरह दुखित वर बिरहिनी, ब्यापँहि उर संताप ।
अति बिलाप बिलखति रहै, सो कवि कहत प्रलाप ॥

किंतु वे उत्कंठा को भुलाना नहीं चाहते । इसीलिये आगे लिखते हैं—

प्रीतम पै उड़ि जान कौं, जार करौं तनु षेह ।
पुहकर विधि नहिं सहि सकै, भींजे लोचन मेह ॥

( ७ ) भानुदत्त ने इसके बाद विपर्यास का वर्णन किया है—
विपर्यासो व्याकुल व्यापारः स च कायिको वाचिकश्च ।

इसी को पुहकर उन्माद कहते हैं।

उर अवस्थ उन्माद व्याधि इमि जान बखानहिं।
प्रेम पाउ उन्मत्त जंतु जग मग्ग बखानहि॥
वचन भुल्लि पुनि कहइ प्रान प्रानेसुर सथ्थहिं।
धीर चित्त नहिं धरहि बुद्धि नहिं आवहि हथ्थहिं॥
अति कठिन पीर जिय जानि करि कवि पुहकर इमि उच्चरहि।
कि होइ जिवतु साजन सहित कि प्रीत फंद कोइ जिन परहि॥

( १९९ )

गुन हित ज्यौं इंद्री सकल प्रान तजै पुनि जीव।
तिहि अवस्थ उन्माद मैं, प्रान तजै नहिं जीव॥

( २०२ )

( ८ ) मदन वेदनासमुत्थ सन्ताप कार्श्यादि दोषो व्याधिः।

स्मर पीडा के कारण प्रेमी के शरीर मे उत्पन्न कृशता आदि दोष को व्याधि कहते है।

मदन अग्नि अति उपजि कै, विरह जरन तन होइ।
वहुर रोग वपु विस्थरै, व्याधि कहत सब कोइ॥
जिहि न मूरि औषध लगै, जाहि तंतु नहि मंतु।
पिय परूप पावै नहीं, व्याधि कहत इमि जंतु॥

( ९ ) विरह व्यथाऽऽविष्कारमात्रमेव जीवनावस्थानं जडता।

विरह की व्यथा का आविष्कार मात्र ही जीवन की स्थिति का जब परिचायक रह जाता है, जब जडता की दशा होती है।

गुनहिं छोड़ि गति पंगु ह्वै रहै चित्र सम देह।
तासों कवि जड़ता कहै, नव अवस्थ नव नेह॥

( १० ) निधनस्यामङ्गलत्वान्नोदाहृतिस्तदाहृता।

निधन का वर्णन अमगलजनक है, इसलिये भानुदत्त उदाहरण नहीं देते। साहित्य दर्पणकार की भी ऐसी ही व्यवस्था है।

रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते।
जातप्रायं तु तद्वाच्यं चेतसाऽऽकाङ्क्षितं तथा॥

इन्हीं सब व्यवस्थाओं को दृष्टि में रख कर पुहकर लिखते हैं—

महामोह अरु मूरछा, देखत सखी निरास।
पुहकर जीवनि जानहीं, एक सांस की आस॥
नव अवस्थ वरनन कियो, पुहकर कवि मति जोइ।
दुस्सह दस्म अवस्थ है, सो साजन नहिं होइ॥
सो मुहिं कहति न आवही, रापतु हैं कवि गोइ।
ताहि कहत रसना जरै, मत वरनौं कवि कोइ॥

यही संक्षेप में स्वप्न खंड में नव अवस्था वर्णन नायक आठवाँ अध्याय है।

## नायिकाभेद

पुहकर के नायिकाभेद के सिलसिले मे आरंभ मे ही उनके 'आचार्यत्व' प्रकरण में सक्षेप मे विचार किया गया है। पुहकर के नायिकाभेद का कोई अलग मौलिक महत्व नहीं है। उन्होंने इस पक्ष पर भी ध्यान दिया, और रसरतन जैसे प्रेमाख्यानक में जहाँ नायिकाभेद पर विचार करने का अलग से कोई अवसर न था, स्थान ढूँढ कर इसे समाविष्ट किया, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नायिका भेद पुहकर का एक प्रिय विषय था। और अब तो 'रसवेलि' के प्राप्त हो जाने से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो ही जाता है। पुहकर के नायिकाभेद पर शास्त्रीय ढंग पर विचार तो तभी हो सकता है, जब उनकी रचना रसवेलि की कोई पूर्ण प्रति मिल सके। बहरहाल रसरतन में उन्होंने नायिकाओं के भेदों के जो कुछ लक्षण दिये हैं उन्हे रसवेलि के उदाहरणों से जोडकर कुछ सीमा तक उनके इस पक्ष पर प्रकाश डाला जा सकता है। उदाहरण के लिये स्वाधीनपतिका के लक्षण इस प्रकार बताते हैं।

( १ ) स्वकीया—

पति स्वाधीन कहीं त्रिय सोई। पति जिहि प्रेम सदा बस होई।
सुख संभोग परस्पर प्रीती। मदन मनोरथ आनँद रीती॥

( वैरागर० १६८ )

अब इनके उदाहरण के लिये रसवेलि का ६वाँ पद देखिए—

[ पौढ़ा स्वकीया ]

फूलनि की सेज स्याम रोहिनीरवन मुखी,
राजति राम कस गमना घन दामिनी।

काम केलि करत कुमार दोउ काम रूप,
जागत जगावत जुन्हाई जीति जामिनी ॥
पुहकर पियहिं उरज वर उर लावै,
वार वार मानिनि रिझावै गज गामिनी ।
कोकिल के कल कोक कला में प्रवीन प्यारी,
कुहुकि कुहुकि उठै कोक कैसी कामिनी ॥

( २ ) अभिसारिका—

सो त्रिय सुकवि कहहिं अभिसारा ।
समय हेत साहस युत द्दारा ॥
( १६९ )

उदाहरण के लिये देखिए रसवेलि का ३१ वाँ पद अभिसारिका शीर्षक ।

( ३ ) वासकसज्जा—

वासक सज्जा नारि वखानी । बारि जनी पति आगम जानी ॥
रचै सेज शृंगार बनावै । मिलन मनोरथ मन उपजावै ॥
( १७० )

रसवेलि का उदाहरण प्राप्त नहीं है ।

( ४ ) खडिता—

नारि खंडिता वही कहावै । जेहि पति यामिनि अनत गँवावै ॥
होत प्रात आवै परभाता । सो तिय कहै व्यंग वर वाता ॥
( १७१ )

रसवेलि का उदाहरण देखिए छंद संख्या २६ ।

( ५ ) विप्रलब्धा—

विप्रलब्ध सो नारि जु गाई । कंत परठ संकेत बुलाई ॥
देखें जाइ सदन सो सूना । वंचित सुष होहि दुख दूना ॥
( १७२ )

रसवेलि का उदाहरण छंद सं० २८ ।

( ६ ) उत्का—

वरनि विरह उत्कंठा वाढ़ी । मदन विरह वेदन तनि काढ़ी ॥
( १७३ )

रसवेलि का उदाहरण छंद सं० २९ ।

( ७ ) प्रोषितपतिका—

प्रोषित पतिका नारि बखानी। पिय बिदेस बिरहिनि बिलखानी ॥
सदन सेज शृंगार न भावै। बिरह बियोग बहुत दुख पावै ॥
( १७४ )

उदाहरण देखिये रसवेलि छंद सं० २५।

( ८ ) कलहंतारिता—

सुकवि कहत कलहंतर ताही। परै कलह करि अंतर जाही ॥
( १७५ )

उदाहरण देखिये रसवेलि छंद २७।

इस प्रकार ये आठ नायिकाएँ हुईं।

इसके बाद कवि मान के आधार पर इनके तीन भेद बताता है—

मानिनि त्रिविध कहत कवि धीरा। धीर अधीर तीसरी धीरा ॥
वचन बिलास सौंह कर पाऊँ। त्रिविध मानकर त्रिविध उपाऊँ ॥
( १७६ )

इनके लक्षण—

पति अपराध रोष नहिं करहीं। धीरा नारि धीर चित धरहीं ॥
प्रकट सुरोष नैन जुग नीरा। सो मानिनि कवि कहत अधीरा ॥
त्रिविध त्रिविध पुनि त्रिविध बखानी। उत्तम मध्यम अधमा जानी ॥
मध्यम नित्य प्रीति व्रतचारी। पतिव्रत सील सो उत्तम नारी ॥
कर्कश बैन कर्कशा होई। अधमा नारि कहै सब कोई ॥
दिव्य अदिव्य जु गीत बखानी। तिनकी जुग जुग चले कहानी ॥
सीता सती और दमयंती। त्रिविध नारि बरनौ गुनवंती ॥
सुकिय परकिया असगुन गाई। बारि नारि रसिकन मन भाई ॥
त्रिविध नार बस नारि सुभाऊ। संयोगिनि बिरहिनि को गाऊ ॥
( १७७ १८१ )

इनमे से मुग्धा छंद सं० २, पराधीन ३, विश्रब्ध नवोढ़ा ४, अकुरित यौवना ५, अज्ञात यौवना ६, मध्या ८, परकीया १०, गुप्तहरण, ११, स्वयंदूती १२, धीरा १४, चिंतासच १६, अधीरा २१, धीरा २२, लक्षिता २३, विरहिणी २५, आदि के उदाहरण रसवेलि मे मिल जाते है।

———

# रसरतन की टीका ?

करीब दो साल पहले डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त ने मेरे पास एक पत्र लिखकर यह सूचित किया कि उन्होंने रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के हस्तलेख संग्रह मे 'रसरतन' की कोई प्रति देखी थी। उन्होंने यह भी लिखा कि उसके साथ कहीं कही अर्थ दिया था। डॉ० साहब ने कृपापूर्वक उस हस्तलेख का नंबर भी लिख भेजा था, जो पी० ४० था। मै बहुत प्रसन्न हुआ कि चलो रसरतन की एक प्रति और मिल गई और इसकी सहायता से जो कुछ पाठ की यत्किंचित् कठनाई अब भी बच रही है, समाप्त हो जाएगी। मैं इसे देखने कलकत्ते पहुँचा और राजस्थानी सेक्शन की पी० ४० प्रति को निकलवाकर देखा।

यह एक पुराना दीमक लगा ६" × १२" आकार का गुटका है जिसमे कई कृतियाँ संकलित हैं। इस गुटके के पृष्ठ १३६ पर लिखा है 'अथ रसरतन ग्रंथ लष्यते'। यह ग्रंथ पृष्ठ १५५ पर समाप्त हो जाता है। जिसके अंत की पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री रसरतन की टीका सपुरण। १६४२ माव··· रमस्य' आदि यह देखकर मुझे थोडा दुःख हुआ, थोड़ी प्रसन्नता भी। दुःख तो इसलिये कि स्पष्ट ही यह रसरतन की प्रति नहीं है क्योंकि रसरतन बहुत बड़ा काव्य है। सुख थोडा इसलिये कि यदि यह वस्तुतः रसरतन की टीका है तो इसका भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। कम से कम इससे इतना तो प्रकट हो ही जाता है कि किसी समय रसरतन एक बहुत ही लोकप्रिय ग्रंथ था और उसके अध्ययन का काफी जागरूक प्रयत्न पहले से होता आ रहा है।

ग्रंथ के अंत मे इस टीका के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए तथा अपना परिचय देते हुए टीकाकार लिखता है—

> पोथी यह रसरतन की, चवदहि सी कवित प्रसिद्ध।
> जेहि विधि यह टीका भयौ, सुनिये सो बुधि वृध॥
> नगर मेड़ता मध्य रहै, अति कुलीन सुग्यान।
> नाम सु जहि सुलतान मल, जनके गुन सघ मान॥

तिनकी रुचि के कारनै, सुरस कवित्त वनाय।
सुगम ग्रंथ ऐसो कियो, सबै समस्या जाय॥
कही नायका तीन सौ, चावीसु केसव दास।
ग्यारह सौ बावन यहाँ, ग्रंथ माँहि परकास॥
वै विह रसिक प्रिया विसै, कह्यो वचन सुविवेक।
देस काल वय भावतें, केसव जानि अनेक॥
उनहि वच सौं हौ नायिका वरनी वहुत विचार।
चार लाख पैंती सहस छपन जुत सत चार॥
(४३५-४५६)

टीकाकार अपने संरक्षक का वंशवर्णन करते हुए कहता है—

कोग सरन धीर मेडया नगर भये वहुरि टीला जी लायक।
भये जैतसी नाम लालचंद सब सुषदायक॥
पुनि फतेचंद तिनके भये फुनि सुजान मल जगत जस।
मुलतान मल्ल जिनके तिनके सुन चरचा सरस॥९॥
तिनके हित टीकाकरी, सुनहु सकल कविराज॥

× × ×

सम्वत् सत अष्टादसै सावन छठि गुरुवार।
टीका हित मुलतान मल, रच्यो अमल सुखसार॥१०॥
रस पोथी को सुप जितौ, टीकौ जान सुजान।
त्यो टीको पढ़ियौं भलौ, नीकौ देहे आन॥११॥

इससे जाहिर होता है कि किसी टीकाकार ने मेडता नगर के किसी मुलतान मल के लिए १८०० सवत् मे यह टीका लिखी थी, जिसका लिपिकाल १८२४ वताया गया है।

यह टीका रसरतन की है ? किस रसरतन की ? यह प्रश्न एक अजीव समस्या उत्पन्न करता है। टीकाकार कोई बहुत वडा विद्वान नहीं जान पडता, न तो जागरूक ही। उसने रसरतन तो कहा पर कवि का नाम नहीं लिखा। रसरतन नाम के वारे में एक दोहा इस टीका में यों दिया हुआ है—

चौदहि रा सव कहत हैं, चौदहि रतन प्रमान।
यातें नाम सुग्रथ को यह रसरतन सुजान॥६२॥

कवि पुहकर अपने ग्रंथ के इस नामकरण पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

वहि समुद्र चौदा रतन, मथे असुर सुर सैन।
इहि समुद्र नव रसरतन, नाम धरो कवि तैन॥

( आदि खंड २१ )

समुद्र मंथन का रूपक देकर कवि ने २० संख्यक छप्पय में इसी बात को और स्पष्ट किया है। लगता है कि टीकाकार रसरतन नाम के इस रूपक से परिचित अवश्य था। 'चौदहि रास कवत्त है' पद अलबत्ता बड़ी उलझन में डालता है। इसका कुछ अर्थ नहीं खुलता। शायद टीकाकार कहता है कि रसरतन मे १४०० कवित्त है। उन्होंने एक और दोहे में रसरतन के छंदों की संख्या चौदह सौ बताई है। यह संख्या बिलकुल ही निराधार है।

दूसरा झमेला रसरतन के रचनाकाल का है। टीकाकार कहता है कि—

बसु रस मुनि विधु संवतहि, माधव रवि दिन पाय।
रच्यो ग्रंथ यह सुरसु······है त्री······इन सहाय॥

ऊपर के चरण से रचनाकाल १७६८ प्रतीत होता है। रसरतन १६७३ संवत् में रचा गया था। हो सकता है कि टीकाकार का बताया संवत उस पोथी का लिपिकाल हो। मुनि की संख्या ६ मानने पर भी १६६८ होगा—यह भी ठीक नहीं लगता।

तीसरे दोहे के बाद टीकाकार अपनी सीमा निर्धारित करते हुए लिखता है—'केवल मदन प्रसंग'। इससे लगता है कि 'रसरतन' की पोथी में अनेक और प्रसंग थे। पुहकर के रसरतन में 'मदन प्रसंग' प्रसिद्ध है ही। इसी प्रसंग में विप्रलंभ और उसकी दसों स्मरदशाओं का चित्रण किया गया है।

टीकाकार लिखता है—

द्विविध शृंगार, संयोग एक, कहै वियोग कवि आदि।
तहाँ वियोग सुन चारविध, पूरब अनुरागादि॥४॥

अनुतिन्न विप्रलंभ विहि नाम कहत कवि लोग।
अकस्मात लख चित्र सप्र तीजो यो संयोग॥

कवि पुहकर के रसरतन से तुलनीय—

उभै अंग कीनो प्रगट, पुहुकर अधिपति काम।
विप्रलंभ संयोग तहँ पायौ, द्वैविध नाम॥
(आदि० ८४)

काम कहै सुनु सहचरी, दरसन तीन प्रकार।
स्वप्न चित्र पर तिच्छ प्रिय, प्रगट प्रेम विस्तार॥
(स्वप्र० १५)

एक और समतासूचक प्रसंग का उल्लेख करके मैं यह भार विद्वानों पर ही सौंपता हूँ कि वे विचार करें कि क्या यह टीका पुहकर के रसरतन की ही है, या किसी अन्य रसरतन की। रसरतन नाम से किसी और ग्रंथ की सूचना मुझे नहीं है। सूरतिमिश्र का रसरत्नमाला और रसरत्नाकर तथा ध्रुवदास और मंडन कवि की रसरत्नावली पुस्तकों की सूचना अलवत्ता है।

कवि पुहकर ने ग्रंथारंभ में नवरस वस गिरधर श्री कृष्ण की वंदना की है। 'घोप तरुनि शृंगार' आदि (दे० आदिखंड; पद सं० २) नवरस रूप कृष्ण की वदना करते हुए टीकाकार कहता है—

नवरस आप सिंगार पुन, हास, करुन, रुद्र वीर।
भय पावस अद्भुत वदन, ध्यान परम गुन धीर॥

इस टीका का सबसे विशिष्ट पक्ष है नायिकाभेद। कवि पुहकर ने ११५२ किस्म की नायिकाएँ बताई हैं और केशवदास ने ३८४ तरह की। टीकाकार ने केशवदास के कुछ संकेतों के आधार पर सुलतान मल्ल को समझाने के लिये ४३५४५६ किस्म की नायिकाएँ गिनाई है। यानी ११५२ × ३७८ प्रकार की। इन नायिकाओ को समझाने के लिये ग्रंथ मे एक चार्ट भी है। हिंदी में नायिकाभेद पर कार्य करनेवाले विद्वानों को शायद इस चार्ट में दिलचस्पी हो, इसलिये पूरा चार्ट जिसकी लिखावट कैथी मे होने के कारण बहुत स्पष्ट नहीं हो पाई है, उपस्थित किया जा रहा है।

# पृष्ठ संख्या १५३

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| अथ प्रथम नायका तीन ३ | स्वकीया यानी व्याही स्वकीया के तीन भेद ३ | परकीया पर उर वसु मिले | सामान्य वस्या १ | मध्या ३ भाती पध्या धीरा, जशमध्या जेष्ठा मध्याधीरा-जेष्ठा, मध्याधीरा-कनिष्ठा, मध्या-धीराधीरा कनिष्ठा ६ | प्रौढ़ा ६ भाँति। प्रौढ़ा धीरा जेष्ठा प्रौढ़ा। अधीरा जेष्ठा प्रौढ़ा धीरा-धीरा जेष्ठा, प्रौढ़ा धीरा कनिष्ठा, प्रौढ़ा अधीरा कनिष्ठा, प्रौढ़ा धीराधीरा कनिष्ठा ६ |
| मुग्धा १ भोलील | नाअतीर | मध्या लाजकाम सम | प्रौढ़ा ३ काम अती लाज को प्रयान | | |
| मुग्धा १ | सुकिया के तेरह भेद या भाँति भये। ये धीरादीमें भेद मान में होत हैं। धीराधीरज लीयौ॥ अधीरा अधीराज लीये। धीराधीरा धीरज अधीरज लीये। जेष्ठा वो होत प्यार वारी। कनेष्ठा और प्यारवारी।१३। | | | | |

१३ सुकीया, २ परकीया, १ सामान्या। ऊढा। अनूढा। व्याही। अनव्याही। १२८॥ यन सोलह को आठ भाँति करें त एक सौ अठईसा॥

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | स्वाधीनपतिका | पति जाके अधीन | १२८ नायका या भाँतिन हुई। |
| २ | उत्का | पिय न आवे सोवे | |
| ३ | वासकसज्जा | सिंगार करिके पंथो देखे | |
| ४ | कलहांतरिता | मान करि पाछे पछतावे | |
| ५ | पंडिता | जाको पति प्रात आवे भोग करि और से। | |
| ६ | विप्रलब्धा | संकेत में प्रिय न पावे | |
| ७ | प्रोषितपतीका | विरहिनी भरतार विदेस | |
| ८ | अभिसारका | पिय को आपने जाइ मिले। | |

| ३८४ नायका याँ भाँति भई | ३ दिव्यादिव्य भेद कीयौ तीन भाँति । दिव्य १ अदिव्य २ दव्यादव्य ३ देवि १ मानुषी २ देविनार रूप ३ |
|---|---|
| ये सब तीन भाँति उत्तमा १ मानन करै ॥ मध्यमा २ नैसे । मध्यमा ३ वना काजरु ठे | ११५२ नायक या भाँति भई । |

पृष्ठ १५४

| सामान्य ३, स्वकीया ३, मुग्धा १<br>मध्या २, विधि प्रौढ़ा आरूढ़<br>प्रगल्भ वाचना २ चित्रविभ्रभा<br>नवंतसनि ३ भीतनंगा ३<br>आक्रमित सव काम ३ सुरदाया ४<br>लब्धायतलजाप्राय ४ | ४ मध्या या के चार भेद<br><br>परकीजा भेद १<br>गुप्ता १<br>विदुआर ( विदग्धा ) २<br>लछिता ३<br>मुदिता ४<br>अनुसयना ५ |
|---|---|
| ४ प्रौढ़ा के भेद<br>धीरादि भेद सौं त्रिगुनी करै १२<br>ज्येष्टादि सौं त्रिगुनी २४ — धीरादि सौ त्रिगुनकरै १२<br>६३ भेद भये — ज्येष्टादि से दिगुन करै ४ | सुगधा ४, मध्या २४, प्रौढ़ा २५<br>५ ऊढ़ा अनुढ़ा सौं दुनि करै<br>सामान्या १<br>६३ या भाँति<br><br>वीचारै । |

| | |
|---|---|
| १—स्वाधीनपतिका | जाके पिय आधीन |
| २—नुक्ता | विचारे पिय को न आयो। |
| ३—वासकसज्जा | सिंगार करि के मारग देखे। |
| ४—कलंहतारिता | मान करि पाछे पछिताइ। |
| ५—प्रोषितपतिका | विदेस जाको पति। |
| ६—षंडीता | प्रात आवे पिय और सों भोग करि। |
| ७—विप्रलब्धा | संकेत मे पिय न आवे। |
| ८—अभिसारका | आपहिं ते जाइ मिले। |
| ९—प्रवत्सपतिका | भरतार परभात विदेस गये। |
| १०—आगमित्सपतिका | आवौ चाहे पति को। |
| ११—आगतपतिका | पति आयौ जाकौ। |
| १२—प्रतिस्वाधीना | पति के आधीन जो नायका |

---

६३ कौ १२ गुने करे तब ७५६। नुतमादि सों त्रिगुनी करें तो २२६८ भये।

प्रेम गर्व १ रूप गर्व २

कुल गर्व ३ गुन गर्व ४

२७२१६ भेद भये

७५६ भेद भये

२२६८ दिव्यादिव्यसौ तिगुन करे

६०७२ भेद भये

२७२१६ देसविधिपूर्वादिसों चौगुनी

पूरवी नाइका १, पछिमी नायका २

दछिनी नाइका ३, उत्तरी नाइका ४

१०८८६४ भेद भये

१०८८६४ पद्मिनादिसौ चौगुनी करें

पद्मन, चित्रणी संषणी, हस्तिनी ४

या भांति ४३५४५६ भेद सब भये

$$६३ \times १२ = ७५६$$
$$७५६ \times ३ = २२६८$$
$$२२६८ \times ४ = ६०७२$$
$$६०७२ \times ३ = २७२१६$$
$$२७२१६ \times ४ = १०८८६४$$
$$१०८८६४ \times ४ = ४३५४५६$$

—०—

# रसरतन और अपभ्रंश छंदपरंपरा

कवि पुहकर को छंद और उनकी आत्मा का अद्भुत ज्ञान था। प्रेमाख्यानकों की सूफी परंपरा में दोहा और चौपाई छंद की पद्धति रूढ हो गई थी। पुहकर ने इसे स्वीकार नहीं किया। वे छंदों के वैविध्य को पसंद करते हैं। इस दृष्टि से उन्होंने मध्यकालीन अपभ्रंश प्रेमाख्यानकों और काव्यों की पद्धति को ज्यादा उचित और अच्छी समझकर स्वीकार कर लिया। जैन धार्मिक अपभ्रंश काव्यों में छंद वैविध्य पर बहुत ध्यान दिया गया है। पउमचरिउ में गंधोकधारा, द्विपदी, मंजरी, शालभंजिका, आरणाल, पद्धरिका, वदनक, पाराणक, मदनावतार, विलासिनी, प्रमाणिका, समानिका, भुजंगप्रयात आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया है। नयनंदी कृत 'सुदंसण चरिउ' में छंदों की बहुलता और विविधता देखते ही बनती है। नयनंदी द्वारा प्रयुक्त छंदों की एक संक्षिप्त सूची नीचे दी जाती है।[1]

पादाकुलण, रमणी, मत्तमायंग, कामवाण, दुवईमयण विलास, भुजंगप्रयात, प्रमाणिका, तोडणऊ, मंदाक्रांता, शार्दूल विक्रीडित, मालिनी, दोधय, समानिका, मयण, त्रिभंगिका, आरणाल, तोमर, अमरपुरसुंदरी, मदनावतार, शालभंजिका, विलासिनी, उविंदवज्जा, इंदवज्जा, उवजाइ, वसंत चच्चर, वंसत्थ, सारीय, चंडवाल, भ्रमरपद, आवली, चंद्रलेखा, वस्तु, णिसेणी, लताकुसुम, रचिता, कुवलयमालिनी, मणिशेखर, दोहा, गाहा, पद्धडिया, मोत्तियदाम, तोणउ, पंचचामर, मंदारदाम, माणिणी॥

नयनंदी के ही लिखे एक दूसरे काव्य 'सकलविधिनिधान काव्य' की छंद सूची भी सामने रख लें तो शायद अपभ्रंश भाषा मे प्रयुक्त अधिकांश छंदों की एक सूची तैयार हो जाएगी—

श्रेणिका, उपश्रेणिका, हेममणिमाल, रासाकुलक मंदरतार, खंडिका, मंजरी, चारुपद पंक्ति, मनोरथ, कुसुममंजरी, विश्लोक, मयणमंजरी, उजविंछिया, सुन्दरमणि भूषण, हंसलीला, रक्ता, हंसिणी, जामिणी, मंदरावली, जमतिया, मंदोद्धता, कामक्रीडा, अणंगभूषण, गुणभूषण, रुचिरंग, आदि।

---

१. अपभ्रंश साहित्य, डा० हरिवंश कोछड, पृष्ठ १७४।

इन छंदों में अनेक संस्कृत के हैं अनेक देशी। अपभ्रंश कवि नयनंदी ने अपने द्वारा प्रयुक्त छंदों के बारे में कहा है—

अलंकार सल्लक्खणं देसि छन्दं।
णं लक्खेमि सत्थांतरं अत्थमंदं॥

कवि अपने को देशी छंदों का विशेषज्ञ कहने में सकोच का अनुभव करता है। सस्कृत से इतर छंदो को ही कवि ने देसी छद कहा है। नयनंदी की एक विशेषता यह भी है कि वह प्रत्येक छंद में विषयवर्णन के साथ ही साथ उस छंद का नाम भी दे देते हैं—

वसन्त तिलक सिंहोद्धता वा णामेदं छन्दः
तुरंगति मदनो वा छन्दः
पियंवदा अनन्तकोकिला वा नामेदं छन्दः

यहाँ छंदों का अपर नाम भी बताया गया है। नयनंदी के बारे में किंचित विस्तार से सूचना इसलिये दी गई कि कवि पुहकर कई दृष्टि से इस पद्धति का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं। मैं यह नहीं कह रहा कि उन्होंने नयनंदी का अनुकरण किया है। मेरे कहने का तात्पर्य सिर्फ यह है कि नयनंदी ने जिस पद्धति से यह तरीका प्राप्त किया उसी का अनुसरण पुहकर भी करते हैं।

कवि पुहकर ने रसरतन में करीब पैंतीस छंदों का प्रयोग किया है—

१—छप्पय (२) दोहा, (३) सोमकांति (४) घाटक सारदूल (५) चौपाई (६) दंडक (७) सवैया (८) तोटक (९) पद्धरी (१०) प्रवंगम (११) मोती-दाम (१२) सोरठा (१३) कुंडलिया (१४) कवित्त (१५) प्रवानिक (१६) गीतिका (१७) कंठभूषण, (१८) भुजंगप्रयात (१९) सोरठा दोहा (२०) [illegible] (२१) पैडी (२२) गुनदीपक (२३) गीतमालती (२४) मोदिका (२६) [illegible] (२७) कामिनीमोहन (२८) नाराच (२९) गाथा (३०) भुजंगी (३१) लीला-वती (३२) दुर्मिला (३३) त्रिभंगी (३४) [illegible] (३५) चन्द्रज्योति।

इन छंदों मे कई तरह के छंद हैं। कुछ प्राचीन छंद जिनके नाम [illegible] गए हैं। कुछ नए छंद जो मध्यकाल में ही प्रचलित हुए। उपर्युक्त छंदों में से निम्नलिखित छंद प्राकृत पैंगलम् मे मिलते हैं। उनके लक्षण वहीं से देखने चाहिए। मात्रा वृत्त के अंतर्गत गाहा (पद संख्या ५४-५७) [illegible]

र० र० भू० ६ (१५००-६२)

दोहा भेद ( ७८-८३ ) रोला ( ९१-९३ ) छप्पय ( १०५-१०८ ) पज्झटिका या पद्धरी ( १२५-१२७ ) अरिल्ल ( १२७-१२८ ) कुंडलिया ( १४६-१४८ ) सोरठा ( १७०-१७१ ) लीलावई ( १२९-१९० ) त्रिभंगी ( १९४-१९५ ) तथा वर्ण वृत्त के अंतर्गत मालती ( ५४-५५ ) प्रमाणिक या प्रमानिय ( ६८-६९ ) तोटक ( १२९-१३० ) मौत्तियदाम ( १३३-१३४ ) नाराच ( १६८-१६९ ) सद्दल सट्टक ( १८६-१८९ ) भुजंग प्रयात ( १२४-१२६ ) आदि छंद प्राकृत पैंगलम् में सलक्षण-सोदाहरण दिए हुए हैं। शेष छंद सोमकांति, दंडक, सवैया, कवित्त, प्रयंगम, गीतिका, कंठभूषण, वथूह, पौड़ी, गुन दीपक, त्रोटकी, कामिनी मोहन, भुजंगी, चन्द्रजोति, शंखधारा और मोदिका बच जाते हैं। इन में दंडक, सवैया, कवित्त, गीतिका आदि छंद हिंदी में भी काफी प्रचलित है।

कामिनी मोहन छंद संस्कृत का स्रग्विणी छंद ही है। अपभ्रंश में यशःकीर्ति का एक छंद देखिए—

अस्सथामो मुऊ तेहि ता उत्तऊ।
मुच्छिऊ दोण धनु बाण हत्थह चुऊ॥
चेयणा या लहिवि कस्सा वि णउँ पत्तिउ।
सच्चवाई य तउ धम्म सुउ पुच्छिउ॥

उसके कहते ही कि अश्वत्थामा मरा, द्रोण मूर्छित हुए और हाथ से धनुष बाण च्युत हो गया। चेतना पाकर किसी का कभी विश्वास न करते हुए धर्मपुत्र से उन्होंने 'सच सच' पूछा। यहाँ चार रगण हैं, और यह स्रग्विणी छंद है। इसी को कामिनीमोहन भी कहा गया है।

वथूह छंद मुझे रोला का ही एक रूप मालूम होता है। यह वस्तुतः वस्तुक या वत्थुअ रोला ही है। पुहकर का छंद इस प्रकार है—

कासी कौसल कारनाट, कनवज्ज कलिंजर।
काम रूप कैकय कलिंग, केदार कंछधर॥

यहाँ पर १४ मात्रा पर विराम करके १४-१० की कुल चौबीस मात्राएँ होती हैं। प्राकृत पैंगलम् में इसके १३ भेद गिनाए गए हैं।

प्राचीन छंदग्रंथों का अध्ययन करके रोला के बारे में अपने विचार देते हुए डॉ० विपिन विहारी त्रिवेदी ने लिखा है—'प्राचीन छंद ग्रंथों में कोई रोला

नामक छंद नहीं मिलता। हाँ, काव्य, वस्तु, वदनक, वत्थुओं और वत्थुवयण लगभग इसी के अनुरूप हैं।[1]

**प्रयंगम छंद**, जिसका उदाहरण पुहकर के विजयपाल खंड मे १३२-१३३ तथा चंपावती में २३५-२४० संख्या मे देखा जा सकता है, वस्तुतः २१ मात्राओं का होता है। ८, १३ पर यति आदि में गुरु और अंत मे जग (।ऽ। + ऽ) होता है। छं० प्र० में पृष्ठ ४७ पर यह लक्षण दिया है। रूप दीप पिंगल छं० ४७ मे २१ मात्राओं और अंत में रगण का नियम दिया है। अप्सरा खंड के छंद ८०-८२ इसी निचले नियम के उदाहरण हैं।

**गीत मालती**, जिसका प्रयोग पुहकर ने चित्रखंड में १६२-१६६ के अंतर्गत किया है, वस्तुतः हरिगीतिका छंद ही है। रासो मे भी यह छंद गीता मालवी, गीता मालती, गीता मालची आदि नामों से आता है। डॉ० त्रिवेदी ने इसे १६ + १२ के विश्राम से २८ मात्राओं का हरिगीतिका वताया है, जिसके चरणांत में प्रायः रगण रहता है।

**भुजंगी छंद**—चंपावती खंड मे ३८६-३८८ संख्या के अंतर्गत प्रयुक्त हुआ है। यह १२ वर्ण और चार यगण का छंद है। भुजंगप्रयात से भिन्न नही प्रतीत होता।

**मोदिका**—पुहकर ने छंद मोदिका का भी प्रयोग किया है। यह छंद युद्ध खंड में संख्या ३१ मे दिया हुआ है।

घर घर बाउ जुरे धर अंमर। मो जिय वैरि परयौ अति संमर॥
चात्रक टेक हिये उर सालति। पंकज लीन तजो अलि मालति॥

इस छंद के एक चरण में १६ मात्राएँ और १२ वर्ण है। उपर्युक्त उदाहरण मे पहले चरण को छोड कर शेष चरणों में चार भगण होते हैं। ये लक्षण प्राकृत पैंगलम् में द्वितीय भाग १२५ वे छंद मे तथा छंद प्रभाकर के पृष्ठ १५० पर दिये हुए है।

**कंठभूषन**—रसरतन में स्वप्न खंड के १६८-१७० संख्या के छंदों में इस छंद का व्यवहार किया गया है। यह छंद १२ वर्ण, १६ मात्राएँ और चार भगण का मोदक छंद ही है (देखिए चंदवरदाई और उनका काव्य, पृष्ठ २७६)। मोदक या मोदिका के बारे में ऊपर विचार हो चुका है।

---

१. चंदवरदाई और उनका काव्य, पृष्ठ २३६।

संषधारा— भई बुद्धि पंगा। लख्यो सोम अंगा॥
अपारं अनूपं। मनौ रासि रूपं॥
(स्वप्नखंड १७५)

इस छंद में प्रत्येक चरण में ६ वर्ण और १० मात्राएँ आती हैं। यह दो यगण का छंद है। असल में इसे ही प्राकृत पैंगलम् में शंखनारी छंद कहा गया है (खंड २ छंद ४२)। छंद प्रभाकर में इसे ही सोमराजी छंद भी कहा गया है। युद्ध खंड में ४७-५० संख्या में प्रयुक्त छंद को पद्धरी लिखा गया है, मगर यह भी शंखधारा या सोमराजी छंद ही है।

श्लोक—

अस्ति जदपि सर्वत्र नीर नीरज मंडितं।
रमते न मरालस्य मानसं विना।
(विजयपाल० २४५)

यह पृथ्वीराज रासो में बहुत प्रयुक्त हुआ है। पिंगल छंदसूत्र के आधार पर इसे लौकिकी अनुष्टुप छंद कहा जा सकता है।

गुनदीपक—

तहँ मान सरोवर सोहनं। सुर नाग नर मनु मोहनं॥
सजि पारि चारिहु ओरई। मन मुक्ति मरकत जोरई॥

इस छंद की प्रत्येक पंक्तियों में १४ मात्राएँ हैं। तीन चौकल के बाद एक गुरु का विधान है। यह रासो के वेलीद्रुम या प्राकृत पैंगलम् के हाकलि (१।१७२-७४) से मिलता जुलता छंद है।

पैंडी—विजयपाल खंड में ६२-६५ में प्रयुक्त। १२ + १० के विश्राम की २२ मात्राओं का छंद। यह निसेणी या निसाणी छंद से साम्य रखता है। निसाणी छंद के लिये देखिए चंदबरदायी और उनका काव्य पृष्ठ २४४।

रंभावति सौं जंपहीं, गुनवंत सहेली।
बाला बोलनि कानु दै, अबला अलबेली॥
पोहर द्वै दिन पाहुनी, जनि होहि गहेली।
अंत चलैगी सासुरे, सुनि नारि नवेली॥

चंद्रजोति—

प्रिया पीय प्यारी, सखी दुहेली।
न सेज सोवै, निसा अकेली॥

सरीर छीनं, सीतकार विकारमारं।
विहालन अंग तजै, त्रिय सिगारं॥
मराल हेतं अहार हारं, जनु पंचवानं।
वसंत वैरी हरति, जु श्वास प्रिय प्रानं॥

( युद्ध ५६५८ )

गणना करने से मालूम होता है कि इस छंद के पहले चार चरणों में ८+६=१४, ८+६=१४, ८+१४=२२, ११+७=१८ मात्राएँ तथा निचले दो चरणों मे १५+९=२४ तथा ११+१०=२१ मात्राएँ हैं। स्पष्ट ही यह छंद लिपिकारों की असावधानी के कारण बहुत भ्रष्ट हो गया है। इसकी तुलना रासो समय ३६ के २३३, ३५ मे व्यवहृत छंद कमंध से की जा सकती है। यह छंद विचारणीय है।

सोमकांति—

जा कुन्देदु तुषारं हारं। जा सभ्रो बिस्था बिस्तारं॥
जा वीना दण्डी मंडीयं। सा मा पातोयं चंडीयं॥

( आदि० ६ )

यह छंद प्राकृत पैंगलम् के पादाकुलक से मिलता जुलता है ( प्रा० पैं० १।१२९ )। इसमे प्रत्येक चरण मे १६ मात्राएँ होती है। लघु गुरू का कोई विधान नहीं होता।

सवैया, दंडक, कवित्त आदि नामों का प्रयोग रसरतन में बड़े शिथिल ढंग से हुआ है। कहीं सवैया को कवित्त और कवित्त को सवैया लिख दिया गया है। दंडक का प्रयोग प्राचीन है, मगर इसके प्रयोग में भी यहाँ शिथिलता दिखाई पड़ती है।

पुहकर द्वारा प्रयुक्त छंद बहुत महत्त्वपूर्ण तथा विचारणीय हैं और ये छंदों पर अध्ययन करनेवालो के लिये आकर्षण के विषय हो सकते हैं।

छंदों के प्रयोग में पुहकर ने वर्णन के बीच में ही छंद के नाम का भी प्रयोग कर दिया है। वहाँ छंद नाम दूसरा प्रासंगिक अर्थ भी रखता है। जैसे—

१. भुजा जनु नाग विराजत घाम। उरस्थल सोभित मौक्तिकदाम॥

( [illegible] )

२. एक टक्के रहीं अंपिया जोहनं। रूप देखौ जहाँ कामिनी मोहनं ॥
३. वत्तीसौ लच्छिन लच्छि लसै तन ज्यों गुन अच्छरि लीलवती।

यहाँ केवल लीलावती छंद का नाम ही नहीं दिया है वल्कि उसका लक्षण भी बताया है कि यह ३२ अक्षर का छंद है।

यह प्रवृत्ति अपभ्रंश कवियों में दिखाई पड़ती है। नयनंदी का उदाहरण ऊपर दिया गया है। रासोकार ने भी इस पद्धति का पूरी तरह निर्वाह किया है। कुछ उदाहरण देखिए—

१—इति मोदक छंदह वंध गती।
जदि सस्र सुभाँतिय वंध मती ॥
२—कठभूषन छंद प्रकासय।
बारह अच्छरि पिंगल भासय ॥
(५२।१७६)

३—नव जंपि नऊ रस वीर नचै।
भमरावलि छंद सुकित्ति रुचै ॥

इन प्रसंगों को देखने से पता चल जायगा कि रसरतन का कवि अपभ्रंश परंपरा का सचेष्ट निर्वाहक ही नहीं उसका पूर्ण जानकार भी था। रसरतन और रासो के छंदों[1] में तो अद्भुत साम्य है। सच पूछिए तो ऐसा लगता है कि पुहकर के सामने चंद और केशव का छंद संबंधी जो आदर्श वर्तमान था, उसका उन्होंने अच्छी तरह पालन किया।

———

१. रासो के छंदों के लिए चंदवरदायी और उनका काव्य में 'छंद समीक्षा' शीर्षक प्रकरण देखिए।

# रसरतन की भाषा

रसरतन की भाषा इस दिशा में काम करनेवाले किसी भी शोधार्थी को अपनी बहुरंगी छटा, आदर्श ब्रजभाषोचित गठन, पिंगल ब्रज की ठसक और अवधी भाषा की घुलीमिली माधुरी के कारण सतत आकृष्ट करेगी। रसरतन की भाषा मे जहाँ एक ओर सूर और दूसरे अष्टछाप के कवियों की भाषा की लुनाई और मनोहारिता है, तो वहीं इसमे चंद, नरहरि आदि की पिंगल शैली की चारण ब्रजभाषा का प्रयोग भी। कवि का जन्मस्थान पंचाल है, इसलिये भाषा में स्वभावतः अवधी का मिश्रण भी हुआ है। हम चाहे तो इस आधार पर इसे पाँचाली ब्रजभाषा भी कह सकते हैं जिसे कुछ विद्वान् कन्नौजी कहते है।

कन्नौजी अथवा पांचाली ब्रजभाषा के विषय मे विद्वानों मे बड़ा मतभेद दिखाई पड़ता है। जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने लिंग्विस्टिक सर्वे ग्राव इंडिया ( भाग ६ खंड १ पृष्ठ १-२ ) मे कन्नौजी ब्रजभाषा की निम्नलिखित विशेषताएं बताई है—

( १ ) औकारांत के स्थान पर ओकारांत प्रयोग।

( २ ) व्यजनांत सज्ञाओं मे उ अथवा इ का जुड़ना।

( ३ ) मध्य ह का लोप।

( ४ ) संकेतवाचक सर्वनाम वौ, जौ, वोहु जोहु आदि।

( ५ ) पूर्वकालिक कृदंत दओ, लओ, गयो आदि।

( ६ ) हतो, हती आदि सहायक क्रिया के भूतकालिक रूप।

( ७ ) रहों, थो आदि सहायक क्रिया के रूप।

हिंदी व्याकरण के प्रसिद्ध लेखक एस० एच० केलाग ने कन्नौजी की जो कुछ खास विशेषताएँ बताई हैं, वे इस प्रकार है—

परसर्ग—को, ने, से, सेती, तें, ते; करि, करिके, को, पै, पा, में, मों पर, लों आदि का प्रयोग।

सर्वनाम—मैं, मोहि, मो को, मोतें, मेरा, आदि ए और ओ रूपवाले, ब्रज के ऐ और औ रूपवाले नहीं।

यिह, उहि, या जेहि, तिह आदि संकेत वाचक,

किहि, कोहु, किमू आदि प्रश्नवाचक,

क्रिया ( सहायक ) हूँ, हैगा, हैगो, हैं, हैंगे, हौ।
थी, हती, हतो, थे, हते,
होऊँ, होए।
होइहों. होऊँगो, होइहै, होइहैं।
होत हैं, होत हतो,
भयो हूँ, भयो हतो।

डॉ० धीरेंद्र वर्मा का कहना है कि ग्रियर्सन द्वारा बताई गई विशेषताएँ व्रजक्षेत्र में कहीं न कहीं मिल जाती हैं। इसलिये कन्नौजी को अलग भाषा मानने की आवश्यकता नही है। उन्होंने लिखा—'इस प्रकार कन्नौजी की ऐसी कोई विशेषता नहीं मिलती जो ग्रियर्सन के अनुसार व्रजक्षेत्र में न पाई जाती हो। उपर्युक्त तुलनात्मक परीक्षा के आधार पर कन्नौजी को निश्चित रूप से व्रजभाषा के अंतर्गत रखना चाहिए।[1] ग्रियर्सन ने स्वयं कहा था कि 'वास्तव में कन्नौजी व्रजभाषा का ही एक रूप है, किंतु जनमत के कारण उस पर अलग विचार किया जा रहा है।'

जो भी हो, इतना तो मानना ही पडेगा कि कन्नौजी का मुख्य ढाँचा व्रजभाषा का होते हुए भी उसमे कुछ विशेषताएँ हैं। ये विशेषताएँ अनेक कारणों से हो सकती हैं। सबसे बडा कारण इस प्रदेश से अवधी क्षेत्र का संनिवेश और संमिलन है। इसी कारण कन्नौजी पर अवधी के प्रभाव के कुछ लक्षण स्पष्ट दिखाई पडते हैं।

चूँकि कवि पुहकर इस क्षेत्र के निवासी थे इसलिए उनकी भाषा में कन्नौजी की अनेक विशेषताओ का सुरक्षित रहना स्वाभाविक ही है। उनकी भाषा का मूल ढाँचा व्रज का ही है, मगर कुछ विशेषताएँ भी हैं। नीचे ये विशिष्टताएँ, जो प्रायः परिनिष्ठित व्रजभाषा मे नहीं दिखाई पड़ती, या होती भी हैं तो आपवादिक, प्रस्तुत की जा रही हैं। ये सभी रूप अवधी प्रभाव के सूचक हैं। इन्हें पूर्णतया अवधी रूप कहना भी समीचीन न होगा। ये वस्तुत मिश्र रूप हैं। अवधी और व्रज के प्रभाव और मिश्रण से उत्पन्न विकृत रूप।

---

१. व्रजभाषा, हिंदुस्तानी एकेडमी, १९५४, पृष्ठ ३४।

(१) बहुवचन में ब्रजभाषा में अक्सर नि प्रत्यय चलता है। पुहकर कन्नौजी की प्रवृत्ति के अनुरूप 'न' ही लिखते हैं। 'नि' का प्रयोग भी बहुलता से मिल जाता है।

भयौ सवन मन धीर ( स्वप्न० ५७ ) सखिन ( स्वप्न० ६२ )
कविन सबन ( आदि १२ ) गाहकन ( आदि १६ )

(२) **विशेषण, संज्ञा और क्रियाओं के ओकारांत रूप** भी कन्नौजी प्रवृत्ति के सूचक हैं। भोरो (आदि १७) विवो ( विजय० १७१ ) नवो ( स्वयं० २५ ) जूडीयो ( स्वप्न० ५० )।

(३) **परसर्ग**—परसर्गों मे व्रज में सौं, लौं, में, पै, उपरि आदि मिलते हैं। केहुँ, के, से, मझि, मझारी, माझे, से, सेती, केरी, केर, आदि अवधी प्रभाव के सूचक हैं। से न देवता ( आदि० ५१ ) दुहु के मन ( स्वप्न १२ ) जीवनि केरी ( चित्र १६६ ) घट मधि ( चित्र, २०० ) मुदित कहँ ( चित्र० २०३ ) करौ लाज कर टेके केरी ( चित्र० २२२ ) कही हम सेती (विजै० १७) उहि नायक सेती ( विजय० ६४ )। चतुरानन दै आदि कवि ( आदि० १५ ) यह 'दै' बहुत ही विशिष्ट रूप है।

(४) **सर्वनाम और सर्वनामिक विशेषण**—भावै ताहि ( आदि० १५ ) जाहि (आदि० १५) जिहि वस (आदि० २६) जिहि आनि (आदि० ३०) जे वरनौ ( आदि ३४ ) तिहि काला ( आदि० ५७ ) तेन काल ( आदि १६७ ) किहि गुन ( आदि २०६ ) तिहि नाम ( स्वप्न० १० ) जे वैन ( स्वप्न० १२ )

वहै चित्र ( चित्र २०० ) उहि विधि सेज वहै उजियारी ( चित्र २०१ ) मुहिं मारग माहीं ( चित्र २२० ) मोहीं ( चित्र २२१ ) यहै मत्र ( चित्र २२६ ) यै नहिं ( विजय० ६३ )

वहि समुद ( आदि २१ ) इहि समुद्र ( आदि २१ )
मुहि अनाथ ( आदि १५० ) कोइ ( आदि १७१ ) केऊ ( आदि ६६ )
वहि सम ( स्वप्न० ८ )

इन रूपों को देखने से स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि व्रज के ता, जा, या, वा आदि साधित रूपों से न बनकर ति, जि, ते, के, य या दि आदि रूपों से बने हैं। शुद्ध व्रज में ताकौ, जाकौ, याकै, जिनकौ, तिनकौ, आदि बनेंगे। इन पर भी अवधी प्रभाव ही दिखाई पड़ता है।

(५) **क्रिया**—क्रिया रूपों पर भी अवधी प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। कुछ विशिष्ट प्रकार के क्रिया रूपों के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।
**आज्ञार्थक**—करो ( आदि० १४ ) लेहु ( आदि० ८० ) लेहि ( आदि ३१ ) लावहु; गमावहु ( आदि० १५१ ) होहिं ( विजय० ६२ ) सुनावहु ( विजय ६७ )

(६) **अवधी क्रिया में भविष्यकाल** मे प्रायः 'व' प्रकार के रूप चलते हैं। ये रूप पश्चिमी हिंदी मे प्रायः नही होते। रसरतन में भी कहीं कहीं इस प्रकार के रूप मिलते हैं।
आइबै सखी (अप्स० १७४) मिलवै ( चंपावती ३८ ) मरिबौ जुगल नैन टक लाये ( युद्ध० २० )। जानबौ ( युद्ध० २१६ )।

(६) **अवधी की भूतकालिक क्रिया का 'न' रूप**, जो कीन लीन दीन आदि मे मिलता है, रसरतन मे भी प्राप्त होता है। कवि ने ऐसे रूपों को कहीं कहीं ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार ओकारांत अथवा औकारांत बनानेका प्रयत्न भी किया है—
कीनै ( आदि १४ ) कीनौ, दीनौ ( आदि० ६२ ) लीनै, कीनै ( आदि० ६८ ) कीन ( आदि ६२ ) लीन्है ( स्वप्न० १६ )

(७) अपभ्रंश की प्रवृत्ति के अनुसार **भूतकृदंत** के रूपों की सुरक्षा की प्रवृत्ति भी दिखाई पडती है:—बुज्झिय ( आदि० ४ ) सुज्झिय ( आदि० ४ ) किय ( आदि २१ ) हुव ( आदि ७१ ) लिय ( आदि० ७६ ) संदेस लिय ( विजय० ३ )

(८) **भविष्यत्काल गो, गा, गी वाले, विशिष्ट कन्नौजी रूप** भविष्यकाल में गो, इगो रूप कन्नौजी का अपना रूप है। जैसे—
वियाहर होहिगौ ( स्वप्न० ५८ ) हरेगो (स्वप्न० ५६) होहिंगौ ( स्वप्न० २८४ ) परेगो ( विजय ६४ ) पछिताहुगी ( विजय० ६४ ) होहिगौ ( युद्ध० २२६ )

(९) **सहायक क्रिया** के अस् के रूप भी अवधी प्रभाव की सूचना देते है।
आहि (होना, आदि० ६७) पुत्र राज के आहू ( चित्र २१२ ) ढीह आहि ( अप्स० १२७ ) आहिये ( स्वप्न० १४६ )

(१०) **मूल धातु का वर्तमान क्रिया के रूप में प्रयोग** अवधी में प्रायः होता है। ( देखिए कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा, क्रिया प्रकरण )।

विनव चाव ( आदि० १६८ ) चामर विराज ( स्वयं० ७१ ) सुरलोक भ्राज ( स्वयं० ७१ )।

(११) **हती**—को ग्रियर्सन और केलाग दोनों ने विशिष्ट कन्नौजी रूप माना है। रसरतन के प्रयोग देखिए—

जहाँ हती ( चित्र० २०३ ) हौं तो हती चरन तुव दासी ( चंपावती० ३५ ) हती महि मंडल ( स्वं० ३३८ )

(१२) **मध्यग ह का लोप**—चौवा ( आदि० २१०<चौदह<चतुर्दस ) समारी (आदि० ६६<संभार) समारे ( विजयपाल० १३९<सम्हारे< सं० संभार )

मगर कहीं कहीं ह का आगम भी मिलेगा जैसे मंडफ (स्वयं २३<मंडप) वहिक्रम ( चित्र० २५२<वयक्रम ) फानूस ( आदि० १६८<पानूस )

**रसरतन की भाषा की ध्वनितत्वात्मक विशेषताएँ—**

(१) **सानुनासिकता**—कहीं कहीं अकारण और प्रायः संपर्कज सानुनासिकता के उदाहरण मिलते हैं।

१—संपर्कज—कुँवर ( विजय० १७६ ) अँग्या ( विजय० १६५<आज्ञा ) ठाँ ( आदि० ४६<स्थान )

२—अकारण—पहुँकर ( विजय० १६३ )

(२) **सरलीकरण**—वागेसुर ( आदि० २०<वागेश्वरी ) रांक ( आदि० ८०<रंक ) कुटुम( आदि० १८३<कुटुंब )

यह प्रवृत्ति परवर्ती अपभ्रंश से ही आरंभ हो गई थी। व्यंजन द्वित्व की कठोरता को मिटाने के लिये द्वित्व की जगह एक व्यंजन और क्षतिपूर्ति के लिये पूर्ववर्ती स्वर का दीर्घीकरण कर दिया जाता था। पुहकर ने प्राचीन [illegible] शब्दों की जिस प्रकार सुरक्षा की है, उसे देखते हुए उनके लिये सरलीकरण का निर्वाह बहुत आवश्यक था। तद्भव शब्दों पर विचार करते हुए ऐसे बहुत से अन्य उदाहरण दिए गए हैं।

(३) **स्वर संकोच**—तवच्चरे ( अप्स० २६<तव+उच्चरे ) [illegible] ( [illegible] ७<पहरेदार ) अवहित ( स्वयं ७०१<प्रावहिं गात्रों ) [illegible] ( [illegible] २९<चक्रपति ) सरनंगर ( आदि० ६२<स्वनगर ) [illegible] ( आदि० १६४< अचानक )जदिन ( स्वप्न० २००<या दिन ) [illegible] ( [illegible] २७४<धनवंतरि )

(४) रेफ को हटाकर उसके स्थान पर पूर्ण र का विधान पिंगल व्रज, अवहट्ट और व्रजभाषा में तथा और भी कई उपभाषाओं में दिखाई पड़ता है।

पारस<पार्श्व ( आदि० २०२ ) पारथ ( आदि ५४<पार्थ ) दरसन आदि ५५<दर्शन ) ( देखिए चन्द वरदाई की भाषा, चन्द वरदाई और उनका काव्य, पृष्ठ २६३ )

(५) ओज या टंकार पैदा करने के लिये, छन्द भंगी के कारण अकारण द्वित्व देने की प्रवृत्ति का पुहकर ने पुरस्सर अनुकरण किया है—

द्वार पालक्क ( स्वप्न २७ ) तिलक्क ( स्वप्न ३२ ) सरोजदल्ल ( स्वप्न० ३४ ) हज्जार (विजय० १६७) सद्द (विजय० २००) ढलक्कैं; झलक्कै (विजय० १६६ ) तुरक्की ( विजय० २०४ ) लग्गाम ( विजय २०७<लगाम ) रेसंम्म (विजय० २०७<रेशम) दाडिम्म (विजय० २१२<दाडिम) दलपत्ति (विजय० २१५) भारथ्थ (विजय० २१५<भारत) मारुत्त (विजय० २१६<मारुत ) किरन्नि ( अप्स० ३८ ) कप्पाल ( आदि० ३ )

(६) मध्यग म > वँ = विवाँन<विमान (अप्सरा० १) कोवँल (आदि ५१< कोमल) भवैं ( युद्ध० २६३<भ्रमैं ) निविंत ( युद्ध० २२०<निमित्त ) सावंथ ( युद्ध० २४४<सामंत )

## रूपतत्व संबंधी विशेषताएँ

(१) परसर्गों और कारक विभक्तियों की दृष्टि से विचार करने पर लगता है कि रसरतन के कवि ने अनेक प्रकार के प्राचीन, नवीन, अवधी व्रज आदि परसर्गरूपों के एकत्र निर्वाह का प्रयत्न किया है। अवधी रूपों से प्रभावित उदाहरण हम पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। नीचे उस तरह के उदाहरण दिये जा रहे हैं जो या तो व्रज के हैं अथवा पूर्ण सार्थक परसर्गों के प्रयोग के हैं। अर्थात् जहाँ परसर्ग टूट फूट कर एकदम अर्थहीन द्योतक शब्दों जैसे नहीं हो गए हैं।

चरन जुग वाके ( चित्र २०१ ) बान उर ताके ( चित्र २०१ ) विदा कौं ( चित्र २२७ ) मदन तैं बाढ्यो ( चित्र २२६ ) देखन कौं ( चित्र २२६ ) मजन कौं नाम ( चित्र २३१ ) रथ तैं आयौ ( चित्र २४० ) विधि सौं ( चित्र २१८ ) जाकौ वरैं (विजय० ४६) देवनि कौ ( अप्स० २०७ ) मुख मध्य ( अप्स० २०८ )

ता मधि ( आदि० ५६ )

सयन हेत ( स्वप्न० २६ ) स्वयंवर काज ( के लिए, विजय ५२ ) पंथ मैं ( चित्र २३० ) सेज तन हेरी ( अप्स० ४६ )

**(२) सर्वनामों के व्रजभाषानुसारी रूप**—ता छिन ( अप्स० १६१ ) मो पर (अप्स० १६७) तुव हेत (अप्स ०१७८) वे यामिनी (अप्स० १६०) मैं ( अप्स० १६६ ) ते ( अप्स० २०५ ) तुवँ ( स्वयं० १५ ) वाकी ( चित्र० १५७ )

व्रज भाषा में प्रचलित अनेक प्रकार के सर्वनामों का वाहुल्य है। हौं, मैं, तैं, तुवँ, वा, वै आदि पुरुष वाचक तथा उनके अनेक विकारी रूप तथा अपनै, आपनौ निज वाचक मे, वा, ता, वाले साधित रूपों के बने अनेक सर्वनाम रूप मिलते है।

**(३) षष्ठी कारक की अपभ्रंश 'ह' विभक्ति** कहीं-कही सुरक्षित दिखाई पड़ती है। कंठह ( आदि० १२ ) मुखह ( आदि० १६४ )

क्रिया रूपो की विविधता किसे आश्चर्यचकित नहीं कर देती। नीचे कुछ प्रमुख क्रिया रूप दिये जा रहे है—

**(४) वर्तमानकालिक तिङन्त रूप**—निहारै, टारै, ( विजय० ११ ) लायै, लगायै ( विजय० १३ ) आवै ( विजै० ५२ ) मोहैं ( विजय० ७५ ) देई, लेई ( विजय० ७७ ) रहै ( अप्स० १२६ ) कहै ( अप्स० १२७ ) भनिजै ( आदि० ३२ )

**(५) हिं या छंदानुरोध के कारण हीं विभक्ति वाले रूप** भी पर्याप्त मिलते हैं—सिखरावही ( प्रेरणार्थक, विजय० ६१ ) गँवावहिं ( विजय० ७० ) गावहिं ( अप्स० १२५ ) मानहिं ( विजयपाल २५ ) बखानहिं ( विजय० २२५ ) विराजही विजय० २२६ ) छाजहीं ( विजय० २२६ ) लाजही ( विजय २४० ) भाव हीं ( विजय० २४१ ) पाव हीं ( विजय० २४१ ) पावहि ( विजय २४७ ) कहहिं ( अप्स० १४ )

**(६) कृदंत का वर्तमान काल में प्रयोग** —

राजंत दन्ता ( विजय० १६६ ) उड़ंता ( विजय० १६६ )

राजत मुकुट ( विजयपाल २१० ) सोहंत ( विजय० २११ ) [illegible] ( विजय० २११ ) झलकंति ( विजय० २११ ) लूटन ( अप्सरा० १२० ) अलस्यान् ( अप्स० १६८ ) मुसक्यात ( अप्स० १७० )

(७) भूतकाल स्त्री लिंग रूप—

मुरी ( आप्स० १२३ ) पाई ( अप्स० १३१ ) भई ( अप्स० १३२ ) हँकारी ( अप्स० १३३ ) दई ( अप्स० १३७ ) विलपानी ( अप्स० १३७ ) करी ( अप्स० १३८ ) ल्याई ( अप्स० १४० ) बिहानी ( अप्स० १६२ ) सानी ( अप्स० १७० ) ऊभी ( अप्स० १८० ) पेली ( अप्स० १८२ ) वर्सी ( अप्स० २०४ ) धँसी, रसीं, सरसीं ( अप्स० २०४ ) लिपटाती, जाती ( अप्स० २३३ )

(७) विधि के रूप—

धीर धरौ ( चित्र० २२३ ) धारियौ ( चित्र० २२५ ) करि ( विजय० ७६ ) सुनि ( विजय ९३ ) कीजौ ( विजय १७८ ) छिज्जह ( आदि० २० )

विधि रूपों मे ब्रजभाषा में यै और जै दोनों आदरार्थक रूप भी चलते हैं—ठाठियें; हँकारिये ( विजय० ३४ ) दीजियैं ( चित्र० २१६ ) कीजियै ( विजय० ४१ ) विवाहिजै ( विजै० ४२ ) सुनियैं ( विजै० ४६ ) परिहरिये ( विजय० ७२ ) कीजै ( विजय० ७३ ) दीजै ( विजय० ७८ )

(८) भूतकाल सामान्य—

करौ (चित्र० २१६) तुलान्यौ ( विजय० ६) लेप्यौ, षेप्यौ, (विजय० ९) पहिचान्यौ; जान्यौ (विजय० १०) विसेप्यौ, लेप्यौ (विजय० १८) दिखरायौ, आयौ ( विजय० २१ ) उपज्यौ, वच्यौ ( विजय० २७ ) भयौ, जियौ ( विजय० २९ ) हँकारियो ( विजय० ५१ ) ठयौ ( अप्स० २११ )

(९) भविष्यत् काल के रूपों मे 'ह' प्रकार के औकरान्त और ऐ कारान्त रूपों के प्रयोगः—

देषिहो ( चित्र० २२२ ) ठाठिहै ( चित्र० २२४ ) आइहै (विजय० ३४) पठाइहौ ( विजय० १७६ ) चलहिं ( विजय० १७७ ) होहिं ( अप्स० १२८ ) पैहै ( अप्स० १२९ ) प्रगटिहै ( आदि० २३ )

(१०) क्रियार्थक संज्ञा—खेलिवौ (विजय०, ६५), रिझाइवौ (विजय० ६८) परिप्यवो ( विजय० ६८ ) मानिवी ( विजय ८३ )

(११) पूर्वकालिक—मिलै = मिलाकर ( विजय० ७६ ) परवानि ( विजय० १७९ ) आन ( स्वयं० ७५ < आनि ) भीन ( स्वय० ७५ < भीनि = भीन कर )

इससे स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वकालिक का मुख्य प्रत्यय इ ही है। ब्रज

की प्रवृत्ति के अनुरूप पूर्वकालिक द्वित्व ( देखिये सू० पू० व्रज० § ६६ ) भी मिलते हैं। जैसे—

साजिकर ( विजय० १७८ ) लै ढहाइ ( अप्स० १२१ ) जीति करि १२२ ) रीझि करि ( अप्स० १२४ ) बोलि लै ( अप्स० १६६ ) जाइ कै ( स्वयं० ३४३ )

(१२) **अव्यय के प्रयोग**—किधौं ( अप्सरा १२१ ) पाद पूरक जू ( अप्स० १४१ ) क्यों करि ( अप्स० १४१ ) इमि ( अप्स०१ ६६ ) जिमि ( अप्स० १७१ ) जनु ( अप्स० १७१ ) जौ ( अप्स० १७४ ) कैहूँ ( अप्स० १६६ ) यौं ( अप्सरा २०७ ) जेमि ( आदि १२ )

नातर ( चंपा० ३१ ) जनु ( आदि १७७ )

वेगहीं ( स्वप्न ५७ ) कदाचि ( आदि ६५ <कदाचित् )

## शब्दसमूह

रसरतन नाना प्रकार के शब्दों का भांडार है। तद्भव शब्दों की तो वह जैसे रत्न मंजूषा ही है। नीचे केवल आदि खंड के शब्द दिये जा रहे हैं। इन्हें देखने से मालूम हो जायगा कि तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों का कैसा संकलन इस ग्रंथ मे हुआ है।

**तत्सम**—अघ ( आदि० १ ) घोप ( आदि० २ ) मघवा ( आदि २ ) लाट ( आदि ४२ ) सविता ( आदि० ४७ ) चित्रक ( आदि० ५० )

**तद्भव**—त्रैपुर (आदि० < त्रिपुर) गौव (आदि० २ < गौः) कप्पाल (आदि० ३ < कपाल ) फनिंद्र (आदि० ३ < फणींद्र) मैन (आदि० ३ < मदन ) चर्मी ( आदि० ३ <चर्मी ) पौहप ( आदि० ४ <पुष्प ) वागेसं ( आदि० ८< वागेश ) सुम्रत ( आदि० १० < स्मृति ) सिरजै ( आदि० १६ <√सृज् ) वागेसुर ( आदि २० <वागेश्वरी ) मुहि ( आदि २० <मह्यम् ) गरुव ( आदि० २० गुरुक ) चौदा ( आदि० २१ <चतुर्दश ) तेन ( आदि० २१ < तेन ) जुक्ति ( आदि० २४ < युक्ति ) पौहपपति ( आदि० २६ <पृथ्वी पति ) सकवंदी ( आदि० २७ शक + वंध ) चक्कवै ( आदि० २६ <चक्रपति ) तरनि ( आदि० ३१ < तरणि ) करन ( आदि० ३२ <कर्ण ) गोरिक्ख ( आदि० ३२ <गोरक्षनाथ ) सौदुर्ज ( आदि ३२ < सौंदर्य ) दीह ( आदि० ३३ <दीर्घ ) तुच ( आदि ३३ <त्वचा ) जिभ्या ( आदि० ३३ < जिह्वा ) भनि ( आदि० ३३ <√भण ) लोइनि ( आदि० ३५ <लोचन ) मच्छ

( आदि० २५ <सुरूप या स्वरूप ) सुंडाहल ( आदि० ३७ शुंड + ) विवि ( आदि० ३७ <द्वे ) संकि ( आदि० ३७ <शंका ) वनराइ ( आदि० ३८ < वनराजि ) रेनुका ( आदि० २ <रेणुका ) किंकिर ( आदि० ३९ < किंकर ) पव्वय ( आदि० ४० <पर्वत ) साइर ( आदि० ४२ <सागर ) पिसान ( आदि ४२ < पेषण ) कविलास ( आदि० ४३ <कैलाश ) मूकि ( आदि० ४४ <मुक्त ) ठाँ ( आदि० ४६ < स्थान ) विक ( आदि ४६ <वृक ) निर्विस ( आदि० ४८ < निर्विष ) सुक ( आदि० ५० <शुक ) कोवँल (आदि० ५१ <कोमल) चवै ( आदि० ५ <√वच् ) प्रवान (आदि० ५४ < प्रयाण) दरसन ( आदि० ५५ <दर्शन) पयोत्र ( आदि० ५५ <पौत्र ) तामधि ( आदि ५६ <तत् + मध्य ) जतनु ( आदि ५८ <यत्न ) सपनंतर ( आदि० ६२ <स्वप्नांतर ) ततच्छन ( आदि० ६४ <तत् + क्षण ) थापि ( आदि० ६६ <√स्था ) संभरी (आदि० ६७ <शाकंभरि) दधिजात ( आदि० ७४ < उदधिजात ) तनै (आदि० ७८ <तनय ) रांक (आदि० ८० <रङ्क ) विनानिय ( आदि० ८१ <विज्ञानित ) वितीती ( आदि० ८२ <व्यतीत ) उभै ( आदि० ८४ <उभय ) कछुवक ( आदि० ८८ <कश्चित् ) दूषन ( आदि० ९६ < दूषण ) वरनिये ( आदि० ९८ < वर्णन ) अच्छरि ( आदि० ९९ < अप्सरा ) जोगिनी ( आदि० ९९ < योगिनी ) सार ( आदि० ९९ <सार )।

देशी—अटक ( आदि० १ ) सुज्झिय (आदि० ४) बुज्झिय (आदि० ४) मोरो ( आदि० १७ ) कड्डिय ( आदि० २० ) हलहिं ( आदि० ३७ ) सुदी ( आदि० ३७ ) हल्लिय ( आदि० ४२ ) थरहरिय ( आदि० ४२ ) खलभल ( आदि० ४२ ) डोंगरनि ( आदि० ४४ ) डोडा ( आदि० ४४ ) चाहि ( आदि० ९८ )।

विदेशी—आदिलवली (आदि० २६) पुरसाना ( आदि० २९ ) आलमपनाह ( आदि० ३१ ) तेग ( आदि० ३१ ) तुपार ( आदि० ३७ ) निस्सान ( आदि० ३७ ) मौजे ( आदि० ३८ ) पानै ( आदि ३९ ) सैल ( आदि० ४१ <सैर ) नौवत ( आदि० ४२ ) जगाति ( आदि० ४९ ) आपून ( आदि० ८२ ) नजम ( आदि० ८३ ) नसर ( आदि० ८३ ) अवियात ( आदि० ८३ )।

ऊपर केवल आदि खंड के संज्ञा, विशेषण तथा कतिपय क्रिया रूप दिए गए हैं। इन शब्दों को देखने से भी इतना तो प्रकट हो ही जाता है कि रसरतन में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का हुआ है। १४वीं शताब्दी के

आसपास से अपभ्रंश ग्रंथों में भी तत्सम की प्रवृत्ति पुनरुज्जीवित होने लगती है। विद्वानों ने इसका मूल कारण ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान तथा भक्ति-आंदोलन का आरंभ माना है। जो भी कारण रहा हो, संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग एकाएक पुष्कल मात्रा में होने लगा। तुलसीदास का मानस इस प्रकार की प्रवृत्ति की सबसे प्रतिनिधि रचना है। तत्सम शब्दों से तद्भव शब्द कहीं अधिक सुंदर, मधुर और प्रिय होते हैं, इसी कारण इनकी लोकप्रियता भी निःसंदिग्ध है। अपभ्रंश में विशेषतः जैन अपभ्रंश में स्वरों की विवृत्ति ( हायटस ) को मिटाने का प्रयत्न नहीं दिखाई पड़ता। इस प्रवृत्ति के कारण तद्भव शब्द बहुत कठिन और अपरिचित जैसे होने लगे। इससे निस्तार पाने के दो ही रास्ते थे। एक तो इनके स्थान पर पुनः तत्सम की ओर झुकाव, दूसरा कृत्रिम 'हायटस' को दूर करके तद्भव शब्दों को अधिक से अधिक बोधगम्य और जनसुलभ बनाना। तुलसीदास ने अपने काव्योद्देश्य और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रथम पथ चुना, पुहकर ने द्वितीय। इसमें कोई संदेह नहीं कि मानस और रसरतन का पूरा शब्द समूह यदि एकत्र करके विवेचित-विश्लेषित किया जाय तो हिंदी के मध्यकालीन अतुल शब्द भांडार का पूरा पता चल जाएगा।

## विशिष्ट प्रयोगिक तत्त्व

कवि पुहकर की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी जीवंतता है। यह सही है कि उन्होंने चारण शैली की व्रजभाषा के अनुकरण पर अनेक स्थानों पर शब्दों को तोड़ा मरोड़ा है और उनमें कृत्रिमता लाने का प्रयत्न किया है। साथ ही अलंकरण की अतिशयता के कारण उनकी भाषा कहीं कहीं बोझिल भी हो गई हैं, परंतु ऐसा उन्होंने परंपराप्रियता के कारण, अपने को सचेष्ट रूप से परिपाटी से संयुक्त दिखाने के लिये ही किया है। जहाँ उनके मन में यह कृत्रिम सचेष्टता नहीं आई है, वहाँ भाषा अत्यंत सहज और जीवन की गमक और स्पंदनशीलता से भींगी हुई दिखाई पड़ती है। इस लहरा कर चलती हुई भाषा में यथावसर कहावतें, मुहावरें, बिंब तथा व्यवहारजीवित उपमाओं के फल अनायास खिलते हुए चले जाते हैं। लोक कथाओं में जिस प्रकार के चित्रात्मक, नादपूर्ण, रसभींगे शब्दों और मुहावरों का प्रयोग होता है, वैसी ही छटा पुहकर की भाषा में भी दिखाई पड़ती है। उनकी भाषा एक ओर शास्त्रीय अलंकरण, पौराणिक

चित्र और चित्रात्मक बिम्बो से भरी पड़ी है तो दूसरी ओर उसमें लोक गीतों मे अपनाई जानेवाली भाषा की लुनाई और भंगिमा भी दिखाई पडती है।

नीचे उनकी भाषा मे प्रयुक्त कहावतो, मुहावरों तथा चित्रात्मक अन्य विशिष्ट प्रयोगों के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

| | | |
|---|---|---|
| लाड गोड बहु विध किये | ( आदि० १८६ ) | स्नेह करना और सेवा करना। ( गोड़ड कइलीं मूड़ड कइलीं, बनारसी ) |
| नैन तूल रंभा सम रापी | ( आदि० १८७ ) | आँख का तारा बनाकर रखना। |
| निसि पलक न लग्गै | ( आदि० ४३ ) | चैन न आना। |
| कल्पतर छाँह | ( आदि० ३२ ) | मनोवांछित देनेवाला। |
| पारस-परस | ( आदि० ८१ ) | दान के लिए प्रसिद्ध। |
| मोच्छ कर लावै | ( आदि० ६३ ) | मोंछ पर हाथ रखना (शौर्य)। |
| कर परिहाना | ( आदि० १२८ ) | ढेर करना; राशि लगा देना। |
| आनँद पागे | ( आदि० १८८ ) | आनँद में पग जाना। |
| थकि सुपह पुहकर वैन | ( आदि० १६४ ) | वैन का थकित होना। |
| लिये पंज कर पान | ( आदि० २०६ ) | पान का बीड़ा उठाना। |
| नगर पहूँची वाट | ( स्वप्न० २२ ) | रास्ता समाप्त होना। |
| चेटकु डारि | ( स्वप्न० ४० ) | जादू डालना। |
| पुतरी चित्र की | ( स्वप्न० ४४ ) | जडीभूत, निश्चेष्ट। |
| अपुनपौ हारि | ( स्वप्न० ४४ ) | अचेत। |
| ठग मूरि सि पाई | ( स्वप्न० ४७ ) | बेहोश करनेवाली मूल खा लेना। |
| काहू डीठि लाई है | ( स्वप्न० ५० ) | नजर लगाना। |
| बदन बलाइ लेत | ( स्वप्न० ५१ ) | बलैया लेना। |
| कछु ना बसाइ | ( स्वप्न० ५१ ) | कुछ बस न चलना। |
| वारि केरि जल पीवहि | ( स्वप्न० ५३ ) | जल ओइँछ कर पीना। |
| तोरि त्रनु डारहि | ( स्वप्न० ५१ ) | तिनका तोड़ना ( दृष्टिदोष परिहार ) |
| राइ नोन उतारहिं | ( स्वप्न० ५५ ) | राई नोन उतारना (टोटका) |
| भरम नहिं कीजै | ( स्वप्न० ६३ ) | भ्रम करना, प्रेताविष्ट होना। |
| विषधर लहरैं अधिकारी | ( स्वप्न० ६६ ) | साँप काटे-सी लहर आना। |

| | | |
|---|---|---|
| गहर पहर नहिं कीजिए | ( स्वप्न० ७१ ) | विलंब न करना। |
| घाट परी वोलिहै | ( स्वप्न० १३३ ) | अवसर पर बोलना। |
| अर्ध निसि डहडही | ( स्वप्न० २४४ ) | स्तब्ध, डह डह आधी रात। |
| तुम बाहँ गही है मेरी<br>करौ लाज कर टेके केरी | ( चित्र० २२२ ) | बाहँ गहे की लाज |
| पल न परै | ( स्वप्न० ८४ ) | कहीं चैन न पड़ना। |
| पचि रह्यौ | ( स्वप्न० ८६ ) | लीन होना। |
| षिन तातो षिन सीयरौ | ( स्वप्न० ९३ ) | विषम अवस्था। |
| रवि किरन छाँह महि लोक वास | ( स्वप्न० २५८ ) | सूरज के किरण-छाँव में निवास। |
| तरी फेरि कलिआई | ( स्वप्न० २७३ ) | लता में फिर कलियाँ लगीं। |
| ऊषा उठत विहान | ( चित्र० १३ ) | प्रातः उषा उठते ही। |
| याहन लीक परी मन माँही | ( चित्र० ७१ ) | अमिट धारणा |
| पुत्र पाँव जो काँटा लागै<br>जाइ पिता के नैननि जागै | ( चित्र० ७४ ) | पुत्र का छोटा दुख भी पिता को बड़ा लगता है। |
| अंध लकुट मनौ रंक निधि | ( चित्र० १८६ ) | सब प्रकार एकमेव सहारा। |
| वियौ धनन्तर आही | ( चित्र० २३३ ) | दूसरा धन्वन्तरि। |
| करि हारिल की लाकरी | ( चित्र० २९८ ) | अनन्य सहारा। |
| देहि मेरे सिर तर वारि | ( विजय० १२३ ) | सिर पर तलवार देना, अत्याचार। |
| सिर पाइँ तर वारि देहु | ( विजय० १२३ ) | पैरों पर सिर रख देना समर्पण। |
| विछौना इहि अभरन विष भये | ( चंपावती २८ ) | सोना - पहनना कष्टपूर्ण हो गया। |
| भई पतंग दीपक की रीती | ( चंपा० ३३ ) | प्यार का प्रतिकार दुःख। |
| परछाँही की छाँहरी | ( चंपा० २७ ) | जीवन की अस्थिरता। |
| चित रही चुभि | ( स्वयं० ३७ ) | चित्त में चुभना |
| करभ करेले लागे | ( स्वयं० ३९ ) | हाथी के कठोर बच्चे की तरह लगे |
| माखन की कीने | ( स्वयं० ३१ ) | अत्यन्त मुलायम |

| | | |
|---|---|---|
| साँचे सी सुढारि | ( स्वयं० ४९ ) | सुगठित |
| सान दै सँवारि | ( स्वयं० ५० ) | अत्यन्त चमकीले |
| कीनौ कुछ टौना है | ( स्वयं० ५१ ) | दृष्टिदोष परिहार के लिए। |
| होड सी परति छवि | ( स्वयं० ५८ ) | वदावदी करना |
| डहडही छवि | ( स्वयं० ६० ) | अत्यन्त आकर्षक, ताजी। |
| पैज पालिवे को | ( स्वयं० ६१ ) | प्रतिज्ञा पूरी करने को। |
| एक पंथ दो काज | ( स्वयं० १८१ ) | एक कार्य के दो फल |
| अनयो रूप नैन भरि | ( स्वयं० २८१ ) | नैन से रूप देखना और तृप्त होना |
| अलराये हित प्यार | ( स्वयं० २८२ ) | दुलराना। |
| दुति ताली आली वदन | ( स्वयं० ३०५ ) | ताली की तरह गौरांग-छाया। |
| जल जिमि रंग मगनु मन | ( स्वयं० ३८१ ) | मन से मन का मिलना। |
| पर हथ्थ विचाइ विसारि गए | ( युद्ध० १५ ) | दूसरे के हो गए |
| पटुली पीर विछुरि पिय झिला | ( युद्ध० २० ) | विरह मे पटुली की तरह झूलना |
| जुगल नैन टक लाई | ( युद्ध० २० ) | वाट देखते |
| अविरत जल धारा | ( युद्ध २८ ) | लगातार वर्षा। |
| विरहिन अंग प्रजार कै संकत है कर काम | ( युद्ध० ६५ ) | दूसरे के दुःख में खुश होना। |

## वार्ताएँ : खड़ी बोली का प्रभाव

वैसे तो यदा कदा भाषा में खड़ी बोली के प्रयोग मिल जाते हैं; पर इसका पूर्ण प्रस्फुटन तो गद्य अथवा वार्ता में ही दिखाई पड़ता है। नीचे एक अंश देखिए —

'वार्ता—श्री श्री सूरसेन राजा स्वयंवर सुन के स्थान से चले वैशाख सुदी ५ को एक महीना बीस रोज में मानसर पे ज्येष्ठ सुदी ११ को पहुँचे। फिर अर्ध रात्रि के समय अप्सरा स्नान करिवे आई और सूरसैन को लेकर उत्तर दिसा मलहँ ग पर पहुँचीं। और गंधर्व विवाह कल्पलता के साथ रापत भई

फिर काल पाय रह कर चले और कई महीनों में चंपावती नगरी में आये। और इनकी फौज भी चंपावती नगरी मैं पहुँची।' यह वार्ता 'अ' प्रति में नहीं है, पर 'ब' परंपरा की सभी प्रतियों में अध्यायों के आरंभ में विषयसूचक वाक्य और स्वयंवर खंड में प्रथम अध्याय के बाद की यह वार्ता प्राप्त होती है। यह पुहकर की ही मालूम होती है। रासो का अनुकरण करनेवाला कवि 'वार्ता' से जो कुछ भाव प्रकट करना चाहता है, उससे प्रतीत होता है कि मूल पाठ में भी यह अंश अवश्य रहा होगा।

यह गद्य खड़ी बोली गद्य के विकास की पूर्ण सूचना देता है। इससे यह भी लगता है कि अभी खड़ी बोली गद्य ब्रजभाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका था। उसमें करचैं, आई, राषत भई, जैसी संयुक्त क्रियाएँ और पाय के आदि पूर्वकालिक रूप स्पष्टतः ब्रजभाषा-प्रभाव के सूचक है।

## भाषा की तीन शैलियाँ

रसरतन काव्य मे भाषा की तीन विशिष्ट शैलियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती है। (१) चारण शैली यानी पिंगल ब्रज, (२) औक्तिक ब्रज का परिनिष्ठित रूप जिसे हम माधुर्य शैली कह सकते हैं। और (३) खड़ी बोली से प्रभावित मिश्रित ब्रज जिसे हम उस समय की हिंदुस्तानी शैली कह सकते हैं जिसे कुछ लोग रेखता भी कहना चाहेंगे।

( १ ) चारण शैली की ब्रजभाषा प्राकृत पैंगलम् मे भी स्फुट रूप से मिल जाती है। इसी को लक्ष्य करके डॉ० तेसीतोरी ने कहा था कि 'प्राकृत पैंगलम् की भाषा की पहली संतान पश्चिमी राजस्थानी नहीं, बल्कि भाषा का वह विशिष्ट रूप है जिसका प्रमाण चंद की कविता में मिलता है जो भली भाँति प्राचीन पश्चिमी हिंदी कही जा सकती है।'[1] इसी भाषा का परवर्ती विकास नरिहरि भट्ट, जानकवि के क्यामखाँ रासा और वंशभास्कर मे दिखाई पड़ता है। इस भाषा मे (१) उपधा या अंत स्वर का लोप जैसे धारा>धार, भाषा>भास आदि (२) स्वर संकोच की प्रवृत्ति जैसे पदातिक>पाइक; ज्वालापुर>जलउर (३) मध्यग म>वँ जैसे कमल>कँवल, कुमारी>कुवाँरि (४) मध्यवर्ती र का पूर्ण स्वरागम द्वारा पूर्ण र मे परिवर्तन जैसे दुर्ग>दुरग्ग, स्वर्ग>सुरग्ग (५) द्वित्व सरलीकरण जैसे वग्ग>वाग; कज्ज>काज तथा (६) ड़कारा या

---

१. पुरानी राजस्थानी, ना० प्र० सभा, काशी १९५५ पृष्ठ ६।

ओज के लिए अकारण द्वित्व जैसे तिलक > तिलक्क; फलक > फलक्क आदि की ध्वनि प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती है। इसमें रूप तत्त्व की दृष्टि से वर्तमान में कृदंतज क्रिया का प्रयोग अप्पन्त दान, झलरुत कनक आदि (७) भविष्य के ग–चिह्न रूप करिग फिरिग आदि प्रयोग (८) किज्जिय, दिज्जिय आदि भूतकालिक कृदंत के रूपों का प्राचुर्य और (९) शब्दों में तद्भव की अधिकता तथा फारसी शब्दों का मिश्रण आदि की प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती है। रसरतन में, छप्पय, पद्धरी, मोतीदाम और त्रोटक में प्रयुक्त भाषा सर्वत्र इसी शैली का अनुसरण करती है। रासो की भाषा का ऐसा सुंदर अनुकरण क्या इस बात का सबूत नहीं है कि कथा काव्य के रूप में उसका रसरतन के कवि के सामने बहुत बड़ा आदर्श था।[1]

( २ ) शौक्तिक व्रज के परिनिष्ठित रूप वाली शैली का अपना विशेष महत्व है क्योंकि इस शैली में पुहकर ने अवधी प्रभावों को आत्मसात् करके भाषा का वह आदर्श रूप उपस्थित किया है जो भक्ति और रीतिकाल के अनेक रससिद्ध कवियों द्वारा स्वीकृत और परिष्कृत हुआ। सूर, बिहारी, घनानंद की भाषा में भी पूर्वी यानी अवधी के प्रयोग मिलते हैं। असल में मध्यकालीन साहित्य के समर्थ माध्यम के रूप जो व्रजभाषा आगे चल कर इतनी प्रसिद्ध हुई उसमें शौरसेनी व्रज को ही विशुद्ध रूप में नहीं ग्रहण किया गया। वह एक प्रकार से राष्ट्रभाषा थी। इसे ही हिंदुई या काव्य भाषा कहा जाता है। स्वाभाविक रूप से इसके कलेवर में पार्श्ववर्ती अवधी भाषा की शक्ति और सामर्थ्य को आत्मसात् करने का प्रयत्न भी रहा। ( देखिए सूरपूर्व व्रजभाषा §§२४५-२४३ )।

( ३ ) पुहकर ने उस काल में प्रचलित तीसरी शैली का भी अनुसरण किया, हालांकि यह शैली पद्य के माध्यम के रूप में उन्होंने स्वीकार नहीं की। हिंदू कवियों ने उस समय भी इस शैली को पद्य के माध्यम के रूप में स्वीकार नहीं किया। रेखता, सधुक्कड़ी या प्राचीन खड़ी बोली की शैली को नाथसिद्ध, निर्गुणिये संत, खुसरो तथा दूसरे मुसलमान कवियों ने ही स्वीकार किया। जिन लोगों ने स्वीकार भी किया उन्होंने इसका प्रयोग खंडनात्मक प्रवृत्ति की क्रांतिकारी, सुधारवादी, रूढ़िविरोधी रचनाओं में ही किया। प्रेम और समर्पण

---

१. चारणशैली की पिंगल व्रज के विस्तृत भाषाशास्त्रीय रूप के लिए देखिए लेखक की पुस्तक सूरपूर्व व्रजभाषा § ११२-१५०।

संबंधी रचनाओं में इन लोगों ने भी व्रजभाषा की माधुर्य शैली का ही प्रयोग किया। पुहकर की भाषा पर इस शैली का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। विशेषतः जहाँगीर के छत्र सिंहासन वर्णन मे तथा स्थान स्थान पर कुछ चटपटे किस्म की इश्क चर्चा में। वैसे गद्य के कई नमूने इस बात के सूचक हैं कि उनका इस शैली से भी लगाव था। इस शैली के भाषा शास्त्रीय रूप का विशद विवेचन सूरपूर्व व्रजभाषा और इसके साहित्य में मैंने §§१६२-१६७ के अंतर्गत उपस्थित किया है।

---

# रासो और रसरतन

रसरतन पृथ्वीराज रासो की परंपरा का ही अग्रिम विकास है। यह कथन शायद आश्चर्यजनक लगे; पर यह वस्तुस्थिति का सही और निस्पक्ष निष्कर्ष है। उन लोगों को शायद यह कथन और भी अधिक आश्चर्यजनक प्रतीत हो जो चन्द की इस महत्त्वपूर्ण कृति को जाली कह कर अपने उत्तर-दायित्व से छुटकारा पा लेना चाहते हैं। मैंने रसरतन के इस अध्ययन के आरंभ में यह दिखाया है कि पुहकर न सिर्फ चन्द वरदाई की अभ्यर्थना और वंदना करते हैं; बल्कि उन्हे पूर्वज महाकवियों की वंदनीय परंपरा मे रखकर उनके महत्त्व को आँकने और उन्हे उनका सही प्राप्य स्थान देने का प्रयत्न भी करते हैं। ( देखिए पृष्ठ २४-२६ ) रसरतन ग्रंथ की सभी प्रकार से भाव, वस्तु, कथा-संयोजन, उपस्थापन-पद्धति, छंद, अलंकार, आदि पक्षों की भलीभाँति विवेचना करने पर पता चलेगा कि यद्यपि यह एक प्रेमाख्यानक है जिसकी शैली पर भारतीय प्रेमाख्यानक परंपरा विशेषतः सूफी प्रेमाख्यानकों का प्रभाव है, साथ ही यह एक चरित काव्य भी है जिसकी शैली पर मध्ययुगीन चरित काव्यों की विशेषतः पृथ्वीराज रासो की घनी छाप दिखाई पडती है। मैं यहाँ पृथ्वीराज रासो और रसरतन का एक संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहा हूँ ताकि यह स्पष्ट हो सके कि सोलहवीं-सत्रहवीं में न सिर्फ रासो एक जीवंत और महत् काव्य-कृति के रूप में प्रसिद्ध था बल्कि उसकी शैली, भाषा, और दूसरी पद्धतियों का अनुसरण करना कवियों के लिए गौरव की बात मानी जाती थी। रसरतन इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति इसी लिये है कि इसकी भाषा वस्तु और शैली में उस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों का इतना सुंदर समन्वय है कि इसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पडता है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि यह मध्य युग ( आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल ) के साहित्य के समझने की अनमोल कुंजी है।

( १ ) रासो का प्रतिपाद्य रसरतन से कहीं अधिक विस्तृत और बिखरा हुआ है; पर दोनों की वर्ण्यविषय तालिका देखें तो इनमें आश्चर्यजनक साम्य दिखाई पड़ेगा। दोनों ने आरंभ मे कवि परिचय दिया है। चंद

अपने काव्य का एक अविच्छेद्य पात्र भी है, इसलिये उसके जीवन का विस्तार और वैविध्य बहुत व्यापक है। चंद के विषय में रूढ़ि है कि वह 'वरदाई' था यानी उसे चंडी ने वरदान देकर सिद्धि प्रदान की थी। पुहकर ने स्वयं 'चंद वरदाइक चंडी' कहकर उसकी अभ्यर्थना की है। चंद ने अपने जीवन की इस घटना को लक्ष्य करके कहा है:—

तब परतिष्ष भई ब्रह्मानी। वीनापानि हंस चढ़ि ध्यानी।
त्रिमल चीर हीर विन मंड। तिहि कल किंत्ति कही सु प्रचंड॥
( समय० १ छं० ११५ )

कवि पुहकर पृष्ठ ४ के छंद सोमक्रांति में 'जा कुंदेंद तुषारं हारं' देवी सरस्वती की वंदना करते है और कवि परिचय ( आदि० छं० सं० ८३ ) में कहते हैं—

परतिच्छ देवी सारदा भई, उर निवास मुप वसि रहिय।

( २ ) चंद अपनी भाषा बहुज्ञता की चर्चा करते हुए कहते हैं कि रासो मे विशाल धर्म की उक्ति की गई है। राजनीति और नवों रसो का वर्णन है। छः भाषा और कुरान तथा पुराण का समावेश है।

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं।
षट् भाषा पुराणं च कुराणं कथितं मया॥
( १।८३ )

भाषा षट नव रस पढ़त, वर पुच्छे कविराज।
सम्प्रति पंग नरिंद कै, वर दरबार विराज॥
भाषा परिछा भाष छह, दस रस ढुम्मर भाग।
वित्त कबित्त जु छंद लौं, पग सम पिंगल नाग॥
( ६१।५५५–५५६ )

इसी के साथ कवि पुहकर की ये उक्तियाँ रखकर विचार कीजिए:—

द्वादस विधि अवदान सुनत नव गुन अवराधन।
छंद वंद पिंगल प्रबंध बहु रूप विचारन॥
( आदि० ८३ )

नव रस भेद आहि इहि माही। बहुत अर्थ कुछ थोरो नाहीं॥
( आदि० ८७ )

( ३ ) भाव संपदा की दृष्टि से दोनों ही अतीव प्रतिभासंपन्न कवि हैं। दोनों ही विभिन्न रसों का तथा उनके भाव वैविध्य का चित्रण करते हैं। रस निरूपण में अनेक स्थलों पर इनकी रचनाओं का साम्य आश्चर्य में डाल देता है —

**निर्वेद—संसारकी असारता; जीव और जगत्**

चंद—

पियै सगति घर श्रोन पिंड पापक आहारै।
साइँ समप्पै प्रान सीस उर संकर धारै॥
अंत तुट्टि पथ चँपहि डिंभ लग्गहिं अग गिद्धिय।
जय वछै निज स्वामि लगै ताली मन बद्धिय॥
मंडलहँ हंस हंसह जुटै, जीय जोग गति उद्धरै।
निरकार ध्यान राखै जु निज इमि भव सारूपह तिरै॥
(६६।६६१)

पुहकर—

पुरुष प्रकृति सिव सक्ति कहावे। दंपति रूप जगत उपजावे॥
पंच तत्त्व कर जगत उपावा। पंच नाम परमेश्वर गावा॥
रुधिर रेत पाँचो मिल होई। यहि कर भेद न जाने कोई॥
माता अंस रुधिर तन जाही। अरु पितु अंस वीर्य कह ताही॥
रुधिर रेत कहँ पिंड सँवारा। सो तो जगत विदित संसारा॥
मरन भयौं इक ह्वैकर नासा। अस सब वस्तु रहै तन पासा॥
जो भर जन्म ज्ञान गुन लेखौ। बिना पंच कछु और न देखौ॥
परमेश्वर यह पच है, जगत विदित यह बात।
निगम दिया नर कर लिए, आपुन खोजत जात॥
( वैरागर २१७-२२४ )

क्षत्रियमरण

चंद—

जीविते लभ्यते लक्ष्मी, मृते चापि सुरांगणा।
क्षणे विध्वंसिनी काया, का चिंता मरणे रणे॥
(६१-१८२५)

पुहकर—

जुद्ध नाम सुन हौं न डराऊं। दुहु दिसि आज अप्सरी पाऊं ॥
जीत्यौं युद्ध मदन दल पेदौं। जौर मरौं रविमंडल भेदौं ॥

( युद्ध २२५ )

**सेनाप्रयाण**

चंद—

भयौ गज घुंमर घंट निघोर। मनौ झुनि क्रन्न भयौ सुर रोर ॥
गजै गज मद मनौ घन मेदं। चिकार धिकार भये सुर रुद ॥
तुरंगम हींस कडक्क लगाम। षरक्किय पष्षर तोन सुताम ॥
चमंकत तेज सनाह सनाह। करै धर पद्धरि राह विराह ॥
झलक्कत टोप सुटोप उतंग। मनो रज जोति उद्योत विहंग ॥

( ६।६३–६६ )

पुहकर—

सुनै सोर इंदौर तैं इंद्र लज्जौ। जहाँ सैन चतुरंग गंभीर सज्यौ ॥
चले मत्त मैमंत घूमत मंता। मनो वद्दला स्याम माथे चलंता ॥
चलंते बँधी पाइ वेरी षरक्कैं। वजै घूँघरू घोर घंटा ठनक्कैं ॥
वनी किंकिनी लंक लागी धनक्कै। मनो पावसी रैन झिल्ली झनक्कै ॥
पलानै तहाँ तेज ताजी तुरंगा। परै उच्च उच्छाल मानौ कुरंगा ॥

( विजय० १९८-२०३ )

**क्रोध, क्रोध के कारण उत्पन्न अनुभाव**

चंद—

सुनत पंग कवि नयन, श्रुत वदन रत्त वर।
भुवन वंक रद अधर, चंपि उर उससि सास झर ॥

( ६१।५८३ )

पुहकर—

सूर सुभट सावंथ दल, विरचित वधिय लाम।
सूर वदन रन रंग श्री, सूर विलोक ललाम ॥

( युद्ध २४५ )

युद्ध जुगुप्सा

चंद—

घुमै मुक्कि सीसं भटं लोह छक्कै । उभै जानि भूतं महामंत्र हक्कै ॥
फिरै रुंड मुंड रसं रोस राँचै । मनो अग्गरं नट्ट विद्या कि नाचै ॥
परै अश्व हुंतं सिरं जोर सूरं । तुरै षुप्परी हड्ड ह्वै भूर भूरं ॥
लगै गुर्ज सीसं भजी भंति छुड्डै । मनो मंपनं दद्धि मंथान उड्डै ॥
हुवै छीन छीनं छरी मार छक्कै । भटं रक्त डोरी महामल्ल हक्कै ॥

( समय २३।८६-६१ )

पुहकर—

लगै पग्ग एक्कै गिरै सीस टूटै । कहूँ वान साँगी दुहूँ आँख फूटै ॥
करै एक अर्धं जु अंगहु भालं । पियौ रक्त काली लई ईश मालं ॥
परै एक घाइल्ल घूमतं धाई । तिनै देषि सूरान के चित्त चाई ॥
फटो षोपरी गुंद फैलंत पिंडी । मनौ माथ मारग्ग फूटी दहिंडी ॥
धनै धाइ वोलै रकन्ते अभक्कै । वहे एक लोहू हिलक्की हिलक्कै ॥

( युद्ध० २५०-२५२ )

कैसा अद्‌भुत साम्य है युद्ध की भयंकरता के इस वर्णन में । एक प्रकार की शब्दावली । फटी हुई खोपडी से निकले हुए गूदे के लिये दही की फूटी हाँडी की उत्प्रेक्षा दोनों मे समान रूप से दिखाई पडती है ।

भयानक

चंद—

किलकारित भैरव भूत करैं । हलकारत पेतर पाल षरैं ॥
गलै राग गावंत सिधू सगिंधू । गलै माल जासूल कन्नेर वंधू ॥
अगे पंचरं पेतपालं वेतालं । तहाँ भैरवं नद जोगीह कालं ॥
दोउ कत्र जोग्गंन कर पत्र मंडे । तिनं दर्शनं देपि साहस्स षंडे ॥
फिरै तिप्पि निप्पिं पताका तिरच्छी । लुवं जानि लग्गी सग्रीपम्म तत्ती ॥

( ६४।२६५ २६६ )

पुहकर—

हँसै पेत दानैं लसै भूम माँही । फिरैं देविगौरा गहै पीउ वाँही ॥
लिये संग वेताल दैं ताल ताली । सुरा पान कीनै मनो मत्तवाली ॥

नचैं भूत भैंरो छुटे केस सीसं। करैं जुग्गिनी पान दमंकंत हीसं ॥
तहाँ गौरि भरतार डौंरू बजावै। लसै चंद साथै महासोभ पावै ॥

( युद्ध २४७-२४८ )

## शृंगारवर्णन

भ्रमवश पृथ्वीराज रासो वीर काव्य माना जाता है। इसमे संदेह नहीं कि इसमें युद्ध के वर्णन बहुतायत से मिलते हैं, किंतु शृंगार मे रासोकार की प्रवृत्ति कम पगी नहीं थी। इसी कारण चंद भी रूप वर्णन, वियोगक शृंगार और प्रेम की विविध अवस्थाओं के चित्रण मे काफी दिलचस्पी लेते हैं। नखसिख के वर्णन में दोनों कवियों की समानता शशिव्रता और रंभा के नखशिख वर्णनों मे देखी जा सकती है। संयोगिता के साथ पृथ्वीराज की रति क्रीडा को कवि चंद रति युद्ध कहते हैं और उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

लाज गढ्ढ लोपंत बहिय रद सन ढक रज्जं।
अधर मधुर दंपतिय लूटि अब ईव परज्जं ॥
अरस परस भर अंक पेत परजंक पटक्किय।
भूषन टूटि कवच्च रहे अध बीच लटक्किय ॥
नीसान थान नूपुर बजिय हाक हास करपत चिहुर।
रति वाह समर सुनि इंछनिय कीर कहत बत्तिय गहर ॥

( छंद० १४१ )

और अब कवि पुहकर का एक 'सुरति संग्राम' देखिए—

मन के सुरथ चढ़ि सारथी अनंग संग,
भृकुटी धनुक धरे वरनी के वान जू।
अंचल धुजा सो सोहे कंचुकि जिरह जेव,
सुभट कटाछ सेज समर मैदान जू ॥
रति सों रुचिर रूप रैन रति जुद्ध कियो,
कंकन किंकिनी बाजै विजै के निसान जू।
पुहकर तीखे नख धाइ सनमुख लागे,
मुरी न पयंक मुखी सुरति सुजान जू ॥

( [illegible] १२? )

इस रति में अडिग रहनेवाले अंगों को नायिका प्रातःकाल रत्यंतर स्नान के बाद आभूषण वस्त्र आदि पहनाती है मानो उनकी वीरता के लिये पुरस्कार दिए जा रहे हैं। चंद लिखते हैं—

कर कंकन मुद्रिका, छुद्र घंटिका कटि तट।
वसन जघन पहिराइ, भार वित्तयौ सघन घट।
कुच निहार कंचुकिय, भुजनि बंधे बाजू बँध।
पग तोड़र नूपुरिय, हरे कपि अडिग खेत मँध॥
संग्राम काम जीते भरनि, करिय रीझ कनवज्जिय।
तंबोल पान दीनो अधर, कीर कहत सुनि इंछिनिय॥

और अब जरा कवि पुहकर का पुरस्कार-वितरण समारोह देखिए—

जीत अंग सनमुख ठहराने। तिनहिं रीझ कर बगसे बाने॥
उर पहिराइ कंचुकी झीनी। मुक्तमाल उरजन कहँ दीनी॥
कटि किंकनि कंकन कर साजै। नूपुर चरनन अधिक विराजै॥
नव दुकूल जंघन पहिराये। सोभित अँगद बाँह सुहाये॥
अधर सुधर कहँ बगसे बीरा। दसननं नाम भयौ विवि हीरा॥
(अप्सरा० १६३-१६५)

हाथों को कंकण, कटि को किंकिनी, जंघों को दुकूल, उरजों को कंचुकी, चरणों को नुपूर, बाहों को वाजूबंद, और अधरों को तांबूल बीड़ा का उपहार—और यह सब दोनों कवियों की नायिकाओं ने 'अडिग खेत में रहने' वाले अथवा 'सनमुख ठहरने' वाले अंगो को 'करिय रीझि' या 'रीझ कर' ही वितरित किये।

**विप्रलंभ**

विरह के वर्णन में कवि चंद भी स्फुट रूप से दस अवस्थाओं का संकेत करते हैं। अभी तक रासो और इस तरह के ग्रंथों में संनिविष्ट लक्षण साहित्य के अध्ययन अन्वेषण का प्रयत्न नहीं किया गया है। रासोकार अपने श्रृंगार और वीर रस के वर्णन के लिये भले ही याद कर लिए जाते रहे हों, उनके पांडित्य और ज्ञानवैविध्य की ओर ध्यान देना हमारे लिये आवश्यक नहीं रहा है। किंतु मेरा यह ध्रुव विश्वास है कि पृथ्वीराज रासो में स्फुट रूप से व्याप्त लक्षण साहित्य इतना विविध और प्रचुर है कि वह हिंदी के पूरे रीतिकालीन लक्षण साहित्य पर नये सिरे से सोचने के लिये बाध्य कर सकता है।

विरह का वर्णन रासो में भी षड्ऋतु की पद्धति पर ही उपस्थित किया गया है। किंतु वह वर्णन एक साथ एकत्र सभी ऋतुओं के क्रम से नहीं मिलता। ६१ वें समय मे अलबत्ता छंद सं० ६ से ७२ तक क्रमबद्ध षड्ऋतु वर्णन दिया हुआ है जब कि पृथ्वीराज कन्नौज जाने को उद्यत होकर अपनी रानियों से अलग अलग विदा लेने के लिये जाते हैं और एक एक ऋतु उनके आग्रह पर वहीं रुक जाते हैं। इस वर्णन में भी विरह की पीडा नहीं, आशंका की पूर्व स्थिति ही झलकती है। नीचे ६६ वें समय से एक छप्पय उद्धत किया जा रहा है जिसमें वर्षा ऋतु मे संयोगिता के विरह का बडा सुंदर वर्णन हुआ है—

वही रत्त पावस्स वही मघवान धनुष्षं।
वही चपल चमकेत वही पगपंत निरष्षं॥
वही घटा घनघोर वही बप्पीह मोर सुर।
वही जमी असमान वही ससि निसि वासर॥
वेइ आवास जुग्गिन पुरह वेही सहचर मंडलिय।
संयोगि पयंपत कंत विनु, मुहिन कछू लग्गत रलिय॥

( छंद ६४५ )

अब जरा इससे पुहकर के पावस वर्णन से तुलना करके देखिए—

दल दर्पक पावक सज्ज कियं। उर व्याकुल वाल विहाल जियं।
उमड़े घन मैगल मत्त मनो। गरजे नभ बाजत बंब मनो॥
चलि अग्नित पौन पर्वकि तहाँ। चपला समसेर झमंकि जहाँ॥
अमरा पतु चाप चढ़ाई चढ्यौ। जसु बंदिय कोकिल कीर पढ्यौ॥
वग पाँतिन सोगति जोर चलै। कपची क्रत धावत सूर भलै॥
विसवासिय मो घर कंत भयौ। परहथ्थ विचार विसारि गयौ॥

( युद्ध० १२-१५ )

## रूपवर्णन

( १ ) नारीरूप वर्णन से रासो के अनेक पृष्ठ भरे पड़े हैं। नखशिख वर्णन में चंद बेजोड थे, इसमें शक नहीं। उदाहरण के लिये इंछिनी का शृंगार ( १४।४८-६० ) तथा नखशिख ( १४।१३७-१६२ ), पृथा का शृंगार और नखशिख ( २१।६८-९२ ) और संयोगिता का नखशिख ( ४७।६०-७२ ) वर्णन के प्रसंग देखे जा सकते हैं। शशिव्रता का रूपवर्णन प्रसिद्ध है ही।

रासोकार शृंगार वर्णन के सिलसिले में द्वादस आभरण और सोडस शृंगार का भी वर्णन करते हैं ( सं० ४७।४६–५६ )। पुहकर ने द्वादस आभरण और षोडस शृंगार का वर्णन कल्पलता के प्रसंग में अप्सरा खंड में छंद से ७६-७७ में किया है।

इन वर्णनो से कवि पुहकर के रंभा और कल्पलता के शृंगार, नखशिख, स्नानोत्तर शोभा आदि वर्णनों से तुलना करने पर आश्चर्य चकित रह जाना पड़ेगा। ये समानताएँ सचेष्ट नहीं है कि बल्कि परंपरा पालन और रूढ़ि निर्वाह की स्वाभाविक देन और चंद के प्रति पुहकर की श्रद्धा की सूचक है।

हंसावती के रूप वर्णन का एक अंश—

उपम्म ईस कुच्चयो। अनंग रीति रच्चयौ॥
रोमंग तुच्छ राजयं। उपम्मता विराजयं॥
उरज्ज पत्र काम को। लिखै जोवंत वाम को॥
कटी अलप्पता ग्रही। मनो कि रिद्धि रंक ही॥
कि सीम द्वै नृपं रही। तुला कि दंडिका कही॥
रुलंत छुद्र घंटिका। सघंत सद्द दंडिका॥
जु जेहरी जराइ की। घुरंत नद्द पाइ की॥
नितंव अद्ध तुंवियं। प्रवाल रंग पुव्वियं॥
कि काम रथ्थ चक्कये। चलंत एड़ि वक्कये॥

( ३६।१७४-१७८ )

पुहकर का वर्णन—

घनंक घोर घूंघरा। चंलत सोभ नूपुरा॥
जराइ पाइ जेहरी। विराज लंक केहरी॥
उरोज छाजि छत्तियाँ। कठोर बोल बत्तियाँ॥
सुरंग अग सारियाँ। सुमध्य मध्य नारियाँ॥

( चंपा० २४३-४४ )

पुहकर के प्रसिद्ध नखशिख वर्णन में, जिसका विवेचन सौंदर्य चित्रण पर विचार करते समय किया गया है, उरोजों के लिए ईश, कटि की क्षीणता को रंक के वित्त की तरह क्षीण, जराइ जेहरी को काम की सीढ़ी की तरह कहा गया है। यही नहीं यदि रसरतन के रूपवर्णन के प्रसंगों को रासो के रूप और

नखशिख वर्णनों के साथ रखकर विस्तार से विश्लेषण किया जाय तो आश्चर्यजनक रूप से प्रतीकों और उपमानों की समता दिखाई पड़ेगी।

( २ ) रासो के रूपवर्णन की एक और विशेषता पर ध्यान दीजिए। रासोकार पृथ्वीराज के द्वारा संयोगिता प्राप्ति को समुद्रमंथन से प्राप्त १४ रत्नों का संयोग बताते हैं—

जिहि उदद्धि मथ्थए, रतन चौदह उद्धारे।
सोइ रतन संजोग अंग अंगह प्रति पारे॥
रूप रंभ गुन लच्छि वचन अमृत विष लज्जिय।
परिमल सुरतह अंग संष ग्रीवा सुभ सज्जिय॥
वदन चंद चंचल तुरंग गय सुगति जुव्वन सुरा।
घेनह सु धनंतरि सील मनि भौंह धनुष सज्जों नरा॥

( ६६।२१६ )

पुहकर के समुद्रमंथन और चौदह रत्न समुच्चय के विषय मे हम पीछे विचार कर चुके हैं। ( देखिए पृष्ठ ७९ )

रसवर्णन के प्रसंग मे रासोकार भी नवरसों का कहीं कहीं एकत्र समन्वित वर्णन करते हैं। उन्होंने बारहवें समय मे छंद सं० ३५९-३६० मे, २५ वें समय के ३६१ वें छप्पय में पृथ्वीराज द्वारा शशिव्रता हरण मे, तथा उसी समय में छंद ५०१ में युद्ध के समय उत्पन्न क्रिया व्यापार में नवरसों की संयुक्त निष्पत्ति दिखाई है। पुहकर के इस प्रकार के उदाहरण हम पीछे रसनिरूपण शीर्षक परिच्छेद में दे चुके हैं।

वस्तुवर्णन—रासो मे पट्टनपुर, दिल्ली या योगिनीपुर, गजनी और कन्नौज नगरों का विस्तृत वर्णन है। यमुनातट पर निगमबोध घाट के राजोद्यान में पेड़ों की सूचनिका का एक हिस्सा देखिए—

श्री खंड भंड वासयं। गुलाब फूल रासयं॥
जु चंपकं कदंबयं। पजूरि भूरि अंबयं॥
सु अन्ननास जोरयं। सतूतयं जभीरयं॥
अषोट सेव दासयं। छवाल वेलि सामयं॥

र० र० भू० ११ ( ११००-६२ )

जु श्रीफलं नरंगयं। सवद स्वाद होतयं॥
चवंत मोर वायकं। मनो सगोत गायकं॥

अब इसे चंपावती के उपकंठ स्थित राजोपवन से मिलाकर देखें। इसका वर्णन आपको भूमिका में वस्तुवर्णन के अंतर्गत पृष्ठ १०९ पर मिलेगा। गजनी के हाट विद्यापति के जौनपुरवाले और पुहकर के चंपावती के हाटों से कितना मेल रखते हैं—

अगम्म हट्ट अट्टनं सुरंग सुभ्र सोभयं।
ग्रिहं ग्रिहं सुदिष्षियं तुरंग तुंग लोभयं॥

सरोवर और पनघट के वर्णनों के लिये रासो के पट्टनपुर का पनघट (४२।५६-५८) तथा कन्नौज में गंगातट का पनघट (६१।२२३-२७४) अवश्य देखना चाहिए। विवाह का वर्णन इंछिनी विवाह के रूप में १४ वें समय में दिया हुआ है। इन वर्णनों में बारात के आगमन के पूर्व की तैयारी, मंडपनिर्माण, मिलान, अगवानी, द्वारचार, जनवासा, विवाह, पूरी रीतियाँ, मंडन, कन्यादान, दहेज, ज्योनार, विदाई आदि का विशद चित्रण मिलेगा। बारात देखनेवालियों की अस्थिरता और चंचलता के वर्णन कितने रूढ़ हो गए थे, इन्हें इसे पढ़कर ही समझा जा सकता है। ज्योनार के वर्णन में चंद किसी से कम क्यों रहें—

किते स्वाद स्वादं प्रथीदेव बंछै। तहाँ केवलं वर्नि आवर्त गंछै॥

इसी प्रकार कवि पुहकर भी असंतोषपूर्वक विस्तार के डर से कह टलते हैं—

त्रिपित भये भोजन सब कोई। बर्नत बियौ ग्रंथ इक होई॥

नायिकाभेद—रासोकार ने भी नायिकाभेद पर ध्यान दिया है; किंतु जरा भिन्न ढंग से। उन्हें भी नायिकाओं की किस्में कम आकृष्ट नहीं करतीं। हाँ यह अवश्य है कि वे नायिकाभेद की परवर्ती परिपाटी के अनुसार वर्णन न करके कामशास्त्र के भेदोपभेदों तक ही अपने को सीमित रखते हैं। पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, हस्तिनी के लक्षण बताते हैं और उनके शारीरिक और मानसिक रूपों का चित्रण करते हैं। पुहकर अपने युग की सारी उपलब्धि

के साथ इनके ११५२ प्रकारों का जायजा लेते है किंतु चरित काव्य में नायिका भेद के वर्णन की इस प्रवृत्ति में भी वे रासोकार का अनुसरण ही कर रहे हैं, इतना तो कहा ही जा सकता है।

छंद—छंदों पर विचार करते हुए हम पहले ही दिखा चुके हैं कि पुहकर चंद और केशवदास की संयुक्त परंपरा की देन हैं। उन्होंने न केवल इन कवियों द्वारा प्रयुक्त छंदों को स्वीकार किया; बल्कि उन्हीं की तरह प्रसंग के भीतर छंद का नाम और कहीं कहीं लक्षण भी बताते चलते हैं। पुहकर द्वारा वर्णित अनेक छंद तो सिर्फ रासो में ही मिल सकते हैं। मध्यकाल मे छंद शास्त्र की जटिलता का एक कारण यह भी है कि कवि पूर्वनामों से परिचित छंदो का अपने या अपनी मान्य परंपरा के अनुसार नया नामकरण कर देते हैं। ऐसे छंदों के लक्षण स्वतः निर्धारित करके उनके रूप आदि पर विचार करना ही समीचीन होगा।

रासो और रसरतन की इस साम्यमूलक प्रवृत्ति का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करने का सिर्फ दो उद्देश्य था। पहला तो यह कि इस संक्षिप्त अध्ययन से भी इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि रासो और रसरतन की रचना की पृष्ठभूमि में समान पद्धतियाँ और प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं। जो लोग रासो को एकदम जाली और परवर्ती मानते है उनके लिये रसरतन एक नई दिशा दिखाता है कि वे सोचें कि वर्तमान रासो के अनेक प्रसंग क्या रसरतन से प्रभावित है? रसरतन के कुछ हिस्से भी क्या वृहत्तर रासो मे प्रक्षिप्त रूप से संमिलित तो नहीं कर लिए गए हैं? ये प्रश्न खासे दिलचस्प शोध के विषय हो सकते हैं। जो लोग रासो को जाली ग्रंथ नहीं मानते उनके लिये भी रसरतन एक बहुत बडा सहारा और प्रमाण सिद्ध होता है। रसरतन इस बात की पुष्टि करता है कि वर्तमान रूप मे मिलनेवाला रासो भी कम से कम १६७३ विक्रम संवत् के पूर्व का है। उसके अनेक प्रक्षिप्त कहे जानेवाले अंशों की छाप पुहकर के रसरतन काव्य पर दिखाई पड़ती है। पुहकर स्वयं बड़े आदर के साथ चंद को वागेश्वरी का कृपापात्र महाकवि कहते और उनकी अभ्यर्थना करते हैं। इन दोनों पक्ष-विपक्ष के शोधकर्ताओं से भिन्न तटस्थ शोधकों के लिये भी रसरतन एक नई दिशा का संकेत करता है। प्राकृत पैंगलम् में विज्जाहर, जज्जल आदि कवियों से आरंभ होनेवाली पिंगल या डिंगल चारण शैली की परंपरा का पुनर्परीक्षण होना चाहिए। प्राकृत पैंगलम के

स्फुट छंद, रासो, रसरतन, क्यामखाँ रासो और वंशभास्कर जैसे परवर्ती युग के प्रतिनिधि चारण काव्यों को आधार बनाकर इनकी सभी प्रकार के साहित्यिक, भाषागत, शैली और पद्धति संबंधी, लक्षण-और रूढ़ि विषयक पक्षों को संतुलानात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। ताकि इस शैली के पूरे क्रमबद्ध साहित्य का सही और वास्तविक योगदान आँका जा सके।

रसरतन काव्य के महत्त्व के विषय में एक बार पुनः अंतिम रूप से आपका ध्यान आकृष्ट करके मैं यह भूमिका समाप्त करता हूँ। रसरतन सिर्फ चारण शैली के लिये ही नहीं बल्कि प्रेमाख्यानक, सूफी और हिंदू दोनों, रीतिकाल के रीति विषयक साहित्य, तथा मध्यकाल के सामाजिक परिवेश के अध्ययन की अत्यंत उर्वर भूमि है। छंद, अलंकार और लक्षण साहित्य के विकास में उसका योग नकारा नहीं जा सकता।

आचार्य शुक्ल ने रीतिकालीन आचार्यों की परंपरा पर विचार करते हुए लिखा है कि केशव ने काव्यांग निरूपण की उस दशा का परिचय कराया जो भामह और रुद्रट के समय में थी, उस उत्तर दशा का नहीं जो आनंद-वर्धनाचार्य, मम्मट और विश्वनाथ द्वारा विकसित हुई। केशव के बाद तत्काल रीति ग्रंथों की परंपरा चली नहीं। कवि प्रिया के पचास वर्ष के पीछे अखंड परंपरा का आरंभ हुआ। यह परंपरा केशव के दिखाए हुए पुराने आचार्यों ( भामह, उद्भट आदि ) के मार्ग पर न चल कर परवर्ती आचार्यों के परिष्कृत मार्ग पर चली जिसमें अलंकार और अलंकार्य का भेद हो गया था ( हि० सा० इतिहास० पृष्ठ २३२ )। आचार्य शुक्ल जी केशव के बाद पचास वर्ष का व्यवधान देखकर १७०० संवत् से चिंतामणि के साथ रीतिकाल की परंपरा का आरंभ मानते हैं। इस व्यवधान समय के ठीक बीच में यानी केशव की मृत्यु के एक साल पहले, १६७३ संवत् में पुहकर ने रसरतन लिखा और इसी के साथ रसबेलि। क्या पुहकर की ये कृतियाँ इस त्रुटित शृंखला को जोड़ने का कार्य नहीं कर रही हैं? क्या पुहकर को ही दूसरी परवर्ती आचार्यों की परंपरा ( आनंदवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ ) का पुरस्कर्ता नहीं कहा जा सकता? अथवा क्या पुहकर में पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों परंपराओं का संमिश्रण दिखाई पड़ता है? ये प्रश्न भी रसरतन और रसबेलि के साथ जुड़े हुए हैं और यह पुहकर का कम महत्वपूर्ण पक्ष नहीं है।

भाषा की दृष्टि से रसरतन उस युग का सर्वाधिक आश्चर्यजनक बहुविध रूपसंपन्न एक समृद्ध निकाय है। मैंने इसके शब्दरूपों और व्याकरणिक तत्वों की जो चिटें बनाई हैं, वे करीब १५ हजार पहुँचती हैं। मुझे आशा है कि मैं शीघ्र ही इसकी भाषा पर एक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर सकूँगा। इस भूमिका में मैंने यथासंभव इसके सभी पक्षों पर जो यत्किंचित् विचार दिए हैं, वे यदि पुहकर और उसके साहित्य के प्रति लोगों का ध्यानमात्र भी आकृष्ट कर सके, तो बहुत है। मैं इसे ही अपने श्रम की सफलता मानूँगा।

हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी १० अप्रैल १९६३

शिवप्रसाद सिंह

# रसरतन

"कल्पित कथा लेकर प्रबंध काव्य रचने की प्रथा पुराने हिंदी कवियों में बहुत कम पाई जाती है। जायसी आदि सूफी शाखा के कवियों ने ही इस प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं, पर उनकी परिपाटी बिल्कुल भारतीय नहीं थी। इस दृष्टि से 'रसरतन' को हिन्दी-साहित्य में एक विशेष स्थान देना चाहिए"।

—आचार्य रामचंद्र शुक्ल

श्री गणेशाय नमः

श्री परमगुरुभ्ये नमः । अथ रसरतन काव्य पोहकर कृत लिष्यते ॥

# आदिखंड

( छप्पय )

अगुन रूप निर्गुन निरूप बहुगुन विस्तारन ।
अविनासी अविगति अनादि अव[1] अटक निवारन ॥
घट घट प्रगट प्रसिद्ध[2] गुप्त निरलेप निरंजन ।
तुम त्रिरूप[3] तुम त्रिगुन तुमहि त्रैपुर अनुरंजन ॥
तुमहि आदि तुम अंत हौ तुमहि मध्य मायाकरन ।
यह चरित्र नाथ कहँ लगि कहौं (सो) नारायन[4] असरन सरन ॥ १ ॥

घोष तरुन श्रृंगार मात करुना मुनि पंडित ।
आपु हास रस जुक्त मान मघवा बल पंडित[5] ॥
बाल वैस अद्भुत चरित्र बृजबासिनि जान्यौ ।
मेघ वीर बलिभद्र रुद्र सुरपति भय मान्यौ ॥
अति प्रताप वीभत्स्य हुव गौव गोप संतः करन ।
पौहकर प्रताप तिहु पुर प्रगट[6] सो नवरस बस गिरधर सरन ॥ २ ॥

---

१—ब. अथ, स. अय । २—ब. प्रसिध्धि । ३—ब. सरूप । ४—द, स. सुनाराइनी । ५—स, ट. खंडित । ६—ब. प्रकट ।

सुप समुद्र, सब जगत भक्त वत्सल प्रतिपालन ।
धरें गवरि[1] अरधंग प्रेम विस्तारन कारन ॥
भूषन जासु फनिंद्र माल कप्पाल विराजै ।
तीन नैन अरि मैन रोद सुमिरत तिहि[2] भाजै ॥
नर नाग देव सब सरन जिहि कवि पौहकर पुनि तिहि सरन ।
चित्तय चकोर चित्तय चसी सो रुद्र चरन मंगल करन ॥ ३ ॥

तमी तिमिर अग्यान अंध हिय नैन न सुझिझय ।
अच्छर गति रस भेद काव्य गुन अंस न बुझिझय ॥
ब्रह्म सुता जाभांन[3] कृपा कुल किरिनि प्रकासी ।
अंधकाल हुव दूर जोति जगमध्य प्रभासी[4] ॥
पौहकर सुप पौहप[5] जिम वरपि सब महिमंडल मोदलिय ।
बानी विसाल गुंजत सरस सु[6] छप्पय छंद प्रगट[7] किय ॥ ४ ॥

( दोहा )

रस वर्नन आरभियौ छपछद[8] कहि इहि हेत ।
कुसुम काव्य गिर बैठिके अलि परिमल रस लेत ॥ ५ ॥

( छद सोमकाति )

जा कुंदेन्दुतुषारं हारं । जा सभ्रोविस्थाः विस्तारं ॥
जा बीनादंडी मंडीयं । सा स्यां पातोयं चंडीयं ॥ ६ ॥
जा गंगा तारंगीवानी । सा स्यां पातोयं ब्रह्मानी ॥
जा ब्रह्मा ईसो गोविंद । जा सूरो देवानं इंदं ॥ ७ ॥[10]
जा बानी बागेसं ईसं । जा बानी आदेपं[11] दीसं ॥
जा बीना बानोदा दंडी । सा बानी पातोयं चडी ॥ ८ ॥
जा देवी आरूढं हंसं । जा देवी विस्वो अवतंसं ॥
जा मेवं देवं सर्वानी । सा स्यां पातोयं कल्यानी ॥ ९ ॥

---

१—स, द. गौरि । २—स, द. तेहि । ३—स, द. जामान । ४—स, द. प्रभासी । ५—स, द. पुष्प । ६—ब. सो । ७—ब. प्रघट्ट । ८—स. द छपट्ट । ९—द. स्यापातोय । १०—स. और द. प्रतियों मे छंद ७ मे ऊपर नीचे की अर्धालियाँ बदलकर रखी हुई है । ११—स. द. आदेखं ।

(दोहा)

सुस्मृत वेद अरु व्याकरन करन सेव सो आहि।
ब्रह्म सुता नाराइनी देत बुद्धि[1] बल ताहि ॥१०॥

(छंद घाटक सारदूल)

वंदै संकर नंद सिध्यिसुधी सिध्यिदं गवरी सुतं।
बुध्यिदाया सुदाया ईस तनये सर्वस्व दानं वरं[2] ॥
काव्ये मंगल उत्सवे प्रथम तुव नाम उच्चारनं।
वानी उक्त कुकाव्य[3] छंद निर्विघ्न निर्वाहनं ॥११॥

(छप्पय)

प्रथम सेव अरु व्यासुदेव सुषदेवहँ पायौ।
वालमीक श्रीहर्ष कालिदासहँ गुन गायौ ॥
माघ माघ दिन जेसि वांन जयदेव सुदंडिय।
भानदत्त[4] उदयेन चंद वरदाइक चंडिय ॥
ये काव्य सरस विद्या निपुन वाकबानि कंठह धरन।
कविराज सकल गुन गन तिलक सुकवि[5] पोहकर वंदत चरन ॥१२॥

(दोहा)

कविन सवन कौं सीसि नतु, पौहकर करत प्रनामु।
जो कीने करता प्रगट, प्रगट करन अपनामु[6] ॥१३॥
पुहकर सब तैं कवि बडे, रांक करो जन कोइ।
को जानै करतार कौं, जौ कलि काव्य न होइ ॥१४॥
चतुरानन दे आदि कवि, गावत हैं जसु जाहि।
कविता निश्चै जानियौ, और न भावै ताहि ॥१५॥
ब्रह्म रूप सिरजै जगत, विष्णु रूप प्रतिपाल।
काम रूप क्रीडा करी, रुद्र रूप महा काल[7] ॥१६॥
काम रूप क्रीडा करै, ते कवि कथा अनेक।
मन भोरो भोरी कुमति[8], पाहार करन एक ॥१७॥

---

१—ब. बुध्य। २—ह. द. सर्वस्वानि दं। ३—[illegible]। ४—ह. द मानदत्त। ५—न. दो कवि। ६—न. प्रगट प्रगट करन अपुनान। ७—ह. द रुद्ररूप संहार। ८—ह. द. मन भोरे भोरी कुमति।

गुन गुन मै अच्छर सुकत, गूंथी छंद प्रकार।
कोविद उर शृंगार हित, किय कवि पुहकर हार ॥१८॥
बानी बात सनेह दै, गुन गाहकन समीप।
मदन अग्नि उद्दीप करि, किय कवि पुहकर दीप ॥१९॥

( छप्पय )

गुन समुद्र मंथान ग्यान मंथानिय ढुंढिय।
नेतु हेतु गहि हाथ रतन नवरससम कढ्ढिय ॥
वागेसुर परसाद प्रगट क्रम क्रम सब दिप्पह।
अलप बुध्यि कह हेत धीर सुहि[1] दोस न दिज्जह ॥
गुरु नाम सुमर पौहकर सुकवि गरुव ग्रंथ आरंभ किय।
रस रचित कथा रसिकनि रुचित रुचिर नाम रसरतन दिय ॥२०॥

( दोहा )

वहि समुद्र चौदा[2] रतन, मथे असुर सुर सैन।
इहि समुद्र नवरस रतन, नाम धरौ कवि तैन ॥२१॥
जह लगि बुध्यि प्रकास किय, तहँ लग बरनन कीन।
कवि पुहकर सुप काव्य रस, सुनत होत मन लीन ॥२२॥
नव रस वसु रस नायिका, नवसत सुन्द सिंगार।
सकल कथा क्रम प्रगटिहै[3], मन आकरपन हार ॥२३॥
बानी निरस जो जुक्ति बिनु, रहत कहत कवि छंद।
पै न हरै मन रसिक कौ, ज्यौं रजनी बिनु इंदु ॥२४॥
पुहकर सकल कवित्त करि, प्रगट अर्थ गुन गूढ़।
रुचि विवेक विसेप धरि, गूढ़ करै ते मूढ़ ॥२५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पौहकर विरचितेयं
आदि पडे प्रथमो अध्यायः ॥ १ ॥

## अथ छत्रसिंहासन वर्णन

( दोहा )

छत्र सिंहासन पौहमिपति, धर्म धुरंधर धीर।
सुरतान आदिल वली, नदल साहि जँहगीर ॥२६॥

१—स. द. मोंहि। २—स. द. चौदह। ३—च. प्रघटिहै।

( चौपही )

नूरदीन गाजी सक बंदी । जिहि के राज कथा रस छंदी[1] ॥
जुग जुग तास वरष धर राजू । तिहि सन कियौ कथा कर साजू ॥२७॥
एक सहस ऊपर पैंतीसा । सन रसूल सौं तुरकन दीसा ॥
अग्नि सिंधु रस इंदु प्रमाना । सो विक्रम संवत् ठहराना ॥२८॥
कुल चकत्त चक्कवै सुजाना । जिहि वस हिंदुवान पुरसाना ॥
अति प्रताप वरनन नहि आवै । सहसफनी पुनि अंत न पावै ॥२९॥

( दोहा )

सप्त द्वीप नव षंड मैं, चारि चक्र जिहि आन ।
अदल एक छाया अतल, मानौ तान वितान ॥३०॥

( छप्पय )

तिमिर वंस अवतंस साहि अकबर कुल नंदन ।
जगत गुरू जगपाल जगत नाइक जगवंदन ॥
सहिनसाह आलमपनाह नरनाह धुरंधर ।
तेग वृत्ति दिल्ली नरेश अिव चारि जासु घर ॥
अवंग अंग पंचम धरनि तरनि तेज महि चमकै ।
नर राज मनहुँ पंचन सहित नृपंचइ मिलि महि भुग्गवै ॥३१॥
करन बैन बलि दान ग्यांन गोरिक्ख भनिज्जै ।
रूप अंग सौंदुर्ज मैन मूरत्ति गनिज्जै ॥
वाहुबीर पर पीर हरन सब बंधइ बिन्नन ।
अति अपार नहि पार गरुअ गंभीर उदधि नम ॥
कल्य के साहि अक्बर सुतन पौहकर परम प्रताप बल ।
कलपतर छाँह सीतल सवन फरौ पुहनि पर दानफल ॥३२॥
पंच दीह कच नैन बाँह पर जंघ बखानिय ।
लहुर[2] केश कटि अधर उदर कुंभस कुच जानिय ॥
अरुन सस दग ओंठ तालु नप जिम्य चरन कर ।
कंव भाल मन पलक ग्रीव नासा [illegible] ॥

१—स. द. बन्दी । २—ब. वौहर ।

उर श्रवन पीठ विस्तोति लघु दंति पंति इंद्री सुगनि ।
गंभीर नाभि सुर चित्त मति ये लच्छन वत्तीस भनि ॥२३॥

( दोहा )

अंग अंग लच्छन वसहि, जे वरनौं वत्तीस ।
दल गर्जन दुर्जन दलन, दलपति पवि दिल्लीस ॥२४॥

( छप्पय )

सेव भाग मनि भाल लाज लोइनि महँ दिष्षिय ।
क्रोध[1] वसै भुव मध्यि अमृत रसना रस पिष्षिय ॥
वीर वाहु वल वसै विजै द्रग द्रिष्टि विराजै ।
वसै दान कर कमल वचन चातुरि अति राजै ॥
गहि चरन सरन दुरजन वसहिं तन सरूप रतिपति लसहि ।
छत्र पती साहि जहंगीर कैं सु नारायनि हिरदैं वसहि ॥२५॥

( दोहा )

दल वर्नन कहँ लगि करौं पुहकर अदल अपार ।
प्रियव्रत पृथु सुपुरूरवा[2] विसरि गये तिहि वार ॥२६॥

( छप्पय )

तीस लाष तुष्षार सहस सत्तरि सुंडाहल ।
पंच लाष[3] रथ सुरथ सज्जि विवि कोटि पयद्दल ॥
तीन लाष निस्सान मेघ भादौं जिमि गज्जहिं[4] ।
अति अनंप सेना समूह उडगन गन लज्जहिं ॥
चहुँ ओर अष्ट जोजन कटक संकि भान धससस धरनि ।
दिग्पाल हल्लहिं व्याकुल कमठ नागन रैनि मुंदी[5] तरनि[6] ॥२७॥

---

१—अ. प्रति यहीं से आरंभ होती है, इसके पहले के पत्र त्रुटित हैं ।
२—अ. सुपुरवा, स. द. सुर पुरवा । ३—स. द. लक्ष । ४—अ. प्रति में इसे छप्पय की दूसरी पंक्ति माना है । ५—अ. मुदिय । ६—अ. प्रति में इसे छंद संख्या २८ बनाया गया है ।

( दंडक[1] )

अंबर के तारे अरु पारथ के बान सारे
सुमन कली जो गनै फूली बनराइ की ।
गंगा जू की रेनुका अनगन अनंत अति
कैसे जल बुंद गनै बरषा[2] सुभाइ की ॥
अविरल बानी गनै पुहुकर कवित्त[3] कौन
मन के मनोरथ अलोल चित्त चाइ की ।
सहस बदन चतुरानन सकै न गनि[4]
फौजैं जँहगीर जू की मौजैं दरियाइ की ॥३८॥

( चौपही )

दुरजन देस रह्यो नहिं कोई । देस पती मिल किंकिर होई ॥
उत्तर देस अठारह[5] षानै । ते नृप दंड[6] सदा सिर मानै ॥३९॥
पब्बय[7] चूरि करहिं मयदाना । वज्र गहै जनु इन्द्र रिसाना ॥
पूरब पच्छिम दच्छिन लीनी । चार दिसा हद सागर कीनी ॥४०॥
सैल सिकार जो करै पयाना । संकत लंक डरै पुरसाना ॥
कंपत मेर धसक्कत न्याले । नीर उठै पुर[8] तार पताले ॥४१॥

( छप्पय )

पय पताल उच्छलिय रैनि अंबर हुँ[9] छछिय ।
दिग दिग्गज थरहरिय देपि दिनकर रथ खिछिय ।
फन फनिन्द फरहरिय सुस साइर जल सुष्पिय[10] ॥
दंति पंति गज[11] सूर[12] चूर पब्बय पिसान किय ।
चढि चलत साहि जहगीर दल लंक देस पलभल परिय ॥
आतंक संक जिय जानिके अरधंत धंक संकर करिय ॥४२॥

---

१—अ. प्रति मे इसे सवैया कहा गया है । २—ब. स. द. बरसा । ३—ब. स. द. कवि । ४—ब. सकै गनी, स. द. न सकै गनि । ५—ब. अठारा । ६—ब. स. द. निमि दड । ७—ब. मवता । ८—स. द. पुर । ९—अ. यवर हुय । १०—ब. प्रति मे दूसरी और तीसरी पंक्तियाँ मिलकर एक हो गई है, एक पंक्ति गायब है । ११—अ. पग । १२—स. ब. द. पूरि ।

लंक संक आतंक अलक निसि पलक न लग्गौ[1] ।
तज विलास कविलास[2] आस अमरावति भग्गै ॥
रौम रौंस वपु उठि ससाम[3] पति धाम धरक्कै ।
वदकसान हिंदुवान तुरक षुरसान[4] धरक्कै ॥
करनाट लाट केरल[5] परसि[6] सिंहल देस सकुचत रहै ।
रचनी रसाल[7] सुत पेस करि हिंदुवान चरनन गहै ॥४३॥

(दंडक)

साह जहगीर दल प्रबल पयान कीने
कंपौ आसमानु लंकि सविता लुकाने हैं ।
धुधुक्कर करै जोर नौबति निसान घोर
दिग्गज दिगंत 'मद मूकि[8] झुरिझाने हैं ॥
टूटि गये गहन सहल सम भूमि भई
लचक्यौ सहस सीस सेस अकुलाने हैं ।
थलके पहार भार प्रगट्यौ पहार जल
डोंगरनि डौंढा[10] चले समद छुपाने हैं ॥४४॥

(दोहा)

दल बरनन बहु विधि कियौ अटल न वरन्यो[8] जाइ ।
गैया नैना छोर सो रापे संग लगाइ ॥४५॥
मूषक अरु मंजारि मिलि संग साहु वसै चोर ।
विक वकरी इक ठौं करी, कोइ करै नहिं जोर ॥४६॥
वीर अभय[11] पथी चलै, रवि न सतावै ताहि ।
प्रगट्यो परम पुनीत कलि, जहाँगीर पति साह ॥४७॥
मैं न कछू कवि विधि कही साचि कही सब बात ।
नरन सिंह निर्विस उरग[12] साहि तेज विख्यात ॥४८॥

---

१—ब. लग्गिय । २—ब. निविलास, स. द. विविलास । ३—अ. स. द. ग नाम । ४—अ. दहकन खरक, ब. हिन्दु तुरक । ५—ब. केरव, स. द. केरनि । ६—ब. परसि, अ. नवर । ७—अ. वरनीर । ८—ब. स. द. मोर । ९—ब. स. द. मूकि । १०—अ. डौंगा । ११—ब. स. द. वैर भरे । १२—ब. स. द. उर मारन ते बजिखात ।

ज्यों पयोधि मौजै करै, अरव षरव दिन देइ।
छाड्यौ डंड जगाति कौ, धर्म अंस रस लेइ ॥४९॥

चित्रक षग[1] मृगराज गज, सु[2] सिंचान वहु भाँति।
आस षास दरबार मै, षरे ते पातिनि पाँति ॥५०॥

( दंडक )

विप्र से न वरन करन से न दानी जग[3]
रुद्र से न देवता समुद्र नाही छीर से।
तूल से न कोंवल कमल से न विवि फूल
हीरा से न कठिन असल नाही नीर से ॥
पुहुकर से न तीरथ समीर से न वलिवंत
पुत्र से न दाहक[4] (जु) पीरक न वीर से।
पीछे ही न भये अब आगे ह्वैहै न सुनै
कहुँ परम पुनीत पति साहि जँहगीर से ॥५१॥

( छप्पय )

जब लग ईस विरंचि लसति लछमी नाराइन।
जब लगि नीर समीर सूर ससि हरि ताराइन ॥
जब लगि अचल सुमेर फनिंद फन मेदिनि छाजै[5]।
नूरदीन जहँगीर[6] नाह सिर छत्र विराजै ॥
सहस जीभ फनि मनि च्चवै पुहुकर पढत असीस थिर।
छत्रपती साहि अकबर सुतन पातिसाह जँहगीर चिर ॥५२॥

( दोहा )

सुत सुपुत्र निर्मल नवल. सूर [illegible] [illegible] [illegible]।
उदित हाथ पयोधि ज्यौं,[7] गाजिव [illegible] जहाँन ॥५३॥

---

१—अ. मृग। २—व. मोड। ३—व. स. द. [illegible]। ४—[illegible]. दाज्ञ। ५—व. स. द. मेरु सुमेरु फनिंद मेदिनि पर छाजै। ६—[illegible]. [illegible] नागौ नवल। ७—व. निभि।

( दंडक )

जैसे भयो गरुव गनेस गौरिनाथ सुव
जैसें ससि सोहियतु सागर सुधीर के।
पंडव प्रवाल जैसे पारथ प्रताप पूरे
जैसे हनिवंत बलिवंत सौ समीर के॥
कहै कवि पुहुकर कस्सिप कैं कुल भानु
अचिरजु कौन रघुवंस रघुवीर के।
अकबर साहि जू के साहि जहाँगीर जैसे
जैसे साहिजादौ साहिजहाँ जँहगीर के[1] ॥५४॥

( दोहा )

प्रजा पुन्य[2] प्रगट्यौ पुहमि छहु दरसन[3] की लाज।
पेषत पुत्र पयोत्र सुष करौ कोटि जुग राज ॥५५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कविपुहकर विरंचितेयं आदि षडे
छत्र सिंहासन वर्नन नाम द्वतीयौ अध्यायः ॥२॥

## अथ कवि कुल वर्णन

( दोहा )

गंग जमुन अंतर उभै, रम्य देस पंचाल।
सोम नाम तीरथ जहाँ, ता मधि अमर मराल ॥५६॥

( चौपही )

तीरथ गुन न जानै कोई। तिहि संजोग कथा कर होई॥
पच्छिम दिस राजस भुवपाला। बिगरौ रोग अंग तिहि काला ॥५७॥
चतुर[4] जानु स्वारथ नहि देपा। धरौ मरनु मन माह विसेषा॥
राज अभार पुत्र कौ आयौ। आतु पंथ कासी चितु लायौ ॥५८॥
कियौ आय तिहि ठौर मिलाना। जिहि ठाँ अलप सरोवर जाना॥
तृसावंत राजा जब भयौ। आतुर निकट सरोवर गयौ ॥५९॥

---

१—न. साहि जँहगीर कै, स. द. जैसे साहजहाँ साह जहाँगीर के।
२—न. स. द. जग जान्यो। ३—च. छहु रसन। ४—च. चोहत।

परसत ही कर नीर सनेही। गयौ रोग भइ कंचन देही॥
तव राजा अचरज मन कीनौ। कर सजल सरवर चितु दीनौ॥६०॥
विसमित सकल संग के लोगा। पूरन पुन्य भयौ संजोगा॥
चित की चिंत रोग भयौ दूरी। सकल आस उर[1] अंतर पूरी॥६१॥
जव विश्राम नींद निसि कीनौ। सोमनाथ सपनंतर दीनौ॥
तातै सपनौ मन कौ गयौ। नीकौ विधि सचु[2] सो नृप भयौ॥६२॥

( दोहा )

काम मोच्छ कौ दान जग, तीरथ पति यह आहि।
कासी सम यहु ठौर है, अव जनि कासी जाहि॥६३॥

( चौपही )

प्रगट पुरुष सपनौ दिषरायौ। अरु फल तुरत ततच्छन[3] पायौ॥
भूमि गाँव तहाँ नगर वसायौ। जनु विरंचि रचि आपु वनायौ॥६४॥
चार वरन तहाँ वसैं सुधर्मी। पंडित विप्र वेद षटकर्मी॥
कूप अनूप वाग वहु साजे। प्रजा महल वहु भाँति विराजे॥६५॥

( दोहा )

चहुँ दिसि पारि वनाइ के, हरि मंदिर तिहिं ठाउँ।
नगर मनोरथ थापि कै, नाम धरौ मुइगाउँ॥६६॥

( चौपही )

असि वल राज आहि कलि माहीं। पुहुमी अटल नृपति कोउ नाहीं॥
चाहुवान संभरी[4] नरेसा। दलवल जीत लियौ सो देसा॥६७॥
तिहि कुल कलस छत्र छिति छाजा। भये प्रताप रुद्र वड राजा॥
वहुत देस करि वर कर लीनें। नगर निकट प्रताप पुर कीनें॥६८॥
परम रम्य सो पुर सुपदाई। सुभ नच्छत्र सौं नींव दिवाई॥
संम्हर धनी कियौ तहँ राजू। नेगी संग सम्हारहिं काजू॥६९॥

( दोहा )

देस राज कायस्थ कुल श्रीनिवास श्रीवास।
तिनि गृह कियौ प्रताप पुर नृप हित कहँ सुपास॥७०॥

---

१—ब. वर। २—अ. में निचली अर्धाली नहीं है; स. द. सुचि।
३—स. द. तुर्त तत्छण। ४—अ. संभलिय।

तासु तनय विवि पुत्र हुव, सुषनिधि आनद कंद।
धर्मदास निर्मल नवल, मनौं सूर अरु चंद ॥७१॥

षरे जाति षोटे नहीं, विन मह षोट न होइ।
आपे श्री रघुनाथ के जानतु हैं सब कोइ ॥७२॥

धर्मदास संतान बहु सुपुरुष सकल वपानि।
निरषे चंद कुवेर जहां जनु कुवेर कलिदानि ॥७३॥

तासु पुत्र वनसिंह हुव परम पुरुष विष्यात।
कुल दीपक कलि मे प्रगट जनु समुद्र दधि जात ॥७४॥

चार पुत्र वन सिंह हुव, देवी दुर्ग निरंद।
केसवदास प्रसिध्य जग, प्रेम करन कलि इंद ॥७५॥

दुर्गादास तन पुत्र विवि, काइथ कुल अवतंस।
सुजतु साहि दरवार में पेनिदास हरिवंस ॥७६॥

( छप्पय )

अति प्रसिध्य समहूर साहि अकवर दरवारह।
जसु प्रकास उजियार वार पारह उठि[1] पारह ॥
ब्रह्म भक्त परवारपाल हिरदै हरि ध्यावहिं।
चित उदार मति धीर जासु गुनियनि गुन गावहिं ॥
कल वेनी दुर्गादास हुव बहु कुटंव संधीर सुव।
जानत जहान जसु जगत में सु मानहु मदन मयंक भुव ॥७७॥

( दोहा )

वेन तनै परतापमल मोहन महि जसु पूरि।
एक पुत्र हरिवंस के स्याम सजीवनि सूरि ॥७८॥

वाला पन ते वहुत विधि जसु लिय मोहन दास।
पिता मरन सत पुत्र हुव किय परभूमि निवास ॥७९॥

आदि अंत ते आठ भरि विलसौ द्रव्यि[2] अनंत।
जिहि प्रसाद बहु विप्र कुल रौंक[3] भये धनिवंत ॥८०॥

---

१—अ. उठि। २—अ. दवि, स. द. द्रव्य। ३—व. रंक।

(छप्पय)

बहुत काल[1] संतान हेत गौरीपति ध्यायौ।
करि मन वच क्रम सेव देव संकर वर पायौ॥
सप्त पुत्र उर धरिय विदुष बुधिवंत विनानिय।
तहाँ जेष्ट पुहुकर प्रसिध्धि सरसुति सुप वानिय॥
सुंदर सुबुद्धि राघव रतन मुरली धर संकर सरस।
मकरंद राइ राजत सुभट[2] सकल सिंह पारस परस॥८१॥
बाल केलि रस पेल माँझ वसु वरस[4] वितीतौ[5]।
पितु प्रताप बहुलाड़ कोड[6] आँनद सँह वीती॥
नवम वरष जलनाथ[7] थापि पूजा करवाई।
राषि द्वार आपून पिता पारसी[8] पढ़ाई॥
पायौ प्रसाद सरस्वति वचन[9] बहु विलास कंठह धरिय।
भाषा प्रबंध्य उत्ताल गति सो बहु विधान गुन विस्तरिय॥८२॥
प्रथम वृत्ति काइस्थ लिपन लेषन अवगाहन।
विषम करम नृप सेव तुरत आयसु निरवाहन॥
द्वादस विधि अवदान सुनत नवगुन अवराधन।
छंद वंद पिंगल प्रबंध बहु रूप विचारन॥
पारसीय काव्य पुनि सैर विधि नजमन सर अवियात कहिय।
परतिच्छ देवी सारदा भई उर निवास सुप वसि रहिय॥८३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय आदिषंडे कवि
वंस वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः॥ ३॥

अथ कथा प्रसंग वर्णन

(दोहा)

उभै अंग कीनौ प्रघट पुहुकर अधिपति काम।
विप्रलंभ संभोग तहँ पायौ द्वै विधि नाम॥८४॥
प्रथम वरन सिंगार रस प्रचलित[9] कथा प्रसंग।
सोभित नग[10] अच्छर जटित भूषन अंग अनंग[11]॥८५॥

---

१—ब. स. द. सकल। २—अ. सरस। ३—स. द. सिंधु। ४—द. स.। मास वरस। ५—स. द. मास बसु वरस। ६—ब. स. द. गोद। ७—अ. गनपति। ८—स. द. फारसी। ९—ब. स. द. रस प्रनमा। १०—ब. नाग। ११—अ. भूषन भूषित अंग।

( चौपही )

पुहकर सुकवि चित्त यह आई। बरन कहौं कछु कथा सुहाई॥
मन दै श्रवन सुनो सुर[1] ग्यानी। इहि विधि कहौ जो[2] प्रेम कहानी॥८६॥
नव रस भेद आहि इहि माहीं। बहुत अर्थ कछु थोरौ नाहीं॥
यह तौ समुद गहिर गंभीरू। लेहु बुध्यि भाजन भरि नीरू॥८७॥
पहिले दंत कथा हम सुनी। तिहि पर छंद बंद हम गुनी॥
श्रवनन सुनी कथा कुछ[3] थोरी। कछुवक आपु उकति तैं जोरी॥८८॥
कहूँ वीर वीभत्स वषांना। रूद्र भयानक अद्भुत आना॥
वरनौ उभै ओर की प्रीती। अरु सिंगार विरह की रीती॥८९॥
विप्रलंभु संभोग सिंगारा। वरनौ उभै ओर विस्तारा॥
कहूँ कहूँ करुना रस पावा। कहुँ विचार परमारथ गावा[4]॥९०॥
हास विलास वरन बहु भाँती। भांति सुनै सोई मन साँती॥
है सब कथा अनुक्रम न्यारे। लेहि बूझ मन बूझन हारे॥९१॥
कथा प्रसंग कीन गुन डोरा। नव रस रतन हार हिय जोरा।
सुनहि सुजान काम मनु ल्यावै। जिमि सुख लहै रंक धन पावै॥९२॥
संजोगी विरही मन भावै। छत्री सुनहि मेच्छि करु लावै॥
जो मन ससुझ सुनै वैरागी। तिहि छिन होय विषै रस त्यागी॥९३॥
सुनहु सकल कोविद गुनवंता। देषो बूझि आद अरु अंता॥
कहुँ जुग उकति न जाति वषानी। कहूँ सरल विधि कही कहानी॥९४॥
कहूँ सरस नीरस कहुँ आही। सुनि कर जिनि विसरावौ ताही॥
अगुरी पंच आहि कर माहीं। ते पुनि पंच वरावर नाहीं॥९५॥
छंद एक वरनो कवि कोई। अच्छिर केऊ एकठौं होई॥
सोई विचार[5] मन माँह विचारी। भरो न दूषन लेहु समारी॥९६॥

( दोहा )

दाता ग्याता बुध्यि के वकता कवि बहु भाइ।
पुहकर विनती मान मन विसरौ[6] लेहु बनाइ॥९७॥

---

१—अ. सुग्यानी। २—अ. वरनौ। ३—व. स. द. हम। ४—व. प्रति में इस छंद के पहले ८९ वें छंद की पुनरुक्ति है, इस कारण छंद संख्या गलत हो गई है। ५—व. स. द. वीर। ६—स. द. विसयो।

मंगल विधि वरनन कियौ ग्रंथ निवाहन चाहि[1] ॥
जो कछु कथा है वरनिवे अव पुनि वरनौं ताहि ॥९८॥

( छप्पय )

आदि स्वप्न अरु चित्र विजै अच्छरि चपावति ।
बहुर स्वयंवर षंड सूर वरनौं रंभावति ॥
जुध्य षंड विस्तरौ जहाँ दुहुँ दिसि दल सज्जिय ।
सरौ पात्र जोगिनी सारु[2] छत्री कर वज्जिय ॥
आनंद कन्द वैराग रह तात मात बहु मोद मन ।
नव षंड प्रगट नव षंड महं सु यह प्रसिध्य नव रयनरतन ॥९९॥

( दोहा )

गन नाइक गनपति गुरू ससि नाइक उजियार ।
दिन नाइक रवि जानिये रस नाइक सिंगार ॥१००॥
प्रथम वरन सिंगार रस प्रचलित कथा प्रसंग ।
सोभित नग अच्छिर जटित भूषन भूपित अंग ॥१०१॥
नृप तनया रंभावती सूर पृथीपति पूत ।
वरनौं तिनि को प्रेम रस सकल भयौ तहँ दूत ॥१०२॥
प्राची परम पुनीत अति जिहि दिसि उदित सूर ।
उत्तिम चार दिसान मैं पूज्य पुन्य प्रभूर ॥१०३॥

( चौपई )

सोम वंस सोमेसुर राजा । वैरागर अधिपति छिति छाजा ॥
दिसि पूरब प्रतिपालनु करई । धर्म राज कलमष कलि हरई ॥१०४॥
उपजहिं जहाँ अमोलक हीरा । सुंगहल उपजहिं बल बीरा ॥
उदधि सुता जिहिं देस निवासा । हय गय दल अगनित तिहिं पासा ॥१०५॥
एकहु[4] अग्र नृपति नहि हीना । सुत अभिलाष रहे मन दीना ॥
ताराइन तरनी बहु दारा । रूप रूद लाउ उजियारा ॥१०६॥

---

१—अ. स. द. ताहि २—अ. स. [illegible] । ३—[illegible] अविकल पुनरुक्ति है । [illegible] प्रतियों में प्राप्त होता है । ४—अ. स. द. एकहि ।

त्रियनि सहित कासी मह आयौ। विश्वनाथ चरननि चितु लायौ॥
चिंतामनि पंडित गुरू कीनौ। तिहि उपदेस मंत्र करि दीनौ॥१०७॥

( दोहा )

मन वच क्रम करि कामना करौ संभु की सेव।
मन इच्छा सब देहिंगे संपति संवति देव॥१०८॥

दंपति की सेवा करौ दंपति मिलि बहु जास।
मुक्ति पदारथ पाइहौ अरथ धरम अरु काम॥१०९॥

चिंतामनि उपदेस ते संकर सेवन लाग।
कर जोरे विनती करै अस्तुत कर अनुराग[1]॥११०॥

( छंद तोटक )

त्रिपुरारि त्रिलोचन सूलधरं। करुना करि संकर कामहरं॥
अर्धंग विराजत संग प्रिया। जनु पुहुकर हार हुलास हिया॥१११॥

उतलंग सुगंग तरंग लसी। घन मै जनु दामिन रेष बसी॥
विधु बाल सुभाल[2] तिलक्क दियं। जनु कंचन हीर जराव कियं॥११२॥

गल नील हलाहल रेष परी। मनि स्याम मनौ सिव कंठ धरी॥
उर भूषन माल कपाल कियं। तन सोभित सेत विभूत थियं॥११३॥

मृगछाल सु आसन वास बसै। कर डौरू वडाक पिनाक लसै॥
जिहि सेवत गंध्रप देव दिवं। अविनासिय आदि अनादि सिवं॥११४॥

सनकादिक नारद ध्यान धरैं। चतुरानन वासु अवासु करैं॥
तुव नामु नमो सिवनाथ[3] हरं। मिलि सांगिय भूपति काम वरं॥११५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयम् आदि पंडे
सिव अर्चनो नाम चतुर्थो अध्यायः॥ ४॥

( दोहा )

संकर सेव प्रसन्नि करि जांच्यो सुष संतान।
पट राग्यनि कमलावती उपज्यौ उर आधान॥११६॥

---

१—स. द. प्रतियों में छन्द संख्या १०९ और ११० के दोहे नहीं हैं।
२—ब. स. द. सुभाल। ३—ब. स. द. नवनाथ।

मास मास दस मास क्रम बढ़ी नृपति मन आस।
हिदे कमल प्रफुलित भयौ कीनौ सूर प्रकास ॥११७॥
भादौ पूरब पच्छ मे सुभ नछत्र रविवार।
तिथि मावस पावस समै भयौ कुँवर अवतार ॥११८॥

( चौपही )

सोमेसुर पूजी मन आसा। सोम वंश सूरज परगासा ॥
कुहू रैन, अनगन अँधियारी। प्रगटित पौहमि सूर उजियारी ॥११९॥
जननी जन्म सुफल कर जाना। जात कर्म नृप कीन विधाना ॥
सहस धेनु कंचन बहु हीरा। अगनित दर्ब दियो नृप धीरा ॥१२०॥
पंच शब्द बाजहिं दरबारा। षट दरसन आये तिहि बारा ॥
सब कौ हीर चीर नृप दीनौ। जाचक जगत अजाचक कीनौ[1] ॥१२१॥
बैठे पंडित जोतिष ग्याना। जन्म पत्र फल कहै प्रमाना ॥
तन रवि बुध धन भवन बखानौ। सहज भवन सनि राहु समानौ[2] ॥१२२॥
बुद्धि भुवन सुर गुरू ठहरायो। चौथे शुक्र उच्च फल पायो ॥
कर्म भवन पृथ्वी सुत देषा। कुल दीपक उनि गन्यो विसेषा ॥१२३॥

( दोहा )

लाभ भवन दुजराज गृह नवम केत नव जोग।
पंडित गुन फल लेषहीं, भोगी सब रस भोग[3] ॥१२४॥

---

१—१२१वे छन्द के ब. प्रति के लिपिकार ने एक दोहा संमिलित किया है जो अन्य प्रतियो मे प्राप्त नहीं होता। लिपिकार ने 'षट्‌दरसन' की व्याख्या करने के लिये यह दोहा अपनी ओर से मिला दिया है। या तो यह दोहा लिपिकार बलभद्र कवि का है, या किसी दूसरे का। नीचे दोहा उद्धृत किया जाता है।

"षट् दरसन तिन्ह के नामा :

जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दरवेस
विप्र अनेकन देस के जिनके तप निदेस"

२—ब. स. द. बखानौ। ३—ब. प्रति मे लिपिकर्ता ने [illegible] 'चौथौ स्थान मे शुक्र परेउ उन को [illegible] [illegible] परम प्रिय को। ब. प्रति म [illegible] इसी प्रकार से एक नया पाठ [illegible] है। इस पत्र का कागज, स्याही, लेखनशैली आदि सभी [illegible]

( चौपही )

लगन जोग द्विज करहिं विचारा । बहुत उच्च फल आहिं अपारा ॥
चक्रवती पोहमी पति होई । कुल मैं भयौ न ऐसो कोई ॥१२५॥
सुंदर कुँवर[1] होइ गुनवंता । कुल कौ कलस आदि अरु अंता ॥
प्रीत जोग उपजौ इहि माही । सो तौ बनत दुरायै नाही ॥१२६॥
तेरह बरस ग्यारहें मासा[2] । कुँवर होइ त्रिय बिरह उदासा ॥
बहु वियोग संताप सतावै । गुन जन बैद सूरि नहिं पावै ॥१२७॥
बरष तीन लगि रहै वियोगी । कारन भूत होइ पुनि जोगी ॥
चौथी बरष सजीवन पावै । दुष संताप सबै बिसरावै ॥१२८॥
विवि ग्रहनी ह्वैहैं बरनारी । चारि पुत्र पहुमी अधिकारी ॥
चार दिसा पति ह्वैहैं राजा । जीतै सत्रु छत्र छिति छाजा ॥१२९॥
कुल मंडन महि[3] मंडल भूपा । मकर ध्वज सम रूप अनूपा ॥
गोरष ग्यान दान बलि मानो । साहसीक विक्रम सम जानौ ॥१३०॥
अर्जुन जिसै मन्त्र अधिकारी । बली भीम भीषम ब्रत धारी ॥
विद्या भोज सकल गुन पूरा । ससि जिमि[4] रूप सूर जिमि सूरा ॥१३१॥
पंच वादि सत वर्ष न आऊ । फल अगम सब लिषौ अगाऊ ॥
कीरत विदित जगत जग जानी । जुग जुग चलै सु जासु[5] कहानी ॥१३२॥

---

यह पत्र लिपिकार बलभद्र का नहीं प्रतीत होता। इसमें जन्मपत्र और उसका फल इस प्रकार दिया हुआ है।

तन रवि बुध धन भवनहिं जाना
सहज भवन शनि राहु बखाना
चौथे भवन भूमसुत पावा
पुत्र भवन सुरगुरु ठहरावा
कर्म भवन एकादहिं देखा
कुल दीपक सुत गन्यो विशेखा
प्रथम भवन दुजराज ग्रह नवम केत नव जोग
पंडित गन फल लेखहीं भोगी सब रस भोग

१—ग्र. सूर। २—ब. म. द. बारहे बरस तेरहे मासा। ३—ब. स. द. [illegible] महि। ४—ब. म. द. जिम। ५—ग्र. जुगनि चलै जसु जासु।

इहि विध जन्म पत्र ठहरायौ। षोडस दान[1] नृपति पँह पायौ॥
करी छठी छठ्ये दिन राती। नगरी सकल भई रँगराती॥१३३॥

(चौपही)

घर घर बांधे वंदनवारा। घर घर नाद गीत झनकारा॥
घर घर तिलक निछावर आई। जननी आनँद उर न समाई॥१३४॥
रासि नाम दसयें दिन दीन्हा। कुंभ थापि सुर पूजा कीन्हा॥
गुनी विप्र कर करहिं विचारा। कहूँ रयनि भयौ सूर उजारा॥१३५॥

(दोहा)

रैन कहूं रवि[2] ऊगवै[3] विमल किरन[4] जग[5] पूर।
कुंभ राशि प्रसानि[6] मन नाम धरौ तिन सूर॥१३६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहंकर विरचितेयं आदि पडे
सूर अवतार वर्ननोनाम पचमो अध्यायः॥ ५ ॥

(चौपही)

रापहिं धाइ खिलावन हारी। अतिहित पीर पिवावहिं नारी॥
बरष दिवस मे बोलन लागे। चन्नन चलै चाह अनुरागे॥१३७॥
बरष पाँच सब भये कुमारा[6]। राये नृपति संग प्रतिहारा॥
धनुही बाँस लाप के बाना। मारे खगनि करै परिहाना॥१३८॥
और खेल गिंदुक चौगाना। जीते सब सों चतुर सुजाना॥
सब लच्छनि? पितु प्रान अधारा। गनपति पूजि बैठि चटसारा॥१३९॥

---

१—ब. प्रति के लिपिकर्ता ने 'षोडश दान' की व्याख्या इस प्रकार की है। सोरा दान के नाम। गोदान। कन्यादान। सुवर्णदान। चाँदी दान। मूंगा दान। मोतीदान। हीरादान। छत्रदान। विद्यादान। [illegible]। गजदान। अश्वदान। रथदान। भूमिदान। भोजन दान। वस्त्र दान। ये सोरा दान हुवे।

२—ब, स. द. जो। ३—ब. स. द. उगवै। ४—ब. स. द. [illegible] ५—ब. स. द. लगन। ६—स. द. चगन।

विद्या सकल सिखावन लागे। वहु गुरु एक शिष्य अनुरागे[1] ॥
प्रथम वेद व्याकरन वषानौं। जोतिष वैदक छन्द प्रमानौ ॥१४०॥
अरु संगीत सास्त्र गुन पावा। यह षट अंग वेद ठहरावा ॥
अस्त्र सस्त्र विद्या सिखराई। नाटवंत पुनि विद्या पाई ॥१४१॥
विद्या अधिक रसायन जानी। वीर वीरविद्या परमानी ॥
मल्ल जुद्ध की विद्या लीन्ही। माया जुद्ध पहँ चित दीन्ही ॥१४२॥
तेरह विद्या सीष न थोरी। भई न्याउ लीन्ही चित चोरी ॥
चौदह विद्या सीष सुजाना। द्वादस वरष कनक जिमि वांना ॥१४३॥
तेरह वरष संधि जब आई। क्रम क्रम छूट चली लरकाई ॥
बाढ़न लग्यौ[2] रूप तरुनाई। लसी अंग मनमथ की झाँई ॥१४४॥
नैन वैन सैनहिं अनुरागे। रूप अनूप विलोकन लागे ॥
श्रवनन लोभ रागु रस ताना। चरचा काव्यि सुनत सुष माना ॥१४५॥[3]

( दोहा )

गुन आगर नागर नवल मनमथ रूप कुमार ॥
जग जुवती जन मन हरन सुंदर सूर उदार[4] ॥१४६॥
इहि विधि[5] रूप विलोकि कै जौवन को अधिकार ॥
जन्म पत्र फल जान कै वैठे भूप विचार ॥१४७॥

( चौपही )

कहै नृपति मंत्रिन सो वाता। पंडित वैन सुमिरि[6] विख्याता ॥
निय वियोग इहि लग्न जनावा। चौदह वरष मध्य ठहरावा ॥१४८॥

---

१—न. स. द. मे पहले की दो चौपाइयों का पाठ इस प्रकार है—
वरस पाच मव भये सुजाना। धनुही वास लाप के वाना ॥
करहि कुवर जवहीं सयाना। मारहि पगनि करहि परिहाना ॥१३८॥
वरष अष्ट मद जवहिं सुहाये। कलस थाप गनपति पुजवाये ॥
पाटी वरतन चदन गारो। ओं नमः सिद्ध उचारो ॥१३९॥

२—न. स. द. लग्यो वान। ३—अ. प्रति की छद संख्या ठीक मालूम होती है। अन्य प्रतियों मे १४५वॉ छद अपूर्ण है। ४—अ. उदित सूर कुमार। ५—न. स. द. जय इहि। ६—न. सवै।

यह जु वैस मनमथ पैसारा। देहु कुँवर कौं राज अभारा॥
दलबल भार भूम कौ भारू। होहि मगन मन राज कुमारू॥१२९॥
सषा संग सब रहहु सुजाना। सुभट वीर सेवक परधाना॥
राषहु राज काम मन लावै। हय गय धनुष बान बहरावैं[1]॥१५०॥
गीत नाद चाँचरि[2] चितु लावहु। काव्य कथा कहि काल गमावहु॥
बात सरस कवि[3] कहे सब[4] कोई। इकि सिंगार रस बरजित सोई[5]॥१५१॥
प्रेम[6] कथा जनि बरनौं कोई। सुनैं कुँवर विरह रति होई॥
बरषै तीन कुसल सो जाहीं। होहि सस दस बरसनि माहीं॥१५२॥
ईहि विध मंत्र सबन सिषरावहु। त्रिय तरुनी जिनि नैन दिषावहु॥
नवल नारि नहि रूप बखानहु। बरष तीन यह मत परमानहु॥१५३॥

( दोहा )

इहि विधि मंत्र विचारि कै[7] कीनौ सुदिन प्रमान।
तिथि दसमी आश्वनि समै, विजै नाम कल्यान॥१५४॥
गुन गंभीर मंत्री विमल तिलक सौंज करि साज।
वेद सुविधि अभिषेक करि थपे सूर सुव राज॥१५५॥
जै संगल मंगल रासै वेद बेद[8] धुनि होइ।
चारन[9] वंदी[10] विप्र गन कर संडहि सहु कोइ॥१५६॥
मन प्रमोद सब नारि नर बैर बधू निकरार।
दुजन दहन सज्जन सुषद उदित सूर कुमार॥१५७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहकर विरचितेय आदि खंडे
तिलकअभिषेक बरनन नाम षष्टमो अध्यायः॥ ६॥

( दोहा )

सोम वंस बरनन कियौ सूर सिंघ अवतार॥
विजै पाल बरनन करौं तब पहु प्रेम प्रकार॥१५८॥

---

१—ब. स. द. चौरावै। २—ब. स. द. चरचा। ३—ब. स. द. [illegible]। ४—ब. स. द. जो। ५—ब. स. द. जिहि[illegible] प्रेम उपज नहि होई। ६—स. प्रति में यह विशेष अर्धाली प्राप्त होती है। ७—ब. स. द. प्रमान कर। ८—अ. भेद। ९—ब. स. द. वारन। १०—ब. स. द. बंदी।

( चौपही )

चंपावति नगरी सुर सोहै । महि जराव[1] नग[2] नागर सोहै ॥
बिजैपाल राजा गुन नागर । राज वलय कीनौ जिहि सागर ॥१५९॥
असपति गजपति नृपति सुजाना । दलपति दल अगनित अविदाला[3] ॥
नान पडूग भुव मड भुवाला । अछनीक धर्मिक नरपाला ॥१६०॥
चक्रवती चतुरंग सुजाना । सत द्वीप पहुँमी जिहि आना ॥
घर घर आनद मंगल होई । दुषी दीन देषहु नहि कोई ॥१६१॥
दिग्गि दच्छिन गुज्जरधर देसा । अखिल सुहमि पति भूप नरेसा ॥
दया धर्म तिहि ठाँ बहु भाँती । परम रम्य पथिकल मन साँती ॥१६२॥
नृप दृढ़ धर्म महाजन लोगा । कामिनि कुसल सकल रस भोगा ॥
अति सरूप गुन नागर नारी । वारिधि निकट रतन अधिकारी ॥१६३॥

( दोहा )

एक अधिक त्रिय एक बिधि, जो बिधि रची विचार ॥
नवल रूप जोवन सहित, मनौ मुदित सुरनार ॥१६४॥
कलप वृच्छ नृप त्रियनि मिलि, जिमि तरु लता विराज ॥
पुहुकर पश्चाताप यह, बिनु फल तरु किहि काज ॥१६५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयाम् आदि पंडे बिजै-
पाल राज्य वरनन नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

( दोहा )

निपट पेट नरपति मनहि व्यापहि संतत हेव ।
जब जगम उपदेस दिय तबहिं भयौ चित चेत ॥१६६॥

( छंद पद्धरी )

इक दिवस राजाधिराज । बैठे मलीन संतान काज ॥
आयो जो मित्र इक तेन काल । आदरिय बहुत नृपति जैपाल ॥१६७॥

१—ग. घ, द. महिपगाव । २—ब. स. द. नर । ३—अ. प्रति यहाँ से
खंडित है । बीच के कई पन्ने गायब हैं ।

करि अर्घ आदि आतीथ भाव । कर जोर दीन ह्वै विनव चाव ॥
उदयापि[1] राज मुहि दयौ देव । देसादि भूप सब करहिं सेव ॥१६८॥
हय हैम हीर वारन विसाल । सत इक्क सरस जुवती रसाल ॥
किहि पाप नहीं संतत प्रकास । इहि हेत रहनु सो मन उदास ॥१६९॥
करु मुहि अनाथ पै कृपा नाथ । कै चलौं जोग अवगाधि साथ ॥
बोलियो सिद्ध चित सावधानु । सुन विजेपाल राजा सुजानु ॥१७०॥
जो लिखो भाल बिधना विचार । सो मिटै नहीं कोइ मरौ हार ॥
जौ साजि जोग तजि चलौ भौनु । तौ करहिं प्रजा प्रतिपालु कौनु ॥१७१॥
इकु होहिं कुँवरि कन्या परंत । करु चंडि सेव तजि सकल तंत ॥
उपदेसि सिद्ध आसनहिं जाइ । नृप धरहिं उरह महल[2] पाइ ॥१७२॥
मन वचन कर्म आराधि ताहि[3] । नर नागदेव पूजंत जाहि ॥
षट मास इक्क दिन रैन आइ । तिहुं लोक माइ दुर्ग सनाइ ॥१७३॥

( छप्पय )

तनु सिंगारि सिंगार वीर महिमासुर[4] गंजनि ।
दया दीन करुनानि दुक्ख दालिद्रहिं भंजनि ॥
सषि विलास तहँ हास रुद्र काली कलिहंकरि ।
रुधिर पान वीभस्त सिंह आरूढ़ भयंकरि ॥
कन्या कुमारि त्रिभुवन जननि यह अद्भुत रस पिष्पियें ।
नव रस प्रतिच्छ चंडी चरन सांत संत गहँ दिप्पियें ॥१७४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयाम घादि पदे
सिध्य दरसन वर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

( दोहा )

पट राग्यनि प्रिय वल्लभा, पति मन मोहन बाम ।
रूप सील गुन लच्छिमी, पहुँपावति[5] तिहि नाम ॥१७५॥
पहुपावत पहुँपावती, ललिता लता रसाल ।
भँवर रूप संभोग लिय, सिंगार निधि बाल ॥१७६॥

---

१—ब. अदयापि । २—ब. मिठु. ३—ब. तुरत । ४—ब. महिषासुर ।
५—स. द. पुष्पवती ।

सीप स्वाति जनु बुंद परि, नृप जोषिता विराज।
धरति गर्भ चंडी कृपा, राज अंस वर[1] राज ॥१७७॥
दिन दिन दुति दूनी बढी, नित नित नौतम[2] प्रीति।
प्रकृति सुभाव क्रम क्रम प्रघट, सुतवन मास अतीति ॥१७८॥
रितु वसंत राका सो तिथि, सुभग मास वैशाष।
घरि भुवपति कन्या जनम, श्वाति नषत सित पाष ॥१७९॥
सुनि नृप अति मन मुदित ह्वै, बहु विधि दै अतिदान।
हय गय हाटक हीर दै, राषिय मंगन मान ॥१८०॥
तिहि छिन तनया मुष निरष, उपज्यौ मन आनंद।
बदन जोति जनु दीप दुति, प्रगटित पूरन चंद ॥१८१॥

( चौपही )

पुर पंडित भूपाल बुलाये। लगन विचार करन सब आये॥
कहहिं होइँ बड भागिन रानी। जुगनि चलै जग मद्धि कहानी ॥१८२॥
भानु आदि नवग्रह सुपदाई। पिता मातु अरु कुटम सुहाई॥
इहि विधि पंडित करहिं बखाना। विद्यावान भविष्य निदाना ॥१८३॥

( दोहा )

दस अतीत एकादसी होंहि अवर्ष समान।
तन पीडा मन मूंढता, रहहिं जतन कर प्रान ॥१८४॥
जवहि चतुर्दस वरष वर, बाला करिहि प्रवेस।
तब कुटंब चिंता मिटहि, निश्चित होंहिं नरेस ॥१८५॥

( चौपही )

इहि विधि पंडित करहिं विचारा। विद्या कोविद गनक अपारा॥
नृप द्विज तानु कियौ सनमाना। रासि नाम सो करहिं प्रवाना ॥१८६॥
रूप जोति छवि तिहि छिन बाढी। मथि समुद्र रंभा जनु काढी॥
नैन तून रंभा सम राषी। तुला रासि रंभावत भाषी ॥१८७॥
रापहि धाइ धरहिं मन धीरू। अति मन मोद पिवावहिं पीरू॥
क्रम क्रम वैस वितीवन लागे। तात मातु मन आनद पागे ॥१८८॥

---

१—स. द. उर। २—स. द. नूतन।

( दोहा )

लाड गोड बहु विध किये रही न एकौ आरि ।
आवल्लभ सुत तैं अधिक सुष उपजावनि हारि ॥१५९॥
पंच वरष वर वैस किय पेलत लषियन साथ ।
दस दासी सत कन्यका धाइ रहै मन हाथ ॥१६०॥
षट वरष क्रीडा जुगत सषी भाइ बहु संग ।
ज्यौ ऊषह सरसी लगति सोभित सुंदर अंग ॥१६१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचिते आदि षंडे रंभा
जन्म वर्ननो नाम नवमो अध्यायः ॥ ९ ॥

## अथ वैससंधि वर्णन

( छंद पद्धरी )

जब दसम वरष प्रवेस । तब अतन जतन प्रदेस ॥
पुतरनि जो पेलत बाल । अति चरन चंचल ष्याल ॥१६२॥
तन वसन लागत धूरि । निरषंत नैननि पूरि ॥
विगलत्त अंचल चीर । तिहि धरति नाहिन धीर ॥१६३॥
सब प्रकृति उलटि अचान । फिर अंग मनमथ थान ॥
यह वैस निरषत नैन । थकि सुषह पुहुकर बैन ॥१६४॥

( चौपही )

निस पुतरी सेज्या पोढ़ाई । देषि प्रात उठि रही लजाई ॥
चलत न धाइ पेल अनुरागी । वसन धूरि उठि झारन लागी ॥१६५॥
निरषि नैन पुनि दृष्टि छिपावै । बार बार उठि अचंल लावै ॥
छूटे बार बधावति बाला । उहि विधि चित्त न आवत ष्याला ॥१६६॥
उलट अचानक प्रीत पुरानी । वदन जोति सोभा अधिकानी ॥
रँग अनँग दुति अंग जनाई । चरन चपलता नैननि आई ॥१६७॥

( दोहा )

सैसवताई जगन तनु प्रगट तरुनता जोति ।
दुतिहि देषि पांनूस ज्यों पुहुकर मनमथ जोति ॥१६८॥

(दंडक)

लखै वय संधि आछी असल अनूप अंग
अंबर उदित इंद्र कैसो चंद देषिये।
पुहुकर कहै दुति वरनी न जात सोपै
जोई कवि कहै छवि ताही ते विसेषिये॥
लेषि न परति सिसुताई तरुनाई तन
कौन घटि कौन बढि कौन भाँति लेषिये।
सोभा धाम छाँह ज्यौं, सुनैनी कैसे नैन ज्यौं
कुरंग कैसे नैन ज्यौ तुरंग वेस देषिये॥१९९॥

(दोहा)

तन लज्या सुष मधुरता लोचन लोल विसाल।
देषत जोवन अंकुरित रीझत रसिक रसाल॥२००॥

(चौपही)

भौंह चक्र पच्छिम अनियारे। मद पंजन जनु बाँन सँवारे॥
श्रवन सींव लोचन रतनारे। पदम पत्र पर भँवर विचारे॥२०१॥
कुंडिल किरनि कपोलन झाँई। छवि कवि पै कछु वरन न जाई॥
मुत्तिअगन देषत मन मोहै। जनु नछत्र ससि पारस सोहै॥२०२॥
मंद हास दसनन छवि देषी। सुधा सींचि दारौं दुति लेषी॥
नासा निकट अधर मधु राचै। चाहत कीर बिंब फल चाषै॥२०३॥
जुग उरोज कछु दई दिषाई। उपमा इक मेरे मन आई॥
कमल कली सोभा सुखदाई। जोवन सर झीने पट झाई॥२०४॥
उदर छामि कटि जान न जोई। श्रोनि भार भंगुर अति होई॥
मंद मराल गही गति बाला। कहँ लगि कहौं विनोद रसाला॥२०५॥

(दोहा)

पुहुकर अधरन अरुनता, किहि गुन भई अँचान।
नग नैनन कौ लदन पै, लिये पंज किरपान॥२०६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय आदि षंडे जोवन
वैस संधि वर्ननो नाम दसमो अध्यायः॥१०॥

—०—

# स्वप्नखंड

## मनमथ रति संवाद वर्णन

( दोहा )

एक समै सुख सेज मैं रति राजति पति संग ।
त्रिभुवन से किहि विधि कहो कोटि रूप अँग अंग ॥ १ ॥

( चौपही )

रति पूछै सुन त्रिभुवन नाथा । सुर नर नाग तिहारे हाथा ॥
तीन लोक व्यापक नर नारी । मुनि समाधि अवलोकत टारी ॥ २ ॥
प्रेम फंद जग मध्य पसारो । परो आइ सो फिरि न सहारो ॥
पूछौ बात कहो सत स्वामी । पंचबान कर त्रिभुवन गामी ॥ ३ ॥
देव लोक सुंदर नरनारी । नाग लोक पुनि नाग कुमारी ॥
सुरपुर कहो कौन मन मान्यौ । कौन नारि नर सुंदर जान्यौ ॥ ४ ॥
जिहि सर और न दूजौ कोई । को तिय जो कहि सहँ इक होई ॥
गुन अरु रूप दुहूँ विधि आगर । को अस नारि कौन अस नागर ॥ ५ ॥

( दोहा )

सुन मनसिज धन को वचन, उत्तर दिय मुसक्याइ ।
बहु रतनन वसुधा भरी, कियो विवेक न जाइ ॥ ६ ॥
चारु पुरी चंपावती, चित्रपाल तहँ भूप ।
तासु सुता रंभावती, निंदु मेनहिं निज रूप ॥ ७ ॥
गुन नागरि आगरि नवल, नहिं नर नारि न कोइ ।
नाग वधू नहि [illegible], देवाँगना नहि होइ ॥ ८ ॥
नरन राखि नरनि [illegible], [illegible] सुजान ।
कस राम रूप [illegible], [illegible] ॥ ९ ॥
[illegible] ।
सूर सन तिहि गुन [illegible] ॥ १० ॥

( छंद प्रयंगम )

सुनि सुंदर पति बैन पुलकित रोम हुव।
ते जुग दंपति होहिं, परौ पिय पाँय तुव ॥
जो वह नारि कुमारि, बिवाहै और नर।
तौ जन सत दुख मिटै, नहीं नहिं वास घर ॥११॥

( छंद तोटक )

सुनि सैन जे बैन वधू उच्चरै। जुग नागर जोर विचार परै ॥
सत जोजन अंतर अछ जहाँ। किहि भाँतिनि होहिं बिवाह तहाँ ॥१२॥
जहँ नाम न ठाँम न ग्राम गनै। तहँ क्यौं करि प्रीत विवाह बनै ॥
मन एक अनूप उपाइ धरौ। दुहुँ के मन प्रेम प्रकास करौं ॥१३॥
जहँ लोगन लाज रमाइ रहै। विरहानल बाढत देह दहै ॥
जिहिं रोगहिं सूरि न मंत्र लगै। दिन ही दिन दूनिय काम जगै ॥१४॥

अथ विंब दर्शन वर्णन

( दोहा )

काम कहै सुनु सुंदरी, दरसन तीन प्रकार।
स्वप्न चित्र परतिच्छ प्रिय, प्रगट प्रेम विस्तार ॥१५॥
हौं चलिहों चंपावती, सूर सैनि धरि भेष।
सपनांतर रंभा उरहँ, करन विरह उपदेस ॥१६॥
तुम वैरागर जाइ कै, स्वप्न सूर कहँ देहु।
तन रंभावति रूप धरि, वढै परसपर नेह ॥१७॥
कंत कहो सो भानि रति, तिहि छिन तिहि पुर जाइ।
काम कुँवर को स्वप्न करि, आई प्रेमु वढ़ाइ ॥१८॥
मदन चल्यौ चंपापती, चंपकु चापु चढाइ।
पंचबान ते सान दै, लीन्हे कर पैनाइ ॥१९॥

( दोहा )

मोहन सोहन उनमदन अरु उच्चाटन लीन।
मारन मर पंचम लियौ बल अबला पर कीन ॥२०॥
चारु चंद अरु चाँदनी, चंदन चर्चित अंग।
नृपतनया रंभावती, जीतन चल्यौ अनंग ॥२१॥

उभै जाम जामिनि गई, नगर पहूँची वाट।
बन वेली वीथी निरषि, पुर हाटक जुत हाट ॥२२॥
राज महल सब देष कै, दिष्षिय कुँवरि अवास।
रुक्म रुचित राजत जहाँ, बिलसत मदन बिलास ॥२३॥

( छंद पद्धरी )

रतिनाथ देषि तहाँ उज्जल धाम। मनि मुक्ति जटित नैननि निराम ॥
नवलत कलानि मिलि ललत चंद। जिहि छंद लसत पद्धरी छंद ॥२४॥
सीतल सुगंध जिहि मंद बाउ। अति चारु चित्त जिहि निरष चाउ ॥
जहँ बकुल वेल चंपक गुलाब। मालती जाइ केतकी आब ॥२५॥
गुंजार करत भृंगार भीर। बिधु बदनि नारि सब कुँवरि तीर ॥
उज्जल सुतल जामिनीय सेत। तहँ ललत बाल सुष सयन हेत ॥२६॥
चहुँओर[1] धाइ सहचरनि[2] संग। सोहंत सकल शृंगार अंग ॥
मद मदन सुस निद्रा अपार। जानहिं न द्वार पावद वार ॥२७॥
बैठियौ सूर धरि रूप तेज। जनु कोटि सूर इक सूर तेज ॥
निजु काम कहौं किहि विधि बनाइ। छवि अंग अंग बरनी न जाइ ॥२८॥
प्रथमहि सो बान उचाट मारि। उचटी जु नींद रंभा सुनारि ॥
निरषंत नैन इक नर अनूप। जनु सूर तेज अरु कामरूप ॥२९॥
हरि हरित नैन अरु प्रान तासु। करि रोन रोस कंद्रप विनासु ॥
नृप सुता देषि मूरत्ति मैन। उहि अमिय रूप भरि लिये नैन ॥३०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वप्न षंडे मदन
विनोद वर्ननो नाम प्रथमो अध्यायः ॥१॥

( दोहा )

देषि रूप उर धारि करि, मनु गिडियानर चारि।
तृपित न मानत नैन पुन, रंभा [illegible] मारि ॥३१॥

( छंद मोतीदाम )

किरीट धरं सिर सज्जित हीर। [illegible] मन मोहन [illegible] ॥
मृगमद भाल तिलक बनाइ। [illegible] ॥३२॥

१—न. वीर। २—ह. चचरनि।

रहे फिरि घूँघर कुंतल वार । जँजीर मनौ मन बंधनवार ॥
लसे श्रुति सुंदर कुंडल लोल । अभासत है विवि चारु कपोल ॥३३॥
सरोज दल्ल दुति सोभित नैन । गिरा जनु सेव मनोहर बैन ॥
भुजा जनु नाग विराजत वाम । उर सोभित मोतिय दाम ॥३४॥
अनूपम आनन भौंह कमान । मनौं वल्ली मन मोहन बान ॥
मृगपति लंक सुवच्छ विसाल । निरप्पत नैन विमोहिय वाल ॥३५॥

( दोहा )

चाहति पूछौ नाम गुन, राज कुँवरि तजि कान ।
तिहि छिन हनि मनमथ्थ विय, मोहन सर संधान ॥३६॥
बैन थके अरु गति थकी, लोचन थके विसाल ।
सोही मोहन बान ही, त्रिभुवन मोहन बाल ॥३७॥

( सोरठा )

दग घटिका तिहि तीर । छवि निरषत मनमथ रह्यौ ॥
अबला करी अधीर । अतर अतर ध्यान हुव ॥३८॥

( दोहा )

उदमादक जो बान विय, ते पुनि त्रिय तन लाइ ।
विरह जलधि मे डारि कै, मदन चल्यौ पछिताइ ॥३९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय स्वप्न पडे मदन
चपावती प्रवेसनो नाम दुतीयो अध्यायः ॥२॥

( दोहा )

स्वप्न निसा अचिरज सहित, चितई राज कुमारि ।
मन उर्की जानै नहीं, को गयो चेटकु डारि ॥४०॥

( चौपई )

भयौ प्रात रवि किरनि प्रकासी । बिहसि बदन पदमिनि आभासी ॥
[illegible] लागि मद छुटि भाजी । पुलकित चक्र वाक करि साजी ॥४१॥
[illegible] निसा तजि जागी । चंपत कुँवरि बिचारन लागी ॥
निरख [illegible] सुन [illegible] देखी । कुंवर कलीन किहि कारन ऐसी ॥४२॥

समिट सबै तिहिं पारस आई। निरष नैन संका भरमाई ॥
पीत बरन लोचन थिर तारे। रति नाइक जनु चित्र सँवारे ॥४३॥

( दोहा )

रंभा पुतरी चित्र की, रची विरंचि विचारि।
सो गुन सत्य प्रवाँन हुव, रहि आपुनपौ हारि ॥४४॥

( छप्पय )

अचल तार अध नैन वाम कर चित्तु चिहुट्यौ।
प्रात ओस कन बुंद पदम दल अग्रह छुट्यौ ॥
मलिन नलिन मुष जोति पलन लागत पल सथ्थहिं।
अति उरोज पर लसै नैक नहिं टारति हथ्थहिं ॥
विधना विचित्र सम चित्र किय पुतरी चित्र समान किय।
बुझहि न बैन उत्तरु[1] चवै सषिन संक इमि उप्पजिय ॥४५॥

( सोरठा )

नीर निकट लै आइ। बदन पषारहिं सहचरी ॥
पै[2] मन उपजै भाइ। विरह बेल सींची मनौ ॥४६॥

( चौपही )

सुनतहिं धाइ सबी सब आई। देषत ही ठग मूरि सि षाई ॥
राज कुँवरि अरु सुठि सुकुमारी। बोलै नहीं वली विस[3] सारी ॥४७॥
रूप गरुव मनमथ अति भारी। क्यौं जुग भार सम्हारे नारी ॥
कर गहिं वहुरि सेज पौढाई। तपनि अंग उपजी अधिकाई ॥४८॥
तब सब मिलि करि करहिं विचारा। आजु सकल संसार असारा[4] ॥
कौन व्याधि सो परत न जानी। कहौ कहा जो पूछहि रानी ॥४९॥

( सवैया )

एक कहै वाय एक सोचति उपाइ अंग,
एक कहै भयौ जुरु जूडीयो जनाई है।
एक कहै भूत भय संपिनी की झंका भई
एक कहै लौनी अति काहू डीठि लाई है ॥

---

१—स. द. उत उच्चवै। २—स. द. ये। ३—अ. वस। ४—अ. अगारा।

एक कहै आजु लाल चूनरी पहिरि साँझ
गई फूलवारी माँझ तहाँ भरमाई है।
एक कहै यौजगी है एक कहै छली काहू
एक कहै काहू करतूति करवाई है ॥५०॥
एक चले धाइ एकै परै मुरझाइ धर
एकै कहै हाइ हाइ कौन कहाँ आई है।
एकै गहै पाइ एकै बदन धलाइ लेइ
हाहा इत हेरि नेक कौने डरवाई है॥
उठि अकुलाइ एकै बैठहि अरस्याइ फेरि
कछु ना बसाइ विधि कैसी धौं बनाई है।
रंभा रंभा नाम एक रसना लगाइ रही
एक सखी नैन के प्रवाह जल न्हाई है ॥५१॥

(सोरठा)

पुहुकर प्रबल सनेह राज कुँवर मन भावती।
तापर अचिरज एह एक विरह सब विरहिनी ॥५२॥

(चौपही)

इक सखी बारि फेरि जल पीवहि। कहहि कुँवरि इहि कारन जीवहि॥
इक सखी फेरि तोरि त्रनु डारहि। मोर पच्छ इक कर गहि झारहि ॥५३॥
बोलहि विप्र निमंत्रिनि नारी। विषम व्याधि तें उबरहि बारी॥
विहु छिनु दान करन इक लागी। राज कुँवरि के हित अनुरागी ॥५४॥
इक बोलहि व्रत बिना अहारा। कहहि करौ करुना करतारा॥
राई नोन उतारहिं बाला। नौनी मूरति निरषि रसाला ॥५५॥

(दोहा)

इक त्रिय अरपति आपु अपु, चित न रह्यौ कछु चेत।
सजन विसारौ सहजपन, रंभावति के हेत ॥५६॥
दिनकर सों कर जोर कैं, अंजुल बाधहिं पूर।
व्याकुलता हर बेगही, व्याध व्यथा हर सूर ॥५७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वप्न षंडे विरह उत्पत्ति
वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

( सोरठा )

बानी भई अकास । षेद निवारहु सहचरी ॥
सकल करहु मन आस । सूर बिथाहर होंहिगो ॥५८॥

( दोहा )

सुनि अकास बानी श्रवन, भयौ सबन मन धीर ।
आरंभे विधिबत करन, सूर हरैगौ पीर ॥५६॥

( चौपही )

बानी भेद कछु और जनायौ । देषत सबन बचन सुष लायौ ॥
कहै सषी सब नगर प्रजारा । एक नगर सब किधौ सँसारा ॥६०॥
प्रलै अग्नि यह आजहिं आई । राज कुमारि कहाँ है माई ॥
कहै सषी यह अग्नि न होई । तोहि रोग उपज्यौ तन कोई ॥६१॥
करहि न कह्यौ सषिन कौ प्यारी । निसि वासर विहरौ फुलवारी ॥
कहाँ पीर किहि ठाँ भरमानी । कहै बिना कछु परत न जानी ॥६२॥
चित जिन भर्म करहि सुकुवारी । अब आवति ढिग माइ तुम्हारी ॥
मन जिन सोच भरम नहि कीजै । समुझि सहेलिन उत्तर दीजै ॥६३॥

( सोरठा )

लै अति उच्च उसास । जरत जीभ वतियाँ कहै ॥
मो जीवनि की आस । तजौ सषी जन सर्वथा ॥६४॥
फिर बोली बिलषाइ । दुसह तपन तन उप्पजिय ॥
सीतल करहु उपाइ । सीतल होहि कदाचि तनु ॥६५॥

( चौपही )

यह कहि बहुरि फेरि मुरझानी । जनु विषधर लहरैं अधिकानी ॥
सषी गई पहुँपावति पासा । कहहि कुँवर कछु आजु उदासा ॥६६॥
परति न जान कौन तन पीरा । चित अग्यान अरु विकल सरीरा ॥
सुन तन माइ धाइ करि आई । देषत ही गति मति बिसराई ॥६७॥
नैन प्रवाह बढ्यौ धर भारी । प्रेम हेम सींची सुकुमारी ॥
पूछ्यौ सषिन कही कछु बानी । चकृत चहूँ दिस चितवै रानी ॥६८॥

( दोहा )

सब सहचरि मिलि उच्चरैं, प्रातहिं बैठी जागि ।
कर न डुलै बैननि चवै, नैन रहे टक लागि ॥६९॥

अवहिं एक बतिया कही, विषम तपनि तन होइ ।
जिहि तें सीतलता गहै, जतन विचारो सोइ ॥७०॥

अरु अकास बानी भई, करौ सूर की सेव ।
गहर पहर नहिं कीजिये, व्याधि निवारहिं देव ॥७१॥

( चौपही )

तिहि छिन विप्र अनेग बुलाये । मंत्र मित्र आरंभ कराये ॥
करहिं जाप दुज कुल के देवा । बहु विधि करहिं सूर की सेवा ॥७२॥

अग्नि होम सब करहिं अपारा । ब्रह्म भोज अरु दान अचारा ॥
निसु दिनु एक चित्त सब करहीं । राजकुमारि आउ-हित चहहीं ॥७३॥

( दोहा )

सखी सबै रवि व्रत करैं, राज वधू के संग ।
निपट विकल रंभावती, तपन बढ़ै दिन अंग ॥७४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वप्न खंडे आकास
बानी बर्ननो नाम चतुर्थो अध्यायः ॥४॥

( चौपही )

सुनि भुव पति मन भयो उदासा । बैद बोलि पठये तिहि पासा ॥
रोग ग्यान सब करहिं विचारा । बहुत ग्रंथ मथ विविधि अपारा ॥७५॥
ग्रंथ गुंथ मति सबनि विचारी । धनन परी नारी घन न्यारी ॥
विषम व्याधि सो परति न जानी । देषत जलज बंधु कुम्हिल्यानी ॥७६॥
तब पूछी पीडा सहचारी । है बोली कछु राजकुमारी ॥
कहै ताप तन अधिक बतावै । कैसहुं सीतल होन न आवै ॥७७॥
छिरकि उसीर नीर लै आनी । औषधि और कुमकुमा सानी ॥
भूरि बताइ बैद घर आये । अंग लेप के जतन कराये ॥७८॥

सीतल सकल उपाइ विचारे। तीनि अग्नि के मेटनि हारे॥
किसलय कमल विमोल मगाये। मिलि चंदन घनसार घसाये॥७९॥
कहहि उसीर विजन कर लीजौ। सीत सुगंध बाउ तहँ कीजो॥
मूल उसीर करहु गृह छाया। चंदन लेप करहु सब काया॥८०॥
भानु किरन अवरोध बनावहु। विजन वायु तजि और न लावहु॥
रैन सेज अंगन अह लीजौ। चंद किरिनि सो भीनहिं दीजौ॥८१॥

( दोहा )

बैद विदा करि सब सषी, लागी करन उपाइ।
तपनि अंग नेक न घटे, पल पल प्रति अधिकाइ॥८२॥

( चौपही )

दल सरोज जबहीँ ढिग आने। लेप करत सब सूष उडाने॥
तन चंदन छिरकत इमि जस्यो। जनु जल तप्त तवा पर पस्यो॥८३॥
पल न परे कल बल न सम्हारै। धुनै सीस अरु कर पद झारै॥
सीत समीर लगत अकुलानी। नीर के हेत अग्नि अधिकानी॥८४॥

( दंडक )

चंदन चिनगी घनसार सानौ सारधार।
विमल कँवल कल कल न परत है॥
सीर सौं उसीर लागै कुंकुमा करौत ऐसे।
पवनु दवनु मानौ देपत डरत है॥
तीर ऐसो नीर तरवारि सौ तुसार तन।
नेजा ऐसी सेज मानौ जीवन हरत है॥
फूलन ते सूल होंहि दाहन दुकूल अंग।
घरी घरी बढे मानौ घरी सी भरत है॥८५॥

( कुंडलिया )

रोग कफ्फ पित बात के बैद करत है दूरि।
पुहुकर वेदनि विरह की जादि न औषद मूरि॥

जाहि न औषद भूरि पूरि महि मंडल छाजै ।
धन्वंतरि पचि रह्यौ एक उपचारु न आवै ॥
जौ विधि होहिं कृपाल करहिं प्रीतम संजोगहिं ।
वैद न पावहि पीर हरै कफ बातक रोगहिं ॥८६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वप्न पंडे वैद उच्चरन वर्ननतो नाम पंचमो अध्याय ॥५॥

( सोरठा )

एक मास इहि भाँति । विरह रोग अवगाह अति ॥
कैसहुँ तनहि न साँति । नृप तनया पल पल विकल ॥८७॥

( दोहा[1] )

सषी सकल अचरज करहिं कौन रोग यह आहि ।
को समर्थ कलि वैद है औषद बूझहि ताहि ॥८८॥

( चौपई )

राज कुँवरि संग सत सहचारी । मुग्ध मध्य पौढ़ा वर नारी ॥
तिन मह एक विजछिछनि बाला । मद गति मदन मुदित तिहि नामा॥८९॥
प्रौढ़ा प्रीति बहुत कै जानै । रसिक प्रेम रस कृत्ति बषानै ॥
जिनु प्रीतम कौं तनु मनु दीनौ । चितवन चोरि चतुर चितु लीनौ ॥९०॥
जो पिय मदन भुवंगम षाई । पिय मुष सुधि सजीवनि पाई ॥
जानै रोगु मूरि पुनि जानै । विरह दलति अबला पहिचानै ॥९१॥

( दोहा )

तिनि सषियनि सौं यौं कह्यौ, सै पायौ यह रोगु ।
अबला के तन अतुल बल, विषम सुविरह वियोगु ॥९२॥
ये सब क्रम निहि प्रेम के, जाहि न लागत मूरि ।
दिन तातौ दिनु सीयरौ, दिन नियरौ पिलु दूरि ॥९३॥
सकल त्रियनि उत्तर दियौ, बोलौ बचन विचारि ।
प्रेमु न जानै नेमु कहुँ, यह अबला सुकुमारि ॥९४॥

---

१—लिपिकर्ता का निर्देश:—
अथ रम्भावती को विरह मदन मुदिता प्रगट करो ।

जिहि न मित्रु नैनन लष्यौ, महल रहै दिनु रैनु ।
अति कोमल नृप कन्यका, नर अदिष्ट मृग नैनु ॥९५॥
क्यौं आनौ मुष वत्तरी, सषी सुनौ जौ और ।
पल न एक पारस तज्यौ, रस पायौ किहि ठौर ॥९६॥

( छप्पय )

सुनिय सषी मुष वचन सदन मुदिता झमि तुल्लिय ।
कहति आलि तुम बाल प्रेम रस तुलहि न तुल्लिय ॥
त्रिभुवन पति रति नाथ षेल जहु विधि करि षिल्लहि ।
एक स्वप्न संचरहि एक अच्छरि लै मिल्लहि ॥
इक प्रतिच्छ प्रीतम करहि जे न चिन्त चित अनुसरहिं ।
ये दूत नैन विधि मैन के मिलत परसपर मन हरहिं ॥९७॥

( दोहा )

नैन नैन ठग एक हैं, जबहिं जुरत इक साथ ।
पुहुकर बेचत चोर चित, प्रेम नृपति के हाथ ॥९८॥

( चौपही )

जिहि तन प्रगट प्रेम तन कीनौ । सो तनु अजर अमर कर दीनौ ॥
तिहिं तनु जोगु भोगु नहि भावै । तिहि तन सदन सुरति नहिं आवै ॥९९॥
तिहि तन सिरजनहार न जान्यौ । एक प्रान वल्लभ पहिचान्यौ ।
सो तनु और नीर नहि पीवै । सुधा स्वाति बिनु नैकु न जीवै ॥१००॥
विषै तनु लज्जु तिहि तनु त्याग्यौ । केवल प्रेम प्रीत रस पाग्यौ ।
कठिन पंथु जिहि अंतु न पायौ । बहु विधि विविध बहुत बिधि गायौ॥१०१॥

( दोहा )

षड्गु धार मारग जहां, गंग जमुन दुहुँ ओर ।
प्रेम पंथ अति अगमु है, निवहत हैं नर थोर ॥१०२॥
पुहुकर सागर प्रेम को, निपट गहिर गंभीर ।
इहि समुद्र जो नर परै, बहुरि न लागहिं तीर ॥१०३॥

( छंद प्रयगमु )

जो तिहि व्यापहि रोग उपाइ सु कीजियै ।
जौ तनु छीजहि जाइ कहा तब लिज्जियै ॥

एक प्रतिच्छ प्रतिच्छ सही करि जानिये।
जौ निरषौ इहि अंग सही यह मानिये ॥१०४॥
सत्य कहै गुन अष्ट बषानत वेदहूं।
ते सब प्रीत प्रवानि कहै रस भेदहूं॥
सुंदरि अंग अनंग सबै डिषराइ हौं।
क्यौं बिनु व्याधि निदानहि सूरि बताइहौं ॥१०५॥

( दोहा )

स्वेद थंभ रोमांच है, व्यापत अरु सुर भंग।
अस्रुपात वैवर्नता, प्रलै अष्ट गुन संग ॥१०६॥
ते सब तन रंभा प्रगट, सषि निरषहु तुम नैन।
वारि बूँद मृग द्रग ढरे, कहति भंग सुर बैन ॥१०७॥
हस्थ चरन थकि चित्र जिसि, स्वेद उरज तट रूप।
पुलकित बपु कंपत अधर, विवरत बदन अनूप ॥१०८॥
प्रलै अंस अति मूरछा, देषा सकल विचारि।
सुनत मदन मुदिता वचन, चकृत भइँ सब नारि ॥१०९॥

( छंद प्रवानिक )

चकृत चित्त नागरी। जि रूप रेख आगरी॥
सुने प्रमान[1] बत्तियां। भई बिहाल अत्तियाँ ॥११०॥
रही न एक चातुरी। गई अपार आतुरी॥
गहे सुपाइ तासु के। विचित्र बैन जासु के ॥१११॥
कहै उपाइ किज्जिये। जिवाइ बाल लिज्जिये॥
जु तात मात लाडिली। विसेषि प्रान चाडिली ॥११२॥
तुही सुधा सु पीवनी। तुही ससूर जीवनी॥
तुही जु वैद धीर है। लषै जु गुप्त पीर है ॥११३॥
विचार एक ठानहूं। जु जंतु भेद जानहूं॥
जो तासु नाम जानियें। हँकार ताहि आनिये ॥११४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहकर विरचितेय स्वप्न पडे
सषी उन्माद वर्ननो नाम पष्टमो अध्यायः ॥६॥

---

१—न. प्रमान।

( दोहा )

मदन मुदित इमि उच्चरै, निमषत जौ तुम संग ।
हौं पूछौं इहि बारता, जिहि विधि प्रगट अनंग ॥११५॥
सकल सषी एकंत ह्वै, बैठीं करि कछु आस ।
तनु जिमि अनु डारौ कहूं, मनु मुदिता के पास ॥११६॥

( चौपही )

भई एकंत सकल सहचारी । मुदिता प्रेम कथा विस्तारी ॥
कहति कथा बिनु उत्तर वामा । रसिक श्रवन अरु मन अभिरामा ॥११७॥
दमयंती नल प्रीति कहानी । भाषति सरस मधुर सुप बानी ॥
बहुत अनंद प्रेम गुन गावै । एक एक अच्छर समुझावै ॥११८॥
माधव काम की कीर्ति वषानी । जिहि सुनि मन विसरावै रानी ॥
ऊषा कथा जबै अनुसारी । तब चितई भर नैन कुमारी ॥११९॥
बातहिं करत निआदरु कीनौ । पूछै सखी स्वप्न किहि दीनौ ॥
यह सुनि नैन सलज्ज दुराये । मुदिता नैन नीर भरि आये ॥१२०॥

( दोहा )

ऊषा अनुरुध की कथा, गाई प्रीति प्रकार ।
जौ अब कवि फिरि उच्चरै, तौ बाढ़ै विस्तार ॥१२१॥
कही रुचिर अति वत्तरी, सब रति रुचिर विहाइ ।
मृगनैनी ज्यौं मृग गही, प्रेम फंद उरझाइ ॥१२२॥

( छंद गीतिका )

उरझाइ संदनि प्रेम फंदनि रूप रंभा आगरी ।
जिय मानि विरह विहाल व्याकुल मदन मुदिता नागरी ॥
पर पीर जानि अधीर ह्वै अति नीर नैननि आवहीं ।
मन भेद जतनि जोर जुगतनि जुगित करि समुझावही ॥१२३॥
बहु दीन वचन विचारि भाषति चरन गहि कर बूझही ।
राजस्य दाननि दंड भेदनि सफल एक न सूझही ॥
मृद कुंवरि नवला नवल जोवन वचन भेद न जानही ।
अति सजल सुंदरि जलज सुप करि हिदौ पीर न मानही ॥१२४॥

मनमथ्य त्रास उदास भरि चक्कृत चहूं दिसि चाहई।
जिमि रंक वित्त दुराइ चित्तहिं लाज लोभ निवाहई॥
धरि हृदय पंकज प्रेम मृग हित बांधि संपुट जामिनी।
मजुहारि करि मनहारि मुदिता कहत बैननि कामनी[1] ॥१२५॥

(दोहा)

पुहुकर चरि उपाइ हठ, पूरब करै प्रमान।
सामादिक जे कहत हैं, तिनि मँह उत्तम दान ॥१२६॥

(चौपही)

कहत जो वेद उपाइ प्रवाना। तिन मह सुगम वषानत दाना।
मुदिता करत विचार प्रवीना। रंभा कौन दान आधीना ॥१२७॥
कंचन हीर चीर वहु अंगा। सारस कीर मयूर विहंगा॥
अभरन विविध अनेग अपारा। ते न लेत कर काम विकारा[2] ॥१२८॥
बहुत चित्र पुतरी बहु पासा। चिंतन करत अति चित्त उदासा॥
कौन उपाइ भेद मन साने। कौन भाति लोभहिं उर आने॥१२९॥

(दोहा)

मुदिता सोचति सहज ही, इम उपज्यौ मन ग्यानु।
विरह अग्नि इहि दहति है, देन कहौं जिय दानु ॥१३०॥
हय हाटक मनि मुक्ति गज, दानु सबनि पै होइ।
मरन समै जिय दान कौ, देन जोग नहि कोइ ॥१३१॥
यह उपाइ ठहराइ मन, मुदिता बूझति वैन।
सत्य मानि रंभावती, कासौ अटके नैन ॥१३२॥

(दंडक)

हाइ हाइ हाहा री हठीली आली हेरि इति
तजति है प्रान वैन काननि करति है।
बाट परी बोलिहै कै लाज ही से जैहै गलि
विरह की आगि जल निकट जरति है॥
आन कै मिलाऊँ तोहि मन कौ हरनहार
मोहन मधुप जाकी येती (जु) अरति है।
याको कहि वीर तेरी पीर कौ जतनु करौं
मोंदी तू पाय[3] प्यारी काहे कौ मरति है ॥१३३॥

---

१—अ. द. वैनन कामिनी २—व. विचारा। ३—च. मे कोई शब्द नहीं है।

( चौपही )

मुदिता कहै सुनौ सषि प्यारी । सषियनि मै तूं अधिक पियारी ॥
वे ही काज मरत मुरझ्यानी । जरति अगिनि ढिग सरवर पानी ॥१३४॥
निकट वैद नहि वूझति सूरी । नाग डसी नहि गारुड दूरी ॥
वृष दिनकर दिन मरत पियासी । भर कर धरौं सुधा घट पासी ॥१३५॥
मैं अबला बहु मरत जिवाई । देषन जहँ लगि नैननि पाई ॥
तुव तन पीर सुनन जौ पाऊँ । तिहिं छन हरौं निमष नहिं लाऊँ ॥१३६॥

( सोरठा )

बहु बिधि सजहि उपाइ । सदन मुदित चित चातुरी ॥
सुंदर चित्त लुभाइ । छलवल अंतर भेद लिय ॥१३७॥
भरि उसास गंभीर । राजकुँवरि इमि उच्चरे ॥
मुदिता सो मन पीर । क्यौं तोंपै मेटी मिटे ॥१३८॥

( दोहा )

कहां कहौ किहि विधि कहौं, जो कहिवे की होइ ।
सषि हौं पुनि जानति नहीं, क्यौ करि जाने कोइ ॥१३९॥

( चौपही )

राका रैनि अर्ध उजियारी । सोवत ही तुम सव सहचारी ॥
तसकर एकु अचानकु आयौ । द्वारपाल पुनि जान न पायौ ॥१४०॥
अचिरजु एक सुनहि जो भारी । मुकुट माल वपु कुंडल धारी ॥
छवि समुद्र ज्यौ चित्त चलाऊँ । निपट अथाह थाह नहि पाऊँ ॥१४१॥
सषि तसकर वह जन मन होई । नहि तस कर वल करि लषि सोई ॥
सषि अभरन अरु मौलिक अंगा । केवलु मनु हरि लै गयौ संगा ॥१४२॥
रसना करन नैन हरि लीने । मुनहि छिनाइ पंगु मद कीने ॥
विहु ति हसनि दसनि छवि देषी । सो मम हृदय आनि अवरेषी ॥१४३॥
मूरति मैन नैन अनियारे । प्रान काढि लै गयौ हमारे ॥
और न नामु कह्यो विसवासी । कौनु आइ किहि ठाँ कर वासी ॥१४४॥

(दोहा)

सुघ ते वेनु न उच्चरै, नैन नैन सौं जोरि ।
तपनि तेज दिप राइ के, चित्त गयौ लै चोरि ॥१४५॥

सपी वहुर जान्यौ नही, कहां गयौ किहि ठौर ।
अब जीवनु तुहि हाथ है, हौं नहि जानत और ॥१४६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेय स्वप्न पडे सखी
विग्यॉत वर्नन नाम सप्तमो अध्यायः ॥७॥

अथ दस अवस्था वर्णन

(दोहा)

मदन मुदित विरदंतु[1] सुनि, उत्तह उमगि न छीन ।
नृप तनया सुकमारिता, विरह वहुरि वसु कीन ॥१४७॥

(छप्पय)

अर्ध चंद्र अकास वान सुम्भियह हिमाकर ।
उभय अग्र विरि धाइ अंग लागति विरहिन वर ॥
विरय दुसह अरु कठिन गूढ[2] पुनि ? मंत्रु न मानहि ।
द्वै गुन पंच अवस्थ सुदेस प्राचीन बषानहिं ॥
अभिलाष आदि पुहुकर सुकवि, एक एक वरनतु कियौ ।
अवलंबु एक पचि सज्जियौ, सुविधि विचारि विरहिन हियौ ॥१४८॥

(दोहा)

अर्द्ध चंद्र सर मल्य है, मैं जान्यौ सति भाउ ।
मन्मथ हाथ पूरन लग्यौ, हर सिर मंडिय घाउ ॥१४९॥
वहुत कलत रजनीसु है, तिलक रच्यौ किरपाल ।
राका पूरन होत है, तब क्यौं रहत सिवभाल ॥१५०॥

---

१—म. द. दृग्गान्त। २—ब. स. द. काठेग गढ़ मंत्र।

( छप्पय )

प्रथम उपजि अभिलाष बहुरि चिंता सुमिरनु गनि ।
गुनत गुनिय गुनु कथन दुलह उदवेग जासु भनि ॥
तापर प्रगटि प्रलाप और उन्माद वषानहिं ।
बिसम व्याधि वपु बढ़ै जगत जड़ता जिय जानहिं ॥
कवि कहत निधन दससी दसा जवहिं होत मन आनि बस ।
पुहुकर प्रकास मन मथ्थ के सुविप्रलंभु सिंगार रस ॥१५१॥

( दोहा )

विप्रलंभु जिमि मूल है, क्रम क्रम विस्थर साष ।
दस अवस्थ कवि कहत है, तहां प्रथम अभिलाष ॥१५२॥

अथ अभिलाष

तोटकछंद

अबलाष बषानत धीर हियं । जहँ पूरन प्रेम प्रकास कियं ॥
गहिरै परि रूप समुद्र जलं । चित्त आवतु फैननि तेन थलं ॥१५३॥
मनु प्रानपती अनुचार करै । तनु पूरनु आयु अवद्धि भरै ॥
अति लज्जति सुंदर काम वसं । चित चाहति चाहन रूप रसं ॥१५४॥
तिहि आवतु भौनु न संग लषी । जिहि नैन निरंतर प्रीत वषी ॥
विधि वंधि वषगनि[1] यौ चलियौ । नट के कर ज्यो करसत्तु लियौ ॥१५५॥

( दोहा )

सदा रहतु मन चित्त मै, मन तै पंडित[2] वित्त ।
ताहि कहति अवलाष कवि, इत उत चलहि न चित्त ॥१५६॥
नृप तनया रंभावती, कोमल अति सुकुमारि ।
विरह जान अभिलाव मन, सकति न अंग सम्हारि ॥१५७॥

अथ चिंता

मिलन होत चिंतनु करहि, जवन विचारहि वाल ॥
सो अवस्थ चिंता कहत, कोविद काव्य रसाल ॥१५८॥
नहि निरषतु नैननि सजनु, सकति न विरह निवाहि ॥
विरहिन चित चिंता करहि, क्यौं करि देषौं ताहि ॥१५९॥

---

१—स. द. वषग्गुनियो । २—न. स. द. पंडित ।

( चौपही )

चित चिंता चितवै सुकुमारी। किहि विध मिलै प्रान अधिकारी।
फिरि देषौं वह मूरति मैंना। सुधा सरोवर सीचौ नैना ॥१६०॥
विधि विवेक बल बहुत सम्हारे। अतन दाह बहु जतन विचारे।
आवति नहीं चेत चतुराई। इक अबला अरु विरह सताई ॥१६१॥
मार कुमार मार सर कीनी। छुधा त्रिषा निंद्रा हरि लीनी।
बहु विध जतनु विचारत वाला। मदन बान उर लगे विसाला ॥१६२॥
नैंन मुदित सिसु करि पुनि सोवै। देषहि नहीं बहुरि पुनि रोवै।
इहि विध सेज रहै वह बामा। सुकल रैंनि अरु वे नहि स्यामा ॥१६३॥

( दोहा )

पहुकर विरह वियोग बस, विवस वियाकुल बाल ॥
चिंता दुतिय विवस्त[1] मैं, रहै विरह वेहाल ॥१६४॥

अथ स्मृति[2]

( दोहा )

निस बासर विसरै नहीं, लोभु लग्यौ जिहि जाहि।
प्रान पती सुमिरनु सदा, श्रुम्रित कहति कवि ताहि ॥१६५॥
रूप रासि मन भावतौ, सुदिन चल्यौ चितु आइ।
टंतु महावत चित्तु ज्यौ, क्यौं सहि उतरि न जाइ ॥१६६॥
नृप कन्या सुकुमारिका, देषौ दरस अनूप ॥
धरो हिंदै निधि रंक ज्यौं, फिरि फिरि सुमरहि रूप ॥१६७॥

( छंद कंठ भूषन )

सुंदर रूप अनूप सम्हारै। रैंनि दिना नहि ताहि विसारै।
अंतर भेद कहै नहि काहूं। लाजन बात जनावै ताहूं ॥१६८॥
नैंननि देषति मूरति आनै। रोचकि बात सुनहि नहि कानै।
चीरव कुसुम गहै घर वाला। ब्याकुल काम वियोग विहाला ॥१६९॥
षोडस द्वादस भूषन लाये। षौढ़न पान सबैं विसराये।
कंठ अभूषन कै वह नामा। यौं सुमरे सुष प्रीतम स्यामा ॥१७०॥

---

१—द्वितीय अवस्था। २—मूलपाठ में सभी प्रतियों में श्रुमिता लिखा है।

## अथ गुण कथन

बल्लभ सुमिरि गुनानं, बाल्ह सुत्ति गुंथि उरमाला।
सो गुनु कृत्ति वषानं, धीरं कवि वेद अवस्था ॥१७१॥

( दोहा )

सुहृद संग गुनु विसतरै, प्रीतम प्रीत प्रवीन।
सो अवस्थ गुन कीरतनु, कोविद कहत कवीन ॥१७२॥
मुदिता सौ रंभावती, कहति सुनहि सषि वैन।
इहि विधि रूप सरूप मै, कहूं न देष्यौ नैन ॥१७३॥
सषि निरष्यौ मै नैन भरि, रूप राषि अंग अंग।
वरनन करत न आवही, बुद्धि भई गति पंग ॥१७४॥

( छंद संषधारा )

भइ बुद्धि पंगा। लष्यो सोम अंगा॥
अपारं अनूपं। मनौ रासि रूपं॥१७५॥
सुरज्जं सुनैनं। गिरा मेव वैनं॥
धरै सुक्ति हारं। किरीटं कुमारं॥१७६॥
लसै कंबु ग्रीवा। मनौ सोम सीवा॥
सरूपं सुजानं। हरै नैन प्रानं॥१७७॥
बसै चित्त माहीं। टरै नेक नाहीं॥
कहा कृत्ति गाऊँ। जु पारै न पाऊँ॥१७८॥

( दोहा )

इहि विधि गुन कीरति ररै, व्याकुल विरह कुमार।
सब अवस्त क्रम क्रम प्रगट, पुहुकर कहत विचारि ॥१७९॥

## अथ उद्वेग

( दोहा )

विरह विकल तन मैं परै, दाहन दुसह अनेग।
गेह विषै विष सम लगै, सो अवस्थ उद्वेग ॥१८०॥

( छंद पद्धरी )

विरहिनिय विकल उद्वेग संग। अति वियति वान जे हति अनंग॥
आभरन दुसह इमि लगत अंग। जनु डसत छुधित विषधर भुअंग॥१८१॥

उदित सुइंदु अरु संगतार । जनु वरसि पहुमि अंगार धार ॥
लागत कठोर कर कमल फूल । विप तुल्य परसि दाहन दुकूल ॥१८२॥

पिक्खत वसंत भय होत छीन । मनमथ्थ राज दल साज कीन ॥
मालती मत्त अरु मलय वास । सीतल सुगंध सब सूल तास ॥१८३॥

इक दिवस दीर्घ अरु दुसह रैनि । इहि सहति नहिन सारंग नैनि ॥
इक ब्रम्ह दिवस सत ब्रह्म आउ । इक ब्रह्मदिवस अरु इंद्र वाउ ॥१८४॥

( दोहा )

पुहुकर जब वासर बढै, तब रजनी घटि जात ।
यह अद्भुत गति पेषियै, दिनौ बढै अरु रात ॥१८५॥

( चौपही )

दिवस दीर्घ अरु जामिन भारी । नहिन सम्हारि सकत सुकुमारी ।
छिन छिन जरति अगिनि की झारा । अग्नि रूप देषहि संसारा ॥१८६॥

तनु यह दीन कमल दल नैनी । मदन अग्नि दाहति पिक बैनी ।
अनिल सहाइ करै तहँ जाई । सांस गंभीर देहि परजाई ॥१८७॥

और सनेह परिहि तहँ आई । तिहि विनु घरी घरी अधिकाई ।
काया भस्म करै इहि आसा । उड़ि करि जाइ प्रान पति पासा ॥१८८॥

## अथ प्रलाप

( दोहा )

विरह तृषित बर विरहिनी, व्यापहिं उर संताप ।
अति विलाप विलपित रहै, सो कवि कहत प्रलाप ॥१८९॥

( चौपही )

रंभावती अति करति प्रलापू । विधि बहु कौन पाप संतापू ॥
हौं अबला कोमल सुकुमारी । सो सठ मदन पंच सर मारी ॥१९०॥

( दोहा )

ग्रीषम पै उदि पान कौ, जार करौ तनु पेह ।
पुहुकर विधि नहि सहि सकै, भीजै लोचन मेह ॥१९१॥

( चौपही )

तापर सूर कहावत पापी । त्रिय वध सदा करत संतापी ॥
उदित मंद अति चंद अकासा । तिहि यह तपति लई तिहि पासा ॥१९२॥
द्वै मधि देव एक नहि करई । देहि न प्रान प्रान नहि हरई ॥
अति दुष मरन मनावति बाला । मदन बान उर लगे बिसाला ॥१९३॥
मुदिता सौं इमि कहति कुमारी । मो मन पीर सुनहि जो प्यारी ॥
किहि विधि कहौं कहत नहि आवै । यह दुष छोडि मरनु मुहिं भावै ॥१९४॥
अति निरदय सुर नर मुनि कोई । तृपित भयौ मम जीवन षोई ॥
पावति नहीं ठामु जहँ जाऊँ । जानति नही नामु जिहि गाऊँ ॥१९५॥
हौं अबला अनाथ अति दीना । सो विधि करी विरह आधीना ॥
मगन भई दुष सागर माहीं । तिहि सर नाव न केवट नाहीं ॥१९६॥

( दोहा )

बूडत विरह समुद्र मै, काढन को समरथ्थ ।
जौ करतार कृपा करैं, पियहिं गहावै हथ्थ ॥१९७॥
तन अंगार भौ त्रिय तनहिं, करहि दीनता छीन ।
घरी घरी घट तै घटै, विरह रोग करि हीन ॥१९८॥

( छप्पय )

सुर अवस्थ उन्माद व्याधि इमि जान वषानहिं ।
प्रेम पाउ उनमत्त जंतु जग मग्ग वषानहिं ॥
वचन भुल्लि पुनि कहइ प्रान प्रानेसुर सथ्थहिं ।
धीर चित्त नहि धरहि बुद्धि नहि आवहि हथ्थहि ॥
अति कठिन पीर जिय जानि करि कवि पुहुकर इमि उच्चरहि ।
कि होइ जिवनु साजन सहित कि प्रीत फंद कोई जिन परहि ॥१९९॥

प्रीत फंद परयौ जद्दिन लोभ अरु लाज विछुट्टिय ।
लोभ लाज छुट्टियौ संक लंका जिमि टुट्टिय ॥
संक लंक जिमि टुट्टि कान गुरजन सव भुल्लिय ।
भुल्लि कान गुर ग्यान चित्त इत उत नहि डुल्लिय ॥
इत उत न चित्त पुहुकर डुलै देह गेह नेहा भरयौ ।
भरि गयौ देह नेहा सकल जद्दिन प्रीति फंदह परयौ ॥२००॥

( सवैया )

काम रस माती उन्माती सी बिहाल बाल
प्रेम के समुद्र माझ मगन परी है जू ॥
भूली सी फिरति ज्यौं कुरंगिनी कुरंग नैनी
मानौ सर पंच नैनी जीवनि हरी है जू ॥
अंजनु बनायौ भाल, चंदन सौ आँजे द्दग
सकल सिंगार विपरीत को करी है जू ॥
बीरी लावै कान नहि ग्यान न सयान कछू
बारुनी के पान ज्यौं विधान बिसरी है जू ॥२०१॥

( दोहा )

पुहुकर जब मनसथ्थ पथ, पूरति सूरति मित्तु ।
तिहि छिन सब तन श्रवन ह्वै, श्रौरल श्रावतु चित्तु ॥२०२॥
गुन हित ज्यौं इंद्री सकल, प्रान तजै पुनि जीव ।
तिहि अवस्थ उन्माद से, प्रान तजै नहि जीव ॥२०३॥

व्याधि वर्णन

मदन अग्नि अति उपजि कै, विरह जरन तन होइ ।
बहुरि रोगु बपु बिस्थरै, व्याधि कहतु सब कोइ ॥२०४॥
जिहि न सूरि ओपद लगै, जाहि तंतु नहि मंतु ।
पिय पऊप पावै नही, व्याध कहत इमि जंतु ॥२०५॥
विरह विथा रंभावती, प्रान पती मनु लीन ।
दुपित देपि दिन दिन दुसह, होति छिनहिं छिन छीन ॥२०६॥

( चौपही )

छिन छिन छीन होति कटि छीनी । एकहिं बेर बिरह बस कीनी ॥
[illegible] संताप मोह निस्वासा । संभ्रम सदा काल उस्वासा ॥२०७॥
[illegible] जो निसि होई । बट सुत उदै नीर जिमि होई ॥
[illegible] बोन कन जैसे । बिरह बान मनमथ है ऐसे ॥२०८॥
[illegible] गात्री दल आंसा । पूरब बरन कहै कवि कांसा ॥
[illegible] भाँति जगाई । मानौ निकट अतनता आई ॥२०९॥

( दोहा )

विरह व्याधि मैं विरहनी, व्याकुल विरह विहाल ।
पंच बांन विहवल भई, पुहुकर अबला वाल ॥२१०॥

अथ जड़ता

( दोहा )

गुनहिं छोड़ि गति पंगु ह्वै रहै चित्र सम देह ।
तासौं कवि जडता कहै नव अवस्थ नव नेह ॥२११॥
नृप कन्या सुकुमारिका विरह भई जड़ येसि ।
निसि वासर विसरै नहीं चित्र लिषी विधि जेमि ॥२१२॥

( चौपही )

नैन तार उघरै नहि काऊ । मनौ गये पिय पास अगाऊ ॥
बैन बोल रसना नहि आवै । घ्रान भाव नासिका बतावै ॥२१३॥
श्रवनन सुनै बोल सहचारी । परस कठोर सहै सुकमारी ॥
मृतक तुल्य जीवनि इनि देषी । मनहु नृजीव विरह बस लेषी ॥२१४॥
मित्र नाम पुलकित ह्वै आयो । जीवन भाव तहाँ कवि पायो ॥
यौं परजंक पौढि छबि पाई । पुत्री चित्रु सेज बनवाई ॥२१५॥

( दोहा )

महा मोह अरु मूरछा, देषत सबी निरास ।
पुहुकर जीवनि जानही, एक साँस की आस ॥२१६॥
नव अवस्थ बरनन कियौ, पुहुंकर कवि मति जोइ ।
दुस्सह दसम अवस्थ है, सो साजन नहि होइ ॥२१७॥
सो मुँहि कहत न आवही, रापतु हौ कहि गोइ ।
ताहि कहत रसना जरै, मत वरनौ कवि कोइ ॥२१८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न पटे नव अवस्थ वर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥८॥

अथ सदन मुदिता विरह प्रगट करो तस्य वरनन

( छप्पय )

नव अवस्थ परतिच्छ पिष्षि मुदिता मलीन मन ।
चित्त मंत्त उपजंत बहुरि देषत कंपो तन ॥

सहचरि सबै विचार कहहिं कारन का किज्जै।
जो सु दई पुनि लेंहिं प्रान पलटै करि दिज्जै॥
अब नहिन आस जीवनि कुँवरि किहि संग रमहि अभागिनिय।
विरदंतु सकल विनवहि जहाँ पुहँपावति पटरागनिय॥२१९॥

( दोहा )

अबिनासी की आस करि, चित्त न आनति और।
विजयपाल महिषी जहाँ, सकल गईं तिहिं ठौर॥२२०॥
मुख मलीन लोचन सजल, भरि भरि लेंहिं उसास।
करि प्रनाम ठाडी भईं, पुष्पावति के पास॥२२१॥

( चौपई )

मुदिता कहै सुनौ नृप रानी। कहत न आवै अकथ कहानी॥
रंभावति वेदनि अधिकारी। छिनकु न घटति दिनहुँ दिन बाढी॥२२२॥
हम तुम सौं सब कहत सकाहीं। पै अब बनतु दुराये नाहीं॥
वेदनि विरह विषम अति पीरा। पंच बान कर दहहि सरीरा॥२२३॥
नहि जानति किहि धौं मनु लीनौ। स्वप्न दरस परगट जिहि दीनौ॥
और न तासु कह्यौ विसवासी। कौनु कुमार कहाँ कर वासी॥२२४॥
कै गंधर्व किधौं कोऊ देवा। कै दानव प्रानन कौ लेवा॥
चौदह भुवन जाहि बसु होई। जो यह जतनु करै कछु कोई॥२२५॥
नव अवस्थ अंग अधिकानी। दसम अवस्थ आय नियरानी॥
हम सब मरें कुँवर सग लागें। यहै प्रवाँनु करैं तुम आगें॥२२६॥

( दोहा )

यह कहि सब सहचर चलीं, वरषि नैन जलुधार।
संग लागि पहुँपावती, निपट विकल विकरार॥२२७॥
नृपि सुना विहवल भई, धरनि परी मुरझाइ।
उदित बचन आवै नहीं, विधि सौं कहाँ बसाइ॥२२८॥
जे अर्थी द्विज द्रव्य के, तिनहिं दियौ बहु दान।
नैन सलिल सुर सर थपी, करवायौ अस्नान॥२२९॥
कर जोरे विनती करै, सीसु नाइ धरि ख्याल।
अब अवस्थ करुना करौ, ये प्रभु दीन दयाल॥२३०॥

तिहि छिन फिर लोचन षुले, सबन भई मन आस।
अति आतुर पहुँपावती, गई नृपति के पास ॥२३१॥
नहि लज्जित वेदनि कहति, सूझतु नहीं उपाइ।
ह्वदै एक निस्चै करौ, श्रीवर करैं सहाइ ॥२३२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वप्न षडे मातु चिंता वर्ननो नाम नवमो अध्यायः ॥९॥

(दोहा)

दिनकर देव प्रसिद्ध हैं, अगम निगम जग नाम।
जे नर तुव सेवा करहिं, तिनहि देत मनकाम ॥२३३॥

(छंद भुजंग प्रयात)

नमो देव देवं दिवानाथ सूरं। महा तेज सोभं तिहूं लोक रूपं ॥
उदै जासु दीसं प्रदीसं प्रकासं। हियौ कोकसोकं तमं जासु नासं ॥२३४॥
उदै जासु जागंत सिद्धं विहानं। करैं विप्र आरंभ अस्नान दानं ॥
छुटै बंध वंधानु गोवत्स पावैं। पसू पच्छ पंच्छी सबै भच्छ पावैं ॥२३५॥
सुचै अग्नि होत्रा करै होम जागं। सबैंवेद आधीन विद्या करागं ॥
करैं नेम पूजा रचैं देव सेवा। जबै सूर ऊगंत देवाधि देवा ॥२३६॥
सजै उद्दमी उद्दिमी सिद्धि साजं। मिले मंत्रि जे राजकाजं समाजं ॥
प्रफुल्लिन्त वारिज्ज सोहंत हासं। भये मीन मृग यान प्राची प्रकासं ॥२३७॥
कृपा सागरं दुष्य नासं कृपालं। सदा कामदं देव दीनं दयालं ॥
जिते जंतु प्रानी किये ध्यानु ध्यावैं। सदा काम धर्मार्थ मोक्षादि पावैं ॥२३८॥

(दोहा)

इहि विध सविता सेइ कै, सो जाँचति कुँवरि निरोगु।
पुहुकर मिटै न तदपि दुष, विना किये संभोगु ॥२३९॥
जदिप अंतर अधिक है, दुसह विरह वियोग।
जतन जतन दिनकर कृपा, ह्वैहै विधि संजोग ॥२४०॥

## अथ द्वितीय स्वप्न वर्णन

(दोहा)

वरष दिवस पूरन भयौ, सुरति करी रति नाथ।
जौ सुध्यान धरि देषहीं, तौ अति दुषित अनाथ ॥२४१॥

नव अवस्थ व्यापित भई, दसमी रहि नियराय।
तब चित चोर विचार किय, साचहुँ मत मरिजाय ॥२४२॥
तब मन करुना कर चलौ, बहुरि धरौ वह रूप।
वहै हाल सब सर्वरी, वहै सिंगार अनूप ॥२४३॥
द्वारपाल अरु सहचरी, ते सब रहे निदाइ।
जौन अर्ध निसि डहडही, दरस दियौ फिरि आइ ॥२४४॥

( छंद तोटक )

बहुरें फिरि आइ दरस्य दियं। जिहि को चितु चाहत चोरि लियं॥
तन चंदन सोभित हार हियं। श्रुत कुंडिल सीस किरीट श्रियं ॥२४५॥
दल पंकज नैन धनुक्क भ्रुवं। बरुनी जनु सायक संग हुवं॥
छवि उप्पम आनन आन गही। बरनै कवि इंदु प्रवाँन सही ॥२४६॥
भुज दीरघ वच्छ विसाल लसें। जुवती जनु लोचन माँह वसे॥
मन मोहन सोहन अंग सवै। चितयौ भरि नैन कुवाँरि तवै ॥२४७॥
निच्छावरि लै सरवस्स कियं। मृत के जनु जीवन फेरि दियं॥
तन सीस फिरी फिरि पाइ गहे। मृदु वैननि राज कुमारि कहे ॥२४८॥
चित प्रान पती मन मैं न धरौ। तिरिया वध कारन कौन करौ॥
जवतें तुम प्रेम प्रकास करौ। मुहि पौढन पान सवै विसरौ ॥२४९॥
दुप सागर एक बरस्स रसं। वितियौ मुहि ब्रह्म बरक्ख जिसं॥
तुम देव किधौं तुम दानव हौ। किधौं गंध्रप यच्छ के मानव हौ ॥२५०॥
नहिं जानति ना मन ठाम कहूं। अटक्यौ मनु नेक अलंबतहूँ॥
मुहि दीन गनौ ढिग ईस हिये। विरतंतु कृपा करि कै कहिये ॥२५१॥

( दोहा )

अति आरत विनती करौ, बहुरि रहौं गहि पाइ।
मन मोहन चित चोर सों, तब बोलौ मुसक्याइ ॥२५२॥
सिंधु वदनी वर विरहनी, रतिदुति राज कुमारि।
मन्य बहुत दुप्पित भई, विरह बेलि विस्थारि ॥२५३॥

( छंद पद्धरी )

विस्थार विरह लागी समूल। किमि सहति सत्ति यह दुसह सूल॥
यह जानि मुनि नाहिन चित्त। अवरेप चित मूरत्ति भित ॥२५४॥

विधि वंध्य प्रगट गावत पुरान। संसार सकल पुनि वर्तमान ॥
नहि एक ओर निर्वाह प्रीत। दुहु ओर होइ तौ प्रेम रीत ॥२५५॥
पाहन पषान जे करहिं सेव। परसन्न हौंहि मन चाहि देव ॥
जिहि लाग सहति संतापु एत। सो रहहि सुषित कहु कवन हेत ॥२५६॥
जद्दपि वियोगु सब अति अनाथ। दुष दुसह दहन त्रैलोक नाथ ॥
करु जनु वियोगु वस मनु निरास। जिय जानु सत्य संजोग आस ॥२५७॥
पूछहि विचार गुन नाम पच्छ। नहि असुर देव गंधर्व जच्छ ॥
मानवह जन्म करि किय प्रकास। रवि किरनि छाँह महि लोक वास ॥२५८॥

( दोहा )

अमृत वचन श्रवननि सुनै, नागरि चतुर सुजान।
परम प्रेम प्रमुदित भई, मनो दिये नव प्रान ॥२५९॥

( चौपही )

मुदित रोम पुलकित ह्वै आये। मानौ प्रान मृतक फिरि पाये ॥
दुष संताप अंत इमि कीनौ। पट रस असन छुधित कहँ दीनौ ॥२६०॥
मानौ तृषावत जल पायौ। प्रेम घाइ जनु ओपद लायौ ॥
एक एक अच्छर सुष दीनौ। मानौ राज तिहूँ पुर कीनौ ॥२६१॥
अति रसाल चितवनि मुसक्यौंही। देषत नैन तृपित नहिं हौंही ॥
रंग अरु रूप रची सुकुवाँरी। अंग अंग ऊपर बलिहारी ॥२६२॥
तिहिं छिन जन्म सुफल करिजानौ। प्रान नाथ देषत सुपु मानौ ॥
वहुरि कहै का करौं वधाई। जनु मनु करौं निछावरि माई ॥२६३॥

( दोहा )

हाहा अब जनु वीछुरौ, कहति रहति गहि पाइ।
विरह अवधि विधि निर्मई, कौनु सकै घटवाइ ॥२६४॥
इहि अंतर हग नीदि महि, फिरि वैठी उठि जागि।
निकट ताहि पेप्यौ नहीं, विरह अग्नि तन लागि ॥२६५॥

( कवित्त )

विरहानल मैं जड ह्वै जुवती
निसि पौटि पलंक पलक लगायो।
प्रभु पेपत प्रेम प्रसन्नि भये
सपनें पिय प्रान पती दिपरायो ॥

अति आँनद चाहि प्रमुक्कि प्रिया
अरु चाहति लाल हिंये उर लायौ।
तेही समै द्रग नींद नठी
उघरीं अँखिया असुवाँ भरि आयौ ॥२६६॥

( छंद प्रियंगमु )

नैनन नींद निघट्टिय पिष्षिय प्रान पिय।
अस्सुनि नीर पमुक्कि गंभीर उसाँस लिय॥
अंगहि अनूप सरूप विचारि जिय।
जागी है कारन कौन परेषौ चित्त किय ॥२६७॥

प्रात कलिंद प्रकास सषी उठि देषहीं।
बैठी है राजकुमारि प्रजंक सुपेषहीं॥
लोचन लोल विसाल विलोकनि राजहीं।
प्रान पती पिय ध्यान किये छवि छाजहीं ॥२६८॥

सोभित नैन कुलाहल सुंदरि सोहई।
अभरन अंग सम्हारि सहेलिनि मोहई॥
लच्छिन सुद्ध प्रकृति पुरातन पेषही।
मावसि जेमि पलट्टि दुती दुवि लेषहीं ॥२६९॥

देषि प्रसन्न सषी सब सोच विचारहीं।
कालि रही तुछ आयु सांस आधारहीं॥
आजु भयौ चित चेत सम्हार दुकूल तनु।
राजति आनन कांति कला नव चंद जनु ॥२७०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वप्न षडे दुतीय स्वप्न
वर्णविनोद वर्ननोनाम दसमो अध्यायः ॥१०॥

( दोहा )

सषी सकल प्रमुदा प्रमुप, मुदित न अंग समाइ।
मृतक भई जीवनि निरष, मनु बलिहार कराइ ॥२७१॥

( चौपही )

निकट जाइ सुदिता बलि जाई। प्रमुदित मनौ रंक निधि पाई॥
कहति सुनुहि प्रानन की प्यारी। इहि दिन छिन ऊपर बलिहारी ॥२७२॥

नहि जीवन तुहि अंग जनायौ । अब चितु चेत कौन विधि आयौ ॥
कै कहुँ मूर सजीवँनि पाई । कै अब तरी फेरि कलिआई ॥२७३॥
कै तुहि मिल्यौ धनंतर कोई । कै निरष्यौ सपनंतर सोई ॥
कहति सुनहिं सषि दुसह सँघाती । मन मोहन निरष्यौ मैं राती ॥२७४॥
वहै रूप वैसी छवि देष्यौ । मानहुँ मूरति मैन विषेष्यौ ॥
अरु वचनन चातुर चितु लीनौ । मानौ श्रवन सुधा पुट दीनौ ॥२७५॥
प्रेम जुग्त उच्चरि इक बाता । हौं तुव नेह निपट करि राता ॥
विधि वंधानु करौ चित आसा । होहि संजोग रहौं तुव पासा ॥२७६॥
मै पूछौं तुम नर कै देवा । विनही नाम करौं जौ सेवा ।
मानव जन्म कह्यौ हम आही । बसहि पास महिमंडल माही ॥२७७॥
इहि अंतर दृग नीद नसानी । पुनि जागति सब रैनि विहानी ॥
अब जौ जतनु करौ कछु जाई । तौ तुम गहरु करौ कत माई ॥२७८॥

( दोहा )

यह सुनि मुदिता अंग छ्वै, वचनु कह्यौ मुसिक्याइ ।
सप्त द्वीप नव षंड मै, अब नहि मो पर जाइ ॥२७९॥
गुरु अरु देव प्रसाद तैं, इती बुद्धि बल मोहिं ।
महिमंडल मै प्रान पति, आनि मिलाऊँ तोहिं ॥२८०॥
उमगि उठीं सब सहचरी, पहुँपावती के पास ।
मन प्रमुदित प्रमुदा प्रमुष मुष मंडित मृदु हास ॥२८१॥
अति आनंद वचननि कहै, सकल रहीं गहि पाइ ।
चेतु भयौ रंभावती, स्वामिनि देषौ आइ ॥२८२॥
मदन मुदित इमि उच्चरै, सत्य भयौ चितु चेत ।
सपनंतर कोइ नर लषौ, दुक्ख सह्यौ जिहि हेत ॥२८३॥
और सुगम मानव जनम, वसत जू भूतल माँहि ।
जौ अव जतन न होंहिगौ, तौ फिरि जीवनु नाँहि ॥२८४॥
सुष मुदिता मृदु वचन सुनि, राज वधू सचुपाइ ।
दुहिता दरसन कारनै, चली चपल गति धाइ ॥२८५॥

( छंद पद्धरी )

सुनि मुदित सुष मृदु बोल । उठ चली कामिन लोल ॥
चष चपी राज कुमारि । तनु प्रान करि बलिहारि ॥२८६॥

तिन जीव जीवनि देपि। कुव कुन्ति जीवन लेषि ॥
ससि द्वैज आनन जोति। जनु सुक्कि मावसि होति ॥२८७॥

उर अंग अति बल छीन। अहि वेलि जल जनु हीन ॥
तव निरपि जननी वाल। करि सजल नैन विसाल ॥२८८॥

उठि आदरिय तिहिं काल। इमि कहत वैन रसाल ॥
सुहि चित्त आयहु चेतु। सुनि मातु तुव मन हेतु ॥२८९॥

तव जननि लिय उर लाय। मुख निरष लेति वलाय ॥
भुज भरति वारंवार। वह धरनि चलि पय धार ॥२९०॥

(दोहा)

अमन पान जतनहि करौ, सषियन आइसु दीन।
आपुन सुदिता संग लै, गवनु धाम कहँ कीन ॥२९१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वप्न पडे सषी
प्रमोद वर्ननो नाम एकादसमो अध्यायः ॥११॥

---

# चित्र खंड

( दोहा )

कहति वचनु एकांत है, साजहु वेगि उपाइ।
बुधि विवेक बल चातुरी, सो नरु देव बताइ ॥ १ ॥

तब सुदिता इमि उच्चरै, मो मन एक उपाइ।
तौ इहि विधि सों कर चढ़ै, जो तुम करौ सहाइ ॥ २ ॥

चित्रकार दिसि दिसि भ्रमहिं, ते अति चित्र अनूप।
राज कुँवर राजानि के, लिषहिं नाम अरु रूप ॥ ३ ॥

ते सब रंभा देषि करि, जाहि कहै यह आहि।
सुता स्वयंबरु ठाठि कै, बहुरि बुलावहु ताहि ॥ ४ ॥

पहुँपावति परवीन अति, वचनु मानि सनु लीन।
चित्रकार पठवन निमित, जतनु ततच्छन कीन ॥ ५ ॥

अथ पहुँपावति रानी सुमतिसागर मंत्री कौ बोलि, दिसदिसा देस देसांत चित्रकार पठवत निमंत्त आग्या देत भई तस्य वर्नन

( दोहा )

विजयपाल परधान प्रिय, जिनि बुधि बहु धर लीन।
नाम सुमति सागर सगुन, बोलि विचार सो कीन ॥ ६ ॥

( चौपही )

सुनत सुमति सागर उठि धायौ। स्वामिन द्वार आनि सिर नायौ ॥
नृप गृहनी पुनि निकट बुलायौ। अंतर पट अंतर बैठायौ ॥ ७ ॥

तब सुदिता कहँ आयस दीनौ। कहौ वृतांत जोर विधि कीनौ ॥
सुदिता कहति कहन नहि आवै। मति यह भेदु नृपति सुनि पावै ॥ ८ ॥

रंभावति कोमल सुकुमारी। अति लज्जति मज्जति नहि वारी ॥
अकसमात मनमथ सर मारी। अब लै विरह जलधि में डारी ॥ ९ ॥

( दोहा )

वहै मंत्र मंत्री करयौ, जो मत सुदिता दीन।
चित्रकार पठवन निमित, जतन परसपर कीन ॥१०॥

उभै स्वप्न विरतंतु सुनि, मदन सुदित वरवाल।
इहि विधि साजौ वारता, जिहि न सुनहिं भुवपाल ॥११॥

पहुँपावति इमि उच्चरै, यहै सुता यह पूत।
इहि वुधि वचनु विचारियौ, जेहि न लेइ जमदूत ॥१२॥

इति श्रीरसरतन काव्ये कवि पुहकर विरचितेयं चित्रषंडे सुमति सागर कौ अग्यानवर्ननो नाम प्रथमो अध्याय ॥१॥

## अथ वुधि विचित्र आदि द्वैसप्त सत चित्रकारपयान वर्णन

( दोहा )

नृप गृहनी आइसु दियौ, लियौ वंदि परधान।
चित्रकार दिसि दिसि चले, ऊपा उठत विहान ॥१३॥

वुधि विचित्र इमि आदि द्वै, नृप सेवक सत सात।
सुमति सुआग्यां पाइ कै, सकल चले परभात ॥१४॥

वचन सुमति सागर कहे, जे नर नृपति सरूप।
दिसि दिसि पुर पुर पेष करि, लिषौ नाम अरु रूप ॥१५॥

भरथ षंड सागर जिते, जिते देस पुर ग्राम।
जे पिष्यौ सुंदर सुवर, लिष्यौ रूप अरु नाम ॥१६॥

( चौपही )

चल्यौ विचित्र वुद्धि सव आगे। जे सत सप्त रहे सँग लागे ॥
अगम अगोचर जानन हारे। दिसि दिसि चले ते न्यारे न्यारे ॥१७॥

प्रथम सिद्धि गनपति सिर नायौ। पुनि द्विज मंगल वैनु सुनायौ ॥
वहुरि सगुन सव भये अगाऊ। मन उत्साह उठ्यौ अति चाऊ ॥१८॥

दिसि दिसि भ्रमहिं भ्रमर जिमिवासी। फुले फूल जिमि लेहिं सुवासी ॥
जो नर सुंदर लषैं विचारी। तिहिं को लिषैं नाम अनुहारी ॥१९॥

देषिहिँ भूपति राज कुमारा। देषहिँ तरुन रूप अधिकारा॥
चरचहिँ चित महँ चतुर सुजाना। तरुन रूप जानहिँ उन्माना॥२०॥
मदन मनोहर देषहिँ जोई। चित विचारि अवरेषहिँ सोई॥
मन कौ भेद न काहूं देहीँ। सब रस रूप भँमर जिमि लेहीँ॥२१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र षंडे चित्रकार पयान बर्ननो नाम दुतियो अध्यायः ॥२॥

## अथ सूर सैन कौ विरह वर्णन

(सोरठा)

पुहुकर प्रीति प्रकास। विरले जानत जगत में॥
को यह जाननहार। जो जानै त्रनु ज्यौं जगत॥२२॥

(सोरठा दोहा)

चित्र आस रंभा रही, इत तन तलफहि सूर।
रोम रोम छुति भिदि लगे, कामवान अति पूर॥२३॥

(छंद भुजंगप्रयात)

हनै वांन कंमान कै काम कूरं। भिदे अंग सोमेस कोमार सूरं॥
महा मोह उन्माद उच्चाट मारं। लग्यौ सोक वानं सुषं अंत कारं॥२४॥
गई नैन निंद्रा भयौ अंग छीनं। तलफ्फै तलफ्फै विना नीर मीनं॥
न जानै निसा द्यौस भानै न चन्दा। सँहारै न अंगै परौ प्रेम फंदा॥२५॥
न लोभं न माया न चिंता न चैनं। न सुद्धं न वुद्धं न विद्या न वैनं॥
न चालं न ख्यालं न षानं न पानं। न चेतं न हेतं न अस्नान दानं॥२६॥
न नृत्यं न गीतं न वादित्र वादं। न आपेट आरंग स्वारंग स्वादं॥
न धामं न धीरं न हासं न वासं। भुजंगी जिमै लेहि उस्वास श्वासं॥२७॥
विसुद्धं विलग्नं विमूलं वियोगी। भयौ पीत रंगी मनौ अंग रोगी॥
विसारे सवै चार आचार चित्ता। करै जीय ध्यानं हिये एक मित्ता॥२८॥

(छप्पय)

जदिन रैनि मृगनैनि नारि सपनन्तर पिष्पिय।
रूप रास मन पास मदन मुदिता मुख दिष्पिय॥
विरह वृच्छ उपज्यौ समूल अभिलाष नैन मन।
सुमति साषि विस्थरिय मोह संताप छाहगन॥

आल बाल आलंब बहु बनै न सलिल सींच्यौ अमल ।
प्रति जाम जाम लग्यौ बढ़न सुफल्यौ तटक वियोग फल ॥२९॥

(दोहा)

मैन धरनि पति मंत्रु करि, धरि रंभावति रूप ।
सूर सैन कौ स्वप्न मह, दीनौ दरस अनूप ॥३०॥
दंपति कारन ठाठ कर, मन दंपति संजोग ।
एक समै अरु एक निसि, है उर धरे वियोग ॥३१॥

(चौपही)

होत प्रात इंगित जो[1] प्रकासा । सूर कुँवर तब उठ्यौ उदासा ॥
निपट अधीर धीर नहि गहई । सर्वसु गये रंक जिमि रहई ॥३२॥
ज्यौं बिन नीर मीन दुख पावै । त्यौं व्याकुल चित चैन न आवै ॥
उन्मत्त चित्र बेद धुनि बानी । अरु बंदी जनु कहत कहानी ॥३३॥
गुनि जन नृत्य गान कहँ आये । वाहन हय हाथी पपराये ॥
संख तूर बाजहि निस्साना । सुभट सभा सब जुरै बिहाँना ॥३४॥
नैन नैक कोर भरि चाहै । एक उसांस सांस निर्वाहै ।
नवल नारि मनमथ अभिलाषै । त्यौं मन भेद वचन नहि भाषै ॥३५॥
चकित सकल परसपर चाहैं । उदधि गभीर बुद्धि करि थाहैं ॥
अकस्मात अचिरज अधिकानो । अंतर भेद परत नहि जान्यौ ॥३६॥

(दोहा)

जे कुमार जानत प्रकृति, सदा रहत जे संग ।
मनवरती नम मित्र, सम एक चित्त इक अंग ॥३७॥
सब लोगन आइसु दियौ, उठते सैन विचारि ।
सकल उमट गृह कौं चले, सीस नवाइ जुहारि ॥३८॥
तब पूछ्यौ निरदंतु मनु, कारन कौन मलीन ।
मैं सुन्यौ कोउ चित चढ़ी, प्रगटत नेह नवीन ॥३९॥
[illegible] हसि उचरै, भरि उस्वांस गंभीर ।
मैं तिहि विधि कहि सकौं, चित्त धरतु नहिं धीर ॥४०॥

---

१—ह. ट. में यह शब्द नहीं है ।

बहुरि रैन कब होयगी, नैनन देषौं ताहि ।
सपनंतर कोइ तिय लषी, नहिं जानतु कौ आहि ॥४१॥

( चौपही )

तिहि छिन विरह छाइ तन आयौ । सुष संताप सबै बिसरायौ ॥
काया नगर विरह भयौ राजा । बिसरे सकल राज गृह काजा ॥४२॥
सुमरि सुमरि वह सुंदरताई । नैननि नीर होत अधिकाई ॥
छिनकु अचेत चेत फिरि होई । भावंता मिलवै नहिं कोई ॥४३॥
फिरि फिरि सुरति सम्हारे ताही । मन बच क्रम करि चाहत जाही ॥
व्याकुल काम बान सर मारौ । येमि षेलि जनु सर्वसु हारौ ॥४४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र षंडे सूरसैन कौ विरह वर्ननोनाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

अथ रघुवीर आदि राजपुत्र मंत्री निकट वार्ता, सूरसैन कुँवर सौं उपदेश करत भये तस्य वर्नन

( दोहा )

इहि विधि व्याकुलता निरष, कहत राइ रघुवीर ।
सपनंतर के सुष दुषहिं, चित न आनत धीर ॥४५॥
तुम चौदह विद्या निपुन, नागर चतुर सुजान ।
सपन चरित मिथ्या सकल, ताहि लगावत प्रान ॥४६॥
जीवन के जतनहिं करौ, तजि उपदेस अजान ।
राज कुँवर उत्तरु दियौ, बस मेरे नहिं प्रान ॥४७॥
नित्य अनित्य जु जोग बल, जानन को समरथ्थ ।
सुप्नतुल्य संसार सुष, सदा रहत नहि सथ्थ ॥४८॥
जो चित वहु संसार सुष, स्वप्न दरस तुनि नित्य ।
जानत हौं अनुरथ कथा, जिहि विद कहत अनित्य ॥४९॥

( सोरठा )

व्याकुल विरह शरीर । निपट विकल नहि कल परै ॥
लागे मन मथ तीर । सजन सजीवन नहि तहाँ ॥५०॥

( चौपही )

राज कुँवर बहुतै समुझावहिं । प्रेम घाव जनु ओषद लावहिं ॥
विरह व्याधसौ हेतु न करहीं । मित्र नहीं जो पीर न हरहीं ॥५१॥
छिन छिन छीन होहि तन पीरा । निपट अधीर धरतु नहि धीरा ॥
बसी प्रान मधि प्रान पियारी । कौनहिं भाँति होहि नहि न्यारी ॥५२॥
विरह निसान काया पुर बाजा । मन भयौ प्रजा विरह भयौ राजा ॥
राजपुत्र बहु भाँति विचारहिं । कहहि कवन विधि चित्त उतारहिं ॥५३॥
मत्त गयंद गजराज मँगाये । आइस सुनत साजि सब ल्याये ॥
कहहिं राज गज कौतिक कीजै । औसरु अजब देपि रस लीजै ॥५४॥
कही कौन तुम बात विचारी । गजु देषैं भूलहिं वर नारी ॥
गज निरषै मनु मै न भुलाऊँ । कै मरिहौं कै गज गति पाऊँ ॥५५॥
वहुरि अलप इक वेझौ कीनौ । चाप चडाइ कुँवर कर दीनौ ॥
कहहि धनुक धर बान चलावहु । एक एक हय होड लगावहु ॥५६॥
ग्यान गनत तहँ पौरिपु हारे । जो जीतहिं सो पहिलै मारै ॥
हस्यौ कुँवरु तुम बात न जानी । हौंर मरौ तुम कहौ कहानी ॥५७॥
जा के पाइन गई बिवाई । सो कहँ जानै पीर पराई ॥
भृगुटी चाँप बसै मन माही । और चाँपु मन आवतु नाही ॥५८॥
वहुरि हिरन मन हरन मँगाये । डोरि लगाइ लरावन ल्याये ॥
कहहिं राज मृग कौतिक कीजै । कलुबक वचनि मान करि लीजै ॥५९॥

( सोरठा )

भरि भरि लेहि उसाँस । सजल नैन वैननि विकल ॥
बोलत वचन उदास । विसरे हास विलास सव ॥६०॥
दुहकर दाह वियोग । प्रान विरह वस होहिं जव ॥
का समझावहिं लोग । अग्नि न थिर पारौ रहै ॥६१॥

( चौपही )

सूर कहहिं तुम सुनहु कुमारा । ये सन तुच्छ तजौ व्यौहारा ॥
ये मन मोहन मोहि न भावै । ये मृग नैनि नैन नहि आवै ॥६२॥
जौ प्रभु होहिं त करौं पुकारा । नातर यह संसार असारा ॥
यह कहि काम अग्नि तन बाढ़ी । विरह वेलि वरवर तन चाढ़ी ॥६३॥

लेहि उँसाँस नैन भरि जोवै। षन इक चित्त लागि मग टोवै।
अंतर विथा लषत नहि कोई। षन इक तपत मूरछा होई ॥६४॥
चिंता पीर न विसरै ताही। विरह विथा नहि जाति निवाही॥
'असन पान परधान बुलाये। कछुक वचन उन्माद जनाये ॥६५॥
षनहि वियोग उदेग सँतापू। बार बार मुष करहिं प्रलापू॥
विरह बिथा सागर अति गाहा। अवधि आस लग तट रहे जाहा[1] ॥६६॥

( दोहा )

समुझि समुझि गुन कुरडवै, रही न चित्त सम्हारि।
षन अचेत षन चेतई, विरह विथा विकरारि ॥६७॥
भरि उसाँस वचनन कहै, सजल नैन कृस देह।
भूष प्यास निंदा तजै, विरही लच्छन येह ॥६८॥

( सोरठा )

पुहुँकर अर्जुन बान। अरब षरब इक प्रति चलहि॥
ते नहि गनत सुजान। जे घाइल द्दग कोरके ॥६९॥

( चौपही )

चकृत भये सब राज कुमारा। कहहिं कौन कीजै उपचारा॥
कैसेहु चंद हाथ नहि आवै। स्वप्न बात कोउ किहि विधि पावै॥७०॥
यह समझत समझायौ नाही। पाहन लीक परी मन माही॥
जाइ राज कँह बात सुनाई[2]। विवस भये अब कछु न बसाई ॥७१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुंकर विरंचितेय चित्र षंडे
हित उपदेस वर्ननो नाम चतुर्थो अध्यायः ॥४॥

( दोहा )

सुनत नृपति चित चिंत हुव, सुत सनेह चित लीन।
बोले धीर अधीर है, निपट भये आधीन ॥७२॥

( सोरठा )

पुहुकर पुत्र सनेह। परम प्रबल जानत जगत॥
साजी दूजी देह। प्रान पिता विधि वसन कौ ॥७३॥

---

१—स. द. मे यह निचली अर्धाली नहीं है। २—स. द. जनाई।

( चौपही )

पुत्र पावँ जौ काँटौ लागै। जाइ पिता के नैननि जागै॥
जिहि दिन पुत्र नेकु दुप पावै। सो दिन पितहिं मरन सम आवै ॥७४॥
जौ कोई कहे अमर कलि होंही। अमर पूतु करि दीजै मोंही॥
सुत दुप देपि मरन मन चाहै। इक रस नेह सदा निर्वाहै ॥७५॥

( दोहा )

सकल लोक जग अुग्गवै, होहि जगत पति ईस।
मात पिता मन वाच क्रम, बढि कहँ देहिं असीस ॥७६॥
पिता राज अरु जोवनु, अरु मन रंजनि नारि।
पुहुकर धनकर पूरना, जीवन के फल चारि ॥७७॥

( चौपही )

पंडित सब सौमेस बुलायो। सूर सैन समुझावन आयो॥
बहु गुनवत गुनी बहु ग्यानी। वेद पुरान कहैं सुष बानी ॥७८॥
पढहिं कोक व्याकरन वपानहिं। सुमृति न्याइ निरनै[1] पहिचानहिं॥
काव्य कथा वहु भाँति सुनावहिं। बहुत जल करि चित्त रमावहिं ॥७९॥
बोले नहीं सरव गुन ग्यानी। पूरन प्रीत हृदै अधिकानी॥
साजि साजि गुनिजन बहु आये। करहिं गान संगीत सुहाये ॥८०॥

( दोहा )

चितन करै नहि चित्तवै, बदनु रह्यौ कुम्हल्याइ।
नैन नीर भरि आवही, लैहिं उँसास अघाइ ॥८१॥

( सोरठा )

पढ़ै चतुर्दस भाइ। विद्या अरु गुन चातुरी।
प्रेम ठगोरी पाइ। नर भूल्यौ इक पलक मैं ॥८२॥

( चौपही )

दिन न घट्यौ निसि आइ जनाई। काल राति विरही कँह आई॥
कुमुदिनि प्रफुलि उदित भौ चंदा। चक्रवाक बिछुरत दुह दंदा[3] ॥८३॥
[illegible]र अंग उद्वेग जनायौ। विरह वियोग छाइ वन आयौ॥
सीत सुगंध समीर न भावै। पुहुपहार परसत दुप पावै ॥८४॥

१—ब. में नहीं है। २—स. द. निर्णय। ३—ब दगा।

अग्नि कुंड किधौं चंद अगासा। प्रलै अग्नि कीनौ परगासा ॥
ताप जु ताके है संतापा। अति व्याकुल मुष करै प्रलापा ॥८५॥
कहै वधिक विध पूछौं तोही। किहि गुन विरह सतावतु मोहीं ॥
उपज्यौ उदधि गरल के संगा। वस्यौ अग्नि ढिग सिवा अनंगा ॥८६॥

( सोरठा )

चिनगी चुनहिं चकोर। तऊ छुधित वहु दिसि भ्रमहिं ॥
अग्नि अंग विधु जोर। जा देषै मानैं तृपति ॥८७॥

( दोहा )

पुहुकर ससि मैं स्यामता, कोविद कहत मृगंकु।
विरही विधि प्रति निसि जरैं, तिहि तैं प्रगट कलंकु ॥८८॥

( सोरठा )

रजनी भई अनंत। दुषदायक निघटति[1] नहीं ॥
नहि पावति निसि अंत। उदित विकल वचननि कहै ॥८९॥

( दंडक )

काल ही काया काल राति कैसी छाया मानौ,
जम जू की जाया जोग माया सों वषानी है।
पायौ नही ओर छोर भोर भय दाइ परी,
जुग ही तै जाम वढ़ै येती अधिकानी है।
कीधौं रैनि रूप दिसि प्राचित पिसाची आइ,
कीधौं कलियानी कलि क्रोध कै रिसानी है।
जागै जग जोगिनी वियोगिनी के भोगिनी,
वियोगिनी कै पहुकर निसि उनमानि अति[2] मानी है ॥९०॥

( सोरठा )

पुहुकर उदित मयंक। निसि पूरन षोडस कला ॥
मो मन उपजी संक। मनौ मदन कर चक्र लिय ॥९१॥
वढ्यौ विरह अनुराग। अति व्याकुल निसु दिन रहै ॥
किये सकल सुष त्याग। चतुर नार चित मैं चढ़ी ॥९२॥

---

१—स. द. निगटति। २—अ. स. द. प्रतियों मे 'ऐसी' पाठ है।

(दोहा)

अतन जतन वहु विधि किये, रचे अनेक उपाइ।
विरह विथा बढ़ते बढ़ी, मिटै न मनमथ घाइ ॥९३॥

(चौपही)

इहि विधि कुँवर विकल[1] वेहाला। प्रान प्रिया चाहै तिहि काला॥
दिन दुष भर लै निस पहुचावै। निसि निघटै न कैसिहूं आवै ॥९४॥
निरस नैन गीला ?[2] ह्वै आवै। अंग ताप करि ताहि सुषावै॥
व्याकुल विरह रहै वैरागी। छुधा तृषा निद्रा सुष त्यागी ॥९५॥

(दोहा)

एक वरस इहि विध भयौ, अरु ऊपर षट मास।
सूर सैनि दुष पूर मे, सजन मिलन की आस ॥९६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र पडे राज
संदेह वरनन नाम पचमो अध्यायः ॥५॥

## अथ वुध विचित्र चित्रकार कै वैरागर गमन वर्णनं

(दोहा)

वुध विचित्र तव चित्रु करि, मूरति सकल कुमार।
गयो देस वैरागरहिं, जहाँ हीर अधिकार ॥९७॥

(चौपही)

देस जु सुधि रम्य सुपदाई। नेम देकर्म धर्म अधिकाई॥
सोम दिष्टि सोमेसुर राजा। अरि गज सीस सिंह जिमि गाजा ॥९८॥
चारि वर्न सव कर्म चलाहीं। वेद विचार तजहिं कोइ नाहीं॥
सुम्रत वेद जे पढ़हिं पढ़ावहिं। करहिं जग्यँ अरु होम करावहिं ॥९९॥
चारो वेद सफल अध्यावहिं। गुन अर्थिन विद्या सिपरावहिं॥
षट रितु छ रस दान दिन देही। जो जजमान दैहि सो लैंही ॥१००॥

(दोहा)

षड्ग वृत्ति छत्री लियै, और विप्र की सेव।
सदा पंच कृत आभरन, पूजहिं नर हरि देव ॥१०१॥

---

१—ब. मे यह शब्द छूटा है। २—ब. स. द. तीनों मे लीला दिया है।

( चौपही )

बरन बैस बासहिं धनवंता । करहिं बिचित्र ब्यौपार अनंता ॥
अर्थी होहि द्रव्य तिहि देहीं । बहुरि मूल बिनु मागै लेहीं ॥१०२॥
परम हेत गोपालनु करहीं । सदा हृदै गोपालहिं धरहीं ॥
कृष पुनि करहिं देषि पुनि हर्षहिं । जिनके भाग मेत्र सुष वर्षहिं ॥१०३॥

( दोहा )

सेवकु अति दुल्लभु जहाँ, घर घर धन उन्माद ।
तऊ सूद्र सेवा करहिं, गहै वेद मरजाद ॥१०४॥

( सोरठा )

चारि बरन आचार, बिबि छत्री षट कर्म जहं ।
बेद सुबैसु बिचार, एक सूद्र सेवा करैं ॥१०५॥

( छंद प्रियगम् )

आनंद पूरन देस विचित्र प्रवेस किय ।
न्याइ लिये नृप नीति निरषि हर्षित हिय ॥
दंड सुचामर छत्र छोभ जसु लेषि लिय ।
लोचन लोल कटाच्छ कुटिलता देषि तिय ॥१०६॥

मत्त गयंद गरूर निसानन मारही ।
मत्सर सो चटसार निलिप्य विचारहीं ॥
उन्नत और कठोर उरोज सुभावही ।
कामिनि कंचुकि बांधि सलज्ज दुरावही ॥१०७॥

पट्टन परम अनूप मनौं बिधि सज्जियौ ।
कर सरवर अमरावति सुर पति लज्जियौ ॥
बहु विध उपवन सघन फूल फल सौं लसैं ।
कुंजहिं कोक कपोत जे कोकिल वन वसैं ॥१०८॥

सुंदरि नीर भरंति सरोवर सोहईं ।
बिथकि रहै पसु पंच्छि पथिक मनु मोहईं ॥
सोभित हाटक हाट जटित मनि हीर के ।
विच विच झलकत पूर स्वाति के नीर के ॥१०९॥

धाम मनौ सुरधाम किधौ सुर लोक से।
संपत सुर सजोग हरत मन सोक से॥
राजत राज अवास प्रकासत दीप है।
मानौ सरवर करत जू सूर समीप है॥११०॥

(दोहा)

जवहिं नगर परवेस किय, विधि विचित्र बुधवंत।
सगुन सगुन सुभ बोलियौ, उपज्यौ हरष अनंत॥१११॥
धर्म राज पुर देषि कै, बाढ्यौ हृदय हुलास।
देवदत्त द्विज के सदन, सुषहित कियौ निवास॥११२॥
निरषि जग्यँ साला सुषद, हरि मंदिर निजु धाम।
गृह अंगन तुलसी लसै, कपिल धेनु जनु काम॥११३॥
बालक करैं जु वेद धुनि, घर धरसी जनु जीय।
नेम अतिथि आदर जहां, आइ उतारौ लीय॥११४॥

(चौपही)

दुजवर देषि बहुत सुप पायौ। मारग कौ श्रम सब विसरायौ॥
करि भोजनु बैठे इक साथा। कहे विचित्र सुनौ जगनाथा॥११५॥
कितिक भूमि सोमेसुर राजू। मंत्री कौन चलावै काजू॥
कितने पुत्र राज गृह रानी। तिन मह कौन राज अधिकानी॥११६॥
तुम पुन कौन वृत्ति चित धरहू। किहि विध काल षेप दिन करहू॥
बोल्यौ देवदत्त सुभ बानी। अगिनित भूमि परति नहि जानी॥११७॥
दल अगनित अगनित भंडारा। राज प्रसाद हमहि निस्तारा॥
प्रात नाद करि देव पुजावहिं। नित्य दान लै मंदिर आवहिं॥११८॥
षोडस दान देहि नर नाहा। दिन प्रति जग्यँ सुधा अरु स्वाहा॥
गरु जु पुत्र राज गृह माहीं। सूर सैन करि बोलत ताहीं॥११९॥
नागि पढ़ित चतुरानन जानौ। रूपवंत मकरध्धुज मानौ॥
दानु देत बलि वेनु लजावै। सूर हुतौ बिय सूर कहावै[१]॥१२०॥
रूप मदन चारि निपुन बद विद्या। जिहि की सभा भोज की निंदा॥
पै तनु अनंगबान महं पीरा। पंचबान करि दहति सरीरा॥१२१॥

१—स. द. में यह अर्धाली नहीं है।

एक बरस षट मास वितीते । राज कुँवर कह दुष महं वीते ॥
अब कुस भयौ वचन मुष थाक्यौ । मानौ नूत पीत फल पाक्यौ ॥१२२॥
बहुत जतनु सौमेस कराये । दिसि दिसि गुनियनि वैद बुलाये ॥
तऊ न लग्यौ एक उपचारा । दिन दिन अगनि विरह की झारा ॥१२३॥
चरित एक सपनंतर देष्यौ । इतौ रूप नहिं नैन विसेष्यौ ॥
सोई नारि चढ़ी चित माँही । अवरेषी चित उतरत नाहीं ॥१२४॥
मन[1] गुनि जन नहि वेदनि पावैं । आनि कौन कौ रूप दिखावैं ॥
नाम ठाम नहि जानत ताहीं । कै अच्छरि[2] कै मानवि आही ॥१२५॥

(दोहा)

कै नागिनि कै राच्छसी, काम रूपिनी आहि ।
किधौ कहूं हैं मानवी, कोउ न जानतु ताहि ॥१२६॥

सुरति करी सुनि नाम को, गुन विचित्र चित धीर ।
जो अकास वानी भई, सूर हरहिंगौ पीर ॥१२७॥

(चौपही)

बुधि विचित्र मन माहिं विचारी । याही विधि है राजकुमारी ॥
डेढ़ बरष ताहू पुनि वीत्यौ । स्वप्न सुभाइ अतन तव जीत्यौ ॥१२८॥
पैठत नगर सगुन सुभ बोले । आनँद सदन पाट विधि षोले ॥
बोल्यौ तबहिं सुनौ दुज देवा । हौ यह करौ राज की सेवा ॥१२९॥
वैद विचित्र नामु है मेरौ । गुनी चरक अरु सुश्रुत केरौ ॥
तुम नृप आगै जाइ जनावहु । आयसु माँगि लैन मुहि आवहु ॥१३०॥
देषौं विरह विथा उहि गाता । पूछौ जाइ स्वप्न की वाता ॥
मिटहि जु विथा कुँवर अनुरागहिं । करता राम जतन मुहिं लागहिं ॥१३१॥

(दोहा)

सुनत विप्र आनँद भये, गयौ नृपति के पास ।
विलप वदन देख्यौ जहाँ, सुत दुष निपट उदास ॥१३२॥
दै दच्छिन कर आसिका, अरु तुलसी वंदाइ ।
तब दोऊ कर जोरकै, विनती करहिं वनाइ ॥१३३॥

१—स. द. गनि । २—स. द. अप्छरि ।

( चौपही )

कहै सुनौ नरपति नर नाहा। वैद एकु आयौ पुर माहा ॥
अति गुनियनि गुनिवंत कहावै। कहै राजु जो मौंहिं बुलावै ॥१३४॥
मेटौं विथा कुँवर तन केरी। विनती जाइ करौ यह मेरी ॥
आयसु दियौ बुलावहु ताही। पंडित वैद कहत तुम जाही ॥१३५॥
देवदत्त तव राज पठायौ। बुध विचित्र कहँ करि गहि ल्यायौ ॥
आइ राज सनमुख सिर नायौ। तव वैठक कहँ आइसु पायौ ॥१३६॥

( दोहा )

कुसल पूछि आदर कियौ, वहुरि दियौ द्विज संग।
कुँवर धाम कहँ लै चल्यौ, उदित जहाँ अनंग ॥१३७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र षंडे बुधि विचित्र ग्रह प्रवेस वर्ननो नाम षष्टमो अध्यायः ॥ ६ ॥

( दोहा )

जाइ तहाँ वैठी सभा, द्वैपै वहु गुनवंत ॥
नव अवस्थ व्यापित कुँवर, वेदनि विरह अनंत ॥१३८॥

( छंद पद्धरी )

सिर नाइ सनमुख जाइ[1]। तव लषतु अंग सुभाइ ॥
नहिं सुरति अरु सुख संग। परिपूर अंग अनंग ॥१३९॥
मन मलिन मिटि अह्लाद। उद्वेग अरु उन्माद ॥
चितवै न पोलै नैन। डोलै न वोलै वैन ॥१४०॥
तप तनहिं व्याकुल होइ। जानै न वेदनि कोइ ॥
हरि नाम लिय सुविचित्र। रसना सुकीन्ह पवित्र ॥१४१॥
मन मध्य वेद मनाइ। जव करत जतन उपाइ ॥
वैठे हते गुनवत। ते करैं सकल इकंत ॥१४२॥

—१. [illegible] में यह छंद इस प्रकार है—
सिर नाइ सन्मुख संग। परिपूर अग अनंग ॥
सिर नाइ सन्मुख जाइ। तव लखत अग सुभाइ ॥

बोल्यौ सुनौ जग सूर । यह नेह जुग जग पूर ॥
जिहि विरह ब्याकुल गात । तुम कहौ अपनी पात ॥१४३॥
किहि कामिनी बस कीन । कब आप सपनौ दीन ॥
हौं वेद आयौ राज । यह विथा मैटन काज ॥१४४॥

( दोहा )

काम कुँवर यह वचन सुनि, चितयौ नैन उघार ।
बुधि विचित्र लोचन कमल, देषि भयौ वलिहार ॥१४५॥

( चौपही )

कहै कुँवर सुन वैद गुसाँई । मै वहु ओषद मूरि जो पांई ॥
पावत नहिं संजीवनि मूरी । जातै होइ विथा यह दूरी ॥१४६॥
वेदन आन आन उपचारा । औरहिं भाँति लोक व्यवहारा ॥
कहँ वह प्रिया प्रान की प्यारी । विरह विथा की मेटन हारी ॥१४७॥
वचन प्रमान होहिं तौ मानौ । तुम जानौ तौ जो हौं जानौ ॥
मै देषी सपनंतर नारी । जोवन रूप गुनहिं अधिकारी ॥१४८॥
तिहि कौ रूप वरन नहिं आवै । चतुरानन पुनि अंत न पावै ॥
जानौ नहीं कौन है सोई । किहि ठाँ रहै कहै नहि कोई ॥१४९॥
मै तुम सौं सब कही जु[1] आगै । रहे प्रान जिहि लालच लागै[2] ॥१५०॥

( दोहा )

पुहुकर मूरति मित्र की, नैननि रही समाइ ।
निसु दिन पुतरिनु मैं बसै, कैसहु उतरि न जाइ ॥१५१॥
बुध विचित्र इमि उच्चरै, सुनि हो राज कुमार ।
स्वप्न चित्र परतिच्छ है, दरसन तीन प्रकार ॥१५२॥
जो कोई मूरति लिषै, सो तुम निरषी नैनि ।
कहौ ताह पहिचानिहौ, ससि वदनी मृग नैनि ॥१५३॥
कहै सूर सुन सर्व गुन, क्यौ न परष्यौं ताहि ।
निसि वासर पल पल निमिष, चित्त रहे लगि जाहि ॥१५४॥

---

१—ब. जो सब कहि आगे । २—ब. स. द. तीनो प्रतियों में यह चौपाई ऐसे ही अपूर्ण है ।

( चौपही )

जित देषौं तित मूरति सोई । नैननि और न देषौं कोई ॥
रहै प्रान मधि प्रान पियारी । सोवत जागत होइ न न्यारी ॥१५५॥
निसु दिन रहै नैन के आगें । जीवनु रहै आस उहि लागै ॥
वह धन धाम वही धन मेरौ । लालच लागि रह्यौ जिहि केरौ ॥१५६॥
वाकी प्रीत लाग दुष देष्यौं । जीवन जन्म सुफल करि लेष्यौं ।
वाके नेह लाग अनुरागा । सब सुष करि मानत वैरागा ॥१५७॥

( सोरठा )

चाहत है चित जाहि । मनसा वाचा कर्मना ॥
क्यौं नर विसरै ताहि । जल थल वह मूरति लषै ॥१५८॥

( सवैया )

तुही मेरौ धनु ध्यान तेरौई करत दिन
तुही मेरे प्रान प्रान तोंही मैं वसतु हैं ।
तुही मेरे चैनु चैनु चरचा चलावै कौनु
तुहीं मेरे नैन नैन तोंही कौं चहतु हैं ।
पुहुकर कहै तुही तुही दिन रैनु कहौं
तेरी धुनि सुनिबे कौ श्रवन दहतु हैं ।
तुही मेरी प्यारी होति न छिनु ते न्यारी
परम अयानैं लोग विछुरौ कहतु हैं ॥१५९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चित्र पडे
सूर सवाद वर्ननो नाम सप्तमो अध्यायः ॥ ७ ॥

( दोहा )

तुधि विचित्र परवान मन, अँग अँग सुरति सम्हारि ।
कर कागद लै लेषनी, लिषन लग्यो सुकमारि ॥१६०॥

( सोरठा )

सारद कौ सिर नाइ, तब विचित्र इम उच्चरै ।
दिन्नौ देहु बताइ, जगत जनन वागेसुरी ॥१६१॥

( छंद गीत मालती )

चित्र बुद्धि विचित्र चित्रै रूप रंभा आगरी।
अति गौर चंपक वरन कनकहिं दीप द्रुति की नागरी॥
सुकुमारि कुँवरि किसोर कोंवल नागवल्ली सी लिपी।
तहँ ललित लटकत चारु चोटी देषि तिहि धावत सिपी॥१६२॥

परवीन पूरन चंद बदनी वंक जुग भृकुटी लसैं।
छुटि अलक लटकि कपोल पर जनु कमल अलि अवली वसैं॥
मृग मीन षंजन नैन अंजन चित्त रंजन सोहई।
विषधार वान विलोल वरुनी देषि मनमथ मोहई॥१६३॥

मृद हास मंडित अधर विद्रुम दसन द्रुति जनु हीर को।
रद ? बीच दाड़िम सुक्त झलकत चिंचु नासा कीर को॥
तहँ कनक मनि मय करन कुंडल चिवुक चवन विराजही।
मनि मंड कंठ मयूर ग्रीवों हार हियँ छवि छाजही॥१६४॥

वर बाल वाहु मृनाल सी कर कंज कोमल सोहई।
रँग अरुन करतल हरत जिहिं देषि मुनि मन मोहई॥
मनि मुद्रिका वनि अंगुली कर किसल कोंवल अत्तियाँ।
तहँ दिपत नष जनु दीप हैं मनौ रंभ दंपति वत्तियाँ॥१६५॥

अति कठिन उठत उरोज उन्नत मनहुँ संभु स्वयंभु हैं।
कटि छीन केहरि भृङ्ग लज्जति जंघ रंभा षंभु हैं॥
पद पदम पदमिनि रूप सेवति कुनित नूपुर सज्जियौ।
जहँ जटित मरकत नील मनि कर भँवर वासक लज्जियौ॥१६६॥

( दोहा )

इहि विध सूरति चित्र किय, अष्ट सषी लिए साथ।
मानहु विय विधना रची, दँई कुवर के हाथ॥१६७॥
बुधि विचित्र इमि उच्चरं, सुनौ सर्व गुन जान।
इन षट नव सूरति मैं, लेहु प्रिया पहिचान॥१६८॥

( चौपई )

कुँवर चित्र देषत सुष पायौ। मानहु प्रान अतक तन आयौ॥
किधौ रंक निधि गई हिराई। सो अब प्रान अचानक पाई॥१६९॥

नैक करै नहिं मूरति न्यारी। कहै अहै चित चोरन हारी ॥
कबहुँक लाइ हृदै सैं राषै। कबहुँक प्रान प्रान कर भाषै ॥१७०॥
कबहुँक नैन पलक पर लावै। आनन उदधि पार नहिं पावै ॥
कबहुँक धरि राषै दृग आगै। देषत नैन पलक नहिं लागै ॥१७१॥
रूप रंग देषत अनुराग्यौ। बुध विचित्र के पायन लाग्यौ ॥
कहै विचित्र चित्रु नहि कीनौ। भोजन छरस छुधित कहँ दीनौ ॥१७२॥
कै पयूष रस प्यासहिं पायौ। विरह घाइ तैं ओषदि लायौ ॥
कै तुहि कहत धनंतर ताही। कै तू दई[1] विधाता आही ॥१७३॥
कै तुम धौं[2] विक्रम सक बंदी[3]। कै पर दुष काटन सनषंदी ॥
तनु अरु प्रान नही बस मेरे। ना तरु करतुँ निछावरि तेरे ॥१७४॥
और न कछु तुम लाइक[4] आही। जो कछु पेस करौं चित चाही ॥
यह धन धाम सबै तुम लेहू। जानौ ताहि मया करि देहू ॥१७५॥

( दोहा )

फिरि फिरि अंकौ भरि रहै, बहुरि रहै गहि पाँइ[5]।
बुध विचित्र यह दीनता, देषत अति हरषाइ[6] ॥१७६॥
तब पूछी फिरि वारता, सुनि विचित्र बल जाऊँ।
यह मूरति किहि मित्र की, कहाँ नाव किहि ठाऊँ ॥१७७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयं चित्र पडे बुध विचित्र चित्र करन वर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

( चौपही )

जौ तुम कृपा करी इहि भाती। इतनी करौ यहै मन साँती ॥
नाम ठाम गुन कहि समुझावहु। मृतक जिवाइ पंथ दिषरावहु ॥१७८॥
सुनि विचित्र उभौ उठि भयौ। सीस नाय चरनन लै गयौ ॥
कहौ रान अविचल यह राजू। हौं यह करौ तुम्हारौ काजू ॥१७९॥
सुनि विचित्र नामु है मेरौ। सेवक विजैपाल नृप केरौ ॥
करौं चित्र अरु नृपहि रिझाऊं। राज प्रसाद बहुत सुष पाऊँ ॥१८०॥

---

१—स. द. देय। २—स. द. हौ। ३—स. बंधी। ४—स. द. लायक। ५—स. द. पाँय। ६—स. द. हरषाय।

अरु सत सप्त आहिँ नृप केरे । ते सब सिष्य रहैं गृह मेरे ।।
बिजै पाल सुरदीपति जानहिं । उदधि पार तिहि कृत्ति[1] बषानहिं ।।१८१।।

चंपावति नगरी पति आही । बहुत भूप सेवत हैं ताही ।।
पुत्र न होइ राज मन हीना । तातै रहै सदा दुष दीना ।।१८२।।

जंगमु एक अचानक आयौ । चंडी मंत्रु आन सम्हरायौ ।।
मुदित भँई सेवत निर्वानी । मन इच्छा तब आइ तुलानी ।।१८३।।

कन्या जन्म भयौ उजियारा । पट राग्यिनी गर्भ औतारा ।।
आनद पूर अंग भुवपाला । अगनित द्रव्य दियौ तिहि काला ।।१८४।।

रासि नाम रंभावति राषौ । दैव जानि कछु दुसहर भाष्यौ ।।
तीन वरष सामान्य बताये । ते तब नृपति मनहिं नहिं आये ।।१८५।।

( दोहा )

ललित लाड अरु चाडिली, सब घर प्रान अधार ।
अंध लकुट मनौ रंक निधि, मनि[2] भुजंग उजियार ।।१८६।।

देवहुती मनु संभु कै, पय सागर कै श्रीय ।
किधौ दच्छ गृह रोहनी, मनौ जनक की धीय ।।१८७।।

सुमित भई दस वर्ष लगि, करत बाल कल केलि ।
मनौ रूप तरु मंजरी, किधौं कनक की वेलि ।।१८८।।

जब एकादस वर्ष मै, जोबन अंकुर कीन ।
भयौ सुविप्रनि कौ कह्यौ, विषम रोग तन छीन ।।१८९।।

सपनै नरु सुंदर लख्यौ, अर्द्ध रयनि ससि जोति ।
संग सषी जानै नहीं, किहि विधि विरहनि होति ।।१९०।।

मुग्ध वैस लज्जावती, कछू न जानै पीर ।
विषम व्याधि वढतै वढ़ी, अबला निपट अधीर ।।१९१।।

चकृत भईं सब सहचरी, आरत आतुर अत्ति ।
सवनि हृदै मरबौ धरौ, विवस बिसारी मत्ति ।।१९२।।

तब अकास वानी भई, सषि जनि होहिं अधीर ।
सावधान जतनहिं करौ, सूर हरहिंगो पीर ।।१९३।।

---

१—व. कृति । २—स. द. मनु

रवि सेवा बहुतै करी, अरु जप हौम अनेक।
वैद गुनी रचि पचि थके, जतन न लागहिं एक ॥१९४॥

मदन मुदित इमि उच्चरै, प्रौढा सब रस जानि।
तिन बसु अंग सुभाय लषि, प्रेम प्रकिति पहिचान ॥१९५॥

बहुत भाँत कर चातुरी, सुनी स्वप्न की बात।
नाम ठाम जान्यौ नही, कनक बरन दुति गात ॥१९६॥

मुष ते बैनु न उच्चरै, नैन नैन सौं जोरि।
तरनि तेज दिपाराइकें, चित्त गयौ लै चोरि ॥१९७॥

## ( चौपही )

तब मुदिता सुनि अकथ कहानी। चक्रत चित्त अचिरज अधिकानी ॥
रंभा बहुरि बिरह बस भई। पंचबान घाइल ह्वै गई ॥१९८॥
दस अवस्थ प्रगटित उहि अंगा। मरनु आइ नियरानौ संगा ॥
सवनि आस तज जीवनि केरी। आसा एक राम तन हेरी ॥१९९॥
दया करी तब दीन दयाला। घट मधि प्रान रह्यौ तिहि काला ॥
ताहि रैनि स्वप्न प्रिय देष्यौ। वहै चित्र चित्तहु अवरेष्यौ ॥२००॥
उहि विधि सेज वहै उजियारी। उनि नैननि वह जोति निहारी ॥
तब गहि रही चरन जुग वाके। लागे नैन बान उर ताके ॥२०१॥
अति आधीन भई अनुरागी। नाम ठाम गुन पूछन लागी ॥
भूतल बास करौ नर नामा। अरु हिय हेत जनायौ भामा ॥२०२॥
तबहीं प्रात चेत चित आयौ। मदन मुदित कहँ स्वप्न सुनायौ ॥
मुदिता मुदित कहै सुष बानी। जहां हती पँहुपावति रानी ॥२०३॥
तब हम भूप चित्र सब बोले। स्वामिन आइसु पाइ हम डोले ॥
जिमि जिमि भूप चित्र सब ल्यावहि। तृगुन नाम समुझि करि आवहिं ॥२०४॥
देस देस कहँ गये चितेरे। चाहत फिरत लिषत बहु तेरे ॥
तिन पास सुनि जानत नाहीं। कौनु रोगु दुहिता मन माहीं ॥२०५॥
पर सुनि चित्रकार नहीं जानत। आइसु मानि वचन परमानत ॥
सैन सूर नाम सुनि पायौ। तब दुज संग वैद हुव आयौ ॥२०६॥
स्वप्न सुभाइ विरह जिय जान्यौ। तब निश्चै करि मनि पतियानौ ॥
पठन नगर सगुन सुभ पायौ। मनहिं चाव चित भयौ सवायौ ॥२०७॥

( दोहा )

अरु सुंदरता देषि करि, मदन न पूजहिं रूप।
कह्यौ तुमहिँ परवान जिय, सर्व अंग लष भूप ॥२०८॥
राजा रंभा पद्मिनी, सिंघल हूँ नहिं होइ।
अब बिधना पर मांगिये, अविचल जोरी सोइ ॥२०९॥
सोई सूरति चित्र करि, चाहत हो तुम जाहि[1]।
अब तुम सूरति चित्र करि, लै दिखराऊँ ताहि ॥२१०॥
राजन आइसु दीजिये, प्रात करौं उठ गौन।
अनिल विरह की जामिनि, दीपक दियौ न भौन ॥२११॥

( चौपही )

अब सेवक कौं अग्याँ कीजे। एकु वचन मुहि मागे दीजे ॥
यह रस भेद कह्यौ जनि काहू। तुमही पुत्र राज के आहू ॥२१२॥
वह अबला कोमल सुकमारी। जौ कोउ सुनै चढै उहि गारी ॥
जानत नहीं जो अब लग कोई। इक मुष पर सहस मुष होई ॥२१३॥
विजै पाल भूपति सुर ग्यौंनी। तपत तेज मानौ वृषभानी ॥
जो यह भेदु नैकु सुन पावै। तौ तनया लै गंग बहावै ॥२१४॥
हौँ बरजौ पहुपावति रानी। पै तुव प्रीत हृदै अधिकानी ॥
तातै सकल कही तुव आगै। रहे प्रान जिहिं लालच लागै ॥२१५॥

( दोहा )

यहै वचन मुहि दीजिये, सौंह दिवावत राज।
ना तर इहि रस रास मै, विरह होइ वेकाज ॥२१६॥
सुनी सकल सुभ वारता, सहित मूल अरु साष।
सूर सैन के मन वढ्यौ, फिरि नौतम अभिलाष ॥२१७॥
चतुर चित्त चातुर भयौ, विधि सौं कछु न बसाइ।
काम अग्नि मन उप्पजै, मन ही माँझ समाइ ॥२१८॥

( चौपही )

कहै पंष जो मागै पाऊँ। प्यासे नैन रूप अघवाऊँ ॥
सुनि विचित्र विनती यह मेरी। किहि विध विदा करौं अब तेरी ॥२१९॥

---

१—व. प्रति मे यह दोहा इस प्रकार है—
सोई मूरति चित्र करि, लिख दिखराऊँ ताहि।
अब तुम मूरति उरवसी, चाहत हो चित जाहि ॥

यह तौ प्रीत रीत जग नाहीं। छाड़ि जाउ सुहि मारग माहीं ॥
यह न होइ केवट परिपाटी। नाउ चढाइ देइ गुन काटी ॥२२०॥
मोही संग लेहु जिय दाता। देषौ जाइ जाहि रंग राता ॥
तोहि चले तैं पल न रहाऊँ। ऐसौ मित्र कहाँ पुनि पाऊँ ॥२२१॥
जो तुम बाहँ गही है मेरी। करौ लाज कर टेके केरी ॥
लिष्य मनुस्य जिते कलि माहीं। बाहँ गहे की लाज कराहीं ॥२२२॥

( दोहा )

बुधि विचित्र इम उच्चरै, सुनि हो राजकुमार।
धीर धरौ अब देषिहौ, जीवन प्रान अधार ॥२२३॥
जगत रीति जानत सबै, और राज गृह चाल।
सुता स्वयंबर ठाठिहै, विजयपाल तिहि काल ॥२२४॥
तब तुमही पगु धारियौ, लै चातुर दल संग ॥
अवगिमेत्र तोहीं वरै, कीनौ जतनु अनंग ॥२२५॥
यहे मंत्र मंत्री कियौ, यहै हमारै चित्त।
लोक लाज पुनि थिर रहै, मिलहिं चित्त अरु मित्त[1] ॥२२६॥

( चौपही )

कह्यौ विचित्र मानि सो लीनौ। तब आरंभ विदा कौ कीनौ ॥
वाचा बंध भयौ दुहुँ सेती। काहूं आगै कहै न एती ॥२२७॥
तब विचित्र कर कागद लीनौ। नप लिष चित्र कुँवर कौ कीनौ ॥
समुझि सकल वे सुंदरताई। अँग अँग ओप अनूप बनाई ॥२२८॥
रूप अनूप मदन तें बाढ्यौ। सो लेखनी अग्र करि काढ्यौ ॥
लिप कर चित्र कुँवर कर दीनौ। अपुन कुँवर देषन कौं लीनौ ॥२२९॥
अपनौ रूप चित्र मह देष्यौ। नहि विसेष जनु दर्पन देष्यौ ॥
बहुरि विदा जब माँगनि लाग्यौ। उठ्यौ कुँवर प्रीत अनुराग्यौ ॥२३०॥

( दोहा )

अमित भये हौं पंथ मैं, आजु बसौं इहि ठाउँ।
इक पत्री हौं देउ लिप सुमर सजन कौं नाउँ ॥२३१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चित्र षंडे प्रेम कथा वर्ननो नाम नममो अध्यायः ॥१०॥[2]

---

१—यहाँ से अ० प्रति फिर चालू होती है।
२—अ. प्रति में इसे 'कुँवर चित्र कथा अवरेखनो नाम' अध्याय कहा है।

( चौपही )

बुधि विचित्र निकट बैठारौ । देव दत्त द्विज कुँवर हकारौ ।।
भूपति कौं सुष जाइ सुनावहु[1] । बैद जतन गुन कहि समुझावहु[2] ।।२३२।।
यह तौ वियौ धनंतर आही । संजीवनु तरु कहियतु जाही ।।
मूरि एक आवत सुहि दई । देषत अंग[3] विथा मिटि गई ।।२३३।।
सकल सुरति आई जिय मेरै । अब यह व्याधि न आवइ नेरै ।।
बहुरि कुमार मित्र हँकराये[4] । विहँसत नैननि नैन मिलाये ।।२३४।।
देषहिं कमल वदन परगासा । सूर उदै जनु कियौ विगासा ।।
आनद मुदित भये सब लोगा । छाँड़े सकल उदेग[5] वियोगा ।।२३५।।
तबहिं कुँवर मंदिर महँ आये । मातु पिता प्रानन मन भाये ।।
राजा देषि परम सुष पायौ । मानौ जीव फेरि घट आयौ ।।२३६।।
मानि सूर नवतिन अवतारा । लाग्यौ देन सकल भंडारा ।।
हय गय मनि हाटक बहु दये । अर्थी अर्थ पाइ करि लये ।।२३७।।
घर घर तिलकु निछावर आई । जननी आनँद उर न समाई ।।

( दोहा )

घर घर थापे दीजिये, घर घर वंदनवार[6] ।
घर घर अनद वँधावनै, घर घर मंगलचार[7] ।।२३८।।

( चौपही )

भेरी मृदँग वजहिं नीसाना । संगी सुभट देहिं वहु दाना ।।
गुनि जन नृत्य गीत बहु करहीं । गंध्रप देषि गर्व मन हरही ।।२३९।।
तिहि छिन तुरत तुरंग मँगायौ । रुचिर मनौ रवि रथ तैं आयौ ।।
सेत बरन उपमा अति बाढ्यौ । मनौ छीर सागर मथि काढ्यौ[8] ।।२४०।।
उच्च ग्रीव विवि करन सुहाये । तीषे तरल तुरंग मँगाये ।।
उपमा और कहै नहि कोई । इंद्र धनुष दुतिया ससि होई ।।२४१।।

---

१—व. सुनायौ । २—व. समुझायौ । ३—व. स. द. अंध । ४—व. हाँकारे । ५—व. स. द. छाँड़ि सकल उदयोग । ६—व. वंदनचार, स. द. मगलचार । ७—व. स. द. वंदनवार । ८—अ. स. द. मे दोनों पक्तियों का यही क्रम है ।

चंचन चपल कहत नहि आवै। दामिन को घन सरवर पावै ॥
पवन पाइ मन[1] वेगम मोला। मानौ तरनि किरनि हिंडोला ॥२४२॥

( दोहा )

करि पलान कंचन मई, लाल हीर मनि लाग।
मनि मुकता गन झूमका, ललित लगाई बाग ॥२४३॥
निकस्यो हय[2] आरूढ ह्वै, नगर लोग सुष देन।
चमर छत्र सिर सोहई, संग सुभट बहु सैन ॥२४४॥
नैंन वान भ्रगुटी धनुष, चारु हास हथियार।
मानौ मनमथ चढि चल्यौ, पेलन जुवति सिकार[3] ॥२४५॥
नर नारी नागर नगर, देषत अति आनंद ॥
मनहुं सरद[4] घन माँझ तै, प्रगटत पूरन चंद ॥२४६॥

( छंद मोतीदाम )

प्रकासित चंद विलोकहिं वाम। मनौ सरपंच लिये कर काम ॥
चढै इक सुंदरि जाइ[5] अवास। विलोकनि आननि मंडित हास ॥२४७॥
चलै इक सुंदरि छाँडि सिंगार। गिरै मुकता गन टूटत हार ॥
उठै इक लोचन अंजन देत। अघाइ न रूप सुधा रस लेत ॥२४८॥
रहै इक नागर नैंन निहार। करैं चितवित्त तहाँ वलिहार ॥
थिथकि रहै इक अंचल डार। टरै वट सीस चितैयनि हारि[6] ॥२४९॥
घरघर वंधिय वंदन वार। छिरक्किय नीर सो हाट[7] वजार ॥
पटंवर पाटन मंडित हाट। वनावहिं चित्र विचित्र सुवाट ॥२५०॥
भनैं जस[8] वंदिय मागध सूत। मनौ पठये अमरावति दूत ॥
करैं निछिरावरि नागर लोग। वढै वहु मोद मिटै सब सोग ॥२५१॥
करैं रलि केलि कलोल कुमार। लहै न तहाँ सुष सागर पार ॥
मंत्र नम एक वहिक्रम सिद्ध। लिये ढिग साथहि चित्र विचित्र ॥२५२॥

१—ग. स. द. मनो। २—व.द. हय। ३—स. द. प्रतियाँ यहीं समाप्त हो जाती हैं। आगे के पत्र नहीं है। ४—व. सदन। ५—व. आइ।
६—ग. [illegible] चित चित्त तहाँ वलिहार। ७—अ. पंथ। ८—व. दिवि।

( दोहा )

नगर लोग पुलकित सकल, दरसु दियौ चिरकाल ।
मन वच क्रम दै आसिका, पुत्र वंत भुवपाल ॥२५३॥

( चौपही )

नगर देषि फिरि मंदिर आयौ । बुध विचित्र कहँ साथहिं ल्यायौ ॥
षट रस भोजन विविध जिमाये । अरु निसि बोलि निकट बैठाये ॥२५४॥
कहत कहावत प्रेम कहानी । जागत ही सब रैन विहानी ॥
फिरि फिरि गुन रंभावति बूझै । दूजौ और न कोऊ सूझै ॥२५५॥
सुनत रसाल बात सचुपावै । सोचि सकुचि[1] अरु फेरि कहावै ॥
रह्यौ सुप्रान प्रिया पहँ जाई । प्रगटी प्रिया प्रान महँ आई ॥२५६॥

( दोहा )

वहै नाम रसना जपै, श्रवन सुनै वह नाम ।
वहै नाम हिरदै बसै, और नाम नहिं काम ॥२५७॥
सो चित्रहिं करही धरै, लोचन चाहत जाहि ।
करि हारिल की लाकरी, निमष तजहिं नहिं ताहि ॥२५८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कविपुहुकर विरचितेयं चित्र पंडे कुसल कौतूहल वर्ननो[2] नाम दसमो अध्यायः ॥ १० ॥

॥ इति चित्र खण्ड ॥

---

१—अ. समुझि । २—अ. नगर आगवन वर्नन ।

# विजयपाल खंड

( दोहा )

तीन दिवस राख्यौ तहाँ, बुधि विचित्र बुधि[1] वंत ।
सोम सूर कीनी विदा, दीन्हौ द्रव्य अनंत ॥ १ ॥
चित्तहु चिंता जिनि करौ, मति मन होहु उदास ।
बुधि विचित्र अनु गमनहीं, आवत चरनन पास ॥ २ ॥
सावधान संदेस लिय, गहे कुँवर के पाइ ।
मुदित वचन मारग धरौ, चल्यौ पंथ चितु लाइ ॥ ३ ॥

( चौपही )

चल्यौ विचित्र सगुन सुभ पाये । चार मास तिहि मारग लाये ॥
पंथी पंथ[2] अंत जब[3] पायौ । चंपावति नगरी महँ आयौ ॥४॥
चित्रकार दिसि दिसि सब आये । नाम रूप अवरेख सुल्याये ॥
लै मुदिता कुँवरिहि दिपरावै । निरखि नैन पुनि दूरि डरावै ॥५॥
इहि अंतर वह आइ तुलान्यौ । दुहि दिस प्रेम प्रगट जिहि जान्यौ ॥
चल्यो सुमति सागर पहँ जाई । सकल बात कहि ताहि सुनाई[4] ॥६॥
तब दोउ राजदुवारिहिं आये । मंदिर महँ परदार पठाये ॥
मदन मुदित कहँ लियो बुलाई । सकल बात कहि तिहिं समुझाई ॥७॥

( दोहा )

प्रथम नाम गुन विस्तरौ, दियौ चित्र कर ताहि ।
लै कुँवरिहिं दरसाइयौ, दरसन भावत जाहि[5] ॥८॥

( चौपही )

निरख चित्र जनु मूरति मैना । विरह दाह तें निकसे नैना ॥
आनन अमिय सरोवर पेख्यो । जीवनु जनम सुफल करि लेख्यौ ॥९॥

---

१—ब. बलिवन । २—अ. पथ पथ । ३—अ. आयौ । ४—ब. सूर कथा सब तहँ समुझाई । ५—अ. प्रति में इस दोहे के स्थान पर निम्नलिखित दोहा दिया हुआ है । यही दोहा आगे २२वीं संख्या में भी है ।

नाम ठाम गुन विस्तरौ, दियौ पत्र सन्देस ।
अरु पठई कर मुद्रिका, मंडित नाम नरेश ॥

प्रान नाथ पेषत पहिचान्यौ । मानौ रतन जौहरी जान्यौ ॥
पुलकित पलक लगत दृग नाहीं । अँचवत रूप न नैन अघाहीं ॥१०॥
फिरि फिरि सुंदरि ताहि निहारै । चारु चित्र कर तैं नहिं टारै ॥
सकल[1] अंग चित्रहिं अनुरागे । जनु जुग नैन चित्र सम लागे ॥११॥
बार बार सुदितहिं दिषरावै । अंग[2] अंग माधुरी बतावै ॥
सषि यहु रूप डीठि जौ परई । कौन नारि मन धीरज धरई ॥१२॥
इहि विधि नैन एक टक लायै । मनहु कनक जट हीर[3] लगाये ॥१३॥

( दोहा )

बहु विनोद बहु मोद मन, बहु धन प्रान अधार ।
वहै नैन अंजन कियौ, वहै कियौ हिय हार[4] ॥१४॥

( चौपही )

देषि रूप सुदिता बलि जाई । थकित मनौ ठग मूरी पाई[5] ॥
फिर जब सुरति सम्हारी अंगा । लागे[6] जुगल नैन बहि गंगा ॥१५॥
सुदिता कहै सुनहु सुकुमारी । विषम नेह निर्बाहन हारी ॥
प्रीतम प्रीत सुनहिं जौ काना । रसना एक न जाइ बषाना ॥१६॥
बुधि विचित्र जो कही हम सेती । हौं मुष बरन न जानतु एती ॥
बैरागरु अध्रपति इकु आही । कहत राव सौमेसुर ताही ॥१७॥
सूरसेन तिहि पुत्र कुमारा । मानौ त्रिय अनुरुध अवतारा ॥
रूप रासि मनमथहिं विसेष्यौ । सो तुम स्वप्न चित्र सम लेष्यौ ॥१८॥
उहि पुनि स्वप्न भयौ तिहि काला । जब तू विरह भई बेहाला ॥
उहि दिन वहै रैन उजियारी । निरषि नैन रंभावति हारी ॥१९॥
जबहि विचित्र गयौ उहि गाऊँ[7] । सुन्यौ श्रवन रंभावति नाऊँ ॥
उभै वरष तब आइ वितीते[8] । राज कुँवर कहँ दुष महँ बीते ॥२०॥
अरु तुव चित्र चित्रि दिषरायौ । तबहिं प्रान वट अनतर आयौ ॥
जीवन सुफल मानि मन लीनौ । वहै चित्र दृग दर्पन कीनौ ॥२१॥

---

१—ब. रोम रोम की सिपत बनावै । २—ब. रोम रोम की सिफत बतावै ।
३—ब. जरि होर । ४—अ. आहार । ५—ब. बनाई । ६—ब. लोचन ।
७—अ. प्रति मे अर्धालियो का क्रम बदला हुआ है । ८—ब. अतीत ।

( दोहा )

अत्र आवतु मन[1] भावतौ, दियौ पत्र संदेस।
अरु पठई कर मुद्रिका, मंडित[2] नाम नरेस ॥२२॥
राज कुँवरि मन प्रेम कर, पतिया छतिया लाइ।
सजल नैंन वाचिन सकै, तऊ न वाचौं जाइ ॥२३॥
कंठ गद्दग्गद रोम तन, नीर रहे दृग पूरि।
मानौ लोचन पंथ कर, करै उदहि दुष दूरि ॥२४॥
हीर जटित कर मुंदरी, लै सुंदरी सुजान।
सूर नाम चित चाहि करि, किये निछावर प्रान ॥२५॥

( सोरठा )

पंत्री वाँच कुमारि। लिषी लाल कोमल करन ॥
प्रान किये वलिहारि। अरु चित चाव चवग्गुनौ[3] ॥२६॥
मिटे सकल दुष दुंद। सुनत सजन[4] सुष वत्तियाँ ॥
उपज्यौ अति आनंद। मिलन मनोरथ मन वढ्यो ॥२७॥

( चौपही )

मुदिता मुदित अंग नहिं[5] माई। पुहपावति पहँ आतुर आई ॥
कहै करौ आनंद वधाई। मैं रंभावति मरत जिवाई ॥२८॥
रुचि विचित्र चित्र करि ल्यायौ। सो कुमारि देषत मन भायौ ॥
तब पुनि भयौ विरह वेहाला। गयौ विचित्र जियौ तिहि काला ॥२९॥
सूरसेन सोमेसुर पूता। वैरागर अधिपति मन धूता ॥
सुत तन प्रेम पूरि कर[6] आयौ। कछु विधि ऐसो[7] ठाटु वनायौ ॥३०॥
ज्यौं सकल[8] पहुपावति माता। वनु अरु धर्म रही दोइ वाता ॥३१॥

( दोहा )

जो प्रकास वानी भई, सूर विथा हर होइ।
स्वामिन सो वह सूर है, भेदु न जानतु कोइ ॥३२॥

---

१—अ. अरु आवत सुमन। २—अ. पंडित। ३—अ. प्रति में दूसरे और चौथे चरण क्रमशः परिवर्तित है। ४—अ. सकल। ५—अ. आनदी। ६—अ. [illegible]। ७—अ. औसर। ८—अ. नदे कमला।

सुधि विचित्र यह उच्चरी, आवै कुँवर उताल।
अति आतुर नहि सहि सकै, विरह ज्वाल बेहाल ॥३३॥
स्वामिन निश्चै आइहै, सूर अलप दिन माँहि।
सुता स्वयंबर ठाठियै, गहिर काम कौ नाहि ॥३४॥
दिसि दिसि भूप हँकारियै,[1] सहित सकल संवात।
ना तर आगम सूर कौ, प्रगट होइ यह बात ॥३५॥
विजयपाल नृप तेजमय, हम जिय अधिक डराहिं।
दासी प्यासी हेत की, भुव वाकी मरि जाहिं ॥३६॥
मानि वचन पहुंपावती, जो मुदिता कह दीन।
मुदित मनोहर हंस गति, गवन कंत पहँ कीन ॥३७॥
सकल कला करि कोविदा, पौढ़ विजच्छन बाम।
नव सत साज सिंगार तब, चली सेज सुप धाम ॥३८॥
हाव भाव करि चातुरी, नव सिष पियहिं रिझाइ।
विषय केलि बस करि लियौ, बोलत बैन बनाइ ॥३९॥
राजन आँनद[2] मानियौ, गयौ सुता तन रोग।
बहुत जतन नीकी भई, मिट्यौ दंदु[3] अरु सोग ॥४०॥
अब इतनी विनती यहै, मानि लेहु भुवपाल।
सुता स्वयंबर कीजियै, आतुर बेगि उताल ॥४१॥
ब्याह जोग रंभावती, वरष त्रयोदस माँहि।
तातै बेगि विवाहिजै, कालु ढील कौ नाहिं ॥४२॥

( चौपही )

विजैपाल सुनि कर यह बाता। कहइ सुनौ रंभावति माता॥
अबसिसेव यह कारज करहूँ। हदै गहरु नहि पल कौ धरहूँ ॥४३॥
यह विधि उनही जुगति[4] बितीती। कलि जुग नहीं सुयंवर रीती॥
मेरे नैन प्रान रंभावति। सुत तै अधिक मोहि जिय भावति ॥४४॥
औरन पुत्र आहि गृह तेरे। यहइ सुता यहै सुत मेरे॥
देहि ताहि जो रहै हमारे। कौन लिप्टि बहु नृप हँकारे ॥४५॥
देस देस नृप सेवत मोंही। राज कुमार दिपैहीं तोही॥
कुल अरु रूप गुननि वर जानहु। ताहि समुझि करि वर परमानहु[5] ॥४६॥

---

१—ब. सुता स्वयंवर टाठियै। २—ब. आवस। ३—ब. दंभ। ४—ब. ऊनहि जुगनि। ५—अ. पहिचानहु।

कहै वचन पुहुपावति रानी। राजन तुम यह बात न जानी॥
सेवहि तुमहि देहु जौ ताही। कहै सुता सेवक कौ व्याही॥४७॥

( दोहा )

एक छत्र तुम चक्कवै, कीरति सागर पार।
सुता स्वयंवरु कीजियै, ह्वैहैं धर्म[1] अपार॥४८॥
मन इच्छा जाको वरै, सुनियै राजधिराज।
सो क्यों दियें न लेहिगौ, चंपावति कौ राज॥४९॥
सील बढै कीरत रहै, दुहिता दुषी न होय।
उत्तम व्याह स्वयंवर, भेद न जानहिं कोय॥५०॥

( सोरठा )

त्रिया वचन वर आनि, विजैपाल पृथ्वी सुर।
लियौ वचन वर मानि[2], मंत्री सुमति हकारियौ[3]॥५१॥

इति श्री रसरतन काव्ये पुहुकर विरचितेय निमत्रण आज्ञा वर्णनो
नाम प्रथमो अध्यायः॥ १॥

( छप्पय )

विजैपाल सुत्रपाल सुमति सागर हंकारौ।
सुता सुयंवर काज साज लगि मंत्र उचारौ[4]॥
सामग्री सब करहु बहुत जिय लोभ निवारहु।
देस देस के राजन नेवति करि वेगि हकारहु॥
नृप देस देस पति बोलियहु पत्र निमंत्रनु हथ्थ[5] दिय।
सुनि वचन मानि परवानि जिय सो सुभ नछत्र आरंभ किय॥५२॥

( दोहा )

देस देस अनुचर चले, वरनि न आवै नाम[6]।
[illegible] बुद्धि अनुमानिकै, पुहुकर कहत सुनाम[7]॥५३॥

( छद वधूह )

[illegible] कोसल कारनाट[8] कनवज्ज कलिंजर।
[illegible] कलिंग केदार कछंधर॥

१—[illegible]। २—अ. मन्त्र लियो करिमान। ३—यहाँ ब. प्रति के [illegible] अग राजा विजै पाल देस देसान्त कौ नेवत्तै देत भये [illegible]। ४—अ. [illegible]। ५—ब. मंत्री मत्री साथ। ६—अ. सो मुख [illegible]। ७—[illegible]। ८—ब. भारनाट।

कौमुदिउस कष्टवार केरलपुर कंगर ।
गोडंवान[1] गोवल्ल गुंड गोपाचल गुज्जर ॥५४॥
विंध्या नैरि विदेह भुम्मि धारन पुर वग्गर ।
मल्लिवार मालवा मगध मरहट्ठ मजेवर ॥
वंग देस वैराट वीर वद्री वैरागर ।
वंविहार वारार देस वगुलान वहेडर[2] ॥५५॥
मारवार मेवार मत्स मेवांत[3] मनोहर ।
चित्रकूट चंदेरि चीर[4] चंद्रागिरि नरवर[5] ।
मध्य देश मधुपुरी मद्र मासु मान मर[6] ।
अंग अवधि उज्जैनि अवनि आसेरह अग्गर ॥५६॥
इंद्रप्रस्थ अजमेरि अंत्रवेली[7] विनोद कर ।
सोरठ सागरोपसीथ द्वारा मलि नागर[8] ॥
रोहतास रनथंभ रंग राजह तिलंग वर[9] ।
पंच आइ पंचाल लहमि पाटन पुर पुहकर[10] ॥५७॥

( दोहा )

पति पत लगि मंत्री सुमति, साजे साज अपार ।
आखंडल षड पेषियौ, विजेपाल दरबार ॥५८॥

इति श्री रसरतनकाव्ये पुहकर विरचितेय निमत्रण वर्णन
नामो द्वितियो अध्यायः ॥२॥

## अथ मदन मुदिता आदि दै अष्ट सहचरी रंभा को गुन चातुरी सिषावती हैं तस्य वर्नन ।

( दोहा )

कुँवरि संग बहु सहचरी, रूप रंग गुन रासि ।
किधौं अष्ट ये नाइका, सकल सिद्धि जनु दासि ॥५९॥

---

१—ब. कुँडवान। २—ब. प्रति मे यह छंद नहीं है। ३—ब. मेवार। ४—अ. चाउ। ५—ब. नयमर। ६—ब. प्रति मे यह पंक्ति नहीं है। ७—ब. अंतवेली। ८—ब. मे यह पंक्ति नहीं है। ९—राग रज हित लगर। १०—अ. प्रति मे देश वर्णन के बाद स्वयंवर सामग्री संकलन आदि के विषय में कुछ छंद दिए हुए हैं जो ब. प्रति मे नहीं है।

बहु दिस पत्रि निमत्र दिय, बरनि न आवत नाम ।
सावधान सज्जित करो, सामग्री बनु धाम ॥

## अथ सखिन के नामा

( दोहा )

मुदिता उदिता सुन्दरी, गुनमंजरी सुदाम ।
कोककला अरु कोकिला, अंबा बिंबा नाम ॥६०॥
ते सब गुन सिखरावहीं, चित्त चाहि गुन चाहि ।
न्यारे न्यारे भेद कहि, चतुरता बहु आहि ॥६१॥

( छंद पंद्धी )

रंभावती सौं जबहीं गुनवंत सहेली ।
बाला बोलनि कानु दे अबला अलबेली ॥
पीहरि है दिनि पाहुनी जनि होहि गहेली ।
अब चलैगी सासुरे सुनि नारि नवेली ॥६२॥

फुलवारी सखि मालती कलिका जग जोई ।
बिहँस तिहिं अवलोकियौ माली कर सोई ॥
जो फलु लाग्यौ तरवंर लगि रह्यो न कोई ।
त्यौं त्यौं हँसति सलौनी ये नहि नेहर होई ॥६३॥

अब लग रही अजानियौं अब होहि सचेती ।
काम परैगो पीरीये उहि नाइक सेती ॥
पाछे फिरि पछिताहुगी करि चित्त अचेती ।
सम्मुझि कला गुन चातुरी जग जानहि जेती ॥६४॥

परम विजच्छन कंतु है कहि लोग सुनावैं ।
जाकै गुन गंभीर कौ कोई पार न पावै ॥
संग सषिन मै षेलिबौ कछू काम न आवै ।
सो गुन सीषि पियारियै ज्यो पियहिं रिझावै ॥६५॥

( सोरठा )

यौ समुझावहिं नारि । यही सीष सब जगत मै ।
पढुकर अर्थ विचार । राज कुँवर मन भावती ॥६६॥

( दोहा )

मदन मुदित इमि उच्चरै, सत्त कहैं वर नारि ।
सकल कला गुन आगरी, अँग अँग सुरति सम्हारि ॥६७॥
बाला बाल कुरंग दृग, जद्दिप गुन आगार ।
रवँनी रवँन रिझाइवौ, निपट कठिन व्योहार ॥६८॥
मोहन जोहन वसन थे, मिथ्या सवनि अनित्य ।
प्रीतम प्रकित परिप्यवो, यहै मत्र धर चित्त ॥६९॥

( चौपही )

मुदिता आदि सकल सहचारी । इक इक अधिक गुननि वर वारी ।
रंभावति कौ गुनु सिषरावहिं । इहि विध वासर विहँसि गवांवहिं ॥७०॥
जे गुन गरुव त्रिया मनु मोहैं । जे अवला गुन त्रिभुवन सोहैं ॥
ते गुन सकल सिषावहिं बाला । परम सुजान प्रवीन रसाला ॥७१॥
प्रथम सिषावहिं सुर गुरु पूजा । सील सुभाव सिपावहिं दूजा ॥
दृढ़ कर[1] लाज सिषावहि नारी । सुरति समै परिहरियै प्यारी ॥७२॥
मन वच क्रम कीजै पति सेवा । पति तैं और विर्यै नहि देवा ॥
जौ निश्चै पतिवृत्त मन धरहीं । सो तिरिया भव सागर तरहीं ॥७३॥

( दोहा )

पति तीरथ पति नैम व्रत, पति हरि सुगति आहि ।
पति पूजा इक चित करहि, सुर पूजत फिरि ताहि ॥७४॥
सदा मुदित मन मैं रहै, पिय के संग अनंग ।
पति हित प्रकृति हिल मिल चलै, प्रीतम के रस रंग ॥७५॥

---

१—व. डिढ़कर ।

सीप सिषै मुदिता कहै, सुनियै राज कुमारि।
तोहिं बुद्धि बिधना दई, कौन सिषावनि हारि ॥७६॥

( चौपही )

रूप उदित उचरै सुनि बारी। रूप सरूप पियहि मन प्यारी ॥
जदपि रूप बिधाता देई। तऊ सम्हारि त्रिया तनु लेई ॥७७॥

रूप उदित उज्जलता होई। रहै कुचाल जाइ सब धोई ॥
प्रात उठै पिय दरसन कीजै। छिनक चित्त चरननि तन दीजै ॥७८॥

प्रति दिन मज्जन करि सुकुँवारी। अधिक ओप उपजहिं रुचिकारी ॥
तन सोभित सिंगार बनावहु। बिधि बिधि अंग सुगंध लगावहु ॥७९॥

सुप तमोर अरु अंजनु नैना। मानौ एक रूप की सैना ॥
दिन दिन तोस अधिक तन बढै। मानो इंदु कला नव चढै ॥८०॥

चतुरा बैन कहै सुंदरी। सुंदरि सुनहिं बात रस करी ॥
हों तुम आगें कहौं बनाई। कौन कहावति सुंदरताई ॥८१॥

सुंदर बदन होहिं बहु नारी। बिरलि पीय मन रंजन हारी ॥
सुंदर सो जु मनोहर होई। बिन गुन पिय मन रहै न कोई ॥८२॥

( दोहा )

हाउ भाउ करि चातुरी, चितवनि अरु मुसक्यानि।
अलप मानु करि मानिनी, करहिं पियहिं बस आनि ॥८३॥

पुहकर दीरघ नैन बहु, अंजनु देहि बनाइ।
पति जिहि के रस बस भयो, चितवनि मोल बिकाइ ॥८४॥

( चौपही )

विनु गुन धनुष वान नहिं लागै[1]। विनु गुन रूप कौन अनुरागै ॥
रंभा वचन सुनत अनुरागी। सषिन संग गुन सीषनि लागी ॥८७॥
काव्य संस्कृत प्राकृत जानौ। अरु वहु रूपक छंद वषानौ ॥
सीषति नागरि चतुर सुजाना। जो कछु भेद संगीत वषाना ॥८८॥
वीना ताल मृदंग वजावहिं। विविध भाँति वहु सुरनि[2] सुनावहिं ॥
गान तान सुर ग्राम विचारे। सीषति नागरि विविध[3] अपारे ॥८९॥
करत सुगंध साज[4] छवि बाढै। चोवा मेद[5] पुहुप पस काढै ॥
पान चूरि वीरी कर करै। ता मधि चित्र विविध विधि धरै ॥९०॥
पुहुप हार नाना विधि गूँदै। मंदिर सजै मधुप महि मूँदै ॥९१॥

( दोहा )

सूप करन मंडल सिषे, अरु, गुन सकल अपार।
पहुकर सुष वरनि न सकै, होत ग्रंथ विस्तार ॥९२॥

( चौपही )

कोकिल कंठ कहै कोकिला। सुनि सुंदरि ससि नव सत कला ॥
कलि मह वचन गरुव विधि कीनौ। विष अमृत वचननि मह दीनौ ॥९३॥
निर्गुन सर्गुन वचन तै जान्यौ। निगम अगम वचननि पहिचानौ[6] ॥
तीरथ जग्य वचन करि मान्यौ। स्मृति पुरान वचन पुनि जान्यौ ॥९४॥
अस्तुत वचन देव वसि होई। पिय प्यारी त्रिय वचनन जोई ॥[7]
वचनन सत्रुहि मित्रहि मडै। बुरे वचन सुत तातहि छडै ॥९५॥
वसी करन रसना रसवानी। और सजल सब कहहिं कहानी ॥
मधुर वचन मधुरे सुर बोलहिं। मृदु विहसत घूंघट पट षोलहिं ॥९६॥
पिय मन भावन वचन सुनावहु। अनभावन रसना जिन लावहु ॥
मुष ते वचन मधुर सुनि सोई। विनु वस करन आपु वस होई ॥९७॥

( दोहा )

पहुकर मृदु मुसक्यानि मिलि, और मधुर मुष बोल।
वह मोहन यह वसिकरन, कलि मँह यहै अमोल ॥९८॥

---

१—व. विनु गुन वान धनुक नहिं लागै २—व. बाँसुरी ३—व. म्रम
४—व. सरस ५—अ माद ६—व. यह वचन परिमाना। ७—व. दोई।

रसहू तें रोस भारी नारी सो परम प्यारी ।
कलह कठोर काम अंगनि के दाहनौ ॥
लीजिये उराहू संग भीजिये अमृत रस ।
कीजिये जो प्रीति तौ न दीजिये उराहनौ ॥१२२॥

औगुन हैं गुन जाके रोस रिस कोटि ताके ।
कियौ है विधाता करतूति काम कल में ॥
दीपक की ज्वाल को पतंगई पै पावैं भेद ।
मधुकर जानैं कैसे कंटक कमल में ॥
मधु तें मधुर नारी गुन्नी पिय प्रीति प्यारी ।
मुहुरत प्रगट पऊष हालाहल में ॥
प्रीतम पियारी देहि मेरे सिर तर वारि ।
होहुँ सिर पाइ तर वारि देहुँ पल में[1] ॥१२३॥

( दोहा )

मानस में पुनि मानिनी, रोस न आनौ चित्त ।
सहज मानु करि मानिबो, पिय मन मोहन मित्त ॥१२४॥

( सोरठा )

चातुरता को अंग । आकर्षन मनमथ्य को ।
मान जहाँ रस रंग[2] । रोस तहाँ रस[3] भंग है ॥१२५॥

( चौपही )

इहि विधि सखी सिखावैं बातैं । मोहन बस्य करन की घातैं ॥
करहि केलि कल कला कलोलैं । वचन चातुरी विधि विधि बोलैं ॥१२६॥
करहिं मनोरथ मनमथ माती । उक्ति उठावें अन बन भाँती ॥
आँनद मगन रहैं बसु जामा । रूप सुधा रस विहँसे[4] स्यामा ॥१२७॥
आनन इंदु कमल दल नैनी । हंस गमनि अरु कोकिल बैनी ॥
तनु अंगी डोलैं अलबेली । लहलहाइ जनु जोवन बेली ॥१२८॥
सकल कला गुन चातुरताई । मानो इंद्र सभा[5] तें आई ॥
करहिं विलास हास हिरनाछी । चितचित दरसहिं दसन दुति आछी ॥१२९॥

( दोहा )

पहुकर जौ वरनतु करै, कथा चलत रह जाइ।
बात और निरबाहनौ, तातैं कछु न बसाइ ॥१३०॥

अथ राजा विजैपाल दच्छिन दिसा विजैकरि विजै नगर वसाइवे को आग्या देत भये तस्य वर्नन ॥

( छप्पय )

एक समै भूपाल बिजै मंदिर महं बिठ्यौ[1]।
तिमग तेज तन तपै पाकसासन सम दिठ्यौ ॥
सकल पुहंमि पति सभा मध्यि मकरध्वज सोहै।
तुला भानु जनु इंदु संग ताराइन सोहै ॥
उदित प्रताप पहुँकर सुकवि बहुत सूर सेवा करहिं।
अरि सहि सहय निपुर लुटहिं ? सु सरन गहै सो उब्बरहिं ॥१२१॥

( छंद प्रयंगम् )

कनक दंड सुभ[2] छत्र विराजत सीस पर।
मनहु प्रदीप प्रताप सदा रवि चक्रतर ॥
पारस भूप सिंहासन मध्य विराजहिं।
देव सभा जनु सहित सची पति लाजहिं[3] ॥१३२॥

देस[4] देस के पति भूप दुवारिहिं आवहिं।
मानहिं जीवन सफल जबै सिर नावहिं ॥
एक परे परदारहिं भेंट पठावहीं।
आइसु जोवहिं वार जुहार न पावहीं ॥१३३॥

( चौपई )

सभा, मध्य बैठ्यौ भुवपालू[5]। कंप्यौ सहस सीस पातालू ॥
इक दिसि दुरद परे सिंगारे। महा काय घूमहि मत वारे ॥१३४॥

---

१—अ. वयठ्यो। २—अ. मित। ३—अ. राजइ। ४—यह छंद ब. प्रति मे नहीं दिया गया है। ५—अ. नरपालू।

इक दिसि तेज तास हय फेरहिं । चपल नैन प्रमदा जनु हेरहिं ॥
इक दिसि सारथि रथनि समारे । इक दिसि पेलहिं मल्ल अपारे ॥१३५॥
इक दिग मृग इक दिस मृग नैनी । रहहिं हजार दासि सुष दैनी ॥
विभौ देषि आपु सुष पायौ । आइ सुमति सागर सिर नायौ ॥१३६॥
सुभ सुषदाइक वचन सुनायौ । पत्र जुध्य विजई कर आयौ ॥
और भेंट वहु भाँत पठाई । विविधि रिसाल राज कहँ आई ॥१३७॥
दच्छिन दिसा जीत सब लीनी । आन फेरि अपनें वस कीनी ॥
पहुंमि पाल सब सेवक कीनें । अभय दान सरनागत दीनें ॥१३८॥
सुनत राज सुषदायक वैना । अमल कमल सम विहसे नैना ॥
अति आनंदकंद सुनि वाता । प्रफुलित वृद्धमान भौ गाता ॥१३९॥
तिहि छिन पंच सब्द मिलि वाजे । मनहु मेघ भरि भादौ गाजे ॥
साठि सहस बाजहिं निस्साना । वहुत सोर सुनियें नहिं काना ॥१४०॥

( दोहा )

विजैपाल मंदिर विजय विजय, वचन सुनि कान ।
वदन विराजत विजय श्री, बाजै विजय निसान ॥१४१॥
बोलि सुमति सागर लियौ, आइस दिय भुवपाल ।
दिसि दच्छिन हौ देषिहौं, विजै करौं तिहिकाल ॥१४२॥
सीस नाइ बोले वचन, मंत्री मत गंभीर ।
लंकेस्वर पुनि थर हरे,[1] वसै उदधि मह तीर[2] ॥१४३॥
जौ कछु काजु[3] करतव्य है, सो कीजियें नरेस ।
जग्यँ अनंतर देखिहौ, पूरन दच्छिन देस ॥१४४॥
सुता स्वयंवर सौज मैं, सिद्धि करे सब काज ।
दिसि दिसि नृपति[4] निमंत्रिय, ते आये इहि साज ॥१४५॥

( चौपही )

कहै नृसंक सुनौ नर नाहा । जीवन अलप होत जग साहा ॥
सदा पहुमि पति रहे न कोई । केवल नाम अमर कलि होई ॥१४६॥
आसमुद्र धरनी तुम लीनी । करि वर वल अपनें वस कीनी ॥
दच्छिन दिस इक नगर वसावहु । विजय नगर तिहि नाम धरावहु[5] ॥१४७॥

---

१—व. थर रहै । २—अ. जु वसहि उदधि उहि तीर । ३—व. काव्य । ४—व. मन्त्रिन । ५—व. ठीक ठौर ठहराइ जु आवहु ।

अति सुंदर रमनीय[1] वनावहु । चाहि जाहि सुरपुर[2] लजियावहु[3] ॥
जब लगि चंद सूर धर[4] पानी । तब लगि चलैं कवित्त कहानी ॥१४८॥
विजैपाल राजा इमु भयौ । दच्छिन देस जीत सब लयौ ॥
सूरज वंस सूर भयौ सोई । इहि विधि बात कहै सब कोई ॥१४९॥

( दोहा )

सुनि राजा सुपु पाइ अति[5], मान्यौ वचन प्रवानि ॥
बुधि विचित्र कहँ बोलियौ, जान सकल गुन पानि ॥१५०॥
करि प्रसाद दारिद्र हरि, आइस दिय भूपाल ॥
नगर रचौ दिसि दच्छिनहिं, बुधि विधि वेगि उताल ॥१५१॥
जबहि स्वयंवर सीध रे, हौं आऊँ उहि देस ॥
नगर देषि जौ रीझिहौं, करौं सहस ग्रामेस ॥१५२॥
चित्रकार सुत धार[6] सब, अरु सुत हार सुनार ॥
बुधि विचित्र के साथ दिए, गुनियनि गुनी अपार ॥१५३॥
तोस कोट भंडार दिय, चारु चोप चित चाइ ॥
सुमति अनुज सँग पाठयौ, करि प्रधान पहिराइ ॥१५४॥
करि प्रनाम सब जन चले, पहुचे दच्छिन देस ॥
विजै नगर सज्जन लगे, आयसु मान नरेस ॥१५५॥

( छंद प्रयंगम् )

इत नृप आयसु मान विजैपुर सज्जियौ ॥
जा पुर कौ चित चाहि सुरप्पत लज्जियौ ॥
इत, द्रग चित्र अनूपम पेप तरज्जियौ ॥
कीनौ सूर पयान सुठाम कवज्जियौ ॥१५६॥

इति रसरतने काव्ये पुहकर विरचितेयं विजयपाल पटे नगर
बसावनो नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

( दोहा )

जब विचित्र फिरि घर चल्यौ सूरहि चित्र दिपाइ ॥
दिन दिन प्रति अभलापु बड[7], छिन भर रह्यौ न जाइ ॥१५७॥
विरह विकल आतुर भयौ, तजी कानि[8] अरु लाज ॥
मंत्री वेगि बुलाइयौ, जु करैं राज के काज ॥१५८॥

---

१—ब. रव नीर । २—ब. सुरपति । ३—अ. सरि लावहु । ४—अ. सुर पर । ५—ब. परमानि मन । ६—अ. दार । ७—ब. बढ़, । ८—ब. मान ।

## अथ सूर सैन स्वयंबर सुनि कै चले तस्य वर्णन

(चौपही)

सौमेसुर मंत्री सुग्याँना[1]। गुन गंभीर नासु सब जाना[2] ॥
सूर कुँवर सोइ बोलि पठायौ। आइस सुनत तत[3] छन आयौ ॥१५६॥
कहै सूर मंत्री सौं बाता। चंपावति नगरी विष्याता ॥
बिजैपाल राजा तहँ आही। कहहि बहुत पृथवी पति ताही ॥१६०॥
तिहिं घर सुता स्वयंबर होई। देषन जोग कहै सब कोई ॥
मुहिं अग्या दल सहित दिवावहु। तुम राजा सौं कहि समुझावहु ॥१६१॥
अरु तुम आगें कहाँ दुराऊँ। रोग मूरि तिहि ठावहिं पाऊँ ॥
तुम सुबुद्धि सब भेदहिं जानौ। थोरौ कह्यौ बहुत कै मानौ ॥१६२॥

(दोहा)

गुन गंभीर यह वचन सुन समुझि सकल बिरततु[4] ॥
अति उताल तिहि ठाँ गयौ, जहँ बैरागर कंतु ॥१६३॥
सीस नाइ बोल्यौ बचन, मत्री मति अधिकार ॥
सूर बिथा बिधना हरी, जानौ नव अवतार[5] ॥१६४॥
बैद बिचित्र जो आइयौ, तिहि कर दीनौ चित्र ॥
सो कुमार लोचन कमल, परष्यौ सोहन सित्र ॥१६५॥
तबहिं सुरति आई सकल, पेष्यौ चित्र अनूप ।
नष सिष निरष्यौ नैन भरि, मिल्यौ स्वप्न कौ रूप ॥१६६॥

(चौपही)

बिजैपाल चंपावति राजा। तिहि घर सुता स्वयंबर साजा ॥
जो तनया गुन रूपनि सोहै। श्रुतानुराग विश्व मन मोहै ॥१६७॥
स्वप्न सुभाइ सूर मन लीनौ। उभै बरष बिरहानल दीनौ ॥
सोई कन्या पितु सदन कुमारी। ब्याह जोग अब सुनियतु बारी ॥१६८॥
दिसि दिसि भूप स्वयंबर आँवहि। पानिग्रहन कारन सतु लावहिं ॥
वाकी प्रीत कुँवर अनुराग्यौ। सब तजि जाइ उहाँ मनु लाग्यौ ॥१६९॥
सूर बिजै कौ आइसु कीजै। अरु दलु अषिल संग करि दीजै ॥
जाहि बिवाह ताहि लै आवहिं। होहिं निरोग भोग सुष पावहिं ॥१७०॥

---

१—ब. सुरग्याना। २—ब. नाम गुन गाना। ३—ब. मान सुनत।
४—ब. बिरदतु। ५—अ. जनु हुव नव अवतार।

( दोहा )

राजन आयस दीजिये, और विवो नहिं संतु ।
मंत्रि वचन सुनि बोलियौ, वैरागर कौ कंतु ॥१७१॥
स्रवन सुनी पिष्षी नहीं, चंपावति है दूरि ।
तहँ क्यों पठऊँ कुँवर कँह, प्रान सजीवन मूरि ॥१७२॥
पलक वोट पल कौं भये, ललकि प्रान अकुलाइ ।
क्यौ वरसनि विछुरनि सहौं, निमष वरष वरजाइ ॥१७३॥
गुन गभीर इहि उच्चरे, सुनियें राज धिराज ।
हम जो कहैं यह वारता, कुँवर हेत के काज ॥१७४॥
विरहा ज्वर के जतन कौं, और न वोषद मूरि ।
अवसिमेव कीजिय विदा, जदिप है अति दूरि ॥१७५॥
सौमेसुर इम उच्चरे, सुनि मंत्री गंभीर ।
तोहि संग पठाइहौं, जो रहै अहो निसि तीर ॥१७६॥
तूं गंभीर अति धीर मति, चलहिं कुँवर के साथ ।
सावधान निसि दिन रहै, प्रान देत तुहिं हाथ ॥१७७॥
जाइ सकल दल साज करि, और अषिल भंडार ।
पर पहुमी परवेस है, कीजौ कीर्ति अपार ॥१७८॥
सुनि आइस परवानि सिर, वाढ्यौ हदै हुलास ।
सामग्री साजी करन, गयौ कुँवर के पास ॥१७९॥
सूर सकल वोले सुभट, तिनि कौं आइस दीन ।
गय हय हाटक हीर पट, पेषि पेषि सँग लीन ॥१८०॥
कनक जुगनि दिन मंडियौ, तदिन समय सुभ जोग ।
तिथि सुवार नक्षत्र मिलि, करन पँच संजोग[1] ॥१८१॥
असित पच्छि तिथि पंचमी, पुष्य नषत गुरुवार ।
पुन्य मास वैसाष मे, कीनों विजय विचार ॥१८२॥

( चौपही )

प्रथम कुवर जननी पँह आयौ । आवत सीस चरन लै लायौ ॥
विछुरन ताप मात कुम्हलानी । भीजे वसन नैन के पानी ॥१८३॥

---

१—व. प्रति मे यह दोहा नहीं है ।

कंठ लाय गहवर हिय[1] रोवै। जनु सुत वदन अच्छ जल धोवै॥
वच्छ विछोह धेनु जिमि रंभै। व्याकुल अस्रु पात नहिं थंभै॥१८४॥
राम चलत कौसिल्या जैसे। घुमि घुमि धरनि परतियन ऐसे॥
अँषियाँ रँहट कुंभ जिमि चाही। भरि भरि आवैं ढरि ढरि जोही॥१८५॥
सावन घटा नैन वरषावै। गद गद गिरा वचन नहि आवै॥
विनवहिं सषी सुनहु नृपरानी। कहहु मधुर धुनि मंगल वानी॥१८६॥
जुगतु न होई[2] रुदन इहि काला। आवहिं कुँवर विवाहि उताला।
यह दुष भूल सकल तव जैहे। कालहिं पुत्र वधू वर गेहे॥१८७॥
यह सुनि मंगल गान गवायो। दधि रोचन भरि थार सँगायो॥
नाल केलि फल रूपै भरे। दरसनीक[3] मुकताहल धरे॥१८८॥
वेद विदुष दुज तहाँ वुलाये। कलस थापि गनपति पुजवाये॥
करि प्रनाम माता सौं आये। तिलक सहित दुज दरसन पाये॥१८९॥
दै आसिका जननि इमि कहै। जगरच्छक तुव रच्छक रहै॥
कातर वयन दीन इम भाषै। चहु दिसि चक्रपानि तुहि राषै॥१९०॥
मारग माँझ मुकुंद सहाई। सव जो सहाय रहै सुषदाई॥
वहुर वयन व्याकुल कल वोलै। वात वस्य वारिज जिमि डोलै॥१९१॥

( दोहा )

इहि विधि कै कीनौ विदा, दै असीस वहु भाइ।
पलक वोट सुत होत ही, धरनि परी मुरझाइ॥१९२॥
पुहुंकर विछुरन कठिन है, जग जनि विछुरहिं कोइ।
भावतही विछुरन भयो, मिलन दुहेलौ होइ॥१९३॥
मंगलीक वाचा पढ़ैं, वहुत विप्रगन साथ[4]।
गुन गभीर तँह लै चलै, जहँ वैरागर नाथ॥१९४॥
करि प्रनाम परसे चरन, भुवपति अँग्या पाइ।
गज चढ़ि मारग पगु धस्यौ, चले निसान वजाइ॥१९५॥

( छंद भुजग प्रयात )

तहाँ सूर पयान निस्सान वाजै। मनौ मेघ भादौ महा नाद गाजै॥
वजै दुंदुभी ढोल भेरी मृदंगा। सुनै सोर पाताल मध्ये भुजंगा॥१९६॥

१—व. वर हिय गह। २—व. नहिन जो। ३—अ. दरसनीय। ४—अ. प्रति में दोहे की पंक्तियाँ परस्पर परिवर्तित हैं।

बजै बाँसुरी संष सहनाइ तूरं । भये सव्द दिग्पाल के कर्न पूरं ॥
भई पंच हज्जार दुंदुभी धुकारं । उठै नीर पाताल चलि बारपारं ॥१९७॥
सुनै सोर इंदौर तैं इंद्र लज्यौ । जहाँ सैन चतुरंग गंभीर सज्यौ ॥
चले मत्त मैंमत्त घूमंत सत्ता । मनौ बद्दला स्याम माथे चलंता ॥१९८॥
बनी बग्गरी रूप राजंत दंता । मनौ बग्ग आषाढ पाँतैं उडंता ॥
लसै पीत लालै सुढालै ढलक्कैं । मनौ चंचला चौंध छाया झलक्कैं ॥१९९॥
गिरी श्रृंग के कुंभ सिंदूर मंडे । घटा अग्र पाँतैं मनौ मार्तंडे ॥
बहहिं जोर छंछाल तैं मद नीरं । लगे गंड गुंजार तैं भौंर भीरं ॥२००॥
किये कंडुली कुंड सुंडाहलीयं । लसै चौर मरि जो श्रृंगार कीयं ॥
लसै गात गंभीर जंजीर जेरैं । मनौ मेघ छूटे प्रलै काल केरैं ॥२०१॥
चलत्तें[1] बधी पाँइ बेरी षरक्कैं । बजै घूँघुरू घोर घंटा ठनंक्कैं ॥
बनी किंकिनी लंक लागी बनंक्कैं । मनौ पावसी रैनि झिल्ली झनक्कैं॥२०२॥
पलानैं तहाँ तेज ताजी तुरंगा । परे उच्च उच्छाल मानौ कुरंगा ॥
कयाहे सुलालं दुरंगा सुरंगा । षरे स्वेत पीतं तथा सावरंगा ॥२०३॥
इराकी अरब्बी तुरक्की दवच्छी[2]। समोला असोला लिये मोल लच्छी॥
बजै धाव[3] धावैं लसै पूंछ अच्छी । मनो उड्डहीं बाइ बैठे[4] सुपच्छी ॥२०४॥
उभै कर्न ऊचे[5] महा उच्च ग्रीवा । मनौ उच्च उच्चैश्रवा सोभ सीवां ॥
भयौ मान हीना न छूटे न भग्गे । लग्यौ आइ पायौ न पायौ न लग्गे॥२०५॥
जरे जीन मानिक्क सोहंत मोती । लगे संग डोलैं मनौ इंद्र गोती ॥
बिसालच्छ लोलच्छ सोहैं अमोलं । परे पीह नैनानि सौं होड बोलं ॥२०६॥
स्वयं रूप अरु तेज देषे जु गावै । अहिबेलि ज्यौं लोह लग्गाम चावैं॥
कनै उट्टके वज्र रेसम्म फुंदा[6] । नटाबंत विद्या धरा बुंद बुंदा ॥२०७॥
चढै सूर बंसी महा सूरबीरं । उलंघे मनौ चंपि बाराधि नीरं ॥
सबै षड्ग धारी चितै चित्त मोहे । मनो चित्त औरेपि पेषंत मोहे ॥२०८॥

(दोहा)

इहि बिधु सुदिन पयान किय, दुज वर पढ़हिं असीस ।
चंपावति को चढि चल्यौ, बैरागर को ईस ॥२०९॥

इति रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं विजयपाल षंडे
सूरसेन पयान वर्णनो नाम चतुर्थो अध्यायः ॥ ४ ॥

---

१—यह छन्द अ प्रति मे नहीं दिया हुआ है । २—न. अरब्बी रूमी तुरकी यकच्छी । ३—अ. जबै धाय । ४—अ. देगे । ५—न. ऊंचे । ६—अ. करै पट के जम रेसम फुंद ।

( छंद पद्धरी )

चढि चल्यौ सुदिन बैरागसेन । सोभायमान मानौं सुरेन ॥
राजत मुकुट सिर जटित हीर । जनु गान करें बंदीन भीर ॥२१०॥
सित असित अरुन लोचन विसाल । मोहंत कंठ मुक्तीय माल ॥
तहँ लसत श्रवन कुंडल विलोल । झलकंति आइ आभा कपोल ॥२११॥
मृगमद सुमढि तहँ तिलक भाल । वलिहार कर्राहि सनु नगरबाल॥
अधरानि राग तंम्मोल भीज । जनु कमल मध्य दाडिम्म बीज ॥२१२॥
मुसक्याति पिष्षि मृदु मंदु हास । चंचला चमकि जनु इंद्र पास ॥
आरूढ दंत छवि परम पूर । घन सिषिरि मनहुँ उद्योत सूर[1] ॥२१३॥
अनगनित सथ्थ अनुचर अनूप । सुर संग मनौं सुरलोक भूप ॥
दुति कनक दंड तहँ विजन वाल । जनु कलप वृच्छ[2] कर आलवाल॥२१४॥
दल अषिल संग दलपत्ति येम । भारथ्थ सैनि पारथ्थ जेम ॥
रथ अयुत इक्क[3] युग अयुत नाग । हय इक्क लष्ष मारुत्त[4] लाग॥२१५॥
विवि लच्छि लीन धानुक्य संग । बानी अचूक मानौं अनंग ॥
तह पंच सहस्र बाजहिं निसान । अति बहुत सोर सुनियें न कान ॥२१६॥
कवि कहै केमि[5] कविता बनाइ । नहि नैंन जीभ जो बरनि जाइ ॥२१७॥

( छप्पय )

सेस सीस लचि[6] भार डिढय टाढार करक्कियं ।
विकसि कमल सकुचंत कोक कुल बधु चपू धरक्किय[7] ॥
जँह थल तँह जल प्रगटि भूरि थल पूरि जलधि तँह ।
कमठ कसकि धस मसकि धसकि पब्बय पताल कहँ ॥
पायान सूर पुहुकर सुकवि संक भानु[8] हय बागलिय ।
हर हसित भूत नच्चहि सुगम सुजुग्गनि पान सो पंत्र किय ॥२१८॥

( दोहा )

सूर पयान प्रभातहीं, कीनौ सूर चलान ।
सुरसरि तट इक जोजनहिं, कीनौ जाइ मिलान ॥२१९॥

---

१—ब. उद्वेग पूर २—ब. कै कमल वृच्छ । ३—अ. रथ लक्ष्व अयुत —
४—ब. भारच्च । ५—ब, कोक । ६—अ. चलि । ७—ब. मे यह पक्ति इस प्रकार है—कमठ द्वार लग्गिहि किवार मेदिनि सो भरक्किय । ८—अ. बान ।

पावन परस पवित्र अति, विमल वारि अवहारि।
हर सिरसाला मालती, परसे चरन मुरारि ॥२२०॥

( छंद तोटक )

चरनोदिक चारु तिविक्रमयं। पुनि मध्य कमंडल मध्य ठयं।
धसि धार तहाँ सिव सीस बसी। घन से जनु जोति नक्षत्र लसी ॥२२१॥
जननी जग जन्हु सुनंदिनि जू। सनकादिक नारद वंदिनि जू।
तिहुँ लोकहिं तारन तीरथ जू। सुर लोक सुभाग भगीरथ जू ॥२२२॥
दरसैं सत जन्मनि पाप हरे। परसैं पद पद्म पवित्र करे।
पद पद्म पराग विलोल नर्न। रस रंगित भृंग रिपीन गनं ॥२२३॥
अखिया गुन निर्गुन जोहन की। सिढियाँ सुर लोक अगोहन की।
नर मज्जन जो तुवँ नीर करे। सचुपाइ सदा जल सीस धरे ॥२२४॥

( सवैया )

पेख्यौ से आचिर्ज[1] एकु संमतु करै जु नित्त[2] ?
चाहे तनु धोयौ हुस धूरि लपटावती।
सुनो भय हारी भारी भीतनि अभय कारी,
भुजग लगाइ कंठ काहे डरपावती ॥
पुहुकर कहे सुनौ भावावती[3] भागीरथी,
येती कृपा कीनी करपत्र ह्वो धरावती।
भगति कौ हेतु ऐसो वरन्यौ न जातु सोपे,
भीजे उत्संग गंग संग लगि ग्रावती ॥२२५॥

( दोहा )

करि प्रनाम दरसन परसि, वेद सुविधि अस्नान।
देव चरन जप हौम जुत, दीनै षोडस दान ॥२२६॥
पट कुट विमल वितान तनि, मंदाकिनि के तीर।
सब्बु तजि मारग श्रमु लग्यौ, आतुर असन[4] सरीर ॥२२७॥
पुनि रवि प्रात पयान किय, राज पुत्र बहु संग।
असपति नरपति गजपती, दलपति दल चतुरंग ॥२२८॥

---

१—अ. अचम्भु। २—ब. में यह शब्द छूटा है। ३—ब. भवनी।
४—अ. असन।

( चौपही )

दल चतुरंग संग अनुभंगा। वरन वरन सोभित वहु रंगा ॥
पटकुट अरुन अवनि गह तूले। जनु पलास रितुपति रितु फूले ॥२२६॥
दिन प्रति करै प्रभात पयाना। जुग जोजन पर होहिं मिलाना ॥
पेषी नैन जो सुनी कहानी। अगिलिहि कीच पाछलिहि पानी[1] ॥२३०॥
गिरिवर गंजि विपिनि वहु गाहे। सरवर सरित अथाहनि थाहे ॥
इहि विधि क्रम क्रम काल अतीते। एक मास कछु ऊपर वीते ॥२३१॥
चलत चलत वाहत वहु देसा। गढ[2] चन्द्रागिरि[3] कियौ प्रवेसा ॥
वहे छाड़ि जव कियौ पयाना। मान सरोवर भयौ मिलाना ॥२३२॥

( दोहा )

जेठ मास सित पच्छिमी, तिथि दसमी दस जोग।
सूर सरोवर तीर पर, भयौ उभै संजोग[4] ॥२३३॥
एक मास मारग चले, सह्यौ सीत अरु घाम।
सरवर सोहनु पेषि कै, भयौ सर्वहि विश्राम ॥२३४॥

( छप्पय )

जेठ मास सिति पच्छ जु तिथ दसमी दिन मानहि।
त्रिती पात गर करन जोग आनंद वषानहिं ॥
नखत हस्त वुधवार चंद्र कन्या वृष भानँहि[5]।
कहत ताहि दसहरा हरत दस पाप पुरानहि[6] ॥
सुर सरीय मानि अस्नान करि वेद भेद वहु विधि करिय।
जिय जानि सूर सरवर सुभग सुकरि मिलान तहिन रहिय ॥२३५॥

( छंद गुनदीपक )

तहँ मानसरोवर सोहनं। सुर नाग मनुज नर मोहनं ॥
सजि पारि चारिहु ओरई। मन मुक्ति मरकत जोरई ॥२३६॥
रँग अरुन वरनहि मोहई। सित नील पीतति सोहई ॥
तिहि तीर चहुदिसि काननं। चित चाह किय चतुराननं ॥२३७॥

---

१—अ. पछिलिहिं कीच आगलिहि पानी। २—व. गढ़। ३—व. चंद्रागिन। ४—अ. प्रति मे यह पक्ति इस प्रकार है—सूर सत्र रथी रथह भयौ उदै सयोग। ५—व. मे यह पक्ति नहीं है। ६—अ. मे इसके स्थान पर यह पंक्ति है—परौ वार शुभ चद जिसम तरस ग्रथ वषानहिं।

द्रुम साल ताल तमालनं । तहँ करत षग वन पालनं ॥
जल मगन मनकुस ? पत्तनं । जिहिं मध्यि मधुकुर छत्तनं ॥२३८॥
कलगुंज गुंजत राजहीं । जनु सान गंध्रप गाजहीं[1] ॥
तिहिं मध्यि मंदिर राजहीं । सुर लोक भुव जिमि छाजहीं ॥२३९॥
तहं मंडि कलस[2] कुतूहलं । ससि किरिन ते अति उज्जलं ॥
उत्तंग जोति विराजही । रवि रेष पेषत लाजही ॥२४०॥
कवि कहत वरनन संकुचै । किसि जीभ लोचन मै सुचै ॥
जिहिं भाँति नैननि भावही । तिहि क्रम न वरनन आवही ॥२४ ॥

( दोहा )

राज कुँवर मंदिर रच्यौ, मिरगावति के काज ।
सो लोचन गोचर कियौ, सूर कथा के साज ॥२४२॥
और कटक चहु ओर परि, हय गय सैनि अपार ।
सेज रची मधि मंदिरहि, सुषहित राजकुमार ॥२४३॥
प्रात नृजल एकादसी, पुहुकर परम पुनीत ।
देस काल सब समुझि करि, रह्यौ तहाँ अरि जीत ॥२४४॥

( श्लोक )

अस्ति जदपि सर्वत्र नीर नीरज मंडितं ।
रमते न मरालस्य मानसं विना[3] ॥२४५॥

( चौपही )

जब एकादस निर्जल होई । उहि सरवर आवहिं सब कोई ॥
नर नारी गावहिं सब घाटा । अमर लोग आवहिं अघ वाटा ॥२४६॥
सुर नर मुनि गंध्रप सब आवहिं । चर्म दिष्टि नर दरस न पावहिं ॥
साठि घरी अरु आठौ जामा । सरवर छिन न होहि विश्रामा ॥२४७॥

इति श्री पौहकर विरच्चितेयं विजयपाल खंडे मानसरोवर आवास वर्ननो नाम पंचमो अध्यायः

( इति विजयपाल खंड )

---

१—अ. गावहीं । २—अ. सकल । ३—अ. मे यह श्लोक नहीं है, लगता है अलग से जोडा गया है ।

## अप्सरा खंड

### ( चौपही )

अह्म महूरति रिष सब आये[1] । अरु चढि देव विवाँननि धाये ॥
मज्जन कियौ वहुरि नर नारी । अति सरूप देषत रुचिकारी ॥ १ ॥
इहि विधि वासर अवधि ढरानी[2] । दिनकर दुरे निसा नियरानी ॥
सकुचे कमल कियौ अलि वासा । तरवर पच्छिनि लियौ निवासा ॥ २ ॥
उदित इंदु कुमुदिनि हरषानी । कामिनि काम कला अधिकानी ॥
सति वंत कुँवर तदिन व्रत धारो । रुचिर सेज पौढे उजियारी ॥ ३ ॥
दुतिय जाम निवटत निसि धाई । अच्छरि मान सरोवर आई ॥
करि मज्जन कुंमकुम तन साजे । पहिर चीर अंजनु दृग साजे ॥ ४ ॥
भूषन विविध विभूषित[3] भासिनि । अवनि आइ दमकी जनु दामिनि ॥
देषत रुचिर रैनि उजियारी । मनमथ मोद मिली सुर नारी ॥ ५ ॥
रंभा कहै सुनौ उरवसी । सरवर छवि देषौ वर वसी ॥
माथे चंद पगनि परछाहीं । यह सोभा अमरावति नाहीं ॥ ६ ॥
तैसिय उदै इंदु उजियारी । तैसिय वन सोभा रुचिकारी ॥
तैसेइ मान सरोवर राजै । तिहि पुर मनौ एक छवि छाजै ॥ ७ ॥
निर्मल नील गगन मनु मोहै । इतहि नील काननु अति सोहै ॥
सरवर नील नील मनि झाई । तरवर तीर विंव सुष दाई ॥ ८ ॥
उडुगन उदित कहूँ सुषकारी । जनु विधवा ज्यौं नारि सुधारी ॥
नूतन पत्र पत्रावलि जानौ । ओदनु आनि परोसौ मानौ ॥ ९ ॥
तैसेई सेत फूल वन फूले । मालति वेलि कुंद अति भूले ॥
काम फौज अवनी पर साजी । हरषिति हँसति मिली बनराजी[4] ॥१०॥

---

१—किसी भी प्रति मे यहाँसे अप्सरा खड आरंभ होने की सूचना नहीं मिलती । ब. प्रति में यहाँ से छद सख्या फिर १ संख्या से शुरू होती है । इसी मे अनुमान होता है कि यहाँसे कोई नया खड होगा । ब. प्रति में किसी ने यहाँसे अप्सरा खंड शुरू होता है, ऐसा सकेत पेंसिल से लिखा है ।
२—अ. दुरानी । ३—ब. विभूषन । ४—ब. बाजी ।

(दोहा)

तैसिय सरवर कुमुदिनी, फूल रही इहि[1] भाइ।
मनौ काच को थार मै, मुकता[2] धरे वनाइ ॥११॥

(सवैया)

सोई सोभा गगन अवनि पुनि सोई सोभा
तैसिये पताल सोभा एक उनहारि है।
पुहुकर कहै कछू बरनी न जाति मो पै
मेरे मन आई सोई कही मैं विचारि है।
मान सर तीर तरु फूले हैं अनेक फूल
ताकौं प्रतिबिंब रहौ भुजा सी पसारि है
नागलोक माझ अध ऊरध अमर लोक
तीनो लोक मानौ तीनि नैन त्रिपुरारि है ॥१२॥

(चौपही)

रंभा वचन मान सब चली। वन विहार खेलहिं मिलि अली॥
कमल तोर कर कमलनि लीनै। ते कर कमल षिलौना कीनै ॥१३॥
भृंग मत्त गुंजन मधि राजैं। वालनि हाथ झुनझुना वाजैं॥
कहहिं चलौ मंदिर महँ जाहीं। देषहि कहा चरित तिहि माही ॥१४॥
सकल सषी मंदिर महँ आई। निरषै नैन अचिरजु अधिकाई॥
देषहिं सेज अनूपम डासी[3]। विविधि वसन उज्जल अति वासी[4] ॥१५॥
तिहि पर रूपप रासि इक सोहै[5]। जो त्रिय चित्त रूप संमोहै[6]॥
मोही रूप सकल सहचारी। मनमथ वान लगे तन भारी ॥१६॥
मन तै मदन अग्नि उपजाई। सो फिर मनही माझ समाई॥
तब सब मिलि कर करहिं विचारा। कहाह कौन मन मोहन हारा ॥१७॥
जौ इहि विधि सोवत चित्त चोरै। जागत अवसि त्रिया मन भोरै ॥१८॥

(दोहा)

कै रवि इंद कै चंद है, कै कुवेर[7] कै काम।
कै कुमार[8] कै नृपति नल, पुहुकर दग अभिराम ॥१९॥

---

१—व. फुल। २—अ. मुत्ती। ३—व. सुगंधन वासी। ४—अ. डासी। ५—अ. सोवै। ६—अ. समोवै। ७—व. कुमार। ८—व. कुवेर।

( चौपही )

जब निश्चै चित्त महँ यह[1] आई। मानव देव रूप अधिकाई॥
कहहि सषी सब सुनौ सहेली। अलि मन कही तजौ यह बेली॥२०॥
जो मानव तन चित्त चलावहु। तौ अमरावति ठाँव न पावहु॥
जानौं कलपलता की बातैं। गुन अरु रूप कहाँ घटि कातैं॥२१॥
जोबन रूप इंदु उजियारी। मन वच क्रम सुरपतिहि पियारी॥
नैन कोर नर तन कर हेरी। नैक न कानि करी तिहि केरी॥२२॥
पूरब प्रीत न चित्त विचारी। दै सराप भुव लोकहिं डारी॥
भरता कह्यौ होहि नर तेरौ। सुप अरु भोग अनुग्रह मेरौ॥२३॥

( दोहा )

मंजुघोष इम उच्चरै, हौं हिय अधिक डराउँ।
आपडल अति क्रोध है, वेगि तजौ यह ठाउँ॥२४॥

( चौपही )

कहै घृताची सुनौ सयानी। यह वर क्यौं न देहु उहु वानी॥
हम जु इंद्र की आँग्या पाई। सकल देषि वर देहिं वताई॥२५॥
अवही कलपलता लै आवहु। करि विवाह वहु मंगल गावहु॥
वहै सषी प्रानन की प्यारी। जो वर मिलै होइ सुप भारी॥२६॥
दैव योग यह आनि मिलावहु। रतन हीर कंचन पर लावहु॥
औरौ मंत्र करौ सहचारी। उज्जल आइ इंदु उजियारी॥२७॥
सुनत वचन सब सषियनि मानौ। कलपलता कौ वर परवान्यौ॥
कहै चलौ पलु गहरु न लावहु। कलपलता इहि ठाँ लै आवहु॥२८॥

( दोहा )

तवच्चरै इमि उरवसी, कहौ अयानी वात।
यह नरपति दलपति वली, संग अपिल संवात॥२९॥

( चौपही )

जौ विवाह इसि मनहिं न आवै। तौ करता किहिं भाति वनावै॥
हम अवला यह अति वलराजा। विनु सिधि भये जतनु किहि काजा॥३०॥
जौ निहिचै तुम यहै विचारी। एक सुमति यह सुनौ हमारी॥
सेज समेत लेउ इहि साथा। तौ फिरि होहि हमारे हाथा॥३१॥

---

१—व. गति।

ब्रह्म कुंड महँ जाइ उडानी। जिहि ठाँ कलपलता है रानी॥
कर्राहि विवाह रयनि रस मानी। वहुरि फेरि अमरावति जानी॥३२॥
मै यह मंत्र करौं चित चाही। इहि विधि छाँड सकै नहि ताही॥
अवसिमेव वसि होहि हमारै। दल जोजन सत रहै निनारै॥३३॥
और भोग सुष उहि ठाँ आही। पूजहि सकल सिद्धि चित चाही॥
यह सुनि मंत्र सवनि मिल थाप्यौ। सेज लेत हिय नेकु न कांप्यौ॥३४॥

(दोहा)

सब अनुचर सरवर तजे सोवत राजकुमार।
लै अकास मारग चलीं, मानौ करैं विहार॥३५॥

(छंद)

चली मिलि अप्छर सेज उड़ाइ। मनौ भुव ऊपर छुटी हवाइ[1]॥
लगी पलिका पग चारिहु ओर। भरी अनुराग महामद जोर॥३६॥
कहै यह सोभ कवित्त बनाइ। मनौ रथ इंदु नछत्र सहाइ।
सवै तरुनी मृग लोचन नारि। सवै प्रिय प्रेम बढावन हारि॥३७॥
लसै लटकैं जनु दामिनि रेष। किधौं सब सूर किरन्नि विसेप।
चली मिलि आँनद उच्च उताल। लिये जनु संग सहश्रम साल॥३८॥
लगी इमि अप्छरी सेज उडात। मनौ फिरै अंबर चक्र इलात।
सवै सुष रासि गईं सषि पास। कहै इमि अप्छरि पुहुकर दास॥३९॥

(दोहा)

त्रितिय जाम निसि अंत मै, सुंदरि गईं अवास।
मुदित मंडि परजंक प्रिय, कलपलता के पास॥४०॥

(चौपही)

उरवसि आदि कहै सहचारी[2]। लेहि जगाइ कलप प्रिय वारी॥
करज मोरि पग पालक प्यारी। सकल भेद रस जाननि हारी॥४१॥
सुष सेज्या सोवत तैं जागी। सहचरि सवै देषि अनुरागी॥
आदर बहुत कियौ तिहि काला। वोलत मधुर वैन वर वाला॥४२॥
आसन अरघ करे मनु हारी। जल सीतल भरि कंचन थारी॥
पान सुगंध फूल वहु आनैं। वरनन हेत कहाँ कवि जानैं॥४३॥

---

१—अ. ऊरध। २—अ. सुखारी।

( दोहा )

इहि विध बहु आदर कियौ, सखियनि आगम जानि।
सकल कथा आनंद मय, पुहुकर कहत बपानि ॥२४॥

( सोरठा )

जौ फिरि देषहि वाम। वाम नैन दिस वाम तन।
दुतिय सेज तिहि धाम। तापर मूरति मैन की ॥२५॥

( चौपही )

पूछी सषी सेज तन हेरी। सषि यह सेज आइ किहि केरी॥
कौन पुरिष यह मूरति मैना। कहौ सत्य सुष मंडल बैना ॥२६॥
उरवसी और घृताची कहै। सुंदरि यह सुष जुग जुग रहै॥
भुवपति सप्त दीप धर केरो। ते दुलहिनि यह दूलह तेरो ॥२७॥
हम सब सुरपति आइस दीनौ। वादिन तैं चित चिंतनु कीनौ॥
देषहि सकल फिरहिं महि मंडल। अग्या दई हमहिं आषंडल ॥२८॥
पायौ मान सरोवर राजा। सो उडाइ आन्यौ तुव काजा॥
निरषि नैन यह सुंदरताई। देषत बनै बरनि नहि जाई ॥२९॥

( दोहा )

ज्यौं रति अरु मन मथ्थ, जू दमयंतिय नल जेमि।
कलपलता दुलहिनि रची, दूलह भुवपति येमि ॥३०॥

( चौपही )

भई मुदित पुलकित अति अंगा। नीचे नैन किये भुव भंगा॥
कछु लजान कछु आनंद भरी। निरषि न सकति संक जिय भरी[1] ॥३१॥
गुरजन मान सपी सुर नारी। सकुचति सुनति विवाह कुमारी[2] ॥
छाड हास रस भई उदासा। संकति सकुच और भय त्रासा ॥३२॥
मानव जान निपट थरहरै। प्रथम समागम अति भय डरै॥
तब समझावहि सकल सहेली। मधुकर आइ मिल्यौ रस बेली ॥३३॥
सकुच छाँडि कर आँनद प्यारी। नवल नेह रस पावन हारी॥
हमहि बेग अब आइस दीजे। आपुन रैन रंग रसु पीजे ॥३४॥

---

१—ब. निरषित सकति। २—ब. सकुचति सकति व्याह वर वारी।

( दोहा )

कलपलता इमि उच्चरै, जो तुम कियौ विचार।
हौ अब किहि विधि कहि सकौ, थापि रहौ करतार ॥५५॥
सहचरि अग्याँ पाइ करि, बैठी सब सुरनारि।
प्रानप्रिया परवीन अति, प्रीति बढावनिहारि ॥५६॥
विधि गंधर्प विवाह रचि, कियौ क्रियनि आरंभ।
मुदित मोद मंडफ रच्यौ, थापि मनोहर पंभ ॥५७॥
तहाँ सनेह सनेह धरि, दुलहिन लेहि सवाँरि।
मिलि करि मंगल, मंगली, चतुर चढावन हारि ॥५८॥
प्रेम गाँठि कलि करि दई, कंकनु बाँध्यौ हाथ।
पानिग्रहन उत्तिम ठयौ, मदन सो प्रोहित साथ ॥५९॥
सब अप्छरि इमि उच्चरै,[1] कलपलता सौं बात।
निपट अंतु निसि आइयौ, होत पहर मैं प्रात ॥६०॥
तुम मानौ रस रंग रति, हम अब जाहिं अकास।
कालि माँगि आइसु बहुरि, आवहिंगी तुव पास ॥६१॥

( चौपही )

कहहि सषी सुनु प्रान पियारी। जोरी मिली जोगु बर सारी॥
डर जनि करौ करौ जनि लज्जा। प्रथम समागम बासक सज्जा ॥६२॥
यह कह चली रूप की रासी। बोली कलपलता की दासी॥
कहहि करौ अँग अंग सिंगारा। रचहु सेज नव नेह पियारा ॥६३॥

( दोहा )

यह कहि सब अप्छरि चली, कलपलता समुझाइ।
प्रान नाथ पति पाइ करि, आनँद उर न समाइ ॥६४॥
रूप निहारौ नैन भरि, सोवति[1] सेज सुभाइ।
कामवान विहवल भई, निरषि निरषि बलि जाइ ॥६५॥
नवल नेह अभिलाष बढि, मिलन मनोहर जीव।
हसति लसति लज्जित ललित, हरषति हुलसति हीव ॥६६॥

---

१—व. सोभित।

( चौपही )

सहचरि कहै सुनौ रति रानी। रही अलप निसि जाति विहानी॥
रचि अब सेज सिंगार बनावहु। काम केलि करि पियहिं रिझावहु॥६७॥
कलपलता तब करति सिंगारू। जिहि विधि नवल बधू ब्यौहारू॥
उबटि अरगजा कुमकुम अंगा। मज्जनु कियौ सषिनि मिलि संगा॥६८॥
चारु चीर चूनरी सुनाई[1]। सहचरी चतुर आनि पहिराई॥
चुपरि फुलेल कंचुकी कीनी। बहुत सुगंध कुमकुमा भीनी॥६९॥
चंदन षौरि सकल तन कीनी। जनु पदमिनि प्रभुताई लीनी॥
चपल नैन जुग अंजनु दीनौ। षंजन भाउ जीत करि लीनौ॥७०॥
मृग मद तिलक भाल मधि राजै। सोभा सिंधि[2] कहत कवि लाजै॥
रतन जटित ताटंक सुहाये। जनु जुग भान कमल ढिग आये[3]॥७१॥
झुलत नाक झुमि बेसरि मोती। अँचवत अधर अमृत रस गोती॥
चिहुरि स्याम अलकावलि सोहै। देषि रूप मकरध्वज मोहै॥७२॥
धरे कंठ मनि मोहन माला। प्रान प्रिया परवीन रसाला॥
कर कंकन कंचन के साजे। रुचिर रवारे अद्‌भुत राजे॥७३॥
छवि सौं छुद्र घंटिका राजै। पहुँप माल उर ऊपर राजै॥
नूपुर चरन चलत कल रुँजहि। जलज जाल अलि सावक गुंजहि॥७४॥
अधर सुरंग भरे सुष बीरा। विहँसत बदनु छिपहिं जनु हीरा॥
सरस सकल गुन चातुरताई। सषियनि सोरह साज बनाई॥७५॥

( छप्पय )

प्रथम सुमज्जन चारु चीर कंचुकि हिय सोहै।
अंजनु तिलक जु भाल करन कुंडल मन मोहै॥
बनि बेसरि बेनी रसाल मनि कंठ विराजै।
छुद्र घंटिका बनी हार मौतिन के छाजै[4]॥
नूपुर नवीन पुहकर सुकवि सुष तमोल चातुरिय भनि॥
कवि कहत प्रथमति जानि कै सु ये षोडष शृंगार गनि॥७६॥

---

१—ब. बनाई। २—ब. सिंध। ३—ब. सुष अवे। ४—अ. प्रति में यह पंक्ति इस प्रकार है।

कर कंकन किंकिनी पदुम माल उर राजै।

सीस फूल तार्टक कंठ भूषन मनि मंडित।
पहुँपहार उर मुक्तमाल अप्छरि छवि पंडित ॥
कर कंकन अंगरुद्द केस[1] कय्यूर बाहु वनि।
छुद्र घंटि कटि डोरि चरन नूपुर अप्पय धुनि ॥
सिंगार सरस सोरह सहज सुष सुहाग पिय मन हरन।
नव रंग संग पुहुकर सुकवि सोभित द्वादस आभरन ॥७७॥

( कवित्त )

साँचे सी ढारी भरि भाइकै उतारी किधौं
चित्र मै सँवारी विविधि विधि विचार है।
जोवन की वारी कास चंदु की उज्यारी जोत
षरी सुकुवाँरी मानौ पान कै सी डार है ॥
रूप रुचिकारी अरु तैसयो गुनन भारी
अचकि लचकि चलै जोबन के भार है ॥
पुहुकर कहै पूरे पुन्य परवीन प्यारी
प्रीतम प्यारे कौं वनाई करतार है ॥७८॥

( दोहा )

कनक वरन सुंदरि वदन, कमल नयन कटि छीन।
बरुन वान भुव भंग जनु, मदन चोंप करि लीन ॥७९॥

( छंद प्रयंगम )

सुंदर सोहित संग सषी सुष दाइका।
वासक सेज सँवारि सषी नव नाइका ॥
रंग भरी अति रंग सुरंग विराजहीं।
भांतिनि भांतिनि आन सवै सुष छाजहीं ॥८०॥
सुंदर है सव अंग सु काहि सराहिये।
और कहाँ उपमा कहाँ अच्छरि आहिये ॥
वैठी है सेज समीप सुहागिलि भामिनी।
पुहुकर मैन विनोद मनौ अभिरामिनी ॥८१॥

---

१—अ. अग समुद्र रुचित।

( चौपही )

बैठी सेज निकट नव नागर । रति सम रूप रासि गुन आगर ॥
लषी सकल सभी उहि आनें । अभरन अंग बनाये बानें ? ॥८२॥
इक कर पान कपूर सुवासा । मृगमद महँकि रही चहुँ पासा ॥
कनक कचोरा चंदन भरे । बहुत बनाइ कुमकुमा धरे ॥८३॥
चोवा मेद जिवादिहि लीनौं । केसरि मिलै अरगजा[1] कीनौं ॥
चंपक केत गुलावनि हार । फूल सेज वह रची अपार ॥८४॥
मलियागिरी धूप[2] सुपराती । चहुँ दिसि धरे अगर की बाती ॥
इक सषि बाल बिजन कर लीनें । एकै चित्र अभरन तन कीनें[3] ॥८५॥
रुचिर[4] धाम देषत मन भायौ । मनहुँ बियौ सुर लोक बनायौ ।
चतुर नारि इमि कहै सुभाई । प्रान नाथ अब लेहि जगाई ॥८६॥
अति आनंद भई अनुरागी । सहचरि पाइ पलोटन लागी ॥
जाग्यौ सूर तबहिं[5] तिन[6] पासा । मानौं सूर कियौ परगासा ॥८७॥
कलपलता तब आरति[7] साजी । कनक थार मुकता मिलि राजी ॥
मानिक हीर परम छवि छाई । सप्त दीप तहँ धरे बनाई ॥८८॥
लेकर ललित आरती आई । सहचरि संग निपट छवि छाई[8] ॥
करति आरती प्रान पियारी । मानौं चंद सरद उजियारी ॥८९॥
सषी सकल बहु मंगल गावहिं । दंपति रुचिर बिवाह सुनावहिं ॥
निरषत रूप सिंधु अति पूरा । चकित चंद थिथकित भौ सूरा ॥९०॥
निरषि रूप तनु सुंदरताई । भँवर बासु रस रह्यौ लुभाई ॥
दिपहि दीप कर आरति आनें । लषें मलीन वदन[9] दुति मानें ॥९१॥

( सोरठा )

अंबर चंद निहारि । बहुरि बिलोकत दीपदुत[10] ॥
चितवत चित्त बिचारि । उसे न पूजहिं वदन छवि ॥९२॥

( चौपही )

राज कुँवर मन माहिं बिचारै । पलक लगें नहिं रूप निहारै ॥
तब निस्चै जिय मैं यह जानी । मिली मोहिं रंभावति रानी ॥९३॥

---

१—ब. सुरगजा २—ब. दीप ३—ब. एकैचित्त अभरन दीनै ४—ब. रुधिर ५—अ. कुँवर सूर तिन पास ६—ब. कहि ७—अ. आगत ८—अ. सुखदाई । ९—ब. मदन । १०—अ. तन

दुतिय स्वप्न करि देषत सोई। वहुरि कहै यह स्वप्न न होई॥
दरस प्रतिच्छ देषि सुषदाई। चाहत लियौ कंठ लिपटाई॥९४॥

( दोहा )

पुहुकर जो मन मैं बसै, नैन विलोके ताहि।
सूरति पूज पषान की, ध्यान धरत कर जाहि॥९५॥
काम कुँवर बस काम के, कामिन कर गहि लीन॥
चतुर चारु चुंबन उरज, आलिंगन पुन दीन[1]॥९६॥

( चौपही )

चतुर चारु जोबन भरि दोऊ। सरवर रूप न पूजे कोऊ॥
दोऊ काम[2] कला परवीना। दोऊ नव सिष नेह नवीना॥९७॥
दोऊ सेज एक[3] छवि छाजै। एक रालि जनु रवि ससि राजै॥
उतहि कुवर मन मथ मतवारौ। विविध भाउ[4] रस विलसन हारौ॥९८॥
इतहि नवल नव वधू पियारी। गुननि पौढ अरु[5] जोवन वारी॥
करहिं कलोल काम कर क्रीडा। क्रम क्रम तजहि सदन वस[6] ब्रीडा॥९९॥
प्रथम सुरति पिय चातुर ताई। उतहिं प्रान पति आतुरताई[7]॥
ललित लाज भय भामिनि सोहै[8]। चितवत चतुर चातुरी मोहै॥१००॥

( दोहा )

प्रथम सुरति अति प्रीय है, पहुकर सरस विलास।
कामी के चित आतुरी, कामिनि के मन त्रास॥१०१॥

( छंद तोटकी )

मन कामिनि त्रास प्रकास लसै। जुग लोचन भीतर लाज वसै॥
उनमीलत अच्छ[9] विराज इमं। रवि उग्गत वारिज हास जिमं॥१०२॥
जुग मूल उरोजनि आड दिये। कर पल्लव नीवी निरोध किये॥
जुग जंघनु बंधनु बांध रही। कर सौं कर आरत रूपगही॥१०३॥
हिय कंपत सांस उसास भरै। मृग अच्छ कटाच्छन चोट करै।
रति केलि विलोकत काम लजै। नव नूपुर की झनकार वजै॥१०४
१—अ. चतुर चारु चुंबन वदन उरजा लिंगनु दीन। २—अ. कोक

३—अ. सरस ४—अ. भई ५—अ. जनु ६—अ. सब ७—अ. अति अतुराई
८—अ. लोचन भह सोहै ९—अ. अध।

छिन मैं जब प्रीति प्रतीति भई। छल कै बल कै उरलाइ लेई ॥
दोई आँनद आँनद अंक भरे। रुचि सौं अधरामृत पान करैं ॥१०५॥

अवलोकन चुंबन हास रसं। रति रीति करंति विलास वसं ॥
कटि छीन पयोधर प्रान प्रिया। हरषै हित सौंह लसंत हिया ॥१०६॥

महकै जनु मध्यि सुगंध रची। कुहकै जनु कोकिल केलि सची ॥
परसै जनु पारस प्रीत जिमं। दरसै मुष चंद चकोर इमं ॥१०७॥

(दोहा)

सिथलित सिर अलकावली, सिथलित जंघ दुकूल ॥
मैटि लाज मरजाद तन, बढ़ी परसपर फूल ॥१०८॥

(सवैया)

उरज उतंग अरु उद्दित अनग अंग
सोभी पिय सग रति रंग के विहार की।
कुंडिल कपोल सोभा जगमगै जु दीप जोति
पहुकर प्रीत परिरंभन प्रकार की ॥
सिथिलित सुदेस केस भाल श्रम सीकरनि[1]
तैसियै उर लसति छबि मौतिनि के हार की।
रोम रोम देति सुष सुप न्यारे न्यारे भेद[2]
धुनि रसनानकार रसना झनकार की ॥१०९॥

(दोहा)

पुहुकर सर जस वोस कन,[3] ढिगहिं चलत विव[4] चंद।
अहिपतिनी तहिं पर लसत, पति पावत मकरद ॥११०॥

दोऊ जोवन जोर मैं, मदन महा मद अंध।
पुहुकर प्रेम प्रकास तैं, छूटे सकुचे बंध ॥१११॥

जुरत सुरत संग्राम मै, पहुकर उभै[5] अजीत।
हारे हारि न मानहीं, केलि रची विपरीत ॥११२॥

---

१—ब. रंभा कासीकरति। २—ब. न्यारे न्यारे वेद। ३—ब. सरज सवास करि ४—ब. विच। ५—ब. अजै।

( छंद तोटक )

विपरीति रची रति केलि कला। घन ऊपर ज्यौ चमकै चपला ॥
विथुरी लट आनन रूप रसै। रजनी तम वे[1] रजनीसु लसै ॥११३॥
कवरी छुटि फूल परत्ति इमं। निसि स्याम नच्छत्र गिरंति जिसं ॥
मुकता गन छूटति टूटि परै। जनु फूलझरी[2] छुटि फूल झरै ॥११४॥
श्रम सीकर ल्हास सुषं[3] हरषै। दधिजात सुधा कर[4] से वरषै ॥
कुच ऊपर मुत्तिय हार चलं। सिर संकर गंग प्रवाह ढलं ॥११५॥
चमकै चल कुंडिल केस मिलै। थहरै रजनीकरु राहु गिलै ॥
कट किंकिनि कंकन भेद वजै। तरुनी[5] तिहिं ऊपर नृत्य सजै ॥११६॥
रसना रस चुंवन चौज करै। तिहि तालनि मैं झपताल परै ॥
अधरामृत पानि सुदंत लगै। हय ताजनु ज्यौ मनमथ्थ जगै ॥११७॥
अति लालचु लोभ सु आतुरता। अरु तैतिस वैनु सुचातुरता[6] ॥
उडुपत्ति कला जिसि रूप चढै। पल ही पल प्रेम हुलासु वढै ॥११८॥

( दोहा )

दंपति जोबन जोर ते,[7] भिरति सुरति-संग्राम।
हारे हार न मानहीं, संग सहायक काम ॥११९॥
पुहुकर नाइक मैन मय, पाइ प्रथम नवनारि।
सुख लूटत[8] निधि रंक ज्यो[9] देषौ रसिक विचारि ॥१२०॥

( सवैया )

गाढौ गढु लाज लै ढहाइ डारी कोट वोट
नीवी पट षोलि रस जीति करि लीनै है।
छाती नष रेष, छत दसन अधर हँसि।
किधौ मधुपान सुष प्राननि कौ दीनै है।
लूट्यौ लंकु लंका जैसे संकु तजि अंकु भरि
पुहुकर कहै अंग अंग वसि कीनै है।
काम की अलोल कोक कलाकी कलोल करि।
सुरति समूह सुपरंग रस भीनै है ॥१२१॥

---

१—अ. मे। २—व. फूल झरै। ३—व. श्रीकर हुलास लसै। ४—व. सुधा फन। ५—व. वरुनी। ६—व. मे यह अर्धाली नहीं है। ७—व. जोर तितै करति। ८—व. लूट्यौ। ९—व. निधिरंक।

( दोहा )

इत नागर नव जोवना, नव अनंग नव नेह ।
मनमथ मन रथ[1] सारथी, सुरति जुद्ध नहि छेह ॥१२२॥

( सवैया )

मन के सुरथ चढ़ि सारथी अनंग संग ,
भृगुटी धनुक[2] धरे वरुनी के वान जू ।
अंचल भुजा सौ सोहे कंचुकि जिरह जेवि ।
सुभट कटाछ सेज[3] समर मैदान जू ॥
रति सौं रुचिर रूप रंनि रति जुद्ध कियौ[4] ।
ककन किंकिनि[5] वाजे त्रिज के निसान जू ॥
पुहुकर तीखे नख[6] वाइ सनमुष लागे ।
सुरी न मयंक सुघी सुरति सुजान जू ॥१२३॥

( दोहा )

पहुकर रस भरि रीझि करि, आनँद भरे अपार ।
त्रिपिति भये करि केलि रुचि, मदन जुद्ध तिहि वार ॥१२४॥

( चौपही )

सुपरति सुरति सुरति जव आई । सूर सिव मानी चतुराई ॥
राज कुँवर मन माझ विचारी । यह न होइ रंभा उनहारी ॥१२५॥
रंभा नवल वेस वर वाला । यह परगलभ प्रवीन रसाला ॥
कोक भेद प्रगटे नहि वारी । जदपि सषी सिषावन हारी ॥१२६॥
कहि गुन ढीठि आहि पिक वैनी । नृप तनया मृग सावक नैनी ॥
फिरि जिय धरी वूधि धौ देषौ । संदिर चित्र चित्र अवरेषौ ॥१२७॥
यह निरचै उर अंतर आयौ । विधि विधान कछु और वनायौ ॥
पूंछहि काम कुँवर हँसि वैना । आज रूप रस भीजै नैना ॥१२८॥

( सोरठा )

हौं नहि जानत तोहिं । मन जानत जो हरि लियौ ।
कहि समझावौ मोहि । मोहि रह्यौ तुव रूप रस ॥१२९॥

---

१—व. ममनरथ मनमथ । २—अ. धनुप । ३ —व. वात । ४—व. दुति देखियत ५—व. कौ कीनौ । ६—व. तीनख ।

( दोहा )

भूप सुता किधौं अप्छरी[1], रति डोलति संग दासि।
इंद्रानी किधौं सुर सुता, नाग सुता सुखरासि[2] ॥१३०॥

( चौपही )

कलपलता तब उत्तर दीनौ। दसननि तडित उजेरौ कीनौ ॥
विधि संजोग कह्यौ नहिं जाई। दैन कह्यौ विप गिरि या पाई ॥१३१॥
रही उभै वरष वन वासी। अव हौं भई तिहारी[3] दासी ॥
अप्छरि आय रहौं अमरावति। मन वच देवराइ[4] मन भावति ॥१३२॥
इक दिन सुरपति सभा सँवारी। करि सिंगार हौं तहाँ हँकारी ॥
आई और सबी तिहि ठाँऊँ। उरवसि आदि कहत जग नाऊँ ॥१३३॥
मोही कलपलता करि जानहिं[5]। सुरपति सभा मनोहर मानहिं[6] ॥
भयौ रास रस रंग अपारौ। आनन दीप दिये उजियारौ ॥१३४॥
बहु विधि नृत्य करन हौं लागी। गावहि सषी[7] सकल अनुरागी ॥
तिहि छिन तहाँ नृपति नल आयौ। प्रथम बार मैं दरसनु पायौ ॥१३५॥
निर्मल चित्त पाप नहिं मेरै। चंचल नैन रहै नहि घेरै ॥
भूल्यौ तान मान मिरदंगा। सुरपति क्रोध कियौ मन[8] भंगा ॥१३६॥
दई सराप सोचु[9] नहिं कीनौ। पहुँमि वास कौ आइसु दीनौ ॥
हौ अबला व्याकुल बिलषानी। भींजे वसन नैन के पानी ॥१३७॥
तब कछु दया करी मनमाहीं। कह्यौ वैन[10] पलटै अब नाहीं।
भरता कह्यौ होहिं नर तेरौ। सुष अरु भोग अनुग्रह मेरौ ॥१३८॥
पति पैहै पृथ्वी पति राजा। सोधैं तहाँ सषी तुव काजा ॥
ते सब सखी प्रीत अनुरागी। आवहिं बार बीच हित लागी ॥१३९॥

( दोहा )

सेज सहित ल्याई तुम्हैं, मनमथ मूरति जानि।
पति पायौ तन प्रानपति, दियौ विधाता दानि ॥१४०॥
बलिहारी इहि रूप की, करौं निछावरि जीउ।
हौं दासी इहि चरन की, क्यौं करि कहौं कै पीउ ॥१४१॥

---

१—अ. सुरसुता नागसुता सुखरास। २—अ. अछरी रति जो। ३—अ. तुम्हारी। ४—अ. रही। ५—व. जानों ६—व. मनोरथ मानों। ७—व. सर्ब। ८—अ. चितु ९—व. क्रोध १०—व. बोल।

(चौपही)

कहहु[1] नाथ अपनी अब बाता। किहि कुल वंस पिता अरु माता॥
कहा नाउ किहि पुर[2] पति राजा। हते मान सरवर किहि काजा॥142॥
कुँवर कह्यौ विरदंतु बनाई। वैरागर अधिपति अधिकाई॥
दुहु दिसि प्रीति रीति[3] अधिकानी। सलिता चढत बढत नहि जानी॥143॥
दोऊ तरुन मदन मदमत्ता। पिय बस त्रिया त्रिया बस कंता॥
इहि विध भोग जोग गहि जामिनि। सकुचित उठी सेज तज कामिनि॥144॥
आइस मांग सषी सब आई[4]। आली हँसि[5] मुष देषन धाँई॥
पूछहि आइ सुनहि सपि प्यारी। इमृत पानि रस पीवन हारी॥145॥
अचिरज आइ एक हम देष्यो। प्रगट प्रेम नहि दुरत विसेष्यौ॥146॥

(सवैया)

मंग धँसि[5] भई गंग जमुना प्रवाह भंग
गंगाधर चारु चंद्र सेषर बनाये हैं।
वैनी गई छूटि वैनी नैन अैन पेषियतु
पुहुकर कहै रंग तीनौ[6] कहा पाये हैं॥
भये परभात जलजात जु लजात अब[7]
कहति न वात गात अंचल छपाये हैं[8]।
प्रगटत प्रान पति झलकत अंग अंग[9]
जदपि सयानी उर अंतर दुराये हैं[10]॥147॥

(दोहा)

सपि निरषहि आनंद मय, अंग अंग अधिकार।
व्याल बधू दुति इंदु पर, सिथिल सुतन सिंगार॥148॥

(चौपही)

सपि आदर कारन उठि नारी। डौलति चली मनौ मतवारी॥
पंडित अधर वदन कुम्हलानी। विहँसत नैन कहत मुष वानी॥149॥

---

1—व. कहु जो 2—व. कुल 3—व. अधिक 4—अ. अलि विवाहु 5—व. माग 6—व. त्यों तीनौ। 7—व. अब कहियत। 8—व. जो बात गात अचल छुपाये हैं। 9— व. प्रघटत प्रानपति झलल अंग अंग। 10—व. उर अचल छिपाये हैं।

कंचुक दरकि करकि करचूरी । अधर लाग भयौ कज्जल दूरी ॥
पीक की लीक कपोलनि पेषी । उपमा वरनि न जाइ विसेषी ॥१५०॥
अलक झलक सुष पावति सोभा । भ्रमर पंक्ति जनु पंकज लोभा ॥
नख छत रेष उरज पर लागी । चंद्र चूड़ सोभित वड़ भागी ॥१५१॥

( दोहा )

रति अंकित संकित वधू, सकुचित सकुच सुभाइ ॥
सुरति सोभ सुष देषि करि, कहइ सषी बलि जाइ ॥१५२॥
कहहु कंत की चातुरी, और सुरति संग्राम ।
क्यों कर वितयौ प्रेम रस, जामिनि के जुग[1] जाम ॥१५३॥

( चौपही )

कलपलता करि नीचे नैना । मृदु मुसक्याइ कहत सुष वैना ॥
कहाँ उरहनौ देउँ सहेली । छाडि जाउ इहि भाँति अकेली ॥१५४॥
हौं अबला बहु अति बल राजा । विना सहाय जुद्ध किहि काजा ॥
रति पति अति करि कीन सहाऊ । भिरत सुरति तब चित भौ चाऊ ॥१५५॥
यहु चित चोर याहि तुम ल्याई । लोक लाज सब दई वहाई[2] ॥
तन मन धूत दुरावन हारा । लूटन लाग्यौ मदन भँडारा ॥१५६॥
तब तजि डरु मै करी ढिठाई । सुरति जुध्य कहँ सनमुष आई ॥
आइधु कर नष दंत सम्हारे । करि गज उरज अग्र मतवारे ॥१५७॥
सकल कला करि कोबिद मंता । जोवन चढ्यौ मदन मैमंता ॥१५८॥
कौन कौन गुन करौं बडाई । रसना एक बरनि नहिं जाई ॥
तऊ सषी इतनी हम कीनी । सुरति जुद्ध कहँ पीठि न दीनी ॥१५९॥

( दोहा )

सषी सकल लज्या गई, और गई कुलकोनि ।
विवस जानि इहि सूर तै, सूर छिडाई आनि ॥१६०॥
यह लज्जा सुनि सहचरी, ता छिन रही न अंग ।
अब किहि विधि करि कहि सकौं, जु फिरि आई तुम संग॥१६१॥

( चौपही )

सकल कला सुनि रैनि विहानी । कलपलता अति सुभट वषानी ॥
सुरति जुध्य की करी सम्हारा । किहि अंग जीत्यौ किहि अँग हारा॥१६२॥

---

१—ब. कौ । २—दिन्हि निसराइ ।

जीत अंग सनमुष ठहराने। तिनहि रीझ कर बगसे बाने ॥
उर पहिराइ कुंचुकी झीनी। मुक्तमलाल उरजन कहँ दीनी ॥१६३॥
कटि किंकिनि कंकन कर साजे। नूपुर चरनन अधिक विराजे ॥
नव दुकूल जंघन पहिराये। सोभित अंगद बाँह सुहाये ॥१६४॥
अधर सुधर कहँ बगसे बीरा। दसनन नाम भयौ विधि[1] हीरा ॥
तिलक जराइ भाल मधि सोहै। देषत जाइ देव सनु मोहै ॥१६५॥

( दोहा )

पुहुकर निसि सनमुष रहे, तिनि अंग सजे सिंगार।
बिडरि चले तजि संग तें, तिहि गुन बाँधे बार ॥१६६॥
नषछत केसरि सौं भरे, बेसर धरहि बनाइ ॥
पहुकर यह छवि प्रात की, मोपर बरनि न जाइ ॥१६७॥

( छप्पय )

सुरति रैनि रस रंग भीजि भामिनि तनु भूषित।
चपल नैन अलस्यात मनौं इंदीवर ईषत ॥
सषि सिंगार सब करहि बहुरि सुष सेज बनावहि।
मदन अग्नि अंकुरित सुक्ख सूरत्ति[2] बढावहिं ॥
प्रमुदा प्रवीन पुहुकर सुकवि सकल कला कोविद कुसल।
विलसंत बहुत रस हास्य वर सु उदित अंग मनमथ्थ बल ॥१६८॥

( चौपही )

निकट आइ पिय प्रान पियारी। सजल जलद दुति लोचन न्यारी ॥
मधि घूँघट आनन इम सोहै[3]। चितवत चारु चकोरन मोहै[4] ॥१६९॥
कहत वचन मुसक्यात सकानी। आई सकल सुषनि मैं सानी ॥
किहिं विधि कौन करौ मनुहारी। कहहु नाथ अब दासि तुम्हारी ॥१७०॥
सुनत सूर सुष दाइक बैना। अमल कमल जिमि विहँसे नैना ॥
नष सिष रौम रौम सुष पायौ। जनु बसंत पिक बैन सुनायौ ॥१७१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते अच्छरि पंडे
सुरतात सोभा वर्ननो नाम प्रथमो अध्याय ॥१॥

अथ नृत्य नाटक वर्णन।

---

१—व. अधिक धरौ विधि। २—अ. मुदित सुख सुरति। ३—अ. सोभा। ४—अ. लोभा। ५—व. करि।

( दोहा )

काम कुँवर आनंद मैं, रोम रोम सचुपाइ।
रूप रंग जोवन सगुन, निरषि निरषि बलि जाइ ॥१७२॥

( चौपही )

कहै कुँवर सुन प्रान पियारी। प्रीतम मनु अनुरंजनि हारी ॥
कनक सुगंध गीत गुन गायौ। हरि प्रसाद मैं प्रगटे पायौ ॥१७३॥
जप तप व्रत[1] जिहि कारन धरई। पवन असन इक आसन रहई ॥
सुर अपछरि घरनी जौ होई। इहि सुष जोग नहीं नर कोई ॥१७४॥
मागे मोहि एकु वर दीजै। तनु अरु मनु धनु सर्बसु लीजै ॥
प्रथम करौ अप्छरि मनुहारी। गृह आईजै सषी तुम्हारी ॥१७५॥
जौ वै[1] तुम्है सषी करि जानै। मोही सहज सषा करि मानै ॥
देहिं दरष यह कहि समझावहु। अप्छरि नृत्य हमहिं दिषरावहु ॥१७६॥
जौ तुम ब्याह कियौ जग जोई। नृत्य गीत बिनु ब्याह न होई ॥
हा हा करौं पाइ परि भाषौं। उमगे नैन कौन विधि राषौं ॥१७७॥

( दोहा )

वे गुरजन तुव हेत करि, मानहिं प्रीत सुभाउ।
जौ मुहि जानहि दासु करि, अप्छरि नृत्य दिषाउ ॥१७८॥
कलपलता सुनि पिय वचनु, गई सषिन के पास।
प्रगट्यौ मन कौतम निपट, सोभित सहज हुलास ॥१७९॥

( चौपही )

आगम सदन जानि सुरनारी। विविध विधानु करति मनुहारी ॥
अष्ट सिधिय ऊभीं उहि आगे। मन अभिलाष रहे जिहि लागे ॥१८०॥
कंचन रचित षचित नग लाला। रच्यौ मनो सुर लोक रसाला ॥
फूल सुगंध पान परधाना। अनगन भाँति[2] न जाहिं बषाना ॥१८१॥
वासर सबी सबै मिलि षेली। भई आज मनमथ की चेली ॥
जब अकास शशि रैनि प्रकासी। विकसित कुमुदिन मनो विगासी ॥१८२॥
हँसति लसति लच्छिता लजौंहीं[3]। हरति प्रान चितवनि तिरछौंहीं ॥
करि प्रनाम सषियन सों भाषैं। अंतर कपट चित्त नहिं राषैं ॥१८३॥

---

१—ब. इनि। २—ब. आनमाननि। ३—ब. लच्छिता जोंहीं।

तौ वर दियौ मोहि सषि प्यारी। तुम गुरजनि हौं दासि तुम्हारी॥
मन मन क्यौं न करौं वलिहारी। करौं मुदित मरजाद हमारी॥१८४॥
वैरागर अधपति यह राजा। मगल विना व्याह किहि काजा॥
जौ तुम कियौ व्याह जग जोई। नृत्य गीत विनु व्याह न होई॥१८५॥
जौ सषि मोहि सषी करि जानौ। उहि पुनि सहज सषा करि मानौ॥
है कुमार कोविद सग्याना। सकल कला संगीत सुजाना॥१८६॥

(दोहा)

तुम दरसन कारन निपट, मन वच क्रम अकुलात।
ज्यौं दिनकर के दरस कौ, लोचन है जल जात[1]॥१८७॥
मो सहचरि कौं पति भयौ, अब न रह्यौ कछु भेद।
जुगतु नहीं लज्जा तहाँ, कहत लोक अरु वेद॥१८८॥
मधुर वचन सुन मेनका, कहै घृताची वोलि।
कलपलता पति पेषिये, घूँघट के[2] पट षोलि॥१८९॥
सत्य कहति वे भामिनी, उरवसि कहौ विचार।
जुगत नहीं लज्जा तहाँ, जहाँ भई सषि नारि[3]॥१९०॥
विधि गंधर्व विवाह किय, सो निभई सव रीति।
पंच शब्द मंगल सहित, होंहि परसपर प्रीति॥१९१॥

(सोरठा)

जव मान्यौ यह वैन। सुर अच्छरि सषि हेत करि।
कलपलता चित चैन। अरु नव नेह प्रकास हुव॥१९२॥

(चौपही)

आई उलटि पिया पहँ प्यारी। मुदित उदित मुसक्यात सुनारी॥
सुनहु प्रानपति मोहनहारे। वचन द्वैक अव सुनौ हमारे॥१९३॥
विधि करतूत कही नहिं जाई[4]। वर घरनी जो भई तुम्ह आई[5]॥
ये अच्छरि सुरपतिहिं पियारी। आद अंत सव जानन हारी॥१९४॥
मो मन हेत तजहि सव[6] लाजा। लघु विचार सहचरि पति काजा॥
देषत उनहि धरौ मन धीरा। करौ आपु वस चित्त गँभीरा॥१९५॥

---

१—व. जलजात। २—व. पट। ३—व. दास। ४—व. न जाइ वखानी। ५—व. हो भई तुम्हारी। ६—अ. तुम।

जो मन होहिं काम बस स्वामी । तौ आनहिं वे अंतरजामी ॥
अग्याँ देउ बोलि लै आऊँ । अप्छरि नृत्य आनि दिषराऊँ ॥१९६॥

( दोहा )

मधुर वचन सुन प्रान पति, अति आनंद अपार ।
रोम रोम अभिलाष बढ़ि, मन हुलास अधिकार ॥१९७॥
कहत वचन आनंद मैं, सुन नव नागर वाम ।
तैं बस कीने देव मुनि, क्यौ न होहिं बस काम ॥१९८॥

( चौपही )

मै जब चित्त चरन तुव दीनौं । नैन जो प्रान निछावरि कीनौं ॥
भूलिहु और नार नहिं भावै । सपने कैहूं सुरति न आवै ॥१९९॥
अब सहचरि निहचंत बुलावहु । नृत्य गीत करि मंगल गावहु ॥
बहुविधि चित्रित सभा सँवारी । कलपलता रस रंजन हारी ॥२००॥

( दोहा )

मैनकादि अप्छरि सकल, सुषित आइ सुपधाम ।
हिय हुलास मन मोद जनु, पुहुकर द्रग अभिराम ॥२०१॥
कुवर निरषि नष सिष सरस, सोभा सुपद सिंगार ।
रूप नग्र तसकर मनौ, अंग न रही सम्हार ॥२०२॥
करि प्रनाम नत सीस मन, गुरजन मानि विचारि ।
देव भाव जिय जानि करि, चाहति चाहन हारि ॥२०३॥

( छंद तोटक )

सुषधाम सषी सब आनि वर्सी । घन मै जनु दामिनि रेप धर्सी ॥
अँग अंगनी अंग सुरंग रसीं । रितु आगम इंद्र वधू सरसीं ॥२०४॥
कमलद्दल लो चन चंद्र सुषी । गज गौनि मरालति वाल सुषी ॥
सुर अप्छरि ते पुरहूत प्रिया । नव वैस उठंत उरोज हिया ॥२०५॥
कवरी सिर स्याम वनाइ गुही । मिलि मुत्तिय चंदन माल[1] छुही ॥
घँसि कुंकुम घौरि जो भाल रची । जिय मध्य विराजन आइ सची ॥२०६॥
मकराकृत कुंडिल हीर जरे । जुग भान मनौ अहँकार भरे ॥
नव मुत्तिय वेसरि यौं लटकै । मनु देषत देवनि को अटकै ॥२०७॥

---

१ — ब. हार ।

सुप सुंदर मध्य तमोल भरे। जु विराजित कंचन सोल जरे॥
रसना कटि छीन नवीन बजै। नव नूपुर नादि विवादि सजै॥२०८॥
पहिरी कसि कंचुकि हार[1] हियं। नव नागर नृत्य विचार कियं॥
घन[2] तंतु सुकिन्नर बीन बजै। सुरबीन रवाद उपंग सजै॥२०९॥
मुरजा[3] धुनि झंझ मृदंग तहा। सुर मंदिर ताल बिलास[4] जहां॥
रंग भूमि सुरंग बनाइ रची। धरनी जनु कंचन हीर पची॥२१०॥
करि मंगल गाइनु गान ठयौ। सुर साधि सुग्रास अलाप लयौ॥
षटराग अलापहि संग त्रिया। गुन संगति अप्रित इंद्र प्रिया॥२११॥
पैहुप अंजुल पातर हथ्थ लई। उघटी सुघ रागित नत्त नई॥
तत्थेई तत्थेई सुतथ्थरियं। तत थुंगत पुनतियं॥२१२॥
ध्रिटितं क्रिटित क्रिटितं क्रिटिथा। गृडता थियता थियता थियथा॥
थिरडा थियतं क्रितितं तकियं। क्रिक्रिकट क्रिक्रिकट झंझकियं॥२१३॥
थिपि धिवि क्रिमि क्रिमि कै उघटैं। तनु तोरत तार सितार लटैं[5]॥
कटि किंकनि नूपुर हथ्थ वलैं। सुघही गति तोटक छंद चलैं[6]॥२१४॥
उरसैं विरपैं तिरपैं हुरसैं। अपरी रस भंग नही सुरसैं॥
लग लागत लाग सुडाग फिरैं। अलकैं छुटकै तिजु भुंम्मि परैं॥२१५॥
गति यौं धर मान नवीन ठवै[7]। रसना रस लाइक ताल चवै[7]॥
पसु पच्छि जे पेषत सोनु गरी। तिनि कै जल[8] पानि सुध्यौ[7] विसरी॥२१६॥
ससि कौ रथ चाहत[8] भूलि रह्यौ। सरिता जल फेरि उलट्टि वह्यौ॥
द्रुम पल्लव अक्कुर और भये। किलसै दल रौस प्रगट्ट नये॥२१७॥
सुर गंध्रप चित्र समान रहे। कवि पुहुकर पे नहि जात कहे॥२१८॥

(दोहा)

इहि विधि अप्छरि नृत्य, करि बैठी सहचरि तीर।
राज कुँवर सुंदर निरष, पुलकित मुदित सरीर॥२१९॥

(कुंडरिया)

बैन बिहसि रंभा कहै, सुनियै राज कुमार।
बैराग अधिपति नृपति, कलपलता भरतार॥

---

१—ब. चाह। २—अ. इनु। ३—ब. मुरभा। ४—ब. विसाल। ५—ब. ताक तिते रनिताल। ६—ब. कज्जल। ७—ब. सुधौ। ८—ब. सोहत।

कलपलता भरतार भई मन वच क्रम दासी।
देव जोग अति प्रबल हुती अमरावति वासी[1] ॥
तिहि कारन तुव रूप त्रिषिति कीनौ हम नैना[2]।
सषि हित प्रीति विचारि कहति रंभादति वैना ॥२२०॥

( चौपही )

हम सुर ईसु अवर्ग्यां[3] कीनी। नृत्य कला दिषरावन लीनी ॥
एकु भाँति कछु अंतर नाही। तुम नाइक हम अप्छरि आही ॥२२१॥
हमहिं वेगि अब आयसु दीजे। आपुन सकल भोग सुष कीजे ॥
मागहि एकु प्रसाद तुम्हारौ। इहि समये यह काज हमारौ ॥२२२॥
तुम प्रताप पहुमी पति राजा। हम अप्छरि मंगल धुन काजा ॥
कलपलता है दासि तुम्हारी। किहि विधि कहहिं आहि घर नारी ॥२२३॥
इंद्रहिं छाडि तुमहिं मनु लायौ। सुरपति तजि नरपति पति पायौ ॥
प्रेम प्रीति करि प्रियहिं रमावहु। विय त्रिय तन जनि चित्त चलावहु ॥२२४॥

( दोहा )

राज कुँवर पुलकित मुदित, अति प्रवीन मनु लीन।
रोम रोम रस भीजि करि, रीझि भयौ आधीन ॥२२५॥
कहत वचन आनंद सौं, सुनौ सु गुरजन बाल।
प्रान निछावरि करत हौं, और न कछु इहि काल ॥२२६॥
मेरे तीरथ जँग्य व्रत, जप तप तीरथ नारि।
तिहि तो किहि विधि पलटिहौं, वोलो वचन विचारि[4] ॥२२७॥

( सवैया )

वेनी कौ दरस कुच संभु कौ परस जहाँ
माधुरी सौं अधर पयूष रस पीजिये।
आनद मगन ह्वै मिटै दुष दाइ सब
कलपलता सी उर लाइ जब लीजियै ॥

---

१—ब. दासी, २—ब. मन मैना ३—ब. पु अर्ग्यो। ४—अ. प्रति में यह दोहा नहीं है।

पुहुकर बिलोकै सुप पायो है अमर पदु
लगै न पलक प्यारी चाहि चित दीजिये।
मेटिये मुकत हार कचुकी मुकत भई
ऐसी प्रमदा को तजि कौन तपु कीजिये ॥२२८॥

( दोहा )

सुर वचन सुनि अप्छरी, नवतम प्रीति विचारि।
मन वच क्रम सचुपाई करि, चली धाम सुरनारि ॥२२९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय अप्छरि पडे
नृत्य नाटक वर्ननो नाम दुतियो अध्यायः ॥२॥

## अथ सानमोचन वरननं

( चौपही )

उत सुर लोक चली सुरनारी। इत सुंदरि सुप सेज समारी ॥
गृह अंगन उज्जल सित अंगा। मानौ छीर समुद्र तरंगा ॥२३०॥
सकल कला पूरन ससि जोती। मानौ धरनि बिछाये मोती ॥
काम केलि करि काम कुमारा। निद्रा मगन भये तिहि वारा ॥२३१॥
कलपलता पति रूप अपानी। अति आसक्ति न सोवहिं रानी ॥
निरपति नप सिप सुंदरताई। असरन भेद कहत नहिं जाई ॥२३२॥

( दोहा )

रतन जरित उर उरवसी, चाह तिहाँ सुरनारि ॥
ता सधि चित्र अनूप लपि, चक्रत चित्त विचारि ॥२३३॥
निरपि नवल नव नागरी, नृप कन्या सुकुँवारि ॥
पदमिनि चित्रिनि चाहि करि, रीझि रही मनु हारि ॥२३४॥
फेरि चित्रु राप्यौ तहाँ, रहे जहाँ दिन रैनि ॥
कछु रोस जिय सैं धरौ, ससि वदनी मृग नैनि ॥२३५॥
जागत ताहि घरीक मै, लागत उरज सुभाइ ॥
पैंचि लेहि उहि आपु त्यों, ज्यौं मानिनि के दाइ ॥२३६॥
वचन व्यंग बतियाँ कहै, सुनिये राज कुमार ॥
मो परसत दुप पाइहौ, रहै जु प्रान अधार ॥२३७॥

वह कोमल सुकवाँरिका, ये अति कठिन उरोज ॥
तातै परस न बूझियै, तुम जानत पन भोज ॥२३८॥
उर मंदिर सैं स्वच्छ अति, साजिति है धन येसि ॥
पुहुकर झलकत नीर लौं, काम करौती जेसि ॥२३९॥
हमहीं क्यौं न सुनाइयै, चाहत हौ चित जाहि ॥
आपु रहे समचित्र ह्वै[1] चित्रु बतावत[2] ताहि ॥२४०॥

( चौपही )

कहै कुँवर सुन प्रान पियारी। अप्छरि आइ भई नर नारी ॥
चाहत नीर अभी जौ पावै। तौ जलु काजु बहुरि किहि आवै ॥२४१॥
सुर अप्छरि घरनी जौ होई। करिहै कहा आन धन कोई ॥
चंपावति नगरी पति राजा। तिहि घर सुता सुयंवर काजा ॥२४२॥
अवरेष्यौ सौ चित्र चितेरौ। कछुक चित्त आयौ तब मेरौ ॥
मै चितवत चिंता मनि पाई। रांकहि विधना दई बड़ाई ॥२४३॥
मेरे नैन प्रान धन धामा। जीवनि तुही सुफल सुष स्यामा ॥
सो सुष भयौ सकल मन भायौ। इंद्रलोक फल पहुमी पायौ ॥२४४॥

( दोहा )

मानिनि मान न कीजियै, करि करि टेढी भौंह ॥
उरज ईस कै सीस पर, धरत हाथ करि सौंह ॥२४५॥

( चौपही )

छूट्यौ मान वचन चतुराई। कुच महेस की सौंह दिवाई ॥
दंपति दरस परस सुषदाई। नित नित प्रीत भई अधिकाई ॥२४६॥
दिन दिन बढै माव दिन ऐसे। पावस माल सलित जल जैसे ॥
जे कोई भोग तिहूँ पुर माही। पूजहिं सकल सिद्धि चित चाहीं ॥२४७॥
जीवन जोर उभै मद मंता। पिय बस त्रिया त्रिया बस कंता ॥२४८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते अप्छरि षंडे मान-
मोचन वर्ननो नाम तृतीयो अध्याय[3] ॥ ३ ॥

---

१—व. लौं २—अ. लिखावत। ३—अ. नवमो अध्याय।

# चंपावती खंड

(दोहा)

नृप तनया रंभावती, वसै कुँवर के चित्त ॥
वहि लोचन की डार ज्यौं, हिये परक्कै नित्त ॥ १ ॥

(चौपही)

पायौ वास सघन वन माहीं । निपट अधीन भयौ मनमाहीं ॥
पितु गृह तज्यौ प्रिया हित काजा । सो विधि उलटि कियौ कछु काजा॥ २ ॥
संगी पंथि छाँडि भयो गौना । परौ भूलि मानौ मृग छौना ॥
चित चिंता वहुतै अधिकानी । विसरी सकल कला सुपसानी ॥ ३ ॥
प्रगट न करत कहत कछु वैना । जिय दुप नहीं जनावत नैना[1] ॥
दिसि अरु विदिस न जानै कोई । मन मे कहै कहा अव होई ॥ ४ ॥
इक दिन सिद्ध वृंद महँ जाई । चंपावति की वात चलाई ॥
केतिक दूरि आइ किहि ठाँऊ । किहि दिसि आइ कौन वह गाँऊ ॥ ५ ॥
करि कै दरस सिद्धि वन वासी । अतन न आवहिं जाइ प्रकासी ॥
तिन मे एक आहि वहु काली । दिव्य देह मानौ सिरमाली ॥ ६ ॥
फिरौ वहुत तीरथ धर धारा । देषी मेदिनि अपिल अपारा ॥
तिनि विनयौ विरदंतु वनाई । चंपावति अति दूरि वताई ॥ ७ ॥
गुज्जर नगर उदधि के तीरा । अचवहि कूप सरोवर नीरा ॥
नगर अनूप रम्य सुपदाई । मनौ अवनि अमरावति आई ॥ ८ ॥
विजैपाल राजा तहँ आही । चक्रवती करि वोलत ताँही ॥
मारग अगम आहि अति भारी । गति मति छोडि होहि तहँ न्यारी ॥ ९ ॥
धरतु न चित्त विकट धर धीरा । गिरवर विपिनि सरित गंभीरा ॥
कुँवर समुझि यह सकल वपाना । मनहिं तेज पुरपारथ आना ॥१०॥
पूछी मानसरोवर वाता । सत जोजन ऊपर नव साता ॥
वह पुनि पंथ विकट वन माहीं । देव भूमि नर मारग नाहीं ॥११॥

---

१—च. वैना ।

( दोहा )

राज कुँवर सिर सोच करि, बाँध्यौ मन अहँकार ॥
सकल छाड़ सिव सरन लिय, मेटौ और विचार ॥१२॥

( चौपही )

जोग जुगति मन माँह विचारी। नाम अधार करी आधारी ॥
कर त्रिसूल अरु चक्र सुहावा। गहवरि गोरिष गुरू मनावा ॥१३॥
सुंदर बहुत अवनि मृग छाला। उर रुद्राछ गुंथि जयमाला ॥
जटा जूट वैराग भुलाना। कासमीर मुद्रा करि काना ॥१४॥
भसम चढाइ पहिरि तन कंथा। वीना हाथ प्रेम कौ पंथा ॥
सेल्ही सीस मेषला[1] काँधे। रुद्र चरन निश्चै मन साँधे ॥१५॥
चल्यौ निकसि चंपावति देसू। विषम[2] भूमि कीनौ परवेसू ॥
माता पिता ग्रह तज्यौ जू काजू। तज्यौ देस वैरागर राजू ॥१६॥
छोड़ी कलपलता सी नारी। अष्ट सिद्ध की पुजवन हारी ॥
संग लियौ न सँघाती कोई। करुनानाथ[3] सहाइक होई ॥१७॥
कर वीना वैराग अलापै। वन परवत देषत नहि काँपै ॥
गावत राग सिंगार वियोगा। सोभित अंग अनूपम जोगा ॥१८॥
सुन मोहत सुर मुनि[4] अरु नागा। जिहिं रे सुना सोई मग लागा ॥
चले व्याल चढि आये काँधे। चले कुरंग संग विनु बांधे ॥१९॥
चले चकोर वदन विधु सोभा। चले भृंग तन-वासुहिं लोभा ॥२०॥

( दोहा )

पुहुकुर प्रीतम प्रेम रस, छाड़्यौ सुष अरु गेह।
वनवासी सब सँग चले, प्रगटत परम सनेह ॥२१॥

( चौपही )

गिरिवर चढत बिपिन अवगाहत। पार तार सरिता जल थाहत ॥
निसु दिनु ध्यान करहिं मन मिंता। उहि बिनु और न दूजी चिंता ॥२२॥
वन अधियार न सूझै भाना। विपिन गहन नहिं जाइ वषाना ॥
निसि वासर मगु अगम न जानै। कठिन पंथ जिय सोचु न आनै ॥२३॥

---

१—व. बाँधे। १—व कठिन। २—व. करुनाथ। ३—अ. नर।
४—अ. संग (पथहिं)।

सिंघ सिंदूर उरग त्रिग हाथी । कूजित बिपिन बियौ नहिं साथी ॥
वीना चित्र लिये बैरागी । मगन वियोग सकल सुप त्यागी ॥२४॥

( दोहा )

सागर तरत चढ़त गिरि, चढ़ि अकास धँसि[२] लेइ ।
भावंता के प्रेम रस, प्रान पलक महँ देइ ॥२५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय चंपावती पडे
जोग वियोग वर्ननो नाम प्रथमो अध्यायः ॥१॥

अथ कलपलता कौ बिरहु वरननं ।

( दोहा )

कलपलता जिय जानि के, प्रान नाथ पति[३] गौन ।
चित्र लिषी पुतरी मनौ, अचिकि रही सुप मौन ॥२६॥
सीरी लेत उसास अति, पीरी परी कपोल ।
अध पढ़ित वीरी रही, नारी आऊ अडोल ॥२७॥

( चौपही )

सुनतहिं प्रान नाथ पति गौना । अहि अभरन बिष भये बिछौना ॥
चलौ प्रान प्रानेसुर संगा । व्याकुल विरह अगिन भौ अंगा ॥२८॥
झरत नैन झर[४] सावन जानौ । पिय पिय रटति पपीहा मानौ ॥
तलफति तलफ अनाथ अकेली । दिन दूभर अरु रैनि दुहेली ॥२९॥
बिलप वदन व्याकुल कल डोलै । कातर बचन दीन मन बोलै[५] ॥
कहै देव यह कौन विचारी । विरह व्याधि जलधि मँह डारी ॥३०॥
निर्गुन निठुर नाह निरमोही । कौन चूकि जिय जान बिछोही ॥
अप्छरि सक्ति हरी सुर राजा । नातर फिरति पहुमि तुव काजा ॥३१॥
पहिली सक्ति कहाँ अब पाऊँ । निसि बासर करतार मनाऊँ ॥
कलना नाथ कृपा फल पायौ । इनि नैननि तुव दरस दिपायौ ॥३२॥
रजनी भई चरन लिपटाती । सेवा करत संग लगि जाती ॥
जानी मैं न कपट की प्रीती । भई पतंग दीप की रीती ॥३३॥

---

१—च. मवै । २—अ. धम । ३—अ. कौ । ४—अ. घन । ५—अ. मे यह चरण नहीं है ।

जरहि पतंग दीप[1] की झारा। दीपक हूं नहि करहि सम्हारा॥
मरै मीन छिनु मै विनु पानी। नीर पीर तिहि की नहि जानी॥२४॥
अति हिय कठिन कंत विसवासी। हौं तौ हती चरनु तुव दासी॥
किहि कारन मनु कियौ उदासी। मरति प्यास दरसन की प्यासी॥२५॥
जौ तुहि और नारि मन भाई। हमहीं क्यौं न लियौ सँग लाई॥
जब ताई जीवन जग जीजै। निरमोही सौं मोह न कीजै॥२६॥

( सोरठा )

पुहुकर अश्वनि मेह। परछाहीं की छाँहिरी॥
निरमोही कौ नेह। तीनौ तुरत पलट्टियौ॥२७॥

( चौपही )

तब समझावहि सकल सहेली। बहुत विरह जनि होहु दुहेली॥
विधना रची सोई पै होई। जिनि विछोह किय मिलवै सोई[1]॥२८॥
विछुरि मिलनु जग मै जब होई। तिहि सम सुघड और[2] नहि कोई॥
अकसमात जो रचै वियोगू। सोऊ फेरि करे संजोगू॥२९॥
नल दमयंती मिली जो आई। माधव काम कदला पाई॥
मधुकर संग मालती मेला। करै नाथ तौ निपट सुहेला॥४०॥

( दोहा )

सुनि सुनि गुननि विसूरवै, झुरहि चित्त विकरार।
विषधर विरह डरी मनौ, व्याकुल अँग न सम्हार॥४१॥
पहुंकर प्रिय गुन फूल ? ज्यौं, लगि उर भये दुसाल।
निकसत प्रान निकासतै, तिहिं दुप व्याकुल वाल॥४२॥

( सोरठा )

व्याकुल वाल विदेह। सदन सेज भावै नहीं।
झरत नैन ज्यौं मेह। विछुरे वल्लभ भावने॥४३॥

( छंद )

प्रान पती वल्लभ विछुरं तहँ प्रान प्रियान छियं।
थकि धीरज है वल कामिनि जावन सौंह छियं॥

---

१—अ. विरह। २—यहाँ से अ. प्रति पूर्णतः छिन्नभिन्न है। आगे का पाठ केवल व. प्रति पर आधारित है।

दिन दिन दीन छीन कटि सुंदरि भरि साँस उसाँस लियं ।
दल दर्पक जोर ओर नहि पावति अति भयभर डरकि हियं ॥४४॥
विरहागिनि अंग बढ़ी बुध व्याकुल पिय बिनु यह नहि धीर धरं।
तन चंदन फूल दुकूल न भावत सूल भये कुच मूल जरं ॥
पिय दरसन हीन दीन अबला अति बल काम कमान डरं।
परम विकल कैहूं न परवि कल सुरछि परी परजंक परं ॥४५॥

( दोहा )

अति व्याकुल वर विरहनी, हनी सु मनमथ तीर।
विरह बिथा पावै नहीं, परी पयोधि गँभीर ॥४६॥

( चौपही )

सहचर कहै सुनौ नृप रानी। पति किहि लुब्ध भयो कछु जानी ॥
विकल बैन बोलै सुर नारी। है बैरिनि अति दूरि हमारी ॥४७॥
कहति कहूँ चपावति देसा। विजैपाल तहँ भूप नरेसा ॥
तिहि घर सुता रूप रति रानी। जो जुवती जग मांह बषानी ॥४८॥
तासु चित्र पेष्यौ पिय पेसा। जानतु चल्यौ जानि उहि देसा ॥
बहु विहँ सौंह करी हम सेती। ते अब कहौ कहाँ लगि केती ॥४९॥
मो मन झूठे बैन भुलायौ। आपुन जाइ उहाँ मनु लायौ ॥
कुसम कनेर कपट तन भेसी। लै चित चोर गयौ परदेसी ॥५०॥

( दोहा )

पहुकर मित्र विदेसिया, लै जु गयौ चित चोरि।
पाहन लीक ललाट की, काहि लगाऊँ षोरि ॥५१॥

( चौपही )

सुन सहचरि समुझावैं ताही। यह तौ बात सुगम अति आही ॥
कै लिप हम संदेस पठैहै। अच्छरि बोलि इहाँ लै ऐहै ॥५२॥
इहि विधि फेरि ताहि लैं आवहिं। सौति विरह कहँ फेरि बहावहिं ॥
एतौ दुष अरु सोचु न कीजै। सोचनु अंग प्रान तनु छीजै ॥५३॥
ऐसहिं रोइ रोइ मरि जैहै। तौ पिय दरस कौन विधि पैहै ॥
एता दुष्ष न कीजै प्यारी। प्रान पतो मनुरंजन हारी ॥५४॥

( दोहा )

कलपलता इमि उच्चरै, भरि भरि साँस गँभीर।
पल पल जात जुग जुग मनौ, धरौं कौन विधि धीर ॥५५॥

( चौपही )

कहै विलष मुष सुनौ सहेली। निसि वासर क्यौं भरौं अकेली॥
मदन रूप देष्यौ जिहि नैना। तिहि दृग होहिं कौन विधि चैना ॥५६॥
जिनि कर करी कंत की सेवा। तिन कर कौन पूजिहौं देवा॥
जिहि मुष कही सजन सौं बाता। तिहि कहँ और कौन सुपदाता ॥५७॥
करि उपाव सहचरी सयानी। पिय रस माँझ पियारी सानी॥
सूर चित्र सुंदरि अवरेष्यौ। कछुक भेद उहि रूप विसेष्यौ ॥५८॥
लिषिकरि दियौ सुंदरी आगे। कह्यौ नैन राषौ इहि लागे॥
पंजर घालि कीर लै आई। इहि मिलि नाम जपौ दिन साई ॥५९॥
सकल बात सुंदर मन भाई। सपि जानौ तुम पीर पराई ॥६०॥
देषै चित्रु पढावै कीरू। सींचहि बाग नैन के नीरू॥
विद्यासैनि सुवा गुन जाना। वानी भेद सुबुध्यि सुजाना ॥६१॥
छिन छिन बुध्यि करैं परगासा। मानौ सापवती सुत व्यासा॥
सुंदरि विरह सबै बिसरावै। काव्य कथा कहि काल गवावै ॥६२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं चंपावति पडे कलपलता कौ विरह वर्ननो नाम दुतियो अध्यायः॥

## अथ सैन्या संदेह वर्नन

( दोहा )

कीर पढावहि सुंदरी, कंत कियौ उठि गौनु।
मान सरोवर सैन सबु, निसि वीतति भयौ भौनु ॥६३॥

( चौपही )

होत प्रात उग्गित जग भाना। बाजे विजय गँभीर निस्साना॥
सावधान सुभट है आये। हय हाथी वाहन पपराये ॥६४॥
गुन गंभीर राइ रघुवीरू। चले जुहारि कुँवर के तीरू॥
देषे जाइ सुमंदिर माँही। सूर अलोप सेज पुनि नाहीं ॥६५॥

(दोहा)

पुहकर मन संदेह अति, नाहिंन मैटहि कोइ।
निस दिन दीपक भौन तैं, कौन गयौ लै गोइ ॥६६॥

(चौपही)

उजल सेज अनूपम डासी। बहुविध कुसम सुगंधनि वासी॥
पौढ़त पलंग लगी नहिं वारा। ना वह सेज न पौढन हारा ॥६७॥
जागहि द्वारपाल सब द्वारे। पौरिक पाट लगाये तारे॥
आयौ कौन चोर वर वीरा। देषत सबनि लयौ हरि हीरा ॥६८॥
सैन वही वेही हय हाथी। वेही सकल संग के साथी॥
वेही पंच आहिं दल माही। वेही जन वह दलपति नाही ॥६९॥
रवि विनु लगै भवन जिमि सूना। ज्यौं विनु अंक निफल सब दूना॥
जैसे दल डोलहिं विनु राजा। त्यौं बरात विनु वर किहि काजा ॥७०॥
जैसे सिद्ध मठी महँ होई। तप बल सेव करहिं सब कोई॥
सिष साषा सब होंहि वियोगी। सूनी मठी गयौ रमि जोगी ॥७१॥

(दोहा)

पुहुकर यह परतिच्छ है, जात न जानै कोइ।
हंस चलै उडि अनंत ही, सरवर सूनौ होइ ॥७२॥

(चौपही)

रोवत सकल सुभट विलषानै। मनौ षाइ ठक सूरि भुलानै॥
ढूंढहिं वन उपवन द्रुम वागा। अति अनुराग बढ्यौ वैरागा ॥७३॥
ढूंढहिं चहुँ दिसि सरवर तीरा। ढूंढहिं पैठि सरोवर नीरा॥
वल्ली लता कुंज वन जोवहिं। कर मीडहिं सिर धुनि धुनि रोवहिं ॥७४॥
चकृत सकल परत नहिं जानी। दिव्य दिष्टि कौ देषहिं ग्यानी॥
कहिहै कहा सौम नृप आगै। जब अैहै सुत हित अनुरागै ॥७५॥
अब तौं हाथ रह्यौ पछितायौ। जतनु कौन जब रतनु गँवायौ॥
गुन गंभीर कहै सुष वाता। पूरव कथा सुमरि विष्याता ॥७६॥
मो मन आवहि एक विचारा। साचु झूठ जानहिं करतारा॥
दुहुँ दिसि देषहिं विरह वियोगू। अप्छरि तहां करै संजोगू ॥७७॥
चित्ररेख अनुरुध कौ ल्याई। जब उषा मनमथ्थ सताई॥
मधु मालती सौं कुँवर मिलावा। सो कविता गुन गाननि गावा ॥७८॥

सिज्या पुनि मंदिर में नाही। तातै साचु भयौ मन माहीं॥
जब एकादसी निर्जला होई। इहि सरवर आवहि सब कोई॥७९॥

( दोहा )

चलौ सकल चंपावती, जन रे करौ मन चिंत।
यह संजोग विरंचि रचि, सत्त मिलहि जुग मिंत॥८०॥
जौ तिहि ठाउँ न पाइवी, नहिन होहि संजोग।
तौ ढूँढन कौ जगत मै, सकल धरहिंगे जोग॥८१॥
गुन गंभीर मुष वैन सुनि, भई सबन मन आस।
सत्य वचन जिय जानि कै, चले कुंवर के पास॥८२॥
तप न सीत जानै नही, चले अगम मग दूरि।
चंपावति पूछत चले, जहाँ सजीवनि मूर॥८३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चपावति पडे
सैन्या संदेह वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः॥३॥

( छप्पय )

सूर सैनि तन विरह जोग द्वासह तन साध्यौ।
राज पाट गृह छोडि गुरू गौरिष अवराध्यौ॥
गुंड गहन पाहन पहार सरिता सर थाहत।
सिंघ वाघ गैयर गरुव गैंडा अवगाहत॥
मनिधेर भुजंग मनियार मग नहि न भानु सूझत नयन।
कर चक्रपानि संगी सुभट और पंथ भूल्यौ सयन॥८४॥

( चौपही )

सूझहि नही सूर उजियारा। कठिन पंथ मानौ असिधारा॥
गाजहि सिंह नाग फुंकारहिं। सैगत मत्त विरप उप्पारहिं॥८५॥
निसु दिन चलै पंथ मन लाये। पारवती पति ईस मनाये॥
अति दुष सहत तपनि अरु सीता। होइ न स्यास रैनि भय भीता॥८६॥
सनमुष सिंह छुधित जो धावहि। तिहि छन चक्र चोप सुप पावहि॥
सुंडाहल धावहि वलि वंडा। मारे चक्र करै दो पंडा॥८७॥
चलत चलत अंतर वन आयौ। किरिनि भानु दरसन दिषरायौ॥
देषी हरित भूमि दुपदाई। जनु विरंचि रचि रम्य बनाई॥८८॥

राजपंथ देषौ विस्थारू। कछुव चित्त तव करौ विचारू॥
कछुक और जांहि जौ नीरा। झलकत महल कनक नग हीरा॥८९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहु विरिचिते चंपावती षडे
नगर दरसनो नाम चतुर्थोध्यायः॥४॥

( सोरठा )

नागर चतुर सुजान। नगर भाव देष्यौ तहाँ॥
मन जान्यौ उन्मान। चित्त हरन चँपावती॥९०॥

( चौपही )

कछुवक भूमि नाक जौं जाई। सुवन वाग दीनी दिपराई॥
उपवन सुंदर सुपद अनूपा। गुन गाहक सोभित सव कूपा॥९१॥
माली मुदित विजच्छिनु भारी। चलहिं रहट सींचहि वनवारी॥
बैठो जाइ कुँवर इक ठाँऊ। पूछन हेत नग्र कर नाऊँ॥९२॥
निरषि नैन देषहिं जौ वारी। कौतिक मगन भयौ अति भारी॥
रहट फेरि गुन घरी वनाई। वाधी एक डोरि सव लाई॥९३॥
सकल चपल पलु धीरु न गहई। षन इक अध षन ऊरध रहई॥
सीधी एक एक विपरीती। एक भरी इक आवहिं रीती॥९४॥
उहि गुन डोर वँध्यौ जल आवै। तिहि जल ते विस्थार वढावे॥
वाढ़हि विरष फरहि अरु फूलहिं। जिहिं रस वास भ्रमर रस भूलहिं॥९५॥
अरुन स्याम सित पीत सुहाये। हरित नील गुन गीतनि गाये॥
जो फलफूल मनोहर होई। द्रुमहि विछोह लेहि हरि सोई॥९६॥
कुँवर चरित्र सवै यह देष्यौ। वहु विधि अर्थ हिये महँ लेष्यौ॥
माली हतौ संग मिलि ताही। पूछौ कवन नगर यह आई॥९७॥
कही देव नगरी चंपावति। मानो अवनि रची अमरावति॥
विजैपाल चित्रांगद पूता। मानौ राज करै पुरहूता॥९८॥

( दोहा )

सुनत वचन चंपावतो, चिंता गई हिराइ।
मानौ पाई रंक निधि, यह सुष कह्यौ न जाइ॥९९॥

( छंद मोतीदाम )

सुनौ पुरमित्र वढ्यौ अनुराग। विलोकित नैन मनोहर वाग ॥
रह्यौ सुष संपति आनद झेलि। वनै फल फुलहिं लसै द्रुम वेलि ॥१००॥
सदा फर दाडिम सोभित अंब। वनै वर पीपर नीव कदंव ॥
महा रँग नारँग निव्वू संग। लता जनु अमृत सींचि लवंग ॥१०१॥
जमीरी गलग्गल श्रीफल सेव। फरे कदली फल चार्षहिं देव ॥
षजूरिनि षारक ताल तमाल। सुधा सम दाष अनूप रसाल ॥१०२॥
चमेलिय चंपक बेल गुलाब। वंधूप सरुपित सोभित लाल ॥
बनी बरबौर सिरी तहँ जाइ। रहे मिलि पंकज भौंर लुभाइ ॥१०३॥
करै धुनि पंछिय कोकिल कीर। पढै जनु वानिय वेद सुधीर ॥
दुहुँ दिसि बाग सुदेषत सूर। भयौ मन मोद सो आनद पूर ॥१०४॥

( चौपही )

सुकल भस्म राजति अति अंगा। चंदन षौर किधौं जल गंगा ॥
अरुन अधर दसनावलि सोहै। देषि रूप कामिनि मन मोहै ॥१०५॥
लैकर बीन बजावहि गौरी। मृग माला सिर आवहिं दौरी ॥
संग भुजंग अंग लिपटानै। अति हित रंग सुगध लुभानै ॥१०६॥
अरुन असित सित नैन विसाला। धरे कंध सुंदर मृगछाला ॥
प्रिया अजान जान सुरग्याना। प्रिया विरह वैराग भुलाना ॥१०७॥

( दोहा )

षग मृग संग भुजंग लै, आयौ सरवर तीर।
पार बनी तहँ चारि दिसि, जटित कनक मन हीर ॥१०८॥

( छद मोतीदाम )

लिये मृग पच्छिय संग भुजंग। लसौ जनु संकर जीति अनंग ॥
गयौ जहँ सूर सरोवर तीर। भरे जह नागरि नागरि नीर ॥१०९॥
वनी जहँ पारि जटी नग हीर। प्रफुल्लित पंकज भौंरनि भीर ॥
वहै तहँ सीतल मंद समीर। करे जल मज्जन पंडित धीर ॥११०॥
पढै दुज वृंदनि ब्रह्म समान। करे सुर अर्चन तर्पन दान ॥
जहा तप सिध्य करे तप होम। करे जल पानि मनो नर गोम ॥१११॥

महाजल जूथ बने जल जंतु । मनौ पय सागर नाहिन अंतु ॥
तरञ्चक सारस हंस चकोर । चकवा चकई जहँ सारस मोर ॥११२॥
वहाँ तरु चंदन चारिहु ओर । करैं उनमत्त जे कोकिल सोर ॥
हलै जल धार सु मारुत जोर । उठैं जनु सागर पीर हिलोर ॥११३॥
चलैं तरुनी सिर गागरि नीर । मनौं रस नार तरंगिनि तीर ॥
फिरैं जहँ गुंजत भौंर समीप । मनौं सुरलोक के सिंघल दीप ॥११४॥
जटे मनि मानिक कुंडिल लोल । झलक्कत सोभित चारु कपोल ॥
छुटी अलकैं झलकैं सुष येमि । चढ़ैं अलि मालि जलज्जहिं जेमि ॥११५॥
सितासित चंचल नैन विसाल । किये पट लज्जित घूँघट वाल ॥
उरोजनि उन्नति केहरि लंक । मनोहर बैन विलोकनि बंक ॥११६॥
चलै गज गामिनि मंद मराल । ठमंकति पाइनि पाइर माल ॥
झनंकिति झुंझुनु रुझुनु जोर । बजैं रव किंकिनि नूपुर मोर ॥११७॥
विराजत आनन घूँघट ओट । करैं तकि बान कटाच्छनि चोट ॥
सषी सब सामि मिली मुसिक्याइ । अली रति अंगनि देह बनाइ ॥११८॥
गहै इक पाननि बीरिय दंत । अली इक रूप सराहति कंत ॥
त्रिया इक नैननु अंजनु देह । करैं घट ओट भरी भरि लेह ॥११९॥
हसैं हरषैं बरषैं सुषनीर । चलैं भरि एक घड़ी इक तीर ॥
गुहैं इक हार सुधारति मोति । निहारति आनन दर्प्पन जोति ॥१२०॥
विलोकत सूर सुनैननि वाम । लषौ सुभ सूर सिष्यौ सुषधाम ॥
रह्यौ इकही टक नैननि हारि । विलोकत रूप अनूप विचारि ॥१२१॥

(दोहा)

कुँवर निरषि नव नागरी, सुंदरि सरवर तीर ॥
प्रीति त्रिया वर आनि कै, अनिचित भयौ अधीर ॥१२२॥

(चौपही)

तान विधान लिये कर बीना । सुनि मृग मीन भये आधीना ॥
चक्रत चित्त सकल नर नारी । अचिरजु देषि अनूपम भारी ॥१२३॥
एक अनंग कहै यह आही । कहै एक अलकापत ताही ॥
कहै इंद्र आषंडल कोई । सिव संकर बिनु और न होई ॥१२४॥

## छंद कामिनीमोहन

देषि सोभा रही रीझि प्यारी प्रिया । मग्ग भूलै चलै चित्त हारै त्रिया ।
संग छाँडै मृगी जेसि भूली फिरैं । हार टूटे हिये भूमि मोती गिरैं ॥१२५॥
छूटि वैनी गई वार बंधै नहीं । नेह लाग्यौ नयौ सैन अग्गी दही ॥
प्रान दीनै जहाँ बीन वानी सुनी । पानु कीनै मनौ माधुरी वारुनी ॥१२६॥
जीय जंपै नहीं विस्सुरी बत्तियाँ । नैन आँसू चलै दाह दें छत्तियाँ ॥
रित्तु पावस्स ज्यौ नीर नद्दी वहै[1] । प्रीति पूरी हिये कावि कित्ती कहै ॥१२७॥
एक जानै नही छीन है अंचरा । भौन रीती चली सीस नजे वरा ॥
एक टक्कै रही अंखिया जोहनं । रूप देषौ जहाँ कामिनी मोहनं ॥१२८॥

### ( सोरठा )

कामिनि सरवर तीर । रूप जो अद्भुत पेषि कै ॥
तन अति चली अधीर । चित विसरे विपरीत गति ॥१२९॥

### ( चौपही )

आइस मोहन राग वजायौ । नगर नारि चित चाहि चुरायौ ॥
मदन रूप अरु गान सुजाना । किहि त्रिय चिर धीरज ठहराना ॥१३०॥
प्रति भव घरनि सुंदरी आई । अति अधीन गति गति बिसराई ॥
इक रीती घट ल्याई भोरी । इक त्रिय सीस नागरै फोरी ॥१३१॥
अंजनु दियै एक ही नैना । भूली एक कहू कह बैना ॥
पति ग्रह त्रिया जिमावन लागीं । तन मन लीन अतन अनुरागीं ॥१३२॥
बिसरै चित्त न पेषहि थारी । भोजनु दियौ भूमि मे डारी ॥
इक त्रिय पान चवावत नाहीं । सुंदर रूप वस्यौ मन माहीं ॥१३३॥
जतन जतन करि वीरी कीनी । सो तजि सुप्प सुनौती दीनी ॥
दीपकु एक उदीपन आई । दिया छोडि आंगुरी जराई ॥१३४॥
मोहीं सकल रूप की सारी । या गति देषि देहि पति गारी ॥
संकित त्रिया कहै सुप वाता । कंपहि मनौ कदलि दल गाता ॥१३५॥
सुनौ वचन प्रानेश्वर नाहीं । एक उद्वेग भयो पुर माहीं ॥
जोगी एक कहूँ ते आयौ । तिहि कछु राग उचाट वजायौ ॥१३६॥
सो पुन सुनि मोहे सुरनारी । जिहिरे सुनी तहि गति बिसारी ॥
चाहत चित्तु रहो जो हाथा । पग मग उगग आहि उहि नाथा ॥१३७॥

---

१—भरै ।

( सोरठा )

वनसी बीन बजाइ। जुवति मीन मन हरि लियौ ॥
प्रेम ठगोरी लाइ। विवस भये नर नारियाँ ॥१३८॥

( चौपही )

नगरी सकल विवस रस भोई। घर घर घेर करहिं सब कोई ॥
जोगी एक कहूँ तेँ आयौ। तिनि जुवतिनि कौं चित्त चुरायौ ॥१३९॥
अति प्रवीन करबीन वजायौ। मानौ सीस ठगौरी नायौ ॥
राज मँदिर संचरि यह बाता। इकु जोगी अरु रूप विधाता ॥१४०॥

( दोहा )

नगर लोग नरनारि सब, विवस भये उहि रूप।
एक कहै कोई देव है, एक कहै कोई भूप ॥१४१॥

( चौपही )

गावहिं राग सिंगार वियोगा। पूछत तबै नगर के लोगा ॥
है कोई ठाउँ रम्य सुषदाई। जोगी जती रमहि तहँ जाई ॥१४२॥
उत्तर दियौ हरष मन माहीं। नगर साँझ सिव मदिर आहीं ॥
परम रम्य मंदिर सुषदाई। जाहि चाहि दुप जाइ भुलाई ॥१४३॥
वाग मध्य सो अस्थलु आही। राज महल पुनि नियरे ताही ॥
सुनत सूर वीना कर लीनौ। नगर मध्य तन आगम कीनौ ॥१४४॥

( दोहा )

कनक कोट देष्यौ तहाँ, पौरिनि जरत जराव।
चंपावति चित चाहि करि, भयौ चवग्गुनु चाव ॥१४५॥

( छंद मोतीदाम )

भयौ चित चाव चवग्गुनु चाव। निरष्षत नैन निहार जराव ॥
चहूँ दिस कोट सुकंचन दीस। वनै नग लाल कंगूरनि सीस ॥१४६॥
चल्यौ नगरी महँ आनद पूर। अनूपम रूप मनौ ससि सूर ॥
विलोकित भीर हजार वजार। घरग्घर तोरिनि पौर पगार ॥१४७॥
पटंवर मंडित सोभित हाट। रच्यौ जनु देव सुरप्पति वाट ॥
कहूँ नग मोतिय वेचत लाल। करै तहँ लच्छिन मोल दलाल ॥१४८॥

कहूँ गढ़ैं कंचनु चारु सुनार। कहूँ नट नाटिक कौतिक हार॥
कहूँ पट पाट बनैं जरतार। कहूँ हय फेरत हैं असवार॥१४६॥
कहूँ गुहैं मालिनि चौसर हार। कहूँ तिसवारत हैं हथियार॥
कहूँ वरई वर फेरत पान। कहूँ गुनी गाइनि साजत गान॥१५०॥
कहूँ पढ़ै पंडित वेद पुरान। कहूँ नर तानत वान कमान॥
कहूँ गनिका गन रूप निधान। कहूँ मुनि ईस करैं तप ध्यान॥१५१॥
चल्यौ नगरी सब देषत सूर। कहूँ मृग मद्द सुगंध कपूर॥
रहै इक नागरि नैन निहार। चलै इक पाट गवाप उघार॥१५२॥
रहैं रस रीझि सबै मन हार। करैं तन प्रान तहाँ बलिहार॥
चल्यौ सबु देषत सुंदर देस। गयौ तहँ देवल देव महेस॥१५३॥

( दोहा )

देवल देव महेस के, गयौ चरन चित लाइ।
पुहुकर परम उतंग अति, सोभा वरनि न जाइ॥१५४॥

( छंद )

देषि देवल्ल उतंग भारी। सिवसनकाधि सेवाधिकारी॥
कनक मयं मंडि रत्न हीरं। कलस द्रुति सूर मिलि किरनि नीरं॥१५५॥
थंभ सौपन्न सुत्ती झलक्के। देषि गंधर्प मुनि देव थक्के॥
उच्च उत्तंग सोभा न आवै। सिषिरि कैलास उपमान पावै॥१५६॥
नर्मंडियौ नाद गंधार सोहै। हरत घल पाप जव नैन जोहै॥
सिद्धि वहु वृंद बैठे तहाँई। एक आसंन्न टरि काल जाई॥१५७॥
लीन संमाधि तन ध्यान कीनै। एक सिवचरन तन चित्त दीनै॥
धन्य सो नगर अरु नगर वासी। सदा सेवत विस्नेपि कासी॥१५८॥

( दोहा )

धन्य नगर वासी सबै, जे सेवहिं चित लाइ।
पारवती पति ईस कौं, दरस कियौ तहँ जाइ॥१५९॥

( छंद नाराच )

कपाल माल व्याल ग्रीव चंद्रभाल सोहनं।
त्रिलोकनाथ कालनाथ विश्वनाथ मोहनं॥
कृपाल नाथ कालनाथ भूतनाथ नध्ययै।
पिनाकपान सूलपान नंदि जासु मध्ययै॥१६०॥

अनंग भंग राग रंग संग जासु सुंदरी।
मसान भूमि सैनि साज गूढ़ कंदरा दरी॥
गिरीस ईस[1] त्रंबकेस व्योम केस रुद्रये।
विभूति अंग चंद्रचूड कासमीर रुद्रये॥१६१॥
तरंग गंग उत्तमंग गौर अंग सोभये।
हरत्तदेव नारदादि संग जासु लोभये॥
अर्थ धर्म्म काम मोच्छ दानि रीझि संगही।
नमो नमो नमो मृडानि कंत कंत रंग ही॥१६२॥

(दोहा)

देव देव दरसनु कियौ, रह्यौ चरन चितु लाइ।
सिध्य सकल सिवधाम के, देपि उठे भरराइ॥१६३॥

(चौपही)

सोभित सुक्ल भस्म अति अंगा। चंदन घौरि किधौं जल गंगा॥
सोभित सरस उरग सिर माला। वीना कंध धरे मृगछाला॥१६४॥
अरुन अधर जुग नैन सुहाये। रहे मोहि जिनि देषन आये॥
देपत चक्रत रह्यौ सब कोई। सिव संकर विनु और न होई॥१६५॥
कहै एक कोई भुवपति आही। कहैं एक अलकापति ताही॥
येक कहै कोई गंध्रप देवा। जोरें हाथ करें सब सेवा॥१६६॥
लिय अतीत कर वीन रसाला। आई धाइ सुनत मृग माला॥
रहे विवस गति छाँडि विहंगा। रहे रीझि रस रास भुजंगा॥१६७॥
सब नगरी सर पंच सताई। घर घर वात यहै चलि आई॥
जोगी एकु कहूँ तें आयौ। सकल नारि नर चित्तु चुरायौ॥१६८॥
मोहन रूप आइ निर्वानी। सुर नर जच्छ परहि नहि जानी॥
जोई सुनै सोई उठि धावै। देषि रूप गति मति विसरावै॥१६९॥

(सोरठा)

मोहन मंत्र के जोग। आकर्षन वीना लिये॥
विवस भये सब लोग। मनौ परी सिर मोहनी॥१७०॥
तन मन सर्वस वारि। प्रान करै अनुचर तहीं॥
विथक रहै नरनारि। मगन भईं वह रूप लषि॥१७१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे सिवदर्सन वर्ननो नाम पचमो अध्यायः॥ ५॥

---

१—ईस के बाद 'धीस' अतिरिक्त दिया हुआ है।

( चौपही )

लग्न द्वैस सब नियरै आये । दिसि दिसि भुवपति मंत्रिनि त्याये ॥
दल चतुरंग संग सब आवहिं । बिनु पावस घनस्याम दिषावहिं ॥१७२॥
मदन मुदित पूछहिं नित बाता । कौनु नृपति आवहिं विष्याता ॥
वल्लभ अवधि अषंड विचारे । सुंदरि धाइ चढै चौवारे ॥१७३॥
दिसि दिसि देस प्रगटि दल आवहिं । बहुत निसान मृदंग बजावहिं ॥
दासी आइ जौ पूछहिं सोई । वैरागर पति कहै न कोई ॥१७४॥

( दोहा )

नृप कन्या उतकंठिता, वीतत अवधि विचारि ॥
प्रान नाथ पेषै नहीं, रही अपुनुपौ हारि ॥१७५॥
राज महल मंगल बहुत, सुदिन सुयवर मानि ॥
विरह विथिति रंभावती, अवधि अतीती जानि ॥१७६॥

( चौपही )

बहुरिहु विरह अंग अधिकान्यौ । कारन कवन परतु नहिं जान्यो ॥
जीवनु रहै अवधि गहि आसा । चात्रिक स्वाति आस ज्यौं प्यासा ॥१७७॥
बीत न अवधि कौन विधि जीवै । चात्रिकु और नीर नहि पीवै ॥
कुवरि अंग उद्वेग जनायौ । रोगु वियोगु छाइ तन आयौ ॥१७८॥
बहुरौ प्रगट भई तन चिंता । निसि दिनु ध्यान करै मन मिंता ॥
जप तप नेम करै इहिं लागै । सो पति प्रान देषियतु आगै ॥१७९॥
दिन दस रहे लगन मैं आई । छिन छिन विरह अंग अधिकाई ॥
अति दुष दरद जरद सुष झांई । मनु सनेह तन हरद चढ़ाई ॥१८०॥

( गाथा )

दुसह अग्नि अनंगो । सहिये सहित आस आदंधीयं ॥
अवधि गता छिन भंगो । जीवो अर्थ मरन वें सेस ॥१८१॥

( दोहा )

मदन मुदित इमि उच्चरै, कुवँरि धरहि मन धीर ॥
गगन देव बानी भई, सूर हरैगौ पीर ॥१८२॥
दीरघ विरह विदेस पिय, पहुकर अवध अतीति ॥
काम प्रबल अबला महल, विषम अंग अति प्रीति ॥१८३॥

कहति वचन अति सुंदरी, जद्दिप टरै वहु काल ॥
विधि विधानु टरिहै नहीं, आवैं सूर उताल ॥१८४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षंडे अवधि उतकंठिता नाम षष्टमो अध्यायः ॥ ६ ॥

( चौपही )

इतहिं विरह व्याकुल रंभावति । उतहिं सूर निरषहिं चंपावति ॥
संकर ईस चरन चितु लावहिं । विरह वियोगु उचाट वजावहिं ॥१८५॥
देषें देस देस पति राजा । आवहिं सकल सुयंवर काजा ॥
अति प्रताप पहुमी पति सोई । तिनहू वात न पूछै कोई ॥१८६॥
हय गय गैयर पट वहु हीरा । ल्यावहिं भुवपति मंत्रिन वीरा ॥
विजैपाल चक्कवै नरिंदू । सोभित मनौ नषत मधि चंदू ॥१८७॥
कुवंर देषि यह चिंता भई । हमरी वात कैसे पहुँचई ॥
भुवपति भूप पार नहिं पावैं । हम अतीथ किहिं लेषे आवैं ॥१८८॥
गयौ वहुरि सरवर के तीरा । अमल कमल सोभित जहँ नीरा ॥
विरह वियोग वजावै वीना । तन मन लीन भये परवीना ॥१८९॥
वहुरि जीव वनवासी आये । सुनत कुरंग संग उठ धाये ॥
रीझैं सुनैं उरग विनु काना । झरना झरहिं जो पुलकि पषाना ॥१९०॥
थकित विहंग धरैं मन धीरा । चलत न पवन वहत नहिं नीरा ॥
नगर लोग सव देषन आवा । सुनत स्रवन तन मन विसरावा ॥१९१॥
गदगद गिरा रोम उठि अगा । विथकित मनौ भई गति पगा ॥
मोहे रूप सकल नरनारी । तिहिं परमदन वान करधारी ॥१९२॥

( दोहा )

मोहन राग वजाइ करि, चितवित लियौ चुराइ ।
मैन वान विह्वल भई, नगर नार वहु भाइ ॥१९३॥
विरह विथा वर विरहिनी, संजोगिनि चित चाहि ।
देह गेह विसरीं सवै, यह रस तज्यौ न जाहि ॥१९४॥

( चौपही )

नगरी सकल राग रस भोई । अति रस विकल भयौ सव कोई ॥
घर घर वात यह चलि आई । सो सुधि राज दुवारिहिं जाई ॥१९५॥

अचरजु सुनत सबन मनभावा। गुन सरूप रासि कोई आवा।
सुनत श्रवन गुनमंजरि धाई। गुनगाहक गुन देषन आई॥१९६॥
गुन अरु रूप रीझि रस भोई। मानौ कनक कसौटी सोई॥
इक टक नैन लग्गहिँ नहि तारे। तनु मनु प्रान निछावरि वारे॥१९७॥

( गाथा )

रमयति गुन गन ठयौ। लुवधरस वाल अंग पंकजाइ॥
मानसयेव्व मराले। मुक्तासिव भाति हार गुन जाई॥१९८॥

( चौपही )

तिहिँ छिन सूर सबन तन देषा। विरह वान उनि विथा विसेषा॥
परी दिष्टि गुनमंजरि नारी। परस्त्री प्रौढ विजच्छिनि भारी॥१९९॥
जान्यौ मरम मरस कर घाऊ। तिहि छिन अधिक भयौ चित चाऊ॥
मैगल मत्त गवनु गयौ पासा। पढी गाह अति उच्च उँसासा॥२००॥

( गाथा )

भूतल अस्थि न रामौ। जो जानति विरह रस भवे॥
असह अधीर सकामो। दुल्लभ मित्रस्य विरह विषमेन॥२०१॥

( सोरठा )

गुन मंजरि गुनवान। मर्म भेद विह्वल भई।
कियौ मधुर धुनि गान। कुंडलीक उत्तर दियौ॥२०२॥

( कुंडरिया गाथा )

वाला विरह विदेही, जानौ जानति सुंदरी।
प्रेमो दुसह विस्मयसनेही, लज्जा गढ वीय अंकुस सीस॥
लज्जा अंकुस सीस मदन मैगल मद मंता।
वेलम्हार विय भार विकल विरहिनी विनु कंता॥
एकु नाम आधार, रहनि जंपति उरमाला।
पुहुकर नेह विदेह विरह व्याकुल वर वाला॥२०३॥

( चौपही )

गुन मंजरि गुनु वैनु सुभाष्यौ। प्रेम घाइ जनु आपनि राष्यौ॥
सषि सुजान सुष उत्तर दीनौ। मानौ नेह निमंत्रनि कीनौ॥२०४॥
उलटि सूर आयौ सिवधामा। कीनौ जहाँ प्रथम विश्रामा॥
गुन मंजरि वहँ तुरत आई। जिहि ठां कुँवरि विरह अधिकाई॥२०५॥

मदनमुदित पूछहि हँसि बाता। किहि ठाँ कियौ गवनु परभाता ॥
सषि संवात सब आजु बिसारा। कै अलि भई कहूँ अभिसारा ॥२०६॥
कहै वैनु गुनमंजरि नारी। अचिरजु एक सुनहिं जो प्यारी ॥
जोगी एक आहि निर्वानी। ह्वैहै तुमहिं सुनी यह जानी ॥२०७॥
हौं गइ प्रात सरोवर तीरा। जहाँ विमल वारिज अलि भीरा ॥
बिस्मित देषि अचंभौ भारी। पग मृग उरग जुरे नर नारी ॥२०८॥
रूप रासि अरु गान सुजाना। है विद्या दस चारि निदाना ॥
जानति सषी बुद्धि उन्माना। त्रिया विरह वैराग भुलाना ॥२०९॥

(दोहा)

अलि परमल उनमंतु सँग, सुप अरु लुब्ध चकोर।
नगर नारि नर नागरी, चाहत आनन ओर ॥२१०॥
छत्र वंस अवतंस कै, पहुँम पाल पति सोइ।
सूर कुँवर उन्मान सौं, उहि विनु और न होइ ॥२११॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चपावति षडे
गुन मजरी दरसनो नाम सत्तमो अध्यायः ॥७॥

(चौपही)

मुदिता मुदित सुनत यह बाता। प्रफुलित हृदै मनौ जल जाता ॥
चली उभै रंभावति पासा। विरह विथा जहँ परम उदासा ॥२१२॥
मुदिता मुदित कहत सुनु प्यारी। गुन मंजरि गुन जानन हारी ॥
आपुनु आजु सरोवर न्हाई। बिसरे प्रान देह घर आई ॥२१३॥
जोगी एक नगर मह आयौ। अति गुनवंत रूप मन भायौ ॥
अति प्रवीन वीना कर धारी। रहति मोहि षग मृग नर नारी ॥२१४॥
इक सुंदर अरु विरह वियोगी। राज कुमार आहि नहि जोगी ॥
पहिल सुनै हमहूँ ये वैना। राषे रोकि लाज भरि नैना ॥२१५॥
अब जो देषि गुन मंजरि आई। सहस जीभ करि करत बडाई ॥
निस्चै बात कहति सषि सोई। सूर सैन विनु और न होई ॥२१६॥

(दोहा)

अवधि दिवस बीते बहुत, लगन दिवस पुनि आइ।
तिहिं गुन आगम सूर कौ, मानति सत्ति सुभाइ ॥२१७॥

दूरि देस कारन बनै, प्रीति फंद अति जोर।
जोग भेष तजि भोग सब, आइ पहुंचिय ओर ॥२१८॥
जौ अब आइसु दीजियै, हम पुनि देषैं ताहि।
रूप विचित्र उन्मान करि, कहैं सत्य समुझाहि ॥२१९॥

( चौपही )

रंभावत सुनि अकथ कहानी। चकृत चित्त अचिरजु अधिकानी ॥
विसमय हर्ष भयौ इकवारा। कहति करौ करुना करतारा ॥२२०॥
जौ यह बात निरंतर नाहीं। है मम सरनु अवध छिन माहीं ॥
जौ पुनि वचनु सत्य यह होई। भेटौं जोगु भेष वर सोई ॥२२१॥
आदि अंत सब सुष रस भोगी। कारन कवन भयौ वह जोगी ॥
जो यह जोगु धरै अनुरागै। जोगिनि होहुँ अवहि उहि लागै ॥२२२॥
जो ए भेष मेरे प्रीतम कीन्हा। वहै रूप मम अंकुस चीन्हा ॥
विजैपाल नरपति औ नाहू। जोगी जानि करै नहिं व्याहू ॥२२३॥

( दोहा )

हौं कन्या छितिपाल की, सूर पृथीपति पूत।
हौं वैरागिनि जोगिनी, वह जोगी अवधूत ॥२२४॥

( चौपही )

अब तौ अली यहै वनि आई। तजौं लाज कुल कानि वढाई ॥
कंथा पहिरि विभूति लगाऊँ। प्राननाथ गोरिष गुहराऊँ ॥२२५॥
छाँड़ौं राज पिता घरवारा। छाँडौं लोग कुटुम परिवारा ॥
तजौं प्रेम पहुँपावति माई। प्राननाथ पिय देषौं जाई ॥२२६॥
तलफति तलफ अलप जनु आऊँ। नैन प्रान सब मिले अघाऊँ ॥
देह गेह तैं भये उदासी। व्याकुल विरह दरस की प्यासी ॥२२७॥

( दोहा )

मदन मुदित इमि उच्चरहि, सुनि विरहिनि वर नारि।
मिलन अवध आई निकट, बोलौ वचन विचारि ॥२२८॥
जिहिं प्रभु विरह विदा कियौ, कीनौ मिलन विचारि।
सो प्रभु सुष संजोग मैं, नाथ निवाहन हारि ॥२२९॥

( चौपही )

आइसु देउ देषि हम आवहिं। पिय मुष चाहि चाह मन ल्यावहिं ॥
जौ उनि जोगु धरौ अनुरागे। जोगिनि होहु अवहिं उहि लागे ॥२३०॥
यह तौ जुगतु सदा जग माहीं। सदा पहुमपति राज कराहीं ॥
जो रघुनाथ जोगु वपु धारौ। लंक जीत रावन संवारौ ॥२३१॥
द्वादस वरष रहै वनवासी। तजी न लाज धर्मसुत आसी ॥
कारन पाय भयौ यह जोगी। करिहैं सर्व रास रस भोगी ॥२३२॥
राज लच्छ सोभित उत मंगा। सो नहि तुरतु जो भस्म तुरंगा ॥
[1]कंथा पहिरि विभूति लगाऊँ। प्रान नाथ गोरिप गुहिराऊ ॥२३३॥

( दोहा )

चिंता चित्त न कीजिये, हरषौ हित चित चाइ।
सषियनि आइस दीजिये, परपहिँ प्रीतमु जाइ ॥२३४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चंपावति पडे जोगु अनुरागु वर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

( चौपही )

रंभा सुनत धीर मनु कीनौ। मदन मुदित कौ आयसु दीनौ ॥
देषौ जाइ जोग वैरागा। उपज्यौ जाहि सुनत अनुरागा ॥२३५॥
जौ सति होहिँ प्रेम रस माता। कारन हेत पूछियौ वाता ॥
मदन मुदित सुनि सुंदर वानी। अति हित चली करुन रस सानी ॥२३६॥

( दोहा )

गुनमंजरि कौ आदि दै, सषी अष्टमिल संग।
मानौ रति दूती चलीं, अरचन देव अनंग ॥२३७॥

( चौपही )

सषियन सहित चली सिव धामा। मानौ मुदित कामरस कामा ॥
जप तप जोग जुगति वलि देवा। मानौ करैं सवै सिधि सेवा ॥२३८॥
प्रथम पाइ नव नाइक साई। अष्ट नारि मिल देषन आई ॥
मदन देव पूजा मति कीनी। सिव अर्चन सामिग्री लीनी ॥२३९॥

---

१—२२५ संख्या चौपाई की दूसरी अर्धाली भी यही है।

( दोहा )

पुहकर अचिरज एहु मन, क्यौं करि कहौं बनाइ।
कामिनि संग अनंग लै, संकर पूजन जाइ ॥२४०॥

चंदन फूल सुगंध लै, धूप दीप बहु भाइ।
मन वच क्रम करि कामना, चली चरन चितु लाइ ॥२४१॥

( छंद प्रवानिक )

चली प्रवीन नागरी। अनंग अंग आगरी ॥
मराल मंदगामिनी। अनेक भाइ माभिनी ॥२४२॥

घनंक घोर घूँघुरा। चलंत सोभ नूपुरा ॥
जराइ पाइ जैहरी। विराज लंक केहरी ॥२४३॥

उरोज छाजि छत्तियाँ। कठोर बोल बत्तियाँ ॥
सुरंग अंग सारियाँ। सुमध्य मध्य नारियाँ ॥२४४॥

मुषारविंद सोहई। चकोर चारु मोहई ॥
विसाल बाल लोचनं। वियोग ताप मोचनं ॥२४५॥

विराजमान भूषनं। सबन्नि साल दूपनं ॥
डुलंत नाक मुत्तियाँ। दुभाइ गुंज दुत्तियाँ ॥२४६॥

कटाच्छि बान बंधहीं। कमान भौंह संधहीं ॥
जराय जोर कुँतला। नवीन मेघ चंचला ॥२४७॥

चमंक चारु कुंडलं। विराज चन्द्रमंडलं ॥
मनोज मत्त मोहनी। रसाल बाल सोहनी ॥२४८॥

( दोहा )

पुहुकर वर भामिनि चली, साजे सहज सिंगार ॥
हर मंदिर पहुँची सबै, चित्तहँ रिपु अधिकार ॥२४९॥

देव देव दरसन कियौ, पूजा पंच प्रकार ॥
कर जोरहिं विनती करैं, मिलवहु प्रान अधार ॥२५०॥

( चौपही )

देव पूज तव बाहिर आई। दरस हेत नव नाइक न्याई ॥
अंग अनूप पट पहिरि बनाई। पावस प्रगट इंद्रधनु आई ॥२५१॥

देष्यौ रूप अपार अनंता। बुधि विवेक नहिँ पावहिँ अंता ॥
जटा मुकुट मंडित भुवपाला। अरुन स्याम सित नैन विसाला[1] ॥२५२॥
मोहीँ सकल रूप सहचारी। तदपि लाज मन राषन हारी ॥२५३॥
भईं अधीन वदन विधु चाहैं। पौढ़ा धीरा धीर निवाहैं ॥
आई निकट रूप की रासी। पायौ सिद्ध सिद्ध भईं दासी ॥२५४॥

( दोहा )

दीनी प्रथम परिक्रमा, करि प्रनाम वहु भाइ।
नैन प्रान मन मोहि करि, रही चरन चितु लाइ ॥२५५॥

( चौपही )

चाहत कियौ सूर सनमाना। अष्ट सषी जानी उन्माना ॥
उदित प्रेम प्रगट ह्वै आयौ। हिय हुलास दुहुँ ओर जनायौ ॥२५६॥
मदन मुदित पूछहि हँसि वाता। मानौ सूर उदे जल जाता ॥
अति आनंद भई अनुरागी। मृदु मुसक्याइ चली फिरि लागी ॥२५७॥

( दोहा )

मदन मुदित इमि उच्चरै, विनती करत डराउँ।
वनत नहीँ पूछे विना, मन वलिहार करौंउँ ॥२५८॥

( चौपही )

सकल सषी मिलि पूछन आँई। निरषि रूप अचिरजु अधिकाँई ॥
चरन चाहि आपुन उनमाना। निस्चै भेद परतु नहिं जाना ॥२५९॥
देषहिँ तुमहि नहीँ मन धीरा। परौ रूप सागर गंभीरा ॥
इतौ रूप नहिँ नैननि देष्यौ। सुंदरता मनमथ्थ विसेष्यौ ॥२६०॥
संकर भेष उरग उर माला। तिहिं तैं होड वदी मिलि वाला ॥
पूछैं वचनु सत्य कहि दीजै। विन गुमान मन क्रोध न कीजै ॥२६१॥

( दोहा )

एकु कहै हर देव है, एकु कहै यह मैन।
तातैं सत्य वषानिये, होहिँ जुवति चित चैन ॥२६२॥

---

१—वैठे पास उरग मृग छाला। अतिरिक्त।

तब आइस आइस दियौ, हम नरवे प्रभु देव।
अति बल सौं कछु बल नहीं, जानति जानिँहि भेव ॥२६३॥
छीन देह नहिँ सहि सकै, प्रबल पंच सर घाइ।
मकरध्वज वैरहूँ परौ, चंपक चाँपु चढाइ ॥२६४॥

( चौपही )

मुदिता मुदित कही मुष वानी। अंतर कथा सकल हम जानी॥
अचिरजु एक आइ इहि वारा। पहुमपाल तुम राज कुमारा॥२६५॥
राजकुमार होहिँ नहिँ जोगी। अरु जोगी नहिँ विरह वियोगी॥
यह जु बात नहिँ जानत जोगी। तुम जोगी अरु विरह वियोगी॥२६६॥
सकल बात जद्दिप हम पाई। कहौ नाथ त्रिरदंतु वनाई॥
मन अति दुष्य अचंभौ होई। जोगी नृपति न चाहतु कोई॥२६७॥

( दोहा )

प्रेम वचन अरु चातुरी, सुनत सूर आनंद।
इंदीवर विहसैं मनौ, वदतु विलोकतु चंद ॥२६८॥
कहत बात आनंद मैं, तुम जानतु सव भेद।
सिद्धि जोगु पथ पाइये, वदतु लोक अरु वेद ॥२६९॥
भयौ जोगु तब जब सफल, सो जगु नैननि द्रिष्प।
पूरव पुन्यनि तें भयौ, सकल सिद्धि परतिष्प ॥२७०॥
करनहार करता रहै, मिलीं रूप की रासि।
सबै सिद्धि की आस मन, अष्ट सिद्धि हैं दासि ॥२७१॥

( चौपही )

जिहिँ कारन हम जोग विचारा। सो अव काजु करौ करतारा॥
भेटौ सिद्धि सिद्धि मन पाई। जोग जुगति विधि आज वनाई॥२७२॥

( दोहा )

अनुमा, महिमा, गरमता, लघुमा प्रापति काम।
वसीकरन वरईसदा अष्ट सिद्धि के नाम ॥२७३॥

( चौपही )

जानौं अष्ट सिद्ध कर नाऊँ। पायौं सिद्ध वाम कर ठाँऊ।
अब छिन छिन करतार मनाऊँ। सिद्धि दसा इनि नैननि पाऊँ॥२७४॥

( दोहा )

मदन मुदित इमि उच्चरे, तुम नरपति नर नाह।
वैरागर अधिपति बली, आये जान विवाह ॥२७५॥
किहि कारन वपु जोगु धरि, कहँ दल हय गज साज।
आपु एक रवि ज्यौं चले, यह अचभ जिय राज ॥२७६॥
विजयपाल भुव पाल नृप, कीन्ह सुयंवर काज।
आवत बहु सैना सहित, देस देस पति राज ॥२७७॥
प्रेम लुब्ध रंभावती, तुव व्रत धरौ विसेप।
विजैपाल नृप तेजमय, नहि पत्याह इहि वेष ॥२७८॥
मदन मुदित मम नाम है, और सुदित मति येह।
सोई जतनु विचारिजै, वेग विराजौ गेह ॥२७९॥
प्रभु प्रमाद तुव हेत चित, हय गय साजु अपार।
दिव्य वसन वहु भाँति अति, ताहि न लागहि वार ॥२८०॥
भेष उतारहु जोग कौ, भोगु धरौ मन माहिँ।
सुदिनु सयंवर निकट है, राजा रंभा नाहिँ ॥२८१॥

( चौपही )

सूर सिंह उठ उत्तर दीनौ। मुदिता मोल उभै मनु लीनौ॥
जिहि विध सुनी श्रवन तुवँ वाता। पेषी नैन अधिक विष्याता ॥२८२॥
एक विचित्र और तुम दोऊ। हौ परदुप्य हरन हित कोऊ।
दिवस पंच पुर पाटन पेष्यौं। वुधि विचित्र नहिँ नैननि देष्यौं ॥२८३॥
मुदिता कहै सुनौ प्रभु देवा। दासी दास करहिँ प्रभु सेवा॥
मै प्रभु सेव करी सुनि सोई। मांगौ आवस फल यह होई ॥२८४॥
दच्छिन विजय सँदेसौ आयौ। वुधि विचित्र तिहिँ ठाउँ पठायौ॥
विजै नगर नव नग्र वसायौ। रचना रचन काज उठि धायौ ॥२८५॥

( दोहा )

अव यह मंत्र विचारिजै, वेगि उतारौ जोगु।
करनहार करता रहै, होहिँ सजन संजोग ॥२८६॥

( चौपही )

रंभा विरह कहौं किहि भाँती। छिन छिन अधिक निमिष नहिँ साँती॥
अव तज लाज कहति अनुरागी। जोगिनि होहुँ प्रेम रस पागी ॥२८७॥

जब तुव चित्र चित्र करि ल्यायौ। तबही ँ प्रान मृतक तन आयौ॥
करत मनोरथ मनमथ माती। नवला नेह निवाहन राती॥२८८॥
जब तैं सुन्यौ श्रवन तुवँ नाऊ। जोग भेष आये तिहिँ ठाऊ॥
वदि व्याकुल उतकंठ न जाई। सदन सेज नहिँ नेक सुहाई॥२८९॥

( छंद पद्धरी )

सुनि मुदित वैन इमि कहै सूर। मन मैन नेम मरजाद पूर।
जिहि लागि एत आरंभ कीन। विवि वरष चित्त नहिँ चैन दीन॥२९०॥
तिहि दरस काज लगि तपत नैन। कब सुनहिं श्रवन मुष अमिय वैन।
जुग वरषि लागि मन मथ्थ घाइ। अव निकट विरह नहिं सह्यौ जाइ॥२९१॥
जो मुदित मान मानहिं सुभाउ। मुहिँ प्रान पिया नैननि दिषाउ।
पेषिहौ चरन दुल चरन गात। सब जोग होहिँ सव सफल जात॥२९२॥
जिहि लागि तज्यौं सुष सदन भोग। तिहिँ दरस विना उतरहिँ न जोग।
मनु रह्यौ चित्र लगि मित्र आस। अब नहिँ न धीर पुर एक बास॥२९३॥
विभास चित्त जिनि करहु बाल। दल अषिल दिव्य आवहि उताल।
जद्दिप धिराज महि बिजै पाल। वैरागरेस पुनि सत्रुसाल॥२९४॥

( दोहा )

सूर बचन मुदिता सुनै, उठी सकल मिलि संग।
हिय हुलास मन मोद नित, प्रगट अंग रस रंग॥२९५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि षहुकर विरचितेयं चंपावति पडे
सषी समागमनो नाम नममो अध्यायः॥ ९॥

( दोहा )

अष्ट नारि मुदिता प्ररुप, हिय हुलास आनंद।
जनु चकोर चितु चैंनु हुव, पेषत पूरन चंद॥२९६॥

( चौपई )

कहै वचनु सुनु प्रान पियारी। सफल सेव भई आजु हमारी।
देष्यौं सूर सिंह जुग नैना। रुचिर रूप जनु मूरति मैना॥२९७॥
दल पीछे आवहिं सब साथी। धनुक धार रथ हैवर हाथी।
कौन कौन गुन करौं बडाई। एक जीभ कवि वरनि न जाई॥२९८॥

मदन रूप गंध्रप सम गाना । है विद्या दस चारि निधाना ।
वीर धीर दोइ बातनि पूरौ । है नरसिंह सिंह जिमि सूरौ ॥२९९॥
हम जौ कह्यौ तुम जोग उतारौ । दलबल सहित गेह पगु धारौ ।
दिय उत्तर इमि राजकुमारा । जिंहि कारन हम जोग विचारा ॥३००॥

(दोहा)

सिद्ध दरस कौ मनु रह्यौ. लोगन जानत भेद ।
सिध्यि जोग पथ पाइ जै, वदतु लोक अरु वेद ॥३०१॥

(चौपही)

है यह पंथु अगम अति भारी । जोगी बहुत भेष वपु धारी ॥
गुर जिहि मिला सिध्यि जिहि पाई । वाहि नाथ कछु दीन वड़ाई ॥३०२॥
जोगी नाम वेष धरि आयौ । लहै सिध्यि तव सिध्य कहायौ ॥
लहै न सिध्यु सिध्यि विनु पायै । तातै रहै जोगु मनु लायै ॥३०३॥

(दोहा)

सिव मंदिर पगु धारि कै, सिध्य दरस करि लेत ।
जव आयौ फिरि जुध्य कौं, मैन मकर धरकेत ॥३०४॥
नहिं न अंग भूषन वसन, जदिप धरौ वपु जोग ।
रूप रासि पिय मन हरन, तऊ सुदेपन जोग ॥३०५॥
सिध्य दरस सिव पग परसि, एक पंथ द्वै काम ।
गवरि पूजि आनंद मय, पुनि फिरि आवहु धाम ॥३०६॥

(चौपही)

सुदिता कहै सुनौ रंभावति । जिंहि तै अधिक सषिनि मन भावति ॥
प्रान नाथ दरसन हित आयौ । जिंहि लगि विरह विषम दुष पायौ ॥३०७॥
लग्न द्वैस पुनि नियरै आये । दिसि दिसि भूप अषिल दल ल्याये ॥
करि मंगल आनंद वधाई । चलौ साँझ सिव पूजन जाई ॥३०८॥

(दोहा)

चंद सरद तुव दरस करि, मानि लेहि दग भोग ।
सफल करहिं मन कामना, पुलकि प्रेम के जोग ॥३०९॥

(चौपही)

रंभा कहै सुनहिं सषि प्यारी । विरह वियोग बढ़ावन हारी ॥
संकर सेष नैन अरुझानी । अरु उत्कंठा जाहि वषानी ॥३१०॥

जौ विधि कृपा भयौ संजोगू। प्रान नाथ उतरावहिं जोगू ॥
जोर कहै पहुँपावति रानी। चलौ साजि सेवन सर्वानी ॥२११॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं चंपावति षडे सिद्ध दरसनो नाम दसमो अध्यायः ॥१०॥

( दोहा )

मदन मुदित ह्वै करि गई, पहुँपावति के पास।
होत बहुत मंगल जहाँ, हिय हित हरष हुलास ॥२१२॥

( चौपही )

मुदिता कहै सुनौ हो स्वामिनि। मनौ श्रीय हरि गृहनी भामिनि ॥
आये भूप बहुत अरु आवहिं। दल चतुरंग संग सब ल्यावहिं ॥२१३॥
पूछति विहँसि बात सुष रानी। नव तम चाह कहौ कछु आनी ॥
कौन कौन पहुँभी पति आये। लग्न ह्वैस अति निकट जनाये ॥२१४॥
सूरसेनि मारग पुनि आयौ। जोगी एकु चाह यह ल्यायौ ॥
आवतु आजु कालि महँ सोई। पंचम दिवस स्वयंवर होई ॥२१५॥

( दोहा )

जो अब आयसु दीजिये, कुँवरहिं लेहि लिवाइ।
पूरन भाग सुहाग हित, गौरि मनावहिं जाइ ॥२१६॥
जो जप तीरथ जग्यँ फल, तिहि विधि दियौ सुहाग।
त्यौं विधना पर माँगि जे, होहि सुता सिर भाग ॥२१७॥
दूध पूत अरु लच्छमी, नित नाइक अनुराग।
( त्यौ विधना परमागि जे, होहि सुता सिर भाग[१] ) ॥२१८॥
पुषपावति अग्याँ दई, होहु सषी सब संग।
साँझ समै सिव पूजियौ, गौरि जासु अरधंग ॥२१९॥
नृप गृहनी आइसु दियौ, मुदिता आदि सुनारि।
भवगौरी पूजन चलीं, अँग अँग सजें सिंगार ॥२२०॥
संग सषी सब सहस इक, सत सहस्र मिलि दासि।
एक एक गुन आगरी, दरस सरस रस रासि ॥२२१॥

---

१. यह ऊपरवाले दोहे का ही दूसरा चरण है, जो भ्रमवश लिपिकर्ता ने इस दोहे मे भी डाल दिया।

बहुत संग परदार मिलि, पति परतीत अडोल।
रथ अगिनित अरु पालकी, अंभारी चौडोल ॥२२२॥
केसरि कुसम सुगंध रस, चंदन अगर अनत।
धूप दीप बहु भोग विधि, कुँवरि हेत मिलि कंत ॥२२३॥
धुज पताक तोरन बने, सींच सुधा रस रंग।
पंच शब्द मंगल बजे, भेरी ढोल मृदंग ॥२२४॥
चली कुँवर पूजन गवरि, बाजन बाजन लग्ग।
मुरज, रुंज सहनाइय, वीना ताल तरंग ॥२२५॥

( छंद मोतीदाम )

चली हरि मंदिरि सुंदरि साज। मनो द्रुज राज तमीतम मॉज॥
सषी सब गावहिं मंगल गीत। धरें जु हृदे पग पुन्य पुनीत ॥२२६॥
कियौ मन ध्यान पहुच्चिय जाइ। चढी चित चाइ चवग्गुन चाइ॥
कियौ जो प्रनामु सबै नत सीस। पिया परसे पग पार बतीस ॥२२७॥
कियौ सब अर्चन पंच प्रकार। प्रमन्निय पिष्पिय गौरि भतार॥
लसैं बिलसैं बिहसैं मिलि नारि। अली अलिपंकज प्रीति विचारि ॥२२८॥
निहारहिं नागरि आनन ओर। मनौं लषि लोचन चंद चकोर ॥२२९॥

( सोरठा )

अलि लोइन्न चकोर। चंद सरस अबला बदन॥
निरषत आनन ओर। पलक नहीं इत उत डुलत ॥२३०॥

( दोहा )

बहुल भाँति सेवा करी, संकर गौरि मनाइ।
उठि कामिनि करु टेकि के, ललिता चित्त लजाइ ॥२३१॥

( चौपही )

बहुत विधान सिव अर्चन कीनौ। बिहँसि गौरि संकर वर दीनौ॥
बहु फल सिध्य जोग चित लावहु। दिय वर सूर सुर वरु पावहु ॥२३२॥
नवल नेह अरु सदा सुहागू। इंदु पूत फल पूरन भागू॥
जियहुँ जुगल नाह अरु गोरी। जनु रुचि राजत मनमथ जोरी ॥२३३॥

( दोहा )

गवरि नाथ वरु पाइकै, उठी सषी कर जोरि।
जुवती विश्व सिरोमनी, लाजति कामिनि कोरि ॥२३४॥

( छंद प्रयंगम )

लज्जति कामिनि कोरि किसोरि कुमारिका ।
पढ़ति मैन चटसार मनौ सुकसारिका ॥
नवल नेह नव दुलहिनि सुंदर सोहई ।
मंगल सहज सनेह देष मन मोहई ॥२३५॥

अरुन अधर मृदु हास विलासनि भामिनी ।
यौं छवि घूँघट वोट दमंकति दामिनी ॥
मलिन बसन तन लोह मुंद्र कर अंगुली ।
द्वै कर कंकन तीन सनेह सुमंगली ॥२३६॥

अंबुज नैनि विसालनि अंजन दीजिये ।
चंचल षंजन मीन पलट्टै कीजिये ॥
सुंदर विंदु बनाइ दियौ अलि भाल मैं ।
मानौ राजत हीर कनक के थाल मैं ॥२३७॥

कुंडल लोल कपोल झलक्कत यौं लषैं ।
मनौ चंद्र रथ चक्कृत वाहन हैं पचैं ॥
मुंत्तिय अधर अमोल तहाँ छवि नथ्थ की ।
मानौ पासि प्रचंड परी मन मथ्थ की ॥२३८॥

उठत उरोज नवीन छीन कटि केहरी ।
नूपुर की झनकार जराऊ जेहरी ॥
कंज तै कोमल चरन अरुन अति वास के ।
पूरित पंचहु वान तरकस काम के ॥२३९॥

नव नव तरुनि कदंव सिरोमनि सुंदरी ।
राजति राज कुमारि रूप तरु मंजरी ॥
वंक विलोकनि संक सुनैननि मोहई ।
ता तन की छवि वर्नि कहै कवि को हई ॥२४०॥

( दोहा )

उडल मँडल हिमकर मनौ, सोहति नपियन नग ।
हिय हुलास लज्या द्रगन, उद्दित अंग अनंग ॥२४१॥

उत मयंक अंबर उदौ, सुंदरि देवल द्वार ।
उत उडुगन इत सहचरी, होड परी तिहि वार ॥३४२॥
लोचन विमल कटाच्छ वर, द्रिष्टि गतागत लोल ।
कनक थार मुत्तिय जुगल, मानौ भ्रम्म अमोल ॥३४३॥
वर विरही वनि वाटिका, फिरत सपी गन संग ।
रति डोलति दासी मनौ, अनुचर भयौ अनग ॥३४४॥
सूर सैनि विथकित भयौ, सोभा निरषि न जाइ ।
यह देषै नव नागरी, दुरि तिहि ठाउँ समाइ ॥३४५॥
और वधू लज्जा करै, दुरतिहि घूँघट सोइ ।
यह अद्भुत देष्यौ नहीं, दधि सुत घूँघट होइ ॥३४६॥

( सवैया )

चद उजियारी प्यारी नेकु न निहारी परै
चंद की कला तै दुति दूनी दरसाति है ॥
ललित लतानि मैं लतासी लगै सुकुँवारि
मालती सी फूलै जब मृदु मुसकाति है ॥
पुहुकर कहै जित देषिये विराजै तित
परम विचित्र चारु चित्र मिलि जात हैं ॥
आवै मन माहिं तब रहै मन ही मैं गड़ि
नैननि विलोकै वाल नैननि समाति है ॥३४७॥

( दोहा )

प्रान नाथ पूरन निरषि, उपज्यौ अति आनंद ।
रवि प्रकास उदित मनौ, कमल कली मकरंद ॥३४८॥
चतुर चतुर चित एक हूं, चतुर नैन इक डीठि ।
सबै धरै न्यारे रहैं, दूती सषी वसीठि ॥३४९॥
गहि जँजीर तोरन चहै, मदन मत्त गजराज ।
सकुचि महावत रोकि लिय, दै अंकुस सिरताज ॥३५०॥
नवल नेह अभिलाष रस, और न जानत कोइ ।
मन मनमथु अरु सारथी, कै जिनि नैननि होइ ॥३५१॥
जदिप लगे द्रग अंतरहु, रति पति वान दुसाल ।
सहज भाव छाडौ नहीं, परम विजच्छिन वाल ॥३५१॥

उलट चली फिरि धाम कौ, बाजे बजत अनंग ।
चारु ओर चतुरंग दल, दंत जूथ मैमंत ॥२५३॥
मदन मुदित इक चित रही, बचन निवेदनि हेत ।
पंचवान विह्वल परौ, देषौ सूर अचेत ॥२५४॥
सूर विना सकुचै कमल, हरषि न करे प्रगास ।
सूर जु सकुच्यौ कमल विनु, यह विरोध आभास ॥२५५॥
अंचल बाउ उपाइ किय, रंभा रंभा नाम ।
मुदित मंत्र गुनु गारुडी, मनौ जगावै काम ॥२५६॥
कहति वचनु अति हेत चित, सुनियै राजकुमार ।
प्रीत रीत कहँ लगि कहौं, नवल वधू व्यौहार ॥२५७॥
पहुकर उर अंतर जरै, वाहिर प्रगट न होइ ।
वधू विरह आवाँ अगिनि, और न जानै कोई ॥२५८॥
जो कछु दाउ उपाउ किय, सिध्यि करौ हम सोइ ।
तबहिं सफल मम सेव है, पानि ग्रहन जव होइ ॥२५६॥
सुदिन सुयंवर अति निकट, वेगि उतारौ जोगु ।
ज्यौं हरदहि चूना लगै, रँग रोचन संजोगु ॥२६०॥
अब मुहिं आइसु दीजियै, रति पति राज कुमार ।
कुँवरि अकेली जाति है, हौं पहुंचौ इहि वार ॥२६१॥
विहँसि सूर आइसु दियौ, करि वहु भाँति निहोर ।
बहुत भाँति कहँ लगि कहौं, यह तनु राष्यौं तोर ॥२६२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चंपावती पडे
नेत्र दरसनो नाम एकादसमो अध्यायः ॥११॥

( दोहा )

गवरि पूजि फिरि घर चली, रोर परी सब नेर ।
वैरागर पति दलि अपिलु, आवहि प्रात के वेर ॥२६३॥
सुरथ सुभट संख्या नहीं, गज तुरंग नहिं ओर ।
सावधान सब जन चलौ, छत्री गनौ न थोर ॥२६४॥
सुनि मुदिता मन मुदित ह्वै, कहौ कुँवरि सौं जाइ ।
अब जौ मिटौ संदेह सब, दल वैरागर आइ ॥२६५॥

बाजत भेरि मृदंग धुनि, गावत मंगल गीत ।
राज महल पगु धारियौ, करि प्रसन्न सित्र प्रीत ॥२६६॥

( चौपही )

राज मंदिर सुंदरि पगु धारी । करि प्रतिच्छि दरसनु पिय प्यारी ॥
आइस नैन नीद नहि आवै । बार बार मन मथ्थ सतावै ॥२६७॥
होत प्रात उग्गित नभ सूरा । नृप दरबार संप वजि तूरा ॥
उतहि गहिर बाजै निस्साना । मानौ प्रलय मेघ घहराना ॥२६८॥
परी रौरि सब नगर मँझारी । आयौ दलु वैरागर भारी ॥
नगरु लोग सब देषन आयौ । इहि आवनि नृप और न आयौ ॥२६९॥
सूर सैनि आवन सुनि संगी । अति रस रंग रच्यौ नवरंगी ॥
बहुरि बुद्धि मन माह विचारी । चाह जाइ को कहै हमारी ॥२७०॥
जोग भेष अब रहै जु गाता । विजैपाल सुनि पावै बाता ॥
चल्यौ धाइ सनमुष दल आगै । आवत प्रान बिनहि जिहि लागै ॥२७१॥
जोजन एक नगर के पासा । किय सरवर तट सेन निवासा ॥
बैठे मंत्रि सकल रन धीरा । गुनगंभीर राइ रघुवीरा ॥२७२॥
कहहि कौन विधि चाह कराहीं । कौन दूत पठवहि पुर माहीं ॥
तबहि सूर उदित भौ आई । ईस भेष जनु देह बनाई ॥२७३॥
आयौ सभा मध्य जब धाई । तब सब सुभट उठे भहराई ॥
मोहन रूप देषि पहिचान्यौ । सबनि चित्तअचिरजु अधिकान्यौ॥२७४॥
तिहि छिन निकट मिले जो कोई । सिर धरि रहे चरन गहि दोई ॥
बैठि राइ रघुवीर सुजाना । गुन गंभीर सकल गुनषाना ॥२७५॥
लोचन कौंचि आँसु आनंदा । जनु पयोधि लषि पूरन चंदा ॥
सहस पंच बाजहि निसाना । लागे सुभट करन बहु दाना ॥२७६॥
पलटि प्रान आये घट माहीं । बार बार बलि हार कराहीं ॥
तबहि सैनवंसी बुलवायौ । घसि केसरि उबटन करवायौ ॥२७७॥
चोवा चंदन तेल फुलेला । कदलि सार कुंकुम रस मेला ॥
करि मंजनु गंगा जल नीरा । दियौ दान हय हाटक हीरा ॥२७८॥
विविधि भाँति ज्यौनारि सँजोई । कहैं विप्र भइ सिध्धि रसोई ॥
भोजन सुभट कियौ मिलि साथा । गुन गंभीर कहै सुनि नाथा ॥२७९॥
कारन कौन परहि नहि जान्यौ । कौन चतुर विधना पहिचान्यौ ॥
कहाँ मानसरवरि सुधि आवति । कहाँ देव नगरी चंपावति ॥२८०॥

कौन भाँति पहुँचे इहि देसा। हम थकि रहे देषि यह भेसा ॥
कुँवर कही यह कथा अपारा। कहत सुनत लागे वडि वारा ॥३८१॥
विधना सबै समारी नीकी। प्रथमहिं कुसल चाहिये जीकी ॥
दुष सुष चल्यौ जातु इहि तेरौ। तिहिं पर मिलन भयौ सब केरौ ॥३८२॥
सब दिन चारि लग्न महँ आहीं। अब यह काम ढील कौ नाहीं ॥
कीजै जाइ नगर ढिग डेरा। कीजहि साज निमंत्रिनि केरा ॥३८३॥
सरवर मध्य परम सुखदाई। उपवन तीर सरस छवि छाई ॥
सुनि आयस दल कीन पयाना। भई वंव वाजे निस्साना ॥३८४॥

( दोहा )

सहस पंच दुंदुभि बजे, पंच शब्द घन घोर।
मुरज रुंज सहनाइ अव, भेरी संषिनि घोर ॥३८५॥

( छंद भुजगी )

वंव वाजि सोर घन घोर सादं। सब्द मिलि पंच वाजंत नादं ॥
संष सहनाइ करताल तूरं। मिलि सब्द आकास पाताल पूरं ॥३८६॥
पष्षरे लष्ष तुष्षार तीषे। नृत्य जनु इंद्र अष्षार सीषे ॥
वाउ वह वेग मन मौन धावै। इन्द्र रथ जान उपमान पावै ॥३८७॥
शुभ सावंत सोहंत अच्छे। मनहु नट नाट रन रंग कच्छे ॥
दंत दलपत्ति मैमंत सज्जै। उमड आषाड नव जलद लज्जै ॥३८८॥

( दोहा )

तिंहि छिन तुरत पयान किय, चतुर वरन दल संग।
आपु चढे आरूढ गज, मानौ मुदित अनंग ॥३८९॥
सत्त सहस्र हेवर सुदल, गैवर वीस हजार।
दस सहस्र रथ कोटि पय, रवि अलोपि तिहिं वार ॥३९०॥
वहुत भार धँसि गसि धरनि, कसमसि कमठ करक्कि।
छूटि सहनि टुट्टिय गहनि, फन फटि फनिग तरक्कि ॥३९१॥
सरवर तीर मिलान हुव, जुग जोजन चहुँफेर।
नृप गृह पट्टकुट उच्च अति मानौ मध्यि सुमेर ॥३९२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं चंपावती पदे
सेना समागमनोनाम द्वादसमो अध्याय: ॥१२॥

---

# स्वयंवर खंड

( दोहा )

सूर सिंह आगम सुन्यौ, चंपावति पति राज ।
सुमति बोलि आइसु दियौ, साजौ आदर साज ॥ १ ॥
बहुत साजु एकत्र हित, आदर अरु मनुहारि ।
एक जीभ बरनन करत, पहुकर कवि थकि हारि ॥ २ ॥
बहुत पान पकवानु पट, बहुत अन्न धन साज ।
बहु सुगंध रस रीति करि, जिहि विधि आदर साज ॥३॥
सुमति संग अनुचर चले, ढोवत भार कहाँर ।
अन्न हेत मनु हार कर, जनु गिरि नव तिहि बार ॥४॥
विविधि विविधि विनती करी, सुनिये राजकुमार ।
विजै पाल तुव आगमनु, भये सनाथ तिहि बार ॥५॥
इत गँभीर रघुवीर मिलि, कहत मुदित मुष बैन ।
दीन भाँति रस लीन अति, प्रीत पगाये नैन ॥६॥
सुष मानौ जानी कृपा, सिर धरि लीनी साज ।
अब सोमेस सपच्छ ह्वै, दुहु कुल कलस विराज ॥७॥
कुसल प्रस्न आदर घनौ, प्रीत रीत बहु भाइ ।
बाढ्यौ सुष अति परसपर, आनद बरन समाइ ॥८॥
बहु आदर करि कै विदा, मान्यौ चित करि चाउ ।
दुहूँ दिसि प्रेम प्रकास हुव, पहुकर प्रीत सुभाउ ॥६॥

( चौपही )

सब मिलि बैठि सुभट इक साथा । कहत सुनत आँनद गुन गाथा ॥
मन मनमथ जो मनोरथ होई । नव मंगल मानैं सब कोई ॥१०॥
होत प्रात सब साज समोये । सब सुष राति निमिष नहिं सोये ॥
गुन गंभीर राय रघुवीरू । लै सब चले नृपत के तीरू ॥११॥

( छप्पय )

सहस हीर हैवर हजार गैवर सत सज्जिय ।
मानिक मनि मुत्ती रतन राजत रवि लज्जिय ॥

जाति रूप अनरूप विविधि विधि विविधि बनाये ।
पाटंबर जरतार ओपि महि मंडल छाये ॥
अभरन अनेक अनगन रुचिर बहुत भाँत आदर करिय ।
सज साज सकल नव नेह रस विजैपाल सनमुष धरिय ॥१२॥

( चौपही )

कहत बैन रघुबीर गँभीरा । जनु गुन बचन परोहित हीरा ॥
सोमेसुर अब भूप कहाये । जौ तुम सुरति आन बुलवाये ॥१३॥
दूरि देस बहु अंतर आही । सामग्री नहिं जाति निबाही ॥
ताते अलप साज कछु आयौ । बेरागर पति नेवति पठायौ ॥१४॥

( दोहा )

कुवर संग दासी सकल, दिये बसन तिनि काज ।
और कछू तुर्व जोग है, सुनियै राजधिराज ॥१५॥
विजय पाल बचनन कहै, सुप आँनद अनुराग ।
सूर सिंह कीनी कृपा, अब हम सत्य सभाग ॥१६॥
आदि राज महिपाल महि, सजन सिरोमन आहि ।
जो कछु पठयौ करि कृपा, क्यौं करि फेरौं ताहि ॥१७॥
बहुत भात सनमान करि, कर धरि दीनहिं पान ।
मुदित सूर सनमुष चले, देवल चतुर सुजान ॥१८॥
कही सकल सुभ वारता, रोम रोम सचुपाइ ।
जब जो काव्य है बरनवौं, सो कवि कही बनाइ ॥१९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचिते स्वयंवर षडे नेह
निमंत्रनो नाम प्रथमोध्यायः ॥१॥

( वार्ता )

[ श्री श्री श्री सूर सेन राजा स्वयंवर सुन के स्थान से चले वैसाप सुदी ५ कौ येक महीना २० रोज मैं मानसर पैं ज्येष्ठ सुदी १५ कों पहुचें, फिर अर्द्ध रात्रि के समय अपछरा स्नान करवे आंई और सूर सेन को लेकर उत्तर दिशा ब्रह्मकुंड पर पहुंची, और गांधर्व विवाह कल्पलता के साथ संपन्न भई । फिर काल पाय रह कर चले और कई महीनों में चंपावती नगरी मे आये और इनकी फौज भी चंपावती मे पहुँची । येक साल और कुछ दिन हो गये फिर इनके ठहरने पर स्वयंवर ज्येष्ठ सुदी ५ को ठहरा दूसरी साल में । ]

( दोहा )

ज्येष्ठ मास सित पचमी, कीनी लग्न प्रमान ।
अति निर्मल नव ग्रह बली, थपी गनक गुन जान ॥२०॥
सुभ नच्छत्र सुभ दिन घरी, मंडप छाहन कीन ।
पूजि प्रथम कुल देवता, दान दुजन कहँ दीन ॥२१॥
गीत नाद वादित्र बहु, नव मंगल दरबार ।
वाजत भेरि मृदंग रव, तरुनिनि पत प्रति भार ॥२२॥

( छन्दतोटक )

नव मंगल मंडफ छाद दियं । तह थप्पिय कंचन खभ प्रियं ॥
वर वेदिय विप्र बनाइ सची । मनि मानिक मोतिय चौक रची ॥२३॥
तिहिं मध्यि जडौ नव षंम्ह धरौ । मनि कुंकुम मंडित नीर भरौ ॥
नव पल्लव चूत विराजि तहाँ । जिहिं ऊपर दीप उदीप जहाँ ॥२४॥
बहु भाँति वितानति छाँह सजी । जिहिं चाहति सूर किरिन्नि लजी ॥
जरतार चँदोवनि भेद नवो । जनु चंद अनंत उदोत भवो ॥२५॥
जलजातन झालर ओप मई । रजनी उडु मंडल सोम लई ॥
कदली दल पहुँकर रंग भरे । कलपद्रुम अंगनि आनि धरे ॥२६॥
बहु तोरनि वंदनवार वनी । अमरावति तै अति सोभ वनी ॥
वर वानिय विप्रनि वेद भनैं । जह वंदिय सूर जहाँ वरनै ॥२७॥
बहु वाजत भेरि मृदंग जहीं । सहनाइय दुंदुभि ढोल तहीं ॥
तह गावहि गीत अनंद भरी । नव कामिनि मांग सुहाग भरी ॥२८॥
नवला नव जोवन रूप धरी । जनु अच्छरि इंद्र पुरी उतरी ॥
दग अंजन षंजन मीन लजै । अबला नव सात सिंगार सजै ॥२९॥
मृदु हास विलासनि चित्त हरैं । मधि पंकज दाड़िम बीज भरैं ॥
छवि रूप कहाँ लगि ओप गनौं । बहु आनद मद कहा बरनौं ॥३०॥

( दोहा )

सुदिनु सुयंवर थापि कै, नृपति बुलौवा दीन ॥
मुदित मोद मडफ निकट, त्रिविधि बिछावन कीन ॥३१॥
कनक रतन विधि विधि वसन, मंडित पंथ वजार ।
घर घर धरि कंचन कलस, वर घर वंदनवार ॥३२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय स्वयवर षडे मंडफ छादनो नाम द्वितीयो अध्यायः ॥२॥

( दोहा )

उत अनेक नृप आगमनु, विजय पाल दरबार ।
इत सहचरि सज्जन लगीं, सुंदरि अंग सिंगार ॥२३॥
नष सिष कौ वरननु विमल, कियौ कवन बहु भाइ ।
अलप बुद्धि अनुमान करि, पुहुकर कहत बनाइ ॥१४॥

( सवैया )

मज्जनु समै अंगु अंग को निहारी छवि ।
सोभा के समूह मोपै बरनै न जात हैं ॥
केसरि कनक चंपा दामिनि दिया की जोति ।
देषत मलीन होति ऐसे गोरे गात हैं ॥
तन की सुबास उनमत्त अलि आस पास
बदन प्रकार तै चकोर ललच्यात हैं ।
पुहुकर कहै नर क्यौं न बसि हौंहि जाके
नैन के निहारे मुनि सिद्धऊ सिहात हैं ॥२५॥

पद नष निरमल विराजमान मेरे जान
रति पति आये नव आरती बनाई है ।
कैधौ पंच वान कामिनी कमानि सोभियत
आगम समय वीर बहूँटी बनाई है ॥
जंवूनद जोर मानौ मानिक जराइ जरे
उडुगन उदित अनेक छवि छाई है ।
पुहुकर कहै परवीन प्रिया प्रान प्यारी
विनु तप ऐसी कौने नारि कहूँ पाई है ॥२६॥

चरन कमल वर अरुन वरन तल
सीसी सम रंगु डोलै आभा एडी लाल की ।
पुहुंकर कहै चिल रही चुभि चारु मेरै
वरनी न जाति है चटक मंद चाल की ॥
पारावत हारे मद मेगल विसारि डारे
उपमा न आवै मन मुदित मराल की ।
जावक रचित पद परम विचित्र प्यारी
वदन को सोभा पद पूरे पद बाल की ? ॥१७॥

नूपुर झनक रव घूघुर घनक घोर
घाइल करि प्रान राखे ? पाइल जु पाइ की ।
पीवैं तै पराग उनमत्त किलकारी मानों
पंकज के मध्यि अलि सावक सुभाइ की ॥
कंचन रचित मनि पचित जलज हीर
रसना न आवैं वह बनक बनाइ की ।
बाल के विमल वपु काम के चढ़न काजें
सिढी सी बनाइ रापी जेहरी जराइ की ॥३८॥
कंचन के षंभ रंभ उपमा कहत कवि
मेरे जान उभय सुभट नृप काम के ।
कहै कवि पुहुकर करभ करलै लागे
एतौ अति कोमल हैं मनि अभिराम के ॥
साचे सौं सुधार मध्यि मापन की कीनें विधि
केसरि के गहै हैं निकट कटि छाम के ।
चितवित धूत किधौं दूत सम आगम के
प्रान निध ? जानि किधौं जंघा जुग वाम के ॥३९॥
भृंगी नहिं भृंग भँवर सिंविनी विलोकें छवि
उपमा कहत कवि कौन गुन लेषिये ।
नैननि न आवैं अरु मन मैं न आवैं लंक
चितहूँ न आवैं जातें चित्र अवरेषिये ॥
विरही कौ वल विरहिनी कौ विलासु हासु
दुषित के जीव ही तैं छीनता विसेषिये ।
जोग की जुगति जप जोतिक के ग्यान जोई
पाइये जु नैन[1] तव तेरी कटि देषिये ॥४०॥
मदन मृदंग किधौं माधुरी सुगंध धुनि
पावस के पिक सिषि सवद सुहावनै ।
कैधौं वज पाठक वदन दुज सभा मैन
मृग मोहवे कौं वटा कारि मन भावनै ॥

---

१—इस प्रकार का कोई अश छूटा हुआ है ।

कहै कवि पुहुकर पूरम सिंगार सभा
भनत है वंदी जन जोवन के आवनै ।
अभरन और अंग अंग छवि और और
किंकिनी न होंहि वीय प्रेम के बँधावनै ॥४१॥

मति गज उभय उरोजनि की आड़ किधौं
सोभा की अवधि सिवा सब सुषदैनी है ।
तीनि लोक पैये कै विधना तीनि रेप षांची
साँची छवि पुहुकर मनुहरि लेनी है ॥
किधौं मनमथ जू जनेउ दियौ जोवन कौं
प्रगटे त्रिगुन किधौं तरल त्रिवेनी है ।
चारु चतुराई तरुनाई रूप अधिकाई
त्रिवली सरस किधौं तरल त्रिवैनी है[1] ॥४२॥

अमल कमल कुच कमल के नाल किधौं
विमल विराजमान बैनी कैसी झाँई है ।
चक्रवाक चुच तै छुटी सिवाल मंजरी कि
नागिनि निकसि नाभि कूप ही तै आई है ॥
जमुना की धार तम धारि किरवान धरि
किधौं अलि सावक की पंगति सुहाई है ।
पहुकर कहै रोम राजी यौं विराजी आइ
वरनी न जाइ कवि उपमा न पाई है ॥४३॥

रासि रस रूप किधौं दोई तन भूमि भूप
उभय अनूप फल सुरसरि हार के ।
कंचन के कुंभ के कठोर करि कुंभ कैधौं
संभु है स्वयंभु है जु कोउवार पार के ॥
काम के गुरज गढ़ जोवन धुरज आछे
उन्नत उरज राखे रापन सिंगार के ।
श्रीफल सबेल तैसे नारँग जँभीर जैसे
जुगल कुच सुफल फल कनक की डार के ॥४४॥

---

१—यह पंक्ति कुछ भिन्न होनी चाहिए ।

चुपरि चुनाई चोली सेतश्री साफ छवि
छाजत कवीन मनु उकति कौं धायो है।
मेरे जान हैम गिरि सिपिरि उतंग विवि
ता पर तुषार पूरि पातरौ सो छायो है॥
झीने जल जलज कमल की कली सी मानौ
अमल अनूप रूप रतनु लजायो है।
महा मनि छटा पट असित विराजमान
कैंधौं पूजि पट जुग ईसनि चढायौ है॥२५॥

नगन की जोति उर लसै लर मोतिनि की
चकचौंधि होति मनि गन गुन जाल जू।
कैंधौ मपतूल झूल झूलति हिंडोरा मानौ
सिपिरि सुमेर बीच वारिधि को बाल जू॥
कैंधौ नवग्रह संक मिलि संकर सहाइ हेत
समर समर काज आये तिहि काल जू।
पहुकर कहै पीय प्राननि परम मोद
रीझि वानि हारे छवि रसिक रसाल जू॥२६॥

कोकिला कपोत कीर कोकिल कलप कल
माधुरी मधुर धुनि सुनत सुहावनी।
कैंधौ सुरवीन वीन वासुरी विसाल रस
रस अनुराग रासि जगत जिवावनी॥
पहुकर कहै पीक पाननि झलक ग्रीवें
सोभा की अवधि सिवाँ पिय[1] मन भावनी।
रति ऐसी रंभा ऐसी रूप उरवसी जैसी
देपैं उर वसै दुति दामिन लजावनी॥२७॥

कंठ सिरी जाल उर कंठ कंठ माल तैसी
मनि वाल लाल (माल ?) विमल विसेपियै।
कहै कवि पुहकर छूटी लर मोतिनि की
पोतिहू कौ छरा अपछरा सम लेपियै॥

---

१—सिवा पिय।

जीतिहै त्रिलोक त्रिया त्रिगुन विराजमान
सत रज तामस परम छवि पेषियै ।
अभरन अंग जनु तीरथ प्रसिद्ध जग
सब सुषदेनी की त्रिवैनी तन देषियै ॥४८॥

कमल के नाल किधौं जुगल मृनाल भुज
किधौ विवि डार तरु कंचन सुहाई है ।
साँची छवि साँची विधि साँचे सौं सुढारि कीनी
कैंधौ करि कुंदन कुंदेरे काम भाई है ॥
अंगद अनूप ढाड़ कंकनिन चौंप चाड
चारि चारि चूरी चारु करन चढाई है ।
गरुव सिंगार गज मोतनि के गजरन
अजर अमर नारि निरषि लजाई है ॥४९॥

कोमल किसल करपल्लव विराजे वर
अमल अनूप नष पोषक हैं प्रान के ।
कहै कवि पहुकर सान दै सँवारि राषे
पेषियै प्रतिच्छि पंचवांन पंचवान के ॥
नील सित पीत लाल मुद्रिका जटित मन
हरत रहत चित चतुर सुजान के ।
कर सौं गहै जु कर कौन वडभाग नर
जाके फल पूरे जप तप अरु दान के ॥५०॥

चाषौ हौं सुहाग कौ कि भाग अनुराग कौ है
हिय कौं हुलास कैंधौं पिय कौ पिलौना है ।
कैधौं कवि पुहुकर कंत के रिझाइवे कौ
सौतिनि सताइवे कौ कीनौं कछु टौना है ॥
चातुरी कौ भाउ किधौं दाउ प्रेम पासि कौ है
डीठिहू की डीठि कैंधौं चिवुक डिठौना है ॥५१॥

अधर अनूप विय विद्रुम वँधूप विव
मेरे जान चंद्र पंड टोऊ लै मिलाये हैं ।
ऊप तें पऊप तें मऊप तें है मीठे अति
सरस रसाल गुनि गीतन में गाये हैं ॥

सुधर सुरंग रंग श्रवन सुधा के रस
मोहन मधुर मूरि जीवनि उपाये हैं।
पुहुकर कहै प्रेम पाउ पिय जीय प्रान
बिमल बिचार वर विधना बनायें हैं ॥५२॥

अमल अदोस मानौ प्रात कन वोस छबि
वेसरि कौ मोती कवि उपमा कहतु हैं।
मेरे जान जलसुत इंमृत के हेतु आइ
अंतरच्छ तपु करि चापन चहतु हैं॥
किधौं रंग भूम पर नटवा करतु कला
कानन के गुनु लागि त्रिगुन गहतु हैं।
अरुन अधर आभा कज्जल कटाच्छ मानौ
विहसैं दसन दुति ऊजरौ रहतु हैं ॥५३॥

( दोहा )

पुहुकर मुकता पुन्य फल, वरनै कौन प्रकार।
अधर पयोधर वर सरस, इत वेसर उत हार ॥५४॥

( सवैया )

मुष मृदु हास छवि वरनी न जाति
जानतु है जोई जाके रही गडि मन है।
दामिनि दमकि दुति दीपक उज्यारी, जोति
दाडिम के बीज वर उपमा दसन है॥
हीरा से दसन रंग वीरा सौं बनायो विधि
काहि सरवर कहौं कौन ऐसी धन है।
कौन को है ऐसो जपु कौने कीनौ एतो तपु
ऐसी नीकी नारि जाके सोहति सदन है ॥५५॥

कोमल कपोल अति अमल अलोम गोरे
विधना सुधारे मिल कंचन सुधा रसी।
पल मनि लालता तैं कुंडिल झलक जल
वरनी न जात छवि अगम अपारसी॥

दुलही नवलता की पूरन तपस्या जाकी
पुहुकर सेई जिनि वेनी औ बनारसी।
मेरे जान. सूर उवै उरज विराजमान
कैधौं हैं रतन सत नाक कैसी आरसी ॥२६॥

मोहे जल मीन मृग सावक अधीन भये
चंचल विसालनी के नैन नैन त्रीय के।
कुटिल कटाछ वान भाल[1] तै विसेषियतु
हितु करि हरहिं[2] हरन हार हीय के॥
अंजन के दीये दृग षंजन लजानै वन
कंजन समान मन रंजन हैं पीय के।
पहुकर कहै लोल लोचन ललित लाज
प्रेम रस पीवनि के जीवनि है जीय के ॥२७॥

वरुनी बिसाल भृंग भृगुटी कुटिल वंक
तीखी तिरछौंही डीठि काम किरवांन के।
कहै कवि पुहुकर मुनि मन मोहिबे कौं
सान दै सँवारे विध मदन के वान के॥
दृग मृग कंध मानौ मोहिनी को जोरौ जुवा
चुंचि विचारि चक्र चंद रथ जान के।
होड़ सी परति छवि षोडसी के अंग अंग
अंगना अमर धन मैटनि गुमान के ॥२८॥

कंचन को आड भाल टीका जग जोति जाल
मोती मनि हीरा लाल वनक वनाइ के।
मेरे जान राका ससि उदित प्रताप पूरे
बैठौ है सिंहासन सभा मै चित चाइ के॥
तरल तरौना दुहूं श्रवन विराज मान
चंद्र रथ चक्र चारु सोभित सुभाइ के।
पुहुकर प्रान पति रीझि रस वस भये
रोम रोम रचि रंग सग सचुपाइ के ॥२६॥

---

१. पाल २. हरैं ३. चक्र।

जोवन जलधि में तरंग छवि रूप जाल
बिलषि बिलोके जीउ उछाह रहतु है।
अधर पयूष धर लोचन कुरंग वर,
डहडही छवि देषे डाहन मरतु है॥
पदुकर मुकता के गन मानौ उडुगन
राकापति जामिनि मनु भरम धरतु है।
षोडस सिंगार चाहि षोडस कला सों ससि
षोडसी के आनन सों होडसी वदतु है॥६०॥

काहू कों टारौ अरु नाह कौं उगिलि डारौ
बाट परी येतौ बोझ जिय मैं धरतु है।
कहा करौं चंद्रमुषी कहत कवि कोऊ
ताहि के सुनें तें मनु घोपौ सौं परतु है॥
पदुकर पहिले तौ सदन संम्हारियतु
झूठी पैज पालिवे कौं काहे को अरतु है।
मानतु न हदि ससि वदन हुँ पूछि देषि
प्यारी के वदन सों तूं वदन करतु है॥६१॥

स्याम कचपाटी सेन मंडित फुलेल तेल
सीस फूल छवि तहाँ वरनी न जाति है।
मानहु फनिंद मनि दीपत उदोत मनि
किधौं धरी दीवटि बनाई कहूं राति है॥
कैधौं कारी घटा है पावस प्रचंड मानौ
मारतंड किरनि अरुन उदै भाति है।
पदुकर कहतु चतुर चित चूडामनि
चाहि चाहि रति अति ? मैनका लजाति है॥६२॥

वंदन सौं माँग भरि मोतिनि सवाँरी सरि
मेरे मन आई कछु उकति सुभाति है।
पावस उमड घन घोर मानो कारी घटा
ता मधि विराजै बरावगनि की पाँति है॥
जमुना विदारि किधौं सुरसरि धारि वही
स्याम सिर सोभित नच्छत्र माल कान्ति है।

पूरन सुहाग भाग नवो नवो अनुरागु
सौतिनि कौ सालु उर पिय मन राति है ॥६३॥

कारी सटकारी लट लाल गुन गूँथि वेनी
मालती के फूल मेलि सषिन वनाई है।
कहैं कवि पुहुकर उपमा न आवै मन
मेरे जान त्रिविधि त्रिवेनी छवि छाई है॥
कंचन के षंम्ह तन चढहिं भुजंग मानौ
कौन कवि कहै काम एती चतुराई है।
अम्बर ते उतरी कै चित्र कैसी पुतरी है
अमर की नारि अमरावति ते आई है॥६४॥

पाटंबर पीत पट लहँगा ललित कटि
डोरी कसि गाँठि बाँधि विविध वनाई है।
सौधे संग पागिगी सारी हित की हरनिहारी
पहिरी है गोरे अंग चूनरी चुनाई है॥
मेरे जान प्रगट है इंद्र वधू इदुमुषी
रीझे वर नैन मैन आगम जनाई है।
पुहुकर कहै और उपमा कहाँ ला कहौं
जाकी छवि देवै अपछरी छवि पाई है॥६५॥

(दोहा)

नषसिष की सोभा निरषि, थकित भये मुनि नैन।
सुर नर नाग नरिंद मुनि, अँग अँग उपज्यौ मैन॥६६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहकर विरंचिनेयं स्वयंवर षंडे
नषसिष वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः॥३॥

(दोहा)

वाजत नांद मृदंग धुनि, दुंदुभि ढोल अनंत।
आवत भूप हुलास हित, रूपवंत गुनवंत॥६७॥

पहुमि पाल परताप वल, दल पति दल अधिकार।
दान षड्ग निर्मल नवल, पुहुकर परम उदार॥६८॥

विविधि भाँति भूषन वसन, सुप सुगंधु वहु भाइ ।
भूप सुयंवर हेत लगि, आये चित धरि चाइ ॥६९॥

( छंद पद्धरी )

चित चाहि चौंप आवहिं त भूप । मन मुदित काम अरु कामरूप ॥
मनि धीर वीर वहु वल अपार । मन रूप रास उदित उदार ॥७०॥
गजपति नरत्र असपत्ति ईस । छितपाल छाजि छवि छत्र सीस ॥
दुति कनक दंड चामर विराज । सुर सभा मनौ सुरलोक भ्राज ॥७१॥
मृदुहास मंडि मुषि भरि तमोल । झलकंत करन कुंडल विलोल ॥
अभरन अनंग मनि हीर लाल । राजत्ति रुचिर उर मुत्ति माल ॥७२॥
वहुविधि सुगंध वहु गौर गात । चातुरी चवहिं मुसक्यात वात ॥
तिहिं मध्यि मध्यि नाइक समान । प्रगस्यौ पहुमि जनु पंचवान ॥७३॥
सौमेस वंस नंदन सौं सूर । षोडस कलानि दुजराज पूर ॥
राजाधिराज वैरागरेस । जानहिं जगंत्र पहुमी नरेस ॥७४॥
वैठीयौ आन आनंद भीन । जनु कोटि सूर उद्दोत कीन ॥
वहुराज पुत्र राजत्त संग । अति अमल रूप सागर तरंग ॥७५॥
इत मुदित उदित मंगल अपार । वहु गीत नाद वादित्र वार ॥
चारन विप्र वंदीन भीर । वहु भनहिं वेद श्रुतिवंत धीर ॥७६॥
मंडीय सभा मंडफ विनोद । नर नारि सकल आनंद मोद ॥
सत सहस लच्छि उदित मसाल । कप्पूर अगर वाती विसाल ॥७७॥
तोरन पताक वंदननि वार । जग मत्त मनौ जामिनिय तार ॥
कौतिक विनोद मन हिय हुलास । देषहिं विवाँन वर सुर अकास ॥७८॥
हरषंत्त हेरि हिय हरत सूर । वरषंत्त देव मन फूल फूल ॥
अच्छरि उछाह गंधर्व्व गीत । धन धन्य लग्यँ पुहमी पुनीत ॥७९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयवर षंडे
सभा संचरन वर्ननो नाम चतुर्थमो अध्यायः ॥ ४ ॥

( दोहा )

कुल कुलीन गुर पूजि कुल, परम गुरू गुनवंत ।
गनक पूछि सुभ छिन समय, साधे सिध्य अनंत ॥८०॥
कहत वचन आनंद मय, पुष्पावति पिय पास ।
सकल नृपति आये सभा, अति हित हियें हुलास ॥८१॥

सुभ नच्छत्र सुभ दिन घरी, अति सुभ समय सुभाइ ।
कुँवरिहि आइस दीजियै, मंडफ चलैं लिआइ ॥८२॥
प्रात लग्न श्री पंचमी, पानिग्रहन दिन जोइ ।
तातै अवसि विचारियै, जु आजु स्वयंवर होइ ॥८३॥
पहुपावति अग्याँ दई, मदन मुदित चित चाइ ।
कुँवरि लेउ लिवाइ संग, जो गुर अग्याँ आइ ॥८४॥
सुनि आइस सहचरि सबै, उठीं कुँवरि कर जोरि ।
मानौ कन्या देव की, लषि लाजति रति कोरि ॥८५॥
दुज कर गडुवा नीर कौ, सुंदरि कर जैमाल ।
संग सकल सहचारिका, सदा सुहागिनि बाल ॥८६॥
गनपति गवरि पुजाइ कै, विहँसि धरौ पग मग्ग ।
जुवति गीत आरंभु किये, बाजे बाजन लग्ग ॥८७॥

( छंद तोटक )

जयमाल गुलाल बनाइ गुही । घसि केसरि कुंकुम मंडि छुही ॥
मुकता मनि हार हिरन्य भरी । बहु भाँतनि चित्र विचित्र करी ॥८८॥
करि दच्छिन लच्छि समान कियै । जुग नैन विसालनि लाज लियै ॥
गुरलित अग्र असीस पढ़ै । मन ही मन आँनंद ओप वढ़ै ॥८९॥
अनुचारित नारि नवीन सषी । कमला सँग ज्यौं सब सिध्यि लषी ॥
नवला नव आगम ओप भई । रजनीपति पूरन सोभ लई ॥९०॥
गुरु रूप अनूपक बानि सजी । लच्छिसी जनु छीर समुद्र लजी[1] ॥
नर नारि निहारहिं नेह नये । दुतिया जिमि इंदु उदोत भये ॥९१॥
पहुमी मन मंडित चित्त हरै । गज गामिनि भामिनि पाइ धरै ॥
प्रतिबिंब विसेषि तरंग भरै । विधना जल जात विछौन करै ॥९२॥
मुदितादि सखी सब संग लगीं । निजु नेम मनौ रस प्रेम पगी ॥
नवला सुकुवाँरि सुनारि सषी । जनु अंगन कंचन बेलि लषी ॥९३॥
मुष जोति अनंतर घूँघट के । सबके मन नैन जहाँ अटके ॥
इक देषत ही विसम्हार भये । सुधि बुद्धि विधान विसारि दये ॥९४॥
इक पान विरी वर हस्थ रही । असि भूमि चुनौती दंत गही ॥
इक चाहत चित्त समान रहे । इक बैन विलेपि विचारि कहै ॥९५॥

---

१—मथी ।

सब भूपन के मन आस वढी। सरिता जनु प्रेम तरंग चढ़ी ॥
फिरि हेरि सभा दुहुँ ओर सिरे। जनु अंगनि चक्र इलात फिरे ॥९६॥
छवि रूप कहाँ लग ओप गनौं। सँग डोलति चंद चिराक मनौ ॥
जिहि भूपहिं चाहि पमुक्कि चलै। सुपु होहिं मलीन तजंतु वलै ॥९७॥
जिहि की ढिग आवहि भाइ भरी। सोइ मानतु जीवनि एक घरी ॥
इहि भाति निहारि विचारि चली। जनु सूर विलोकति कौंल कली ॥९८॥

( दोहा )

मेलि माल पाइनि परी, मन क्रम वच रस रास।
कवि कहँ लगि वरनतु करै, भई लच्छि जिहि दास ॥९९॥
चतुर नैन मिलि एक हुव, दुहुँ मन प्रेम प्रकास।
मानौ दुहुँ तन एक मन, पहुकर परम हुलास ॥१००॥
ललित वाहु कोमल सुकर, हरषि हेरि तिहिं काल।
जय जय मंगल शब्द हुव, सूर कंठ जयमाल ॥१०१॥
भेरी ढोल मृदंग धुनि, वाजे गहिर निसान।
उदित मुदित नव नागरी, कियौ मधुर धुनि गान ॥१०२॥
रति रतिपति नृप घरनि मिलि, नरनारी सचुपाइ।
जोरी जुगल विचारि करि, मानत मुदित सुभाइ ॥१०३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वयवर पडे उत्साह जयमाल मेलन वर्ननो नाम पंचमो अध्यायः ॥५॥

( छप्पय )

जवहिं स्वयवर वरिग सूर सुकुँवारि नारि नर।
ओप चोप चित चढिग वढिग अभिलाष विविधि वर ॥
विजय सोभ श्रीवदन सदन कमला जनु आइय।
राज रिद्धि थिर थप्पि सिद्धि साधन फल पाइय ॥
जय जय प्रकास तिहुँ लोक हुव, मन प्रसन्न सुर नाग नर।
अविचलि विचारि जोरी जुगल, सु जव लगि रवि ससि गंगधर ॥१०४॥

( दोहा )

सूर सिंह आनंद भय, मुदित उदित अति रूप।
मानौ जय जय माल करि, जीत लिये सव भूप ॥१०५॥
चल्यौ मत्त मातंग पर, प्रगट पाइ नव प्रान।
वरषत कनक अनंत गन, प्रफुलित चल्यौ मिलान ॥१०६॥

## ( चौपही )

चल्यौ मिलान सूर सक बंधी । मदन रूप मनमथ सुक फंधी ॥
बरषत कनक हरष मन कीनै । दर्बि अनंत भिच्छुकनि दीनैं ॥१०७॥

निरषत रूप वृद्ध जुव वारे । इक टक नैन लगाहि नहि तारे ॥
सरवर करे काम छबि कोरी । रचि विरंचि रति मनमथ जोरी ॥१०८॥

हरषहिं हँसहि संग के संगी । नाइक मानि नवल नव रंगी ॥
और भूप सब गये मिलाना । परम मलीन वदन कुम्हलाना ॥१०९॥

फिरि सुंदरि मंदिर महँ आई । जहाँ मुदित पहुपावति माई ॥
प्रोहित सँग सषी सुषदाई । सलज नैन नहिं देहि दिपाई ॥११०॥

ललित लाज उपजी जिहि काला । नीचे नयन किये वरबाला ॥
लोइनि लाज सैन मन माहीं । ऊँची डीठि विलोकति नाहीं ॥१११॥

वचनन चवै उतर नहिं भावै । जनु पति रूप हृदे भरि रावै ॥
उविडरौ विरह मोद मन आयौ । जननी निरष परम सुप पायौ ॥११२॥

बहु विधि करहिं निछावरि रानी । भाग सुहाग प्रीय पिय जानी ॥
यह जोरी पचि रची विधाता । गवर पती संकर वरदाता ॥११३॥

किय जागरन रैन सब रानी । गावत गीत मधुर धुनि वानी ॥
बाजहिं झाँझ पषावज तूरा । पायौ मान परम सुप पूरा ॥११४॥

नेगचार पूजहिं कुल देवा । संकर गौरि करहि मिलि सेवा ॥
नृत्यहिं जुवति जोति उँजियारी । हरषहिं हरष सकल वरनारी ॥११५॥

सुंदरि सकुचि अवासहिं आई । उद्धत संग सपी सुपदाई ॥
मुदिता आदि सकल सहचारी । दुप सुप विरह वढावन हारी ॥११६॥

तिजि जगरन जुवति विधि ठानी । वरनत प्रेम रसाल कहानी ॥
रुचिर साजु दुति दीप उज्यारी । उज्जल वसन रची नव नारी ॥११७॥

करहिं विलाल हास वर वाला । बोलहिं बोल विनोद रसाला ॥
पौढि लेहु अलि आजु अकेली । कालि होहु रति नाइक चेली ॥११८॥

जिहिं लगि विरह विथा सब पोई । सो पति अंक कालि भरि सोई ॥
सुंदरि संक सकुच नहि बोले । मद बान वारिज जिनि जोले ॥११९॥

विसरि विलास हास तिहि पाना । लज्जित लाज उपजी जिय जाना ॥
चिंता मिटी नींद निसि आई । तब तिहिं समै परम छबि छाई ॥१२०॥

(दोहा)

पुहुकर संका सकुच सुष, मदन भयौ इक ठौर।
बहु छवि कवि बरननु कियौ, यह छवि की छवि और ॥१२१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर पंडे रैन जागरन वर्ननो नाम षष्ठमो अध्यायः ॥६॥

(चौपही)

होत प्रात उग्गित जग भाना। बाजे गहिर गरुव निस्साना ॥
सूर पास घट दरसन आये। चारन विप्र बंदिजन धाये ॥१२२॥
मेघ अपंड धार जिमि दाना। सरिता सरल प्रवाह समाना ॥
सकल सुभट आँनद अनुरागे। भूपन विविधि बनावहिं आगे ॥१२३॥
राग रीति रस रंग रसाला। मानहि मुदित मोद भुवपाला ॥
रूप रास सब राज कुमारा। आँनद जल लिमगन विहि वारा ॥१२४॥

(दोहा)

विजयपाल नृप धाम तैं, आवहिं सरस सुसार।
अन्न पान पकवान रस, अति अगनित अधिकार ॥१२५॥
नहि प्रवॉन संष्या तुला, सामग्री बहु भाइ।
आवति विधि ज्यौनारि त्रिय, सोपै बरनि न जाइ ॥१२६॥

(चौपही)

सब दिनु केलि कला महँ वीत्यौ। कंचन दानु दियौ जग जीत्यौ ॥
नृत्य गीत आनंद बधाई। अष्ट सिध्यि दुहुँ मंडफ छाई ॥१२७॥
संध्या समै लग्न नियरानी। नवग्रह चली नवल निर्वानी ॥
जे त्रिय सदा सुहागिल जानी। पठई तेलु चढ़ावन रानी ॥१२८॥
दूलह तरुन बाल नव नागर। सूरज तेज रूप गुन आगर ॥
दिजु वर गुन गंभीर प्रधाना। नेग रीति सब करहिं प्रवाना ॥१२९॥
तब सनेह संगली सिलाई। प्रोहित मोतिन चौक पुराई ॥
बोली सकल सुहागिल भामिनि। चंदन हरद कियौ मिलि कामिनि ॥१३०॥
गंगा जलु अस्नानु करावा। अगिनित दानु प्रोहितनि पावा ॥
रुच दुकूल अँग अँग पहिराये। विविध विविधि जरतार बनाये ॥१३१॥

( दोहा )

कनक मौर रतनन जरित, धरौ गरुव गुर सीस।
चहुँ दिसि जै जै शब्द हुव, दुजवर पढ़ैं असीस ॥१३२॥
रुक्मिनि नंदन रूप सम, मकर केत अवतार।
दिन दुलहन दूलह नवल, रवि छवि तैं उजियार ॥१३३॥
बाजे गहिर निसान घन, साजै बहु विधि साज।
राजन राजकुमार बहु, चढे राज गज बाज ॥१३४॥

( छंद मोतीदाम )

चढे गजराज विराजत राज। मनौ सुरनाइक देव समाज ॥
जरौ नग हीर महामनि मौर। चमू चतुरंग ढरै सिर चौर ॥१३५॥
जजीरन जोरु चलै हलि नाग। मनौ नव मेघ मिले अनुराग ॥
फबै छबि मंडित कुंम्ह सिंदूर। उयौ उदयाचल ऊपर सूर ॥१३६॥
बढी छबि कानन कुंडल लोल। बनौ कर कज्जल नैन अमोल ॥
बिराजति केसरि षोरि जु भाल। लसै उर ऊपर मौतिय माल ॥१३७॥
भरे मुष पाननि आननि जोति। मनौ रसना बलिय[1] कनि मोति ॥
धरी पनरथ्थ क्षिरत्त जु अंस। बन्यौ अति रूप महावर बंस ॥१३८॥
सबै सँग राजत राज कुमार। भये अमरापुर कौतिक हार ॥
हरिक्किय आदिक तेज तुरंग। लिपे जनु चित्र महा रस रंग ॥१३९॥
जँजीरनि जीन निरूप रकेब। जलज्जनि जोति जलाजल जेब ॥
महामनि मैगल ज्यौं पग पौन। लषै लषि दामिनि पंजन कौन ॥१४०॥
बरैं तहँ लच्छिन लच्छ मसाल। उठै अति आतसबाजुव जाल ॥
छुटै हथफूल हवाइनि गुंज। दुरौ दुति इंदु मती तम पुंज ॥१४१॥
बजैं तहँ पंच हजार निसान। मनौ भरि भादव मेघ समान ॥
निहारत नैन सबै नरनारि। करौ तन प्रान प्रिया बलिहारि ॥१४२॥
चढ़ी वर सुंदरि जाइ अवास। लसै जनु अच्छरि आइ प्रवास ॥
बरष्षत कंचनु मुत्तिय धार। भये मन मोहित कौतिक हार ॥१४३॥
भनै वर बंदिय चारन चारु। सकै नहि नेस सँभारिन भारु ॥
फिरै जु चहूँ दिसि नेरि मझार। पहुँचिय दूलह देव दुवार ॥१४४॥

---

१—रसना बलिय ( रस नाव लिये )

( छंद प्रयगम )

दूलह देव दुवार फिरे पहुचाइ के ।
रूप निहारन हार वली वलि जाइके ॥
हास विलास विलोकनि वंक सुभाइ के ।
वारति जीवनि प्रान मनो सचुपाइ के ॥१४५॥

जोवन राज सरूप अनूप सराहिये ।
सूरज तेज प्रकास मनौ भव आहिये ॥
थकित भये नरनार निहारत रूप के ।
अँग अँग वढौ अनंग विजैपति भूप के ॥१४६॥

( दोहा )

पुहुपावति परछन करत, नवल नारि वहु संग ।
सुत सनेह नृप घरनि मिलि, औरनि अंगन अंग ॥१४७॥
सुता पलटि सुत पाइयाँ, संकर कृपा सुभाइ ।
लेपि लेहि जीवनि सफल, देषि रूप वलि जाइ ॥१४८॥

( चौपही )

सूर कुँवर वर विप्र हँकारे । अर्घ सहित मंदिर पगु धारे ॥
प्रथम पूजि गनपति कुल देवा । जिहि विधि विप्र करावहिं सेवा ॥१४९॥
नेग चार कुल रीति अचारा । जिहि विधि पुहमिपाल व्यौहारा ॥
मंगल विमल जुवति जन गावे । वर कन्या वेदी पर आवे ॥१५०॥
वजे मृदंग भेरि सहनाई । दासन वहुत निछावरि पाई ॥
अग्नि प्रतिच्छ धरी तहँ आनी । भने विप्र वेदनि धुनि वानी ॥१५१॥
चार वेद पहुमी जे आना । तिनि महँ साम सरस कर जाना ॥
जुजरवेद ऋगुवेद अपारा । होहि अथर्वन धुनि झनकारा ॥१५२॥
धोती पीत पीत उपरैना । निरष रूप सचुपावत नैना ॥
पहिरि पीत पट्ट सुंदरि सोहै । सरवर विद्या तिहूँ पुर को है ॥१५३॥
कंन्या दान सँकल्प सुकाजा । जुवति संग पगु धारे राजा ॥
नृप कर कुस रानी कर झारी । भनहिं विप्र ब्रह्मा अवतारी ॥१५४॥
जव संकलप कियौ भुवपाला । विलपि वदन विह्वल वर वाला ॥
करुना प्रगट भई तिहिं काला । मोचतु जल जुग नैन विसाला ॥१५५॥

ले उसाँस बोलत नृप बैना। भरे वारि वर वारिज नैना॥
संपति सुता न संचति माहीं। परबस परी कछू बस नाहीं॥१५६॥
द्वादस बरष लाड लडवाई। सो तनया अब भई पराई॥
पुत्री पुत सब वालन ऊना। होहिं भँडार सदन दोउ सूना॥१५७॥

( दोहा )

इहि विधि वचननि उच्चरै, भरि भरि लेहिं उसास।
सत कन्या गृह औतरैं, जननी तऊ निरास॥१५८॥
लच्छि धेनु पृथवी बहुत, अरु सुवर्न सत भार।
अरपे कन्या दान सँग, बरननु बरनत हार॥१५९॥
सहस नाग हैवर अयुत, पाटंबर बहु भाय।
रतन कोटि दासी बहुत, वर्ननु वरन न जाय॥१६०॥
सूर सैन तब स्वस्ति कहि, अंगीकृत करि लीन।
अग्नि वरुन साषी भये, पानिग्रहनु जब कीन॥१६१॥
वेद रीति भाँवरि परी, ग्रथनि बंधनि भाइ।
वर विवाह पूरन भयौ, पुहकर कहत बनाइ॥१६२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय स्वयवर पडे पानिग्रहन वर्ननो नाम सतमो अध्यायः॥ ७॥

( दोहा )

इत अंतर तेही समै, विजैपाल मति धीर।
बोले मंत्री कुँवर के, गुन गँभीर रघुवीर॥१६३॥
मत्री ढिग बैठारि के, कहत कुँवर सौं बात।
एक दान मागौं अबहिं, तुम दाता विख्यात॥१६४॥
मन वच क्रम जौ दीजिये, तौ जाँचौं जस काज।
विमल होहिं कीरति जगत, सुनिये राजधिराज॥१६५॥

( चौपही )

सूर सैनि करि लज्जित नैना। गुन गंभीर द्रुमि भापत बैना॥
महाराज तुम राजधिराजा। जसु मंडफ चारिह दिसि छाजा॥१६६॥
ये तौ पुत्र पिता तुम आहू। विधि निमित्त यौं भयौ बिवाहू॥
जो आयसु दीजहि प्रभु देवा। मानि सभागु करौं हम सेवा॥१६७॥

( छंद पद्धरी )

उच्चरत पहुमि पति विजैपाल । रसलीन दीन बतियाँ रसाल ॥
विधना विचारि यह काजु कीन । मुहिं अति अनाथ कहँ पच्छ दीन ॥१६८॥
राजाधिराज बैरागरेस । जानहिं जग अपहुँ मीन रेस ॥
सो जानि मानि मैं गहे पाइ । सँकत बयन सुप कहि न जाइ ॥१६६॥
जानौं अनंत मम देस राज । विनु पुत्र सर्व संपत अकाज ॥
एहि सुता सुत आइ गेह । जिय जान हेत बाढ्यौ सनेह ॥१७०॥
वपु मनहु वृद्ध दिन अंत साँझ । जीवनु अनित्य संसार माँझ ॥
मागौं विचारि यह कौन तैन । मम घर धनीय धन सूर सेन ॥१७१॥
बैरागरेस जिय आन फेरि । तिहिं भाति जानि यह चपनेरि ॥
मम नैन प्रान धन जीव जीय । सुव सूर सिंह अति परम प्रीय ॥१७२॥

( दोहा )

विजयपाल इमि उच्चरै, सुन गँभीर रघुवीर ।
सूर सैनि मम घर धनी, चपावति पति वीर ॥१७३॥

( चौपही )

कहत वचन राजा सब आगे । करुना हेत प्रेम रस पागे ॥
मैं दीनौ चंपावति राजू । अपनौ जानि समारौ काजू ॥१७४॥
है सरीर छिन मैं छिन भंगी । विनु सुकृत्य और ना संगी ॥
जव लगि पुत्र विधाता देई । सुष सुत सूर मानि मन लेई ॥१७५॥
मन वंछित पूजहिं मन आसा । तव लगि रहै कुँवरि मो पासा ॥
प्रथम पुत्र चंपावति राजा । वहुरू सिद्धि करौ गृह काजा ॥१७६॥

( दोहा )

यहै वैनु मुहि दीजिये, तुम पुनि अति मति वंत ।
चंपावति पति विधि करे, अरु वैरागर कंत ॥१७७॥

( चौपही )

दिय उत्तर रघुवीर सुजाना । गुन गंभीर परम गुन गाना ॥
तुम पालक प्रभु आद हमारे । हम सेवक हैं दास तुम्हारे ॥१७८॥
है सुन सूर पिता तुम ताहीं । एक भाँति कछु अंतर नाहीं ॥
जाननु जगत विदिति ये बैना । सूर सैनि सौमेसुर चैना ॥१७६॥

एकु पुत्र सौमेसुर आसा । नातर रहै सदा तुम पासा ॥
तुम राजाधिराज प्रभु देवा । जीवन सुफल कियौ तुम सेवा ॥१८०॥
पुत्र प्रीति माया विस्थारा । सुष सनेह अरु लाड दुलारा ॥
गुरजन सेव सहज गृह काजू । ये तो येक पंथ दो काजू ॥१८१॥
ये विख्यात वेद विधि बानी । जग प्रसिध्य अब भई कहानी ॥
एक पूत जनि जनमो माई । घर सूनौ जौ बाहिर जाई ॥१८२॥
तातैं जो कछु आइस दीनो । सो धरि सीस मानि हम लीनो ॥
तब लगि सूर बसै तुव पासा । जब लगि पूजहिं मन की आसा ॥१८३॥

( दोहा )

विजैपाल सोमेस सम, अरु पुप्पावति माइ ।
वैरागर चंपावती, अंतर कियौ न जाइ ॥१८४॥
सूर सैन पुलि सुनि वचनु, मानि लियौ धरि सीस ।
विजै चंद आनंद मति, मन वच दई असीस ॥१८५॥
नौवद नाद निसान वजि, भेरी ढोल मृदंग ।
नगर नार आनंद मय, प्रमुदित दल चतुरंग ॥१८६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेय स्वयंवर षडे
वचन बंधनो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

( दोहा )

भोजन विधि विधना रचै, तरुनी तकि त्यौं नारि ।
जान जिवावन हेत लगि, सिद्धि भई जिवनारि ॥१८७॥
अनगन भाँति अनूप अति, उत्तिम विधि व्यौहार ।
सुधा सरस भोजनु रच्यौ, षट रस पंच प्रकार ॥१८८॥

( चौपही )

छरस सरस ज्यौनारि बनाई । षट दरसन मिलि ज्यौन बुलाई ॥
चंदन लेपि अवनि अधिकाई । राजा रुचिर रम्य मन भाई ॥१८९॥
दुहिं दिसि दीवटि बरहिं मसाला । दिव्य वृच्छ दीपति दुति जाला ॥
पाटंबर बहु आसन डारे । अद्भुत पंच पत्र पनवारे ॥१९०॥
जल सीतल कप्पूर बसायौ । बिमल कनक भाजिन भरि नायौ ॥
बैठे सजन सिरोमनि पाँती । देषत दरस होति मन भाँती ॥१९१॥

विप्र बृंद चातुर मन भारे। परम प्रवीन परोसनहारे ॥
आइस माँगि परोसन लागे। नव रस प्रीत रीति अनुरागे ॥१९२॥
प्रथमहिं दवि परसहिं पकवाना। विविधि भाँति नहिं जाइ वखाना ॥
मोदक सुकत, सुफीनी फेनी। पूप पिराक पुरी सुपदेनी ॥१९३॥
ललित लोचई वेलनि वेली। सरस कचौरी अदरप मेली ॥
अमृत ईमृती सरस जलेवी। माठे वेवर प्यालि रकेवी ॥१९४॥
ओदन अद्भुत आनि परोस्यौ। उज्जल सुलफ सुवासु अदोस्यौ ॥
परमल मनौ मालती फूला। कवि मन मुक्त मानि भ्रम भूला ॥१९५॥
घृतकप्पूर सुगंध वसायौ। अति आदर भरि थार मँगायौ ॥
शृंग दार त्रिनु वक्कल साजी। केसरि सहित प्रीत रंग राजी ॥१९६॥
वेसनि विविधि विधान वनाये। रुचिकर रुचिर गीत गुन गाये ॥
कतरा निवुना अनवर साजे। सरस पटाई मे अति राजे ॥१९७॥
दधि रस लवन कढी करि काढी। मिरच हींग लौंगनि रुचि वाढ़ी ॥
मूँग माप वर वरी वनाई। अरु आमलक वढ़ी सुपदाई ॥१९८॥
रुचित रकौंछ रुचिर अति नीके। ... ... ... ... ... ... ॥
मैंदा माडि रचे रुचि माड़े। उज्जल सुफल परोसहिं पाँड़े ॥१९९॥
अनगन भाँतिनि मासु वनायौ। लवन लौंग घृत मिरच मिलायौ ॥
छाग मेप मृग सकल सँवारे। वटवा विविधि समौचा न्यारे ॥२००॥
विविधि तीतुरी लवा वटेरी। असन आस पूजी मन केरी ॥
मधुर माँस चकतारे कीनें। सूला रुचिर मांगि पुनि लीनें ॥२०१॥
अपनी अदभुत अरु ताहरी। वहु छुडचा सनि पातरि भरी ॥
तरि करंज राइत वनवावा। जैंवत सजन अधिक मन भावा ॥२०२॥
मरगल मीन रसारी कीनी। वहु जंभीर नई रस भीनी ॥
तरकारी तरुनीनि वनाई। मनौ कलप तरवर फल दाई ॥२०३॥
विविधि भाँति बृंताक सँवारे। अनवर रँगि रुचि स्वादनि न्यारे ॥
कुँदरू केरक कोर करेला। परवर परम सुधा रस चेला ॥२०४॥
वथुवा पालक सोवा साजा। अरुई सूरन सरस विराजा ॥
सिगरी कौंच कँरौंदा राधे। राई नोन मठा मै साधे ॥२०५॥
रुचिर रताल औ करचालू। नव निमौन परसे भरि थालू ॥
तापर पापर परसे आनी। सरस क्षारि अरु कांजी पांनी ॥२०६॥
चक्रा निरपि चकृत मन होई। वियौ उकत वरने नहि कोई ॥२०७॥

( दोहा )

मगन मिठा दधि सै दये, जेवति अति आनंद ।
मनौ प्रेम चहलै परे, निकसि सकत नहि चंद ॥२०८॥
पछियावर विधि विधि रची, ते सजन जिवाँवन काज ।
दूध दही घृत षाँड मिलि, पंच अमृत मिलि साज ॥२०९॥

( चौपही )

मेवा सुदित मधुर मन लाये । दरिवा दाष छुहारे भाये ॥
पगी चिरौंजी बिही बनाई । नासपात नागर मन भाई ॥२१०॥
पागे मगम मषाने आनै । मिश्री लौंग मिरच रस सानें ॥
पय प्रकार अनवन बिधि साजे । बहुत सुगंध सहित मधु राजे ॥२११॥
सिबिरिन सरबत छंन्ना पानी । सहित कपूर परोसहिं आनी ॥
जेवहिं सजन स्वाद रस लोभा । जनु सुर सभा जग्यँ वस सोभा ॥२१२॥
बिजैपाल बहु आदर करई । छीर समुद्र धरनि मनु धरई ॥
त्रिपित भये भोजन सब कोई । बरनत बियौ ग्रंथ इकु होई ॥२१३॥

( दोहा )

मधुर लवन अरु चिरपिरौ, करु ओपाठो सीठि ।
जगत विदित षट रस प्रगट, श्रवन सुनें दग दीठि ॥२१४॥
चूसन चाटन चर्मना, सरस पान अरु पान ।
भोजन विधि बिधना रचे, पटरस पंच विधान ॥२१५॥

( चौपही )

जेइ जूठ जब अचवँन लीनौ । नृपति बहुत विधि आदर कीनौ ॥
बहु सुगध चरचे सब लोगा । मानौ अवनि अमर पुर भोगा ॥२१६॥
सुष सुवास तंमोल मँगाये । आदर सहित थार भर ल्याये ॥
पान पचास बनाये बीरा । उज्जल अमल दिपहिं जनु हीरा ॥२१७॥
फूलनि संग सुपारी वासी । मुतिया जरित चून सुष कासी ॥
एला लौंग ललित कस्तूरी । भरे कपूर भई रुचि पूरी ॥२१८॥

( दोहा )

राज पुत्र रघुवीर वर, गुन गँभीर है आदि ।
उलट चले जन वास कौं, मनौ देव इंद्रादि ॥२१९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहकर विरचितेरं स्वयंवर षंडे भोजन विधान वर्ननो नाम नवमो अध्यायः ॥९॥

( दोहा )

मदन सुदित दै आदि सषि, रचहिं सेज सुष धाम ।
चित्र सार चित्रित जहाँ, चतुर चितेरो काम ॥२२०॥
धवल धाम कंचन रचित, पचित हीर मनि लाल ।
पुहुकर दीप नच्छित्र गन, होइ परी तिहि काल ॥२२१॥
चदन अगर कपूर वर, वाती वरहि अपार ।
मनौ सूर आगम उदौ, होड़ परी तिहिं वार ॥२२२॥

( छंद पद्धरी )

सुषधाम सेज सदि रची आनि । रस सूर सैनि उद्दोत भानि ॥
आनंद मानि मन सुदित बाल । उद्दीप मनौं नवती विसाल ॥२२३॥
लषि रहहिं भूमिस्तृग पहुमिंपाल । अति रुचिर रचितवर चित्रसाल ॥
राषिय सुगंध भरि करि वनाइ । अंगनहँ मध्यि सरवर सुभाइ ॥२२४॥
गुंजरत भृंग रसवास लीन । मृग वाल नाद स्वादहिं अधीन ॥
परजंक मंड तहँ चित्त चाइ । मनि मुक्त हीर मानिक जराइ ॥२२५॥
चहुँ ओर चित्र पुतरीय चारि । परवार हेतु जनु अमर नारि ॥
इक हथ्थ पाइ इक हथ्थ चौरि । इक कर सुगंध गहि सुकर औरि ॥२२६॥
पचरंग पाट सीरक विछाइ । वहि रूप ओप वरनी न जाइ ॥
वहु फूल सूल सम धरि वनाइ । पट झीन झारि चादरि चुनाइ ॥२२७॥
गिंडूय जुगल दुहुँ ओर साज । सुर सरित सेज दोउ कूल राज ॥
झलकति मुत्ति झालर अपार । चंद्रोव चंद्र जनु जलज तार ॥२२८॥

( चौपही )

धवल धाम वहु फूलनि छायौ । मनौं मदन सुष सदन वनायौ ॥
दुति दीपति अरु चंद उज्यारी । मनिमय रतन जोति रुचि कारी ॥२२९॥
चित्रसाल चित्रित वहु रंगा । उपजतु निरषि सुपद सुष अंगा ॥
विविध चित्र अनवन विधि साजे । जल थल जीव जंतु सव राजे ॥२३०॥
लिषी वहुत लीला करतारा । चित्र चारु दसऊँ अवतारा ॥
व्रज विनोद वहु भाँतन चीन्हा । राम चरित्र चारु सव कीन्हा ॥२३१॥
सोरह सहस अष्ट पटरानी । चित्री इंद्र वरनि इंद्रानी ॥
नायक नाथ लिषे सुर ग्यानी । रुकमिन आदि आठ पटरानी ॥२३२॥

१. भंगा ।

चित्रे जहाँ सर्व सर्वानी। परम प्रीत नहिं जाति बषानी ॥
रवि रतिनाथ चित्रु पुनि कीन्हा। ऊषा हित अनुरूव मनु लीन्हा ॥२३३॥
चित्रित सकल प्रेम रस प्रीती। साधौ काम कंदला रीती ॥
अग्नि मित्र यौरावत धाता। भरथरि प्रेम पिंगला राता ॥२३४॥
लिषे आस पावस पिक मोरा। लिषे चंद रस लोभ चकोरा ॥
चात्रिक मीन लिषे ते दीना। अरु पतंग दीपक आधीना ॥२३५॥
अलि मन कमल कमल रवि सेती। मृग अनुराग राग विधि जेती ॥
बहु बिधि सेज चित्र बहु भाँती। चाहत जाहि सूर मन साँती ॥२३६॥
साथ षवास षास गुन जाना। आये सेज पवावन पाना ॥
सोभा सिंधु कहत नहिं आवै। सिव समाधि देषत बिसरावै ॥२३७॥

( दोहा )

बहु सुगंध भूषन बसन, बहु गुन आँनद रूप।
पूरन जोति प्रकास रस, जो सेज सिधारे भूप ॥२३८॥
दिन दुलहिनि दूलह नवल, नागर चतुर सुजान।
जग जुवती जनु मदनहर, सब गुन रूप निधान ॥२३९॥
अँग अभरन रतनन जरित, बिबिध बसन परिधान।
चरित चारु सुगंधु रस, किये मधुर धुनि पान ॥२४०॥
मिलन मनोरथु मनु वढ्यौ, सोभा सिंधु अपार।
सँग अनुचर करि कै बिदा, सेज चढ़े तिहि बार ॥२४१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वयंवर पडे
उत्साह वर्ननो नाम दसमो अध्यायः ॥१०॥

( चौपही )

उतहि सेज दूलह पगु धारे। इत सहचरि सिंगार सुधारे।
अष्ट नारि प्रमुदा अनुरागी। सुंदरि अंग सँवारनि लागी ॥२४२॥
मृग मद मीडि मिलैं घनसारी। उबटन केसरि कुसम सँवारी ॥
मंजनु कियौ चीर पहिरायौ। विविध भेद आभरन बनायौ ॥२४३॥
कंचुकि बंधि बंधि कचबेंनी। नीबी बंधि ललित सुबरेंनी ॥
किंकिनि बंधि ग्रंथि कसि चीनी। नषियनि चतुर चातुरी कीनी ॥२४४॥

बंधि मंग वंदनु रचि भारी। तापर लर मुतिया सुर सारी ॥
गंग जमुन बिच मो मन मुत्ती। सोभित मनौ गुंज सरसुती ॥२४५॥
तिलक भाल कुंडल छवि छाजे। बिबि रवि बीच इंदु जनु राजे ॥
लोचन लोल दियौ अरु अंजनु। मोहे कमल मीन अरु पंजन ॥२४६॥
अति अमोल नकबेसर मोती। दीपक फूल झरत दुति जोती ॥
अरुन अधर उज्जल मृदुहासा। दामिनि दमक चंद मुप पासा ॥२४७॥
पहुपमाल मुत्तिय उर माला। कुच कठोर कोमल अति बाला ॥
गुर नितंब सोहत कटि छीनी। चंचल नैन मंद गति लीनी ॥२४८॥
मन मन मध्य लाज उर आई। उभै भाइ अदभुत छवि छाई ॥
कनक थार सषि आरति ल्याई। मानिक मुकुत हीर छवि छाई ॥२४९॥

( दोहा )

कनक थार रच आरती, कर्हहि सषी सचुपाइ।
प्रान नाथ पूजन भवन, चलि अलि लेइ बलाइ ॥२५०॥
सुन सुंदरि मन त्रास हुव, रोम उठे तन अंग।
चित अधार उर धुकधुकी, डरि मुरि दुरौ अनंग ॥२५१॥
नैन लाज उर त्रास बढ़ि, मदन दुरौ तन मांह।
हुलति नारि नाहीं करे, सकत छुडावत बाँह ॥२५२॥

( छंद मोतीदाम )

अली कर बॉह छुडावति बाँह। सुनै सुष त्रास भयौ मन माह ॥
डरै बिडरै जु रहै गहि पाइ। उठै झुकि बोलति बैन रिसाइ ॥२५३॥
हा हा ना करि ना करि नारि। करे बिनती बर बोल पसारि ॥
रहै गहि टेक कहै मृग नैनि। सषी सुहि छाँडि जु आजु की रैनि ॥२५४॥
चलौ जहँ कालिह बुलावहु आइ। कहै कबहूँ सुष बोलत माइ ॥
रहै कबहूँ सिसु कै फिरि सोइ। अली अंग पीर न जानत कोइ ॥२५५॥
कहै कबहूँ सिर दूषत अंगु। चलै उठि रूठि किये रस भंगु ॥
करे बहुभाति निदाइ उपाइ। समारग संक परे नहि पाइ ॥२५६॥
सषी मुदिवादि कहै करि सौंह। करै जनि सुंदरि टेढ़िय भौंह ॥
सवै बिरहानल कारन जासु। करै किनि नैन दरस्सनु तासु ॥२५७॥
डरै जनि त्रासु समागम जानि। अली इतनी हमही डरु कानि ॥
पिता घर सेज न सोवति बाल। बिना डर व्याकुल होति बिहाल ॥२५८॥

न जानति रीति विवाह अचार । भुवप्पति गेहन कौनु व्योहार ॥
लइ जयमाल गई क्यौं न पौरि । चली सजनी सँग पूजन गौरि ॥२५६॥
निरंतर होइ दुहूँ दिसि प्रीति । थपी गुर पंडित आरति रीति ॥२६०॥

( चौपही )

कहै सषी सुनु प्रान पियारी । कारन कौन डरति वरवारी ॥
भुवपति रीति और ब्यौहारा । सुनियत नेम कुल धर्म अपारा ॥२६१॥
बर विवाह बर आरति कीजै । सदा सुषित जग जीवन जीजै ॥
भाग सुहाग सदा सुष राजू । कीजै नेगचार विधि काजू ॥२६२॥
हम सब चले संग सषि तेरे । देहि न होइ प्रान पति नेरे ॥
करि आरती उलटि फिरि आवहि । सषिन सेज इहि ठौर बिछावहि ॥२६३॥
पितु घर सेज न सोवहि कोई । इहि विधि सदन सासुरे होई ॥
बादिहि त्रास डरति मन माहीं । निधरक चलौ कछू डरु नाहीं ॥२६४॥
चली संग रंभावति रानी । कपट सौंह सषियनि पतियानी ॥
डरु लज्जा चिंता चित बाढी । डग भरि चलै होहि फिरि ठाढी ॥२६५॥
अंचल छोरु गहे पट आली । आभा पीत मनौ दल ताली ॥
गुन विसेष वचनन चतुराई । वातनि लाइ सेज ढिग लाई ॥२६६॥

( दोहा )

नष सिप रूप अनूप छबि, कवि मुप बरनि न जाइ ।
ससि सहाइ उडुगन मनौ, सेज पहुँची आइ ॥२६७॥
प्रान नाथ नाइक नवल, निरषत अति आनन्द ।
सहचरि नैन चकोर हुव, वदनु विलोकत चन्द ॥२६८॥
उतहि सूर इक टक रह्यौ, निरषि नैन नव नारि ।
मनौ दिष्टि पररंभु किय, लोचन अंक पसारि ॥२६९॥
लई कुँवरि कर आरती, नागर चतुर सुजान ।
घूँघट पट मुप वोट करि, किये निछावरि प्रान ॥२७०॥
सषि अलाप कल कंठ सुर, गावहि मंगल गान ।
वर विचारि जोरी जुगल, विथकित देव विमान ॥२७१॥
मदन मनोरथ मनु वढ्यौ, लाज लगी डग आइ ।
रति भय उपज्यौ रति उरहं, यह छबि बरनि न जाइ ॥२७२॥

चरन गहे करि आरती, कुँवर गही भुज वाम।
सषि तजि मंदिर भाजि चलि, थकित भई वस काम ॥२७३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुंकर विरंचितेयं स्वयंवर पंडे संकर्पनो नाम एकादसमो अध्यायः ॥११॥

( चौपही )

सषि भजि चलीं छाँडि गृह गोरी। कोमल कुँवरि भीति रस भोरी ॥
करि कपोल पीरी परि आई। प्रीति रीति विसरी चतुराई ॥२७४॥
हहरि थहरि थर थर हिय कंपे। अंग अग चंचल पट झंपे ॥
कर कर करहिं छुडावन चाहै। चित भौ नैन लाज निरवाहै ॥२७५॥
काम कुमार कोक अधिकारी। परम प्रवीन विचच्छिन भारी ॥
नवल नेह नवला नव वेली। तरु अंगी अवला अलवेली ॥२७६॥
कुँवर छाँडि उर आतुरताई। धीरज चित्त धरी चतुराई ॥
पासै सार पिलोना काढ्यौ। षेलन हेत कुँवरि मन वाढ्यौ ॥२७७॥
वदि वर होड षेल विस्थारा। हारै हारि जीति पुनि हारा ॥
इहि विधि जानि दाउ फिरि देई। सुंदरि हरष जीति पुनि लेई ॥२७८॥
इहि रस षेल ढीठि जव भई। लोचन लाज संकु छुटि गई ॥
देषौ रसिक प्रीति की रीती। सर्वसु हारि सुंदरी जीती ॥२७९॥

( दोहा )

पुहुकर हारे हारिये, जीते हूं नहि जीति ॥
तातें प्रीत न कीजिये, कठिन प्रीति की रीति ॥२८०।

( चौपही )

लोइनि भरे परसपर चारी। अचयौ रूप नैन भरि प्यारी ॥
जुरै नैन जव वातनि लाई। मिन सुहात रस वात सुनाई ॥२८१॥

( दोहा )

नवल नारि रस रीति गति, वारू पार विचार।
गाढे गहे न पाइये, अलरायै हित प्यार ॥२८२॥

( चौपही )

नायक चतुर करी चतुराई। वातनि ल्याइ वहुरि उर लाई ॥
जुग उर जुरत रोम उठि आये। नैन रसाल (सघन ?) घन भाये ॥२८३॥

दर्पक दुरौ प्रगट ह्वै आयौ । हिय हुलास दुहुँ ओर जनायौ ।।
समुझत सरस बैन चतुराई । प्रेम प्रीति रस कथा सुनाई ।।२८४।।

( दोहा )

विविधि भाइ बहु चातुरी, कामिनि रस बस कीन ।
पुहुकर परम प्रवीन प्रिय, पिया पानि गहि लीन ।।२८५।।
नैन लाज उर त्रास बसि, पुहकर अंग अनंग ।
नवल नारि डंदित अनत, प्रथम सुरत रस रंग ।।२८६।।
कमल बदन पीरी परी, नीरी होहिं न वाल ।
परम चपलु मन थिर नही, भ्रमत सुत्ति जिमि थाल ।।२८७।।

( छंद तोटक )

बिडरै डरि के विसम्हार गिरै । गज मुत्तिय की गति थाल फिरै ।।
कबहूँ परजंकहि अंक भरै । करुना कमनीय अनंग करै ।।२८८।।
कबहूँ कर पल्लव हत्थ महै । कबहूँ कटि भागन जान चहै ।।
कसि नीविय कंचुकि बंध परे । भुज मंडल ओट उरोज करे ।।२८९।।
जुग जंघ जुराइ दुराइ रही । निधरंक मनौ जिय जानि गही ।।
धरके हिय सांस उसास भरे । किहि हेरत नायक चित्त हरे ।।२९०।।
लगि जीवनि प्रीत के तत्तु रहौ । कवि के सुष भेद न जातु कहौ ।।२९१।।

( दोहा )

त्रिय अबला पिय अति बली, छलबल दाउ न पाइ ।
प्रान पिया रस बस करी, कवि सुष बरनि न जाइ ।।२९२।।
प्रथम समागम रीति रस, जानत जानन हार ।
पुहुकर प्रगट न कहि सकै, लैहै रसिक विचार ।।२९३।।
सुरति केलि सचुपाइ अति, मिटौ विरह दुष दंद ।
छिन छिन मानौ माघ दिन, बढ्यौ प्रेम आनंद ।।२९४।।

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेय स्वयंवर षंडे
प्रथम समागम वर्ननो नाम द्वादसमो अध्याय: ।।१२।।

( दोहा )

चतुर जाम जुग जामिनी, कामिनि काम कुमार ।
होत प्रात निसि अंत ने, सेज तजी निद्रि घार ।।१२१।।

( चौपही )

काम कुमार काम रस केली । ज्यौं रस बेलि कुँवरि अलबेली ॥
अंग अंग पिय करी ढिठाई । पूष मास जिमि ऊप मिठाई ॥२६६॥
निसि करि काम केलि करि क्रीड़ा । उपजी प्रात नैन मन पीडा ॥
सूर सैन सुंदर गुन भारे । जगि जन बास धाम पगु धारे ॥२६७॥
निकट आइ निरषहिं रति रानी । सुंदर वदन वदन कुम्हिल्यानी ॥
कज्जल छीन हीन रँग बीरा । नीचे नैन किये धन धीरा ॥२६८॥
मुदिता आदि सकल सहचारी । प्रीति रीति रस जाननि हारी ॥
विहसँत कमल कली जिमि पाई । सुंदरि सेज उठावन आई ॥२६९॥
षंडित अधर नैन अरुनाई । विहि बल बाल परस छवि छाई ॥
अलि अलाप गुंजत रस लोभा । सोभित प्रथम समागम सोभा ॥२००॥
कंचुकि स्याम दरकि लषि देही । मनौ कसौटी कचन रेही ॥
झपकत पलक नैन झपकारे । जनि पिय रूप भार भये भारे ॥२०१॥
भई सिथिल अलकावलि झोरी । राजति नवल नेह नव गोरी ॥
सोभित सुंदरि नैन उँनीनी । लोचन छवि इंद्री वर लीनी ॥२०२॥

( दोहा )

ललित लाज लोइन लगी, नष छत रेष कपोल ।
तनु तोरि सहचरि सबै, बोलहिं प्रमुदित बोल ॥२०३॥
पीक लीक पलकनि लगी, प्रीति पगी उर माहिं ।
निकट बिलोकति सहचरी, दिष्टि मिलावति नाहिं ॥२०४॥
दुति ताली आली वदन, मदन महा दुति अंग ।
पुहुकर प्रेम प्रकास सौं, उदित मुदित रस रंग ॥२०५॥

( चौपही )

कहै सषी सुनु प्रान पियारी । इहि छिन छवि ऊपर बलि हारी ॥
जिहिं लगि विरह बहुत दुष देषा । कागद मसि नहि आवहिं लेपा ॥२०६॥
जतनहिं जतन मिली तिहि रानी । किहि गुन सकुच लाज उर आनी ॥
करौ सुरति पिय प्रान पियारी । विरह व्याह अरु सेव हमारी ॥२०७॥
जपु तपु नेमु होम अरु नामा । करै अपुनु प्रभु पूरन कामा ॥
अब तजि संक सकुचि सषि पासा । कहौ कंत चातुर गुनु आसा ॥२०८॥

हम सब सषिन सिषापन दीना । सो तुम समुझि चित्त धर लीना ॥
अब उहि भाँति पियहिं बस कीजै । नवल नेह नाइक मनु लीजै ॥२०९॥
जो गुन कोक कला सिखरावै । सो सुष सेज करहिं मन भावै ॥
जो गुनु सत सुहागिलि गाये । ते गुन सदा पियहिं मन भाये ॥२१०॥

( दोहा )

राज कुँवरि प्रमुदित बदन, निरषहि सहचरि तीर ।
सुरति सेज प्राचीन कर, नैन लिये भरि नीर ॥२११॥

( चौपही )

कहै वचनु रंभावति रानी । सहचरि सुनौ सर्व गुन जानी ॥
जो कीनौ तुम सेव सहाऊ । सो मम चित्त न बिसरहिं काऊ ॥२१२॥
सदा सषी सुष दुष संघाती । तजहु न संगु निमिष दिन राती ॥
जो परपंचु विधाता कीनौ । मनमथ विरह प्रान तुम दीनौ ॥२१३॥

( दोहा )

काहू कंचन आभरन, काहू मोतिन हार ।
काहू कंचन वस्त्र दै, सषि संतोषि तिहि वार ॥२१४॥

( चौपही )

विमल बारि भर कंचन भारी । बाला वदन पषारहिं नारी ॥
करि मंजन उबटनु अस्नाना । पहिरे वसन विविध परधाना ॥२१५॥
तेल फुलेल गूँथि कच बेनी । फेरि जो षोरि रची सुष देनी ॥
सुष तमोर द्दग अंजनु दीनौ । सहज सिंगार सषी पुनि कीनौ ॥२१६॥
अति रस बिजन बाउ त्रिय करई । वचनु भेद सुंदरि चितु हरई ॥
मो मत छीन मानि अग आली । अग्नि अनंग फेरि परजाली ॥२१७॥

( दोहा )

पुहुकर सषि सहचारिका, मानहिं अति आनंद ।
बढत प्रेम चितु सुंदरी, सुकलु पक्ष जिमि चंद ॥२१८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचिते स्वयंवर खंडे
त्रयोदसमो अध्यायः ॥१३॥

## अथ मित्र महोत्सव वर्ननं

( छंद लीलावती )

सिर सोहत छत्र चँवर सिंहासन, आसन वास विसेषि कियं ।
वहु भूषन रत्न रुचिर रचि कुंडल कुंतल मंडित मंडिश्रियं ॥
मुकता मनि ग्रीव गिरा वरि वारिद वैननि वानी चंगपती ।
वत्तीसौ लच्छिन लच्छि लसै तन, ज्यौं गुन अच्छरि लीलवती ॥२१९॥
जुग लोचन लोल कपोल कनक छवि कवि सुप वरन नु भेद हुवं ।
वरुनी वरवानी त्रिया तन भेदन सोभित काम कमान भुवं ॥
नव नाइक लाइक सब सुप दाइक सूरज तेज प्रकास प्रभा ।
सुरराज विराज महा छवि छाजत यौं प्रभु राजत वैस[1] सभा ॥२२०॥
रथ हेवर हीर समद सुंडाहल आनि वल्ल पंतिनि पंति परे ।
वहु विक्रम स्वान सिचान सिंह मृग पच्छिय पिंजर आनि धरे ॥
तहँ राजत राज कुमार सभासद सुंदर राज सुजान सवै ।
कवि पुहुकर तेज प्रकास विलोकित लज्जित इंद्र अनंग तवै ॥२२१॥

( दोहा )

कवि अनंगु अँग अँग निरष, कहत राइ रघुवीर ।
धन्नि दिवसु धनि यह घरी, धन्नि कुँवरि वलवीर ॥२२२॥
जैसौ दिनु यह आज कौ, जौ ऐसौ नित होइ ।
सुर नर नाग नरिंद मुनि, सरवर करै न कोइ ॥२२३॥
मानत अनद वधावनौ, जानत जीवन सार ।
देत दानु गुनियनि वहुत, मनौ पुरंदर द्वार ॥२२४॥
पूछत सास विलास रस, जदपि जगत विख्यात ।
कहौ रूप गुन चातुरी, सुंदरता की वात ॥२२५॥
जिहि कारन भव दधि मथ्यौ, अरु दुष सह्यौ अपार ।
जप तप सो छिय पाइ कै, त्रिपिति भये तिहि वार ॥२२६॥

( चौपही )

कहन सूर सुंदर सुकुवारा । सुनौ मित्र मनि राज कुँवारा ॥
सजन सुहाय कृपा करतारा । पाई प्रथम पिया इहि वारा ॥२२७॥

---

१—सवै ।

जिहि विधि चित्र स्वप्न दृग देषी । तिहि विसेषि सति गुनित विसेषी ।।
स्वप्न चित्र इक रूप निहारा । अब गुन सील सकल गुनधारा ।।३२८।।
मथ्यौ सिंधु मिलि दानव देवा । बहुविधि करी बहुत विधि सेवा ।।
इक इक रतन सबनि मिलि लाये । तेमे रतन चतुर दस पाये ।।३२६।।
कोई विषु लै जु सुधा लै कोई । कोइ गज तुरंग धेनु धनु होई ।।
काहू कलप तरोवर लीना । नाम नाथ कमला पति कीना ।।३३०।।

( दोहा )

मैं प्रभु कृपा प्रसाद तैं, सब पाये इक ठौर ।
रत्न चंद रस गेह सम, बाटनहार न और ।।३३१।।

( छप्पय )

जुवति बृंद मनि गनित गुनन कमला गज गामिनि ।
पारजाति परमल सुअगम मनमथ मद कामिनि ।।
बिरह व्याध वर वेध[1] धनुक भृकुटी विधु आननि ।
लोचन लोल तुरंग अधर अँमृत रँग वाननि ।।
त्रिवलीय संष विष मान जन काम धेनु सम सील भनि ।
गुन नाम सील रंभा कुँवरि सो अंग चतुर्दस अग वनि ।।३३२।।

( चौपही )

कहत सूर सुषदाइक वैना । सोभित अमल कमलजिमि नैना ।।
जबहि होहिं करतार कृपाला । तिहिं छन होहिं कांच मनिलाला ।।३३३।।
मरत एक कारन द्वै पायौ । बिना भाग निजु प्रानु गंवायौ ।।
मै न कह्यौ तुम सौं विरदंतू । भयौ प्रसन्नि गौरि कौ कंतू ।।३३४।।
धरै रूप हम नव निधि पाई । फिरि हर दीन सिध्यि रन भाई ।।
सोवत मान सरोवर माही । विधि चरित्र तुम जानत नाही ।।३३५।।
अप्छर सकल सरोवर आई । सेज उठाइ गगन महि धाई ।।
राजा मंजुघोष उरबसी । और घृताची सब गुन रसी ।।३३६।।
निद्रा मगन मै न कछु जानी । कहि गुनु कोन भांति मनमानी ।।
लै करि ब्रह्म कुंड महि आई । अप्छरि एक हती तिहि ठाई ।।३३७।।

---

१. वरवेदधन ।

सुरपति श्राप हुती महि मंडल। आइसु विरचि दियौ आपंडल ॥
कलपुलता कहि नाम बुलावहिं। अप्छरि हित सहचरि घर आवहिं ॥२३८॥

विविध सँजोगु कियौ मन व्याहू। कछुक दिवस तहँ रह मिलि ताहूँ ॥
वंछित भोग सिद्धि बहु केरे। सो रघुवीर मित्र वर मेरे ॥२३९॥

कहाँ कहाँ गुनु रूप वडाई। अप्छरि नारि कहाँ वर पाई ॥
अरु देषौ दृग इंद्र अपारौ। सो सुप लूटि लियो हम न्यारौ ॥२४०॥

[illegible]धि जु कियौ उर अंतर मेरे। ताछे छाँडि चल्यौ उहि नेरे ॥
[illegible]चि मोंहि लायौ चंपावति[1]। विछुरन सजन विरह रंभावति ॥२४१॥

( दोहा )

वहुरि मिले तुम आइ के, अब यह भयौ विवाहु ।
विवि घरनी घर भावतीं, नाथ हाथ निरवाहु ॥२४२॥

जब चलिये इहि ठौर ते, वैरागर समुहाइ ।
तब उहि मारग जाइ के, उहि पुनि लैईं लिवाइ ॥२४३॥

गुन गंभीर रघुवीर मिलि, सुनत वचन आनंद ।
दृगनु मनोरथु मन बढ्यौ, मिटे सकल दुष दंद ॥२४४॥

( चौपही )

करत बहुत आनंद वधाई। मानौ आजु नई निधि पाई ॥
सुनि मंगल मंगल नहिं दूजा। बहु विधि करहिं देव गुरु पूजा ॥२४५॥
पच सब्द मिलि बाजहिं बाजे। आँनद मगन सुभट सब राजे ॥
नव रस छरस भोग सुप कहईं। देत दानु दुष्षित दुष हरईं ॥२४६॥
गीत नाद वादित्र वधाई। उत्सव बहुत बरनि नहिं जाई ॥
करहि केलि कलोल कुमारा। ब्रह्मानंद भयौ तिहिं वारा ॥२४७॥

( दोहा )

बहुत दान सुभटन दियौ, रोम रोम सुष पाइ ।
आनि फेरि सब नगर मैं, पट दरसनहिं बुलाइ ॥२४८॥

सूर सेनि सब संगियनि, दिये बाज गजराज ।
कंचन हीर अमोल अति, प्रेम सहित सुष साज ॥२४९॥

---

१. अनुमानित ।

सुफल घरी सब जगत मै, जानि जगत जिय सार ।
बिलसति दर्बि अनंत अति, कीरति करत अपार ॥२५०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते स्वयंवर षंडे
मित्रलाभ वर्ननो नाम चतुर्दसमो अध्यायः ॥१४॥

( दोहा )

वैरागर कहँ पत्र लिषि, मंगल कुसल विवाह ।
सुष देस पठये जहाँ, तहँ वैरागर नाह ॥२५१॥

नित्य नेमु अस्नान करि, प्रात पुन्य अरु दान ।
देव पूजि पहरे बसन, सब गुन रूप निधान ॥२५२॥

नृप गृह भोजनु सिद्धि हुव, आये बोलन हार ।
सुभट सहित आँनद मुदित, चले कुँवर तिंहि बार ॥२५३॥

छुधा सहित षटरस असन, पुहुकर पंच प्रकार ।
उज्जल तपत सुगंध अति, रुचित रचित ज्यौनार । २५४॥

( चौपही )

कर भोजनु लीने कर बीरा । विहँसत बदन दिपहिं जनु हीरा ॥
कनक बरन तन केसरि सोहै । नैन बिसाल बाल मनु मोहे ॥२५५॥

भींजे तेल बार घुँघवारे । लहरनि भरे भुवंगम कारे ॥
तिलक भाल मृगमद घसि दीनौ । मनौ राहु बिधु भेटनु कीन्हौ ॥२५६॥

सोहति है कटिपट पर धोती । जनु पयोधि लहरी जुत जोती ॥
भीर कपूर और कस्तूरी । बीरी पीत पान की पूरी ॥२५७॥

एला ललित लवंग सुबासा । उदित आनन इन्द्र प्रकासा ॥
सूर सैन सुंदर गुन भारे । सयन हेत सुष सेज सिंगारे ॥२५८॥

इत सुंदरि अभिलाष अपारा । सोभित अंग सकल सिंगारा ॥
नील निचोल पहिर पट अंगा । निरषत रूप कुटि गति पंगा ॥२५९॥

छवि आनन घूँघट पट आसा । मनौ सरद घन चंद्र प्रकासा ॥
कुंडल करन मुत्ति मन मोहे । मनौ गगन तारागनि सोहै ॥२६०॥

कज्जल स्याम दुयौ मन भायौ । मनौ नैन बालनि बिधु लायौ ॥
मंद हास दसननि छवि देषी । दामिनि रेष मनौं घनमेषी ॥२६१॥

(दोहा)

सुंदर चतुर सुजान अति, अँग अँग ओप अनूप ।
रति रंभा अरु उरवसी, सरवरि करहिं न रूप ॥२६२॥

(चौपही)

काम कुमार काम रस माता । नवल नेह दुलहिनि रस राता ॥
बिरह व्याधि दुष देषि अपारा । पाई बिरह बिदारन दारा ॥२६३॥
दुष सुष सुरति और नहि ताही । एक प्रान बल्लभ हित आही ॥
नवल नारि अभिलाष अनंता । नवरल नारि नवल रसकंता ॥२६४॥

(दोहा)

धन मद जोवन राज मद, मन मथ मद अधिकार ।
मैगलु जनु उनमंत अति, कौनु निवारनु हार ॥२६५॥
तरुनि तरनि जिमि तेज मय, पहुकर प्रान अधार ।
मनमथ मूरति मद हरन, परम मुदित तिहि बार ॥२६६॥
विहँसि चली सब सहचरी, रोम रोम सचुपाइ ।
प्रान प्रिया परवीन अति, लाल लई उरलाइ ॥२६७॥
कुच सिव पूजे कमल कर, सषि मुष नैन चकोर ।
दुहुँ दिसु दूत अनग हैं, प्रीति बढ़ी दुहुँ ओर ॥२६८॥

(छंद तोटक)

पिय प्रान प्रिया उर लाइ लई । विरहानल व्याधि विडारि दई ॥
नवला नव सुंदरि सेज चढ़ी । दुहु ओर निरंतर प्रीति बढ़ी ॥२६९॥
परि रंभन चुंबन काम कला । बरसै जनु आनद मेघ झला ॥
रति हास हुलास विलास जियं । रस रीति समागम सज्ज कियं ॥२७०॥
चमकै चल कुंडल लोल तवे । विधि आनन सँग नच्छत्र सबै ॥
दुति दामिनि कान सुकंठ लगै । पलही पल उद्दित काम जगै ॥२७१॥
परजंकहँ अंक न धीर धरै । जुग नैन कटाच्छनि चोट करै ॥
पिय कौ मन आनद रीझि भरै । रस रीति समागम चोज करै ॥२७२॥
छुटे नीविय बंधन हार हियं । सिथिली कृत अंबर कंचुकियं ॥
कर सीकर आनन ओप भई । रजनीस सुधाकर सोभ लई ॥२७३॥
कल कूजिति कामिनि कोक कला । गुर होत पिया रस प्रेम पला ॥
अँग सौं अँग नैन सौं नैन जुरे । उर अंतर कंद्रप चोर दुरे ॥२७४॥

( छंद दुर्मिला )

नव कामिनि काम कुमार उरै । कल कंठ कलोलनि केलि करै ॥
कल कूजित कोक अनेक करै । कल कंठन कंठ विलास धरै ॥३७५॥
कटि किंकिनि कूजनि कंचन कै । कुच मुत्तिय माल विलोल सरै ॥
कहि पुहुकर गंग तरंग मनौ । जुग हंसन के चढि सीस तनौ[1] ॥३७६॥

( दोहा )

पुहुकर आनंद रीझि रस, कामिनि कंत कुमार ।
सुरति केलि रस बस भये, मदन मोद अधिकार ॥३७७॥
दुहुँ दिसि बैननि चातुरी, दुहुँ दिसि नैनन चाउ ।
दुहुँ दिसि बाढति प्रीति अति, ज्यौं दिसि सिसिर सुभाउ ॥३७८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं स्वयंवर षडे द्रुतीय रसकेलि वर्ननोनाम पंचदसमो अध्यायः ॥१५॥

( दोहा )

इहिं विधि सुष संजोग भै, काम कुँवर मृग नैनि ।
प्रीति परसपर अति बढै, चाउ चढै दिन रैनि ॥३७९॥

( चौपही )

इहि विधि प्रीत परसपर बढै । दिन दिन मनौ माघ दिन चढै ॥
दिन जामिन भामिन मन भायौ । कामिनि कंत प्रान सम पायौ ॥३८०॥
माघ छाँह घन दामिनि जैसे । जल जिमि रंगु मगन मनु ऐसे ॥
हरदी रंगु भयौ रँगु न्यारा । इहि विधि दुहुँनु अपुनुपौ हारा ॥३८१॥
रोचन नाम कहै सबु कोई । बहुरि न हरदी चना होई ॥
है प्रवाह सलिता जल भारी । मिलै न होहिं उदधि तै न्यारी ॥३८२॥
जल तरंग दुति दीप उज्यारी । इहि विधि सदा पियहिं प्रिय प्यारी॥
इहि रस मगन कछू डर नाहीं । विहरत विहँसि कुंज बन माही ॥३८३॥
अमर वेलि तरवर अरुझानी । पिय संग सदा प्रिया सुप सानी ॥
छह रितु छरस सरस अति भोगू । नवल नारि नायक संजोगू ॥३८४॥
प्रीति रीति दुहुँ दिसि अधिकानी । मनौ सरित वन सावन पानी ॥
राज वधू अरु पीहर पूरी । सुप रस लता समद दुप दूरी ॥३८५॥

---

[1] —चढ़ ।

त्रिय मनु रह्यौ पिया महँ जाई। पिय उर प्रिया लसे जनु झांई ॥
स्वप्न सुभाइ प्रेम रँग राता। कहहिँ परसपर पूरन बाता ॥३८६॥

( सवैया )

जल ते तरंग जैसे जोति संग सदा तेज[1]
देह ते प्रकृति सदा होति नहिँ न्यारी है।
रूप रंग दुति जग्यँ वेदी माँझ आहुति
हुतासन से तपति ससि साथ ही उज्यारी है ॥
कहै कवि पुहुकर देपिये विचारि मन
क्रम वच बुद्धि जैसे कुहूँ ते अँध्यारी है।
घरी घरी पल पल छिनु छिनु राँची रोम
रोम ऐसे मन मेरे प्रीति तेरी प्यारी है ॥३८७॥

( चौपही )

पिता राज चंपावति राजू। अहपित राज वैस वड़ काजू ॥
सुष संपति दंपति अधिकारी। अति रस विवस सुप्रान पियारी ॥३८८॥
पतिवृत एक चित्त उर आना। पति कहँ पारब्रह्म करि जाना ॥
तीरथ नेम जग्यँ पति आही। अष्ट जाम मिलि पूजत ताही ॥३८९॥
सावधान सेवा मन रहही। फेरि जु उलटि न उत्तर करही ॥
सूर सिंह जो आइसु देई। रंभा मन सासनु सो लेई ॥३९०॥
अष्ट नारि सहचरी सयानी। सहज सुभाइ देष हरषानी ॥
तैं सब सेव कुँवर की करहीं। अति आधीन सेव अनुसरहीं ॥३९१॥
इहि विधि बरष एक नियरानी। मैन चैन दिन रैन न जानी ॥
सेज सुगंध वचन परिधाना। भुवपति हेत सकल सनमाना ॥३९२॥

( दोहा )

एक बरष इहि विधि भई, अति आनद अनुराग।
प्रान नाथ नवनागरी, पुहकर पूरन भाग ॥३९३॥

इति श्री रसरतनकाव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं स्वयंवर षंडे रस वर्ष
त्रितीतिमानो नाम षोडसो अध्यायः ॥१६॥

---

[1] देहते प्रकृति दो बार दिया है।

# युद्ध खंड

(दोहा)

सूर सिंह चंपावती, रंभावति पितु पास ।
कलपलता बिरहिनि बिकल, पिय बिनु परम उदासु ॥१॥
जा दिन तैं पति गवनु किय, ता दिन तैं सुध कौन ।
मलिन बसन कृस अंग अति, भावतु सोगु न भौन ॥२॥
कीर पढ़ावति सुंदरी, नीर भरे जुग नैन ।
आँसनु सींचति वाटिका, बोलति कातर वैन ॥३॥
वरस दिवस पिय बीछुरै, निमष वरष वर जात ।
बिरह बढ़ावन सहचरी, तज्यौ न सुष संघात ॥४॥

(छंद मोतीदाम)

व्याकुल बाल बिहाल वियोगिनि कामिनी ।
विरह बिथा भ्रम द्यौस न जाति न जामिनी ॥
जंपति है पिय नासु सदा संग कीर सौं ।
सींचति प्रीति जु सदा सरोवर नीर सौं ॥५॥
बारह मास वीतिति छहौं रितु हौ गई ।
सुंदरि को दुष दाइक लाइक ते भई ॥
विद्यावंत सुजान सबै समुझावही ।
विरहिनि विरह वियोग उसासन पावही ॥६॥

(सोरठा)

षट रितु बारह मास । दुष वियोगु विरहिनि मरे ॥
पलपल छीजै मास । सुनु सुक स्याम सहाइ विनु ॥७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय जुद्ध पडे बारहमासो
आगम वर्ननो नाम प्रथमो अध्याय: ॥१॥

अथ बारहमासा वर्णन

(चौपही)

प्रथमहि आइ असाढ जनावा । विरहिनि विरह त्रास मन आवा ॥
मानो मदन फौज चढ़ि आई ॥८॥
रितु आगम अलि दीन दिषाई ।

अबला अधिक डरत मन माहीं। रापनहार पीउ घर नाहीं ॥
जिहि घर कंत करहि त्रिय केली। हौं अनाथ विनु कंत अकेली ॥६॥
पट मृग गेह चैनु मन कीनौ। बालम बिछुर हमहिं दुष दीनौ ॥
आवहि बँधे प्रेम रस डारा। पिय मुँहि जलधि विरह सौं डारा ॥१०॥

( सोरठा )

विरहिनि मदन रिसान। पावक दल वल साजि करि ॥
बाजे बंब निसान। उमडि मेघ गरजे गगन ॥११॥

( तोटक )

दल दप्पंक पावक सज्जि कियं। डर व्याकुल बाल विहाल जियं ॥
उमड़े घन मैगल मत्त जनौ। गरजै नभ बाजति बंब मनौ ॥१२॥
चलि अग्गित पौनु पवंकि जहाँ। चपला समसेर झमंकि तहाँ ॥
अमरा पति चापु चढाइ चल्यौ। जनु वंदिय कोकिल कीर पल्यौ ॥१३॥
वरषा अति बाननि ज्यौं वरषैं। पिय संग सुहागिनि ते हरषैं ॥
बग पांतिनि सोगति जोर चलैं। कप चीक्रत धावत सूर भलैं ॥१४॥
बिसवासिय सो घर कंत भयौ। परहथ्थ विचाइ विसारि गयौ ॥
कहि कीर कहाँ विधि कौन करौं। किहिं भांतिनि मासु असाढ़ भरौं ॥१५॥

( सोरठा )

सावन आवन कीन। पिय आवन पेषत नहीं ॥
विरह अधिक दुप दीन। सुन सुक स्याम सहाइ विनु ॥१६॥

( चौपही )

सहचरि सावन आइ तुलानौ। मुहि मनोज अबला करि जानौ ॥
बरन बरन तन कीन सिंगारा। मेदिनि मेघ मिली इक बारा ॥१७॥
पहिरें नारि अरुन तन चीरू। मानौ इंद्र वधू पसरीरू ॥
गावहि गीत मुदित ढिग ठाढी। हमहिं विरह वेदनि अति वाढ़ी ॥१८॥
वर कामिनि झूलहिं इक डोरें। हौं झूलति सपि विरह हिंडोरै ॥
दिन जामिनि दोऊ पंम्ह सँवारी। मदन बयारि लगी अति भारी ॥१६॥
पटुली पीर बिछुरि पिय चिता। ठाढी चतुर जाम जिय मिंता ॥
मन्यौ जुगल नैन टक लाई। विना[1] लाल पलु थिर न रहाई ॥२०॥

---

१—विलना ?

सुनि सषि कहौ कहाँ लगि केती । होइ परी मुँहि सावन सेती ॥
मरुवा मेघन और हिंडोरा । रित बिरहिन मैं भयौ मिलि डोरा॥२१॥

( सोरठा )

सावन सरबर होइ, चात्रक और मनोज मिलि ।
मौं संग और न कोइ, सेज अकेली रैनु दिनु ॥२२॥

( छंद मोतीदाम )

सुनै रट चात्रिक पीय पुकारि । रटै पिउ पीउ वियोगिनि नारि ॥
लग्यौ झर मेघ अषंडित धार । झरै जुग नैननि नीर अपार ॥२३॥
बहै जब मारुत सीत सुवास । तहाँ त्रिय सीतल लेति उसाँस ॥
हियौ वर बारिद यौं उमगंत । रह्यौ रमि नेह नवेलिनि कंत ॥२४॥
भई हरिता हरतैं चहुओर । करैं पिक दादुल सागर सोर ॥
तरप्पति विज्जु उरप्पति बास । चरक्कस मेलि तरक्कस काम ॥२५॥
भई सरिता बहि लोचन नीर । बिना पिय लागति ना उन तीर ॥
सषी सुनु सावन आन तुलान । गयौ मुहि ब्रंह्म उरूष समान ॥२६॥

( सोरठा )

भादौ गहिल गँभीर । सघा मेघ उनमत्त अति ॥
बरषत लोचन नीर । नारि अकेली सेज मैं ॥२७॥

( चौपही )

भादौ मेघ सिंह घन गाजै । मनु मतंग देषत हरि भाजै ॥
निसु दिनु मेघ अड़ित जल धारा । जल थल भरै सरित सर पारा ॥२८॥
जामिनि स्याम भयानक भारी । कामिनि कंत भरहिं अँकवारी ॥
उनमद मदन सिंह चढ़ि आयौ । बिरहिन वधन काज उठि धायौ ॥२९॥

( सोरठा )

सिंह चढ्यौ अरु सूर । दामिनि कर तरवारि लै ॥
काम कियौ कछु क्रूर । तिहिं पर मेघ सहाइ सब ॥३०॥

( छुद मोदिका )

घर घर वाउ जुरे धर अंमर । मो जिय बैरि परौं अरि संमर ॥
चात्रक टेक हियै उर सालति । पंकज लीन तजी अलि[1] मालति ॥३१॥

---

१—उर ।

( छंद मालती )

अलि मालति छोड़ि रह्यौ रमि वारिज सोचन[2] लोचन वारि भरै ॥
दिन जामिनि जाम लग्यौ उर नैननि ज्यौं जल जोर प्रवाह टरै ।
उमग्यौ मनु विरह बयारि लगें घर कामिनि जत्न अनेक करै[3] ॥
विरहागिनि व्याधि विथा सुनिजे जु सषी विनु प्रीतमु कौनु हरे[4] ॥३२॥
इकई भरि द्वैस निसा अति लागति जागति राति न अंतु लहै ।
घन घोरित सोर सुनै सहि के हिय व्याकुल वेदनि काहि कहै ॥
निसि आव न नींद लगे नहि लोचन जो मिस ही मिस सोइ रहै ।
सपनै नहि (प्रानहि[5]) प्रानपती कहँ पेपति तौ धरि अंचल पाइ गहै ॥३३॥

( सोरठा )

अस्वनि अवनि अनूप । रितु उज्जल वरषा घटी ॥
मुदित मनोभव भूप । पुहुकर सरद सुहावनी ॥३४॥

( चौपही )

अस्वनि उदै कुंभ सुत कीना । वरषा घटी मेघ जल हीना ॥
काम कुमद फूले वन माहीं । निरस निपट पीऊ घर नाहीं ॥३५॥
चात्रिक स्वाति बढी उर आसा । हौ सषि मरति दरस की प्यासा ॥
पानी पान सरद सब स्वादू । मोहि कीर अति विरह विषादू ॥३६॥
सोभित जोति चंद उजियारी । करहि केलि रस रास धमारी ॥
पितर पूज नर पूजहि साया । मुहि पिय विनु सूनी भई काया ॥३७॥

( छंद त्रिभंगी )

रितु सरद सुहाई, जय जग भाई, जोति जुन्हाई उद्दितियं ।
उज्जल रस नीरं, भौरनि भीरं, सुरसरि तीरं उनमत्तियं ॥३८॥
चात्रिक जल आसं, सूर प्रकासं, वल्लभ आसं, तन त्रासं ।
सोहँ नव नारी, पियहि पियारी, जोवन बारी संभोगं ॥३९॥
बहु व्याकुल बाला, ज्यों जक हाला, मुत्तिय माला, प्रानु हरै ।
अति अवला दीनं, नेह नवीनं, विरह बिलीनं, काहि करै ॥४०॥

---

२—'मोचन' पद छूटा प्रतीत होता है। ३—अनकेरे। ४—रहे।
५—अनावश्यक लगता है।

( सोरठा )

कातिक परम पुनीत। दीप माल प्रमुदित जगत॥
घर घर मंगल गीत। घर घर कामिनि कंत सुष॥४१॥

( चौपही )

कातिक दीप मालिका होई। घर घर दीपु धरहिं सब कोई॥
बर कामिनि षेलहिं मिलि सारी। पिया जुवा परस रस प्यारी॥४२॥
परम पुनीत मास जग जाना। सब नर नारि करैं असनाना॥
कामिनि कंत भरहिं अँकवारी। हौं अलि बिरह संग लै डारी॥४३॥
सुनु सषि सदन दिया नहिं बारौं। दीप बारि किहि बदनु निहारौं॥
संजोगिनि मानै सुषराती। हौं सषी विरह बिकल उन्माती॥४४॥
सुनौ कीर पिय लाज न आवै। बिरह काल हम साथ गँवावै॥
तुला भान चढ़ि पुन्य करावा। सीत काल सब जग तजनावा॥४५॥

( दोहा )

सूर तुला चढ़ि पुन्य हित, मान्यौ चित अति चाउ।
विरह तुला सषि हौं चढी, एक पला धरि आउ॥४६॥

( छंद पद्धरी )

भई दीप माला। करैं केलि वाला॥
प्रिया पीय संगा। करैं काम रंगा॥४७॥
सरद चंद्र वित्रं। मनौ मारि मित्रं॥
लसै जौन्ह जोती। मनौ भूमि मोती॥४८॥
भई सेज सूनी। लगै रैनि दूनी॥
सहौं मैन पूनी। पिया पाउ ऊनी॥४९॥
गई नींद नैना। नहीं चित्त चैना॥
कहाँ पीउ पाऊँ। ढिवारी मनाऊँ॥५०॥

( सवैया[1] )

आवति है आये घर जाति उन[2] संग लागि
नैनन की निद्रा किधौं नाह अनुगामिनी।
कर की कमान काम कान लगि तानि वान
मारतु निसान प्रान कैसे रहैं कामिनी॥

१—रसवेलि के २४वें पद से तुलनीय। २—फूलनि।

कहँ कवि पुहुकर प्रीतम पियारे पीउ
बिछुरे तैं दुसह दुहेली भई जु दामिनी ।
रूनी भई पिया बिनु सूनो हौं बिरह बाल
ऊनी भई सेज तब दूनी भई जामिनी ॥५१॥

( सोरठा )

अगहन उदित सीत । अग्नि तूल आदर भयौ ॥
नारि मदन भयौ भीति । विरह बरोसी उर बरै ॥५२॥

( चौपही )

अगहन आइ सीत अधिकाना । कंत कीन पर भूमि पयाना ॥
हौं सषी सीति भीति भई भारी । अग्नि अनंग अंग परजारी ॥५३॥
बृश्चिकु बिरह चढ्यौ अति अगा । डसत मनौ मन मध्य भुजंगा ॥
बहुत व्याधि नहि पावत अंता । हरै कौन छिन गारुरि कंता ॥५४॥
भई जोति बिनु आनन हीना । अगहन गहन राहु जिमि कीना ॥
जिहि घर वर अति नारि सुहेली । बिरह दहै धन परम दुहेली ॥५५॥

( चन्द्रजोति छंद )

प्रिया पीय प्यारी । सुषी दुहेली ॥
न सेज सोवै । निसा अकेली ॥५६॥
सरीर छीनं । सीत कार विकार मारं ॥
त्रिहालन अंग तजे । त्रिय सिंगारं ॥५७॥
अहार[1] हारं । जनु पंच वानं ॥
बसंत वैरी हरति जु । आस पिय प्रानं ॥५८॥

( दोहा )

हिमि रितु हम पिय दरस हित, बिरह बिकल बिकरार ।
कीर धीर किहि बिधि धरौं, बिनु पति प्रान अधार ॥५९॥

( सोरठा )

पौष प्रगट रस ऊंप । हिमकेर सीतल पौष जग ॥
बिनु पिय दरस पऊप । बिरहिन भार सुभार किय ॥६०॥

---

१. मराल हेत ।

( चौपही )

पौष मास चौगुन भौ सीता । विरहिनि काम आनि भई भीता ॥
मदन सूर मिल धनुक चढायौ । पौहम नाम धुरंधर पायौ ॥६१॥
मोहन हनत पंच सर मारं । विकल व्याधि अलि विरह विकारं ॥
जामिनि बढ़त छीन दिन होई । कामिनि विथा तकहिं[1] नहि कोई॥६२॥
ज्यौं जल हीन मीन मुरझाई । हम मानस जु निपट दुपदाई ॥
लै कर मदन धनुष तिहिं वारा । करन जगत विरहिनि संघारा ॥६३॥
मुहिं निसि नीद न आवत नैना । कबहिं सुनौ धुनि सुंदर वैना ॥
तलफ तूल नहिं नेक सुहाई । अग्नि अनंग अंग परचाई ॥६४॥

( दोहा )

औरन तन तापन करै, बारि बरोसी घास ।
विरहिनि अंगु अजार कै, सँकतु है कर काम ॥६५॥

( सोरठा )

माघ महा बल सीत । कंपत कठिन उरोज उर ॥
माधव मास पुनीत । मैं अरप्यौं तनु प्रान सबु ॥६६॥

( चौपही )

मकर मास मकरध्वज बैरी । विरहिन दुवन दुवन जनु हैरी ॥
मनमथ सूर भये सँग बासी । वाहन एक चढ़े बिसवासी ॥६७॥
भानु मैन अनुचारन कीना । तिहिं गुन जगत तेज भौ हीना ॥
दारुन सीत बढ़न दिन लागे । मो पिय आन त्रिया सँग पागे ॥६८॥
क्यौं बिहाइ सषि सेज अकेली । कंत संग बिनु रहे दुहेली ॥
लोइनि नीर तरंगिनि बाढ़ी । सेज नाउ करि सरवन ठाढ़ी ॥६९॥
साँसन ऊस बहै पुरवाई । डोलत करन धार बिनु माई ॥
दुस्तर निपट विषम अति धारा । केवटु कंत लगावहिं पारा ॥७०॥

( दोहा )

पुहुकर माव अतीत हुव, दिवस चढ़े घटि राति ।
मो घट साँसन सांस गति, घटी घटी घटि जाति ॥७१॥

---

१. तपरिनें ।

( सोरठा )

फागुन मास जु फागु । परम मुदित पेषत जगत ॥
नर नारी अनुरागु । विरहिनि विरह विहार सँग ॥७२॥

( चौपही )

फागुन फागु जगत मैं होई । मन प्रमुदित मानत सब कोई ॥
संजोगिनि धन करहिं सिंगारा । बनि बनि बरन बरन अधिकारा ॥७३॥
बहु सुगंध परिमल उर लावहिं । कामिनि काम केलि गुनु गावहिं ॥
नवल नारि नाइक अनुरागी । छाँड़ि लाज अवलोकन लागी ॥७४॥
गुरजन कानि अंत्रपट टूटे । लोक लाज के बंधन छूटे ॥
तरुनी तरुन मदन दल साजहिं । बाजन बिजै दुहूँ दिसि बाजहिं ॥७५॥
हौं अनाथ अबला अति भोरी । तिहि तन विरह धरी दुष होरी ॥
मनमथ अग्नि अंग परजारी । विरह वियोग हुतासन भारी ॥७६॥
पेलहिं पिय संग नारि धमारी । मो मन चाँचरि विरह विहारी ॥
मो घर पीउ नही सुनि आली । वदन जु देह भई दुति ताली ॥७७॥

( सोरठा )

पुहुकर चैत वसंत । वन राजी राजी विपिन ॥
प्रमुदित कामिनि कंत । मदन फौज साजी मनौ ॥७८॥

( छंद पद्धरी )

मधु मास चैत सोभित वसंत । संजोग संग दंपति लसंत ॥
रितु पाइ राज रति राज साज । दल सज्ज कीन विरहिनी काज ॥७९॥
अंकुरित पत्र तरु हरित नील । हलि चलत मनौ दल मदन पील ॥
रँग अरुन फूलि किंसुकि विधान । जनु कटक माँझ सोभित वितान॥८०॥
सोभित सरस छवि अम्ब मौर । सिर ढरहिं मनौ मनमथ्थ चौर ॥
केवरौ मलति[1] मालती जाइ । जनु मैन वान राषिय बनाइ ॥८१॥
गुंजरत भ्रमर कोकिल सुकीर । जनु भनत वंदिजन विप्र धीर ॥
लपटाइ लता लागी तमाल । जनु करति त्रिया कर अंकमाल ॥८२॥
मनु सुक जु चित्त मुहिं नहिन चेत । भये मदन सूर मिलि मदन केत॥
हिय सून प्रान धरनी निकंत । किहि अंग संग मानौं वसंत ॥८३॥

---

१. मलिन ।

( सोरठा )

विरह विषम वैसाष । कामु तपतु अरु चित तपै ॥
सुकल उभय दोई पाष । सेज तरंगिनि नैन जल ॥८४॥

( चौपही )

सुभग मास वैसाष जनावा । तरनि तपत तापन जग छावा ॥
निसि उजल अरु रैनि उज्यारी । सूनी सेज भयानक भारी ॥८५॥
उज्जल फूल कुंद अति राजै । मनमथ बान सान दै साजै ॥
मिलि मयंक ताराइनि जोती । निसि त्रिय सीस फूल जनु मोती॥८६॥
जिनि घर कंत केलि त्रिय साजहिं । हँसनि हंस मंद दुति राजहिं ॥
हौं विरहिनि अबला अति बाला । ता पर करतु बिरह बेहाला ॥८७॥
सुनौ कीर को पीर बटावहि । वेदनि कौन विरह बिसरावहि ॥
को कहि जाय विरह की पीरा । व्याकुल बाल बिहाल अधीरा ॥८८॥

( सोरठा )

जे अगनति आवेस । निपट दुसह वृषभानु जग ॥
बंधव जेठ विदेस । कौनु उबारै मार तन ॥८९॥

( छंद तोटक )

अबला अति भार सुमार कियं । विरहा तन बाल बिहाल जियं ॥
रितु ग्रीषम दीरघ[1] देह तपै । रसना रव कामिनि कंत जपै ॥९०॥
छहू रितु छीन अधीन भई । सुष की सुधि सुदरि भूल गई ॥
छिनहूँ छिन छीजत प्रानु घटै । रसना रस पीउ सु पीउ रटै ॥९१॥
निसि उद्दित अंबर इंदु इमं । हर नैन हुतासन नील जिमं ॥
चिनगी सम चंदन अंगु लगै । परसंत हियौ यहि[2] देह दगै ॥९२॥
घन सार तुसार सुसार मनौ । तन लागत सीर सुसीर जनौ ॥
अहि छौन बिछौन तै भौन भयौ । इहि भाँति सुद्वादस मास गयौ॥९३॥

( दोहा )

पुहुकर सागर विरह कौ, जद्दिप दुसह अपार ।
मन वच प्रेम जिहाज करि, नाथ निबाहन हार ॥९४॥

---

१. दीषम दीख । २. महि ।

षट रितु बारह मास गै, पुनि फिर आइ असाढ ।
मनमथ पीर न छिन घटी, बिरह दिनै दिन बाढ ॥९५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं जुध्य षंडे बारह
मास वर्ननो नाम द्वितीयो अध्यायः ॥२॥

( चौपही )

कलपलता विरहिनि सुकुँवारी । सो सरपंच पंच सर मारी ॥
पांच बान दस दसा प्रवाना । अरु बस भई अंग अधिकाना ॥९६॥
पल प्रति तपत मूरछा होई । प्रान नाथ मिलवै नहिं कोई ॥
सहचरि चतुर सुत्रा गुनु जाना । विद्या पति दसचारि निधाना ॥९७॥
देषी विषम व्याधि अधिकारी । इक अवला कोमल सुकँवारी ॥
मधुकर उतहिं आनि रसमाता । मालती फूल फलौ जल जाता ॥९८॥

( दोहा )

विद्या पति जिय जानि करि, विरहिनि विरह अपार ।
चंपावति मग पग धरे, चले दूत अधिकार ॥९९॥

( चौपही )

उडे कीर लै विरह सँदेसा । चले जहाँ चंपावति देसा ॥
स्वामिनि चरन परसि उतमंगा । अरु जुग नैन भये जुग गंगा ॥१००॥
सुंदरि कहै सुनौ सुक धीरा । तुम मम विरह बटावन पीरा ॥
तव बिछुरत मुँहि दूभर भारी । ज्यौं बिनु दीपक रैनि अँध्यारी ॥१०१॥
एक विरह बस परम दुहेली । क्यों मरिहौं बिनु रैनि अकेली ॥
जो तुम चले करन उपगारा । रापन हाथ साथ करतारा ॥१०२॥

( दोहा )

संकर संग सहाइ तुव, सुनौ कीर बलि जाउँ ।
जिहि जिहि मारग पगु, धरौ तहँ तहँ सीस धराउँ ॥१०३॥
कुसल सहित पहुँचौ जहाँ, जहँ चंपावति देस ।
प्रान नाथ पिय पाइकै, कहियौ यहै संदेस ॥१०४॥

( सोरठा )

जिहि रातौ मेरो पीव । हौं दासी तिहि नारि की ॥
करौं निछावर जीव । जब निरषौं संजोग सुष ॥१०५॥

( चौपही )

यहै चित्त मुहि परम परेषौ । कागद महि नहिं आवहिं लेपो ॥
नवल नारि नाइक मन भाई । दासी क्यौं न लई सँग लाई ॥१०६॥
अब पुनि मनहिं मनोरथ होई । विना नाथ नहिं जानहिं कोई ॥
देषौ एक सेज संजोगू । दुहिं दिसि प्रेम प्रगट रस भोगू ॥१०७॥
लै कर दाउ विजन कर ढोरौं । नष सिष रूप निरषि त्रनु तोरौं ॥
जिहिदिन जन्म सुफल करि जानौं । स्वामी कृपा सत्य कर मानौं ॥१०८॥
पहिली प्रीत जोर चित लावहु । दोपति दरस नैन अघवावहु ॥
मैं बिनती करि करी ढिठाई । तिहि ऊपर अब राज[1] बडाई ॥१०९॥

( दोहा )

विद्यापति संदेस यह, आन वचन नहिं ठाम ।
और कहौ सुष आपनै, जो कछु कहौं विराम ॥११०॥
यह कहि कै करि कै विदा, उदित सूर परभात ।
वहुरि विरह विहबल भई, सिथिलित अंग सुगात ॥१११॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं जुध्य पंडे
सुक सदेस वर्ननो नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

( चौपही )

लै कर कीर विरह सँदेसा । चले अगम चपावति देसा ॥
गिरिवर गहन विपिन गंभीरा । सरिता समुद सरोवर नीरा ॥११२॥
निरषत नैन विजच्छिन जाना । उच्च गगन मग जाय उडाना ॥
जब निसि निकट अस्थ रवि होई । तरवर विहंग वसे सब कोई ॥११३॥
यह पुनि मिलहिं सुवा संघाता । पूछहि निसि चपावति वाता ॥
वैठे निकट मिले संग जासू । नहि पत्याइ हिरदै मे तासू ॥११४॥
फल रसाल परपक्व सुपावै । फल अहार छुधा विसरावै ॥
दिवस पंच मारग प्रस्थाना । देषत नैन विकट उद्याना ॥११५॥
वहु विधि वाग राज अस्थोभा । मधुकुर विहंग वासु रस लोभा ॥
सरवर छोडि कमल चित चोभा । अनवन भाँति फूल फल सोभा ॥११६॥

---

१. अपराध ?

सरवर वियौ समद गंभीरा । चंदन विरष लगे सव तीरा ॥
नाना वरन पारि तहँ साजी । कामिनि कलस भरहिं गुन राजी ॥११७॥
चंद्र वदन मृग लोचन नारी । पहिरे वरन वरन तन सारी ॥
परम उतंग चारि दिसि वारी । उतरहिं चढ़हि तहाँ पनहारी ॥११८॥
कवि मन निरषि अचंभौ होई । वियौ उकति वरनै नहि कोई ॥
अप्छरि चंद मनौ सव आई । अमर लोक ते आवहिं जाई ॥११९॥
देषत कीर अचंभौ कीना । मोहन सूर दोस नहिं दीना ॥
जिहिं देस की अस पनिहारी । क्यौं न हरे मन राजकुमारी ॥१२०॥
चल्यौ वहुरि उडि नगर मझारा । जहाँ कनक मंदिर अधिकारा ॥
मनि मय कलस राज दरवारा । वरनि न जाइ वरन विस्थारा ॥१२१॥
प्राची दिसि तव चल्यौ सुजाना । सूर सिंह मंदिर जहँ जाना ॥
मंदिर मध्य निरषि फुलवारी । उतरौ कीर चतुर गुन भारी ॥१२२॥
नाना वरन फूल तहँ फूले । मधुकर वास मान तहँ भूले ॥
सरवर सुभग मध्य सुपदाई । पंकज परम रम्य छवि छाई ॥१२३॥
विहरति तहाँ नृपति सुकुँवारी । मानहु सरद चंद उज्यारी ॥
वल्ली लता प्रेम अनुरागी । मानौ कनक लता रस पागी ॥१२४॥
सोहत नील वरन तन सारी । ज्यौं घन तरल तडित उजियारी ॥
विहँसत हँसत दसन छवि देषी । दधि सुत तीर हीर छवि पेषी ॥१२५॥

( दोहा )

तरवर सर वल्ली लता, सुंदरि करति विहार ।
संग सकल सहचरि लिये, कीर विलोकनिहार ॥१२६॥

( चौपही )

कंचन लता जवै ढिग आवे । तिहिं के रूप लता छवि छावे ॥
सरवर तीर जवहिँ धन जाई । कमल देषि वहु भाँति लजाई ॥१२७॥
वारिज वदन देषि परगासा । इंदु जानि सकुचे सरपासा ॥
देषत कीर परम सुषमाना । रंभावति जानी उनमाना ॥१२८॥

( दोहा )

जव निरष्यौ रंभावती, कीर कुसम जुत डार ।
अचिरजु अति अभिलाष हुव, देषि सुवा तिहिं वार ॥१२९॥

रतन जड़ित पग पैजनी, कंठ मुक्ति वनमाल ।
षग पति षग वारी गरै, निरषि विमोही वाल ॥१३०॥

अरुन चुंच अरु वरन जुग, हित पंछी वहु रंग ।
मानौ चित्र विचित्र किय, चतुरानन चतुरंग ॥१३१॥

( चौपही )

करी चाहि सुंदरि ढिग आई । चल्यौ छाँडि द्रुम डार उडाई ॥
उड़ि करि और लता पर गयौ । अति अभिलाष कुँवरि मन भयौ॥१३२॥
जिहि छिन निकट सुंदरी आवै । उड़हिँ कीर वहु भाइ दिपावै ॥
बैठहि जाइ बहुरि द्रुम डारा । लोचन ओट होहि नहि न्यारा ॥१३३॥

( दोहा )

कीर गहन सुंदरि चली, छोडि सषी गन साथ ।
निकट जानि एकंत मैं, पढ़ी कीर यह गाथ ॥१३४॥

( गाथा )

विरहिनि विरह विकारं । न जानंति नारि संजोगीनी ॥
धनि धनि जिमि अविकारं । बिरला बूझति रंक दुष्पह ॥१३५॥

( चौपही )

यह कहि कीर कुँवरि कर आयौ । वचनु रसाल वाल मन भायौ ॥
अचरज सुनत विगावर वाता । प्रफुलित वदन मनौ जलजाता ॥१३६॥
सहचरि सुनत ततच्छन आई । सुंदरि सुकहि विलोकन धाई ॥
अनवन बरन[1] रूप अधिकारी । अरु विद्या दस चारु उदारी ॥१३७॥
जिहि प्रसन्न कोई बात चलावै । द्वादस भाव अर्थ बैठावै ॥
अति सरूप पंडित मन धूता । मानौ सुक पारासर पूता ॥१३८॥
अचिरजु अधिक सबनि मन होई । वहु विधि बात कहैँ सब कोई ॥
कोई कहै छूटि पिंजर तैँ पायौ । कोई कहै अमर लोक तैं आयौ ॥१३९॥
सकल सषी पूछैँ तिहि वारा । सल्य न कहै भेद निर्धारा ॥
तिहि छिन कनक पींजरा साजा । ताहि मध्यि दुज राज विराजा ॥१४०॥

---

१. अन वरन ।

रंभा पय वोदनु करवायौ । तिहि छिन मनौ काम फल पायौ ॥
इहि अंतर सुंदर सुक वारा । सूर सिंह आये तिहि वारा ॥१४१॥
सुंदरि कर सुक निरषि सुजाना । अचिरजु करि अपने उर माना ॥
पूछौ कीर कहाँ यह पायौ । रंभावति कर गहि दिपरायौ ॥१४२॥
यह प्रसाद विधना वहु कीनौ । पंडित कीर अचानक दीनौ ॥
जानति नहीं कहाँ ते आयौ । अमर लोक तैं इंद्र पठायौ ॥१४३॥
देष्यौ कुँवर विजच्छिन भारी । नाना वरन रूप अधिकारी ॥
अति रसाल वानी मन भाई । वहुरू कीर गाथ गुन गाई ॥१४४॥

( गाथा )

नाइक मधुप समानं । चात्रिक चित्र नाइका नही ॥
जिय जानंति सुजानं । अंत अधिकार सुष्प दुष्पं ॥१४५॥

( दोहा )

नाइक मधुप समान है, मन सुगंध रस प्रीत ।
पान सौंह विन स्वाति जल, त्रिय चात्रिक की रीत ॥१४६॥
वहु नाइक नाइक जिते, ते न होंहि अनकूल ।
सो तज मधुकुर मालती, वँधौ कमल के सूल ॥१४७॥

( चौपही )

यह कह कीर मौन मन कीनौ । सूर सिंघ नहिं उत्तर दीनौ ॥
रंभा समुझ दिगवर वाता । उपजि प्रीत पुलकित भौ गाता ॥१४८॥
कहति वैन सुनियौ प्रति माना । यह तौ सकल भेद हम जाना ॥
यह सुक कहन आय त्रिय ताकौ । तुम रस रंग रचौ मनु जाकौ ॥१४९॥
स्वामी चतुर गुत गुन जाना । एक जीभ नहिं जाइ वषाना ॥
पहिल कछू कही हम सेवी । मैं तव मनहिं न आई एती ॥१५०॥
विरहिन विरह विरहिनी जानै । रोगी वैद रोग पहिचानै ॥
अव कहिये विरदंतु वनाई । कौन नार किहि ठाँ विसराई ॥१५१॥

( दोहा )

सूर सिंघ जिय जानकरि, कलपलता कौ दूत ।
कमल वदन विहसै मनौ, सची सहित पुरहूत ॥१५२॥
धन्न मान धन चातुरी, जान सहज मन भाव ।
कलपलता विरदंतु कथ, राष्यौ कछु न दुराव ॥१५३॥

सुनतु सुकहि विरदंतु, कहि प्रगट प्रेम रस बैन ।
तन पुलकित गद् गद् गिरा, वारिद वारिज नैन ॥१५४॥
मान सरोवर आहि क्यौं, गुर बरनतु वपु अंतु ।
बहु विसेष विनयन लग्यौ, सकल कथा विरदंतु ॥१५५॥
कारन सुरपति त्राप तैं, अप्छरि भूतल वास ।
रूपरासि रति माधुरी, गुन गन इंदु प्रकास ॥१५६॥
विद्या पति जिय जान करि, दंपत अति अभिलाप ।
तब सँदेस विनवन लग्यौ, चातुरता बहु साप ॥१५७॥
वपु विहंग विद्या निपुन, सुरवन कौ हौ दूत ।
जौ सँदेस विनवै नहीं, दूत कहावै धूत ॥१५८॥

( चौपही )

सुनियै राजधिराज संदेसा । जिहि कारन आयौ परदेसा ॥
कलपलता सुंदर सुकमारी । सो तुम विरह जलधि मैं डारी ॥१५९॥
प्रथमहि चरन वंदना कीनी । कर दंडवत ढिठाई कीनी ॥
रंभावत कौ, कह्यौ प्रनामू । जद्यपि सुनौ श्रवन नहि नामू ॥१६०॥
तलफत विरह दाह तन छाती । पूँछत सकल प्रेम रस माती ॥
जिहि रस रच्यौ कंत विसवासी । हौ तिहि चतुर नार की दासी ॥१६१॥
अब छिन छिन करतार मनाऊं । यह प्रसाद दै पति हित पाऊं ॥
पौढि प्रजंक रंग रस पीजै । वाउ विजन मेरे कर दीजै ॥१६२॥
मैं तो कछु ढिठाइ न कीनी । किहि गुन करी सेव कर हीनी ॥
रजनी भई चरन लिपटाती । सेवा करति सँग लगि जाती ॥१६३॥
जो आवतो सँग ही लागी । करती सेव प्रीत अनुरागी ॥
पहिली प्रीत हेत हित कीजै । जुग नैनन जुग दरसन दीजै ॥१६४॥

( दोहा )

विद्यापति इमि उच्चरै, कलपलता संदेस ।
विरह विथा कहँ लगि कहौं, सहस बदन थकि सेस ॥१६५॥
दृग पावस ग्रीपम हृदै, तनु कंपति जनु सीत ।
विरहिन वपु सब रित बसै, सदा विरह भय भीत ॥१६६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय युद्ध खंडे सुर
सदेस वर्णनो नाम चतुर्थमोऽध्याय. ॥४॥

( चौपाई )

रंभावती मान कछु कीनौ। प्रीतम पियहिं उरहनो दीनो ॥
प्रीति निरंतर वहै कहावै। जौ मन की नहिं बात दुरावै ॥१६७॥
तुम चित भेद कपट कर राप्यौ। वरसहिं वस रसना नहिं भाप्यौ ॥
हौ न हौंहु औरन सी नारी। दासी सदा जु अग्याँकारी ॥१६८॥
ज्यौं जुवती रस वस करि आये। सो धन क्यौ न संग करि लाये ॥
जिहिं रस रंग पीउ अनुरागा। मो चित मन कंचनु नग लागा ॥१६९॥
सौत जान हिय हौं न डराऊँ। त्रिय सठ हरहिं सौति के नाऊँ ॥
जौ पिय मन अनुरंजन जाँनौं। सौतिन सकल सपी करि मानौ ॥१७०॥
रूप रंग जोवन अभिमाना। मोहन जोहन और सयाना ॥
करहिं न वस्य प्रान पति कोई। मनु अनुसरे आपु वसु होई ॥१७१॥

( दोहा )

अब इतनी विनती यहै, सुनियें प्रान अधार ।
कलपलता लै आइये, पलु न लगावहु वार ॥१७२॥

( चौपही )

सूर सिंह हँसि उत्तर दीनौ। वचनन मोहि मोहि मनु लीनौ ॥
यह तौ दोस न दीजे काहू। विध परपंच भयौ निरवाहू ॥१७३॥
सुरपुर छाँड़ होहि घरवासी। अप्छरि भई तुमारी दासी ॥
रंभावती वहु भागिन रानी। सुर अप्छरि दासी परमानी ॥१७४॥

( दोहा )

सौति नाउँ क्यौ लीजिये, मो मन यह संदेह ।
अग्नि दीप क्यौं देषिये, वरसौ दुरे न मेह ॥१७५॥
जो मनु औरहि रॉचवौ, धरते अंग न जोग ।
विपन गहन नहि गाहते, छाँड़ सकल रस भोग ॥१७६॥
जवहि चलहि वैरागराहि, भूवपत अग्याँ पाइ ।
तव तिहि मारग जाइके, उहि पुनि लैंहि लिवाइ ॥१७७॥

( चौपही )

रंभावति करि लज्जित नैना। मृदु मुसक्याइ कहत मृदु वैना ॥
इहि तो वेद भेद विधि भाषी। दुहुँ दिस प्रीत प्रीत की साषी ॥१७८॥

स्वामी कृपा सत्य कर मानौ । अब उहि सरस आप तैं जानौ ॥
उहि विरहिनी विकल बेहाला । पल न गहनु करियौ इहि काला॥१७६॥

प्रातहि चलै हसै मिल धाई । हमहिं लेउ संग कर लाई ॥
ब्रह्म कुंड तीरथ जग जानौ । प्रगट पुन्य पौरान वपानौ ॥१८०॥

पहुमपाल सौं आइसु लीजै । मारग साजु साज सब कीजै ॥
और न मंत्र चित्त महँ ल्यावहु । यहई मंत्र हिये ठहरावहु ॥१८१॥

( दोहा )

पति सो मत ठहराइ कै, दीनी कीरहिं आस ।
कलपलता को फिर दयौ, रंभावति वरवास ॥१८२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेय जुद्धपंडे दपति
संवाद निमंत्रनो नाम पचमोध्यायः ॥५॥

( चौपही )

होत प्रात उग्गित जग भाला । राज द्वार पठये परधाना ॥
विनती कही कहौ यह भाई । वैठि रहौ न निपट अरसाई ॥१८३॥
जौ मै राज रजाइसु पाऊं । कछुवक दिवस सैल कर आऊं ॥
कर अवेट वन करौं नियारा । देषौं नवल भूमि अविकारा ॥१८४॥

रित वसंत सोभित वन राता । पेलहिं जाइ सकल संघाता ॥
ब्रह्म कुंड तीरथ इक आही । कहहिं पुनीत पहुम पर ताही ॥१८५॥
करहि जाइ दंपत असनाना । आवहि बहुर राज अस्थाना ॥
इतनी वात कही गंभीरा । आइसु दियौ नृपत वल वीरा ॥१८६॥

हय गज दल पष्पर वहु साजे । सुभट संग सावंत नग्ग गाजे ॥
रथ हैवर चौंडेल सँवारे । चिहँम राज मारगु पगु धारे ॥१८७॥
सोभित विपन वसंत अनूपा । कूजित विहंग विविधि विविरूपा॥
नवल वसंत नवल पिक जोरी । नवल संग गुन आगर गोरी ॥१८८॥

सहचरि नवल नवल सब संगी । नाइक नवल नवल नवरंगी ॥
पेषत वन अद्भुत अस्थाना । रंभावति मन आनँद नाना ॥१८९॥
सहचर कहँ कुँवर सो वाता । देषौ आजु सकल वन राता ॥
कोमल किसल नवल रँग राते । नहँ कोकिल गुंजहिं उनमाते ॥१९०॥

बौहुर होहिँ नव पल्लव हरे। फूलहिँ फलहि सकल रसु भरे॥
बहुरि पीत ह्वैहै रँग पाके। तब फिर काम न आवहिँ ताके॥१९१॥
इहि अंतर कोई पल्लव लेही। कोई लहर अंम महँ देई॥
कोइ तोरे फल काचे पाके। जिहिविध जो आवहिं जिय जाके॥१९२॥
बाउ एक बहिहै इक बारा। एकहिं बार होहिँ पतझारा॥
जो रँगु सुरँगु सथिर न रहाई। जो उपजत सो बिनसत माई॥१९३॥
जोबन आहि आजु मैमंता। मन बच क्रम कर से बहु कंता॥
करहु न जिय जोबन अभिमाना। ... ... ...॥१९४॥
मन जनु जान कंत है मेरा। यह वह नाइक सबहीं केरा॥
जोर द्रिष्टि चितवै चष फेरी। रानी होहि पलक महँ चेरी॥१९५॥
जिहि तिरिया कहँ होहि बड़ाई। ताकौं साचु रूप तरुनाई॥
सो सुहाग सब ऊपर राजै। जिहि नाइक कर क्रुपा बिराजै॥१९६॥
एकु चित्त करि सेवहु ताही। जानहु रब सब ऊपर आही॥१९७॥

( दोहा )

कहँ रानी दासी कहाँ, कहाँ पौढ कहँ बाल।
ज्यौ पिय के मन भावहीं, सो सौतिन सिर साल॥१९८॥

( चौपही )

रंभा कहहि सुनौ सहचारी। मुहि मति देव सीष सषि प्यारी॥
हौ पुनि सेव करौं बहु भाँती। पल पल करौ पिया मन साँती॥१९९॥
हौं निरगुन पिय अति गुनवंता। क्यौं करि कहौं कै मेरो कंता॥
जानौ नहीं जगत विधि सेवा। जथाँ सक्ति करि पूजौं देवा॥२००॥
ना जानौ पिय किहि गुन राँचै। कंचन कौन सुहागे आँचै॥
सेवकु सकल करैं बहु काजा। सो सुजानु जिहि बूझहिं राजा॥२०१॥

( दोहा )

जहँ लगि जिय गुन बुद्धि अति, सेउ करौं करि चाउ।
नहि जानौ उहि कंत कौ, किहि गुन उपजै भाउ॥२०२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं बुद्ध पंडे वनविहार
वर्ननो नाम षष्टमोध्यायः॥६॥

( दोहा )

विपन गहन गहवरि जहाँ, पेलत कुंअर अहेरि ।
बहु मृग बहु मृगराज गज, बहु सावक बहु फेरि ॥२०३॥
इक चित्रक इक स्वान गहि, इक बहु बाजि सिचान ।
एक षड्ग बंदूक इक, एक बांन संधान ॥२०४॥

( चौपही )

सिंघ सिंदूर होइ अनकारा । इहि विधि नित प्रति करहिं सिकारा॥
गज मयमत्त तरकि तर घोरा । अनुसावज बहु करहिं अहेरा ॥२०५॥
डीठि डिठार हनहिँ किरवाना । इक जोजन पर हाँकि सिताना ॥
कहत सूर सुभट सौं बाता । वन गुन रात वरनि पुन राता ॥२०६॥
सिंह बाघ सूकर गज ठाटा । ये पंथिन मारत इहिं बाटा ॥
इहि मग आइ चलहिँ सो सूरा । करहि पंथ निरमल पट पूरा ॥२०७॥
मद मैगल कहँ आइसु देई । सिंघ सिंदूरन छाला लेई ॥
सावधान इहि मारग जाहीं । जो निविहै तो बचि ताही ॥२०८॥

( दोहा )

कठिन पंथ गहवर विपिन, पथिक चलै मन बूझ ।
जो सूरा सो निरबहै, जो काइर सो जूझ ॥२०९॥

( चौपही )

कहै सुभट सुन राज कुँवारा । यहिँ सब आइ बँधे संसारा ॥
बहु विध रतन आहिँ इहि माहीं । सबै परे सब पोटे नाहीं ॥२१०॥
काइर सकल सकल नहि सूरे । सब नहि सुघर नहीं सब कूरे ॥
सबै सिद्धि जोगी नहि होई । सब तरुनी पदमिन नहिँ सोई ॥२११॥

( दोहा )

सब तरबन चंदन नहीं, सब कदली न कपूर ।
सब सीपन मुकता नहीं, सब दल नाहिन सूर ॥२१२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचिते [illegible]
वर्ननोनाम सप्तमोध्यायः ॥७॥

## ( चौपई )

इहि विध नित प्रत करहिँ पयाना । इक जोजन पर होहिँ मिलाना ॥
दसैं मास तिहि मारग लागे । सुर अपछरी प्रीत अनुरागे ॥२१३॥
गिरवर विपन गहन अधिकारा । नाके साइर और अपारा ॥
देषत विधि अन उन अस्थाना । माया पुरी नगर नियराना ॥२१४॥
माया नगर भूप वर मंडा । जिन वस करी पहुम नव पडा ॥
दलवल सर्व दर्व संजीते । वह अजीत उह सव कोइ जीते ॥२१५॥
मदन देव तिहि राजहि नाऊ । वहुत सुभट जोधा तिहिँ ठाऊ ॥
तिहि पठये विवि दूत सुजाना । तिहि ठाँ सूर सिंघ परधाना ॥२१६॥
कहुहि राज तुम कहौ जुहारू । सदेसौ सुन करौ विचारू ॥
इहि मारग कोइ जाइन राजा । जौ आवैं तौ विनसहि काजा ॥२१७॥
आवन हम न देहिँ इहि वाटा । हम तौ रोक रहहिँ सव घाटा ॥
नातरु उलट जाव मग आना । कुसल छेम निवहै अस्थाना ॥२१८॥
इहि मारग कोई निवह न जाई । माया पुरी कठिन गुन गाई ॥२१९॥

## ( दोहा )

दूत वचन गंभीर सुन, और राहि रघुवीर ।
सव विचार पूछन निर्विति, गये कुवँर के तीर ॥१२०॥
दूत वचन संदेस कह, वैठे मंत्र विचार ।
सो कीजे जो निरवहै, माया पुर हरद्वार ॥२२१॥

## ( चौपई )

उत्तर पंथ अगम अति भारी । गिरवर गहन विपन वन सारी ॥
मदन देव राजा वलवडा । जीते भूप वहुत गुन चंडा ॥२२२॥
उलट जाइ तौ जात वडाई । व्रम्ह कुंड पुन नियरे ताई ॥
फेर उलट नाहीं पैसारा । सकल देव माया विस्थारा ॥२२३॥
जौ निवहै इहि तहँ हर द्वारा । भेटहिं जाइ अमर पुर द्वारा ।
कहत सूर सुन गुन गंभीरा । छत्रिहि मरन हाथ है हीरा ॥२२४॥
जुद्द नाम सुन हौं न डराऊँ । दुहु दिसि आजु अप्छरी पाऊँ ।
जीतौ जुद मदन दल पेदौ । जौर मरौ रविमंडल भेदौ ॥२२५॥

## ( दोहा )

इहि कहि दूत वुलाइ कै, विदा किये दे पान ।
हमहि तुमहि निजु होहिगौ, जुरतहि जुद्द विहान ॥२२६॥

तुम वहु भूपन जीत कै, गर्व भरे वहु भार।
जुरत जुद्ध अव जानबौ, कौ पेरी कौ सार ॥२२७॥

( चौपही )

माया नगर गये फिरि दूता। जिहि ठाँ मदन देव पुरहूता ॥
सुनकर भूप सूर कर बैना। कहौ सुभट साजौ तुम सैना ॥२२८॥
पंच लाष तुष्पार पषारा। अउत नाग जनु मेघ पहारा ॥
सुरथ पैक साजौ चतुरंगा। श्रोनित करौं सरसुती गंगा ॥२२९॥
सुन आइसु दल कीन पयाना। बाजे दुंदभि ढोल निसाना ॥
सुनत सूर इत पहिर सनाहा। दुहुँ दिस दल बल सिंधु अथाहा ॥२३०॥

( दोहा )

बिना जाप संजम किये, रन छत्री उद्धार।
मरै सुर्ग जीवत सुजस, नीके उभय प्रकार ॥२३१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुद्ध पडे
सैना बर्ननो नाम अष्टमो अध्यायः ॥८॥

( दोहा )

सूर उतहि इत सूर दल, सकल भये असवार।
बीर जुद्ध जिय जान कर, भये ते कौतिक हार ॥२३२॥

( छंद तोटक )

मदनं दल दीरघ सज्ज हुवं। अमरापुर कौतिक हार सुवं ॥
चतुरंग न सैन सवार तहाँ। रथ पाइक पील तुरंग जहाँ ॥२३३॥
सहनाइस भेरि निसान बजै। दुहुँ ओर तैं सूर सनाह सजै ॥
रिष नारद बीन सुहथ्थ लियं। मुख मारुव राग अलाप कियं ॥२३४॥
गिरजा पति नंदिय आन चढ्यौ। जिय जुग्गिन पान हुलास बढ्यौ॥
वहु दंति सुपंतिय जोर भये। जनु कज्जल स्याम पहार नये ॥२३५॥
तर जो रह्यो हत्थ जँजीर जरे। घन घूमत अंकुस आन घरे ॥
वरषा जिमि फौज घनाइ तहाँ। मद मेंगल उन्नत मेघ जहाँ ॥२३६॥
चपला जिमि खड्‌ग चमंकि इमं। वरषैं वहु बूँदनि तीर जिमं ॥
रन रोस ते पौन प्रचंड चलै। वहु बीरन के मन माह मलै ॥२३७॥
लप्पन लप्पन पंच अनी। विरच्यौ रन ज्यों कहार घनी ॥२३८॥

( दोहा )

सूर सुभट इत सूर दल, कोपि चढ़े हय पीठ।
दुहूँ दिस तें सनमुष चले, मिली सुडीठहिं डीठ ॥२३९॥
स्यान राइ कहँ अग्र करि, वाम अंग रघुवीर।
दिस दछिन सब दल सहित, मंत्री गुन गंभीर ॥२४०॥
सूर सिंघ नाइक नवल, तिहि पीछौ रनु धीर।
मानौ पहुम जराव किय, मंदाकिन के तीर ॥२४१॥

( छंद भुजगमप्रयात )

मंडियं जंग जुर जंग तीरं। जग्गियं वीर वीराधिधीरं ॥
डमरू डमकि डमकियं गवरि कंतं। डंकनी जहां दमकंत दंतं ॥२४२॥
जंवुकन जान जिय बात जोई। जुग्गिनिय जान जिय आस होई ॥
अप्छरीय छाहँ उच्छाह कीयं। दिप्पियं सुरसु रन रंग श्रीयं ॥२४३॥

( दोहा )

सूर सुभट सावंथ दल, विरचित वंधिय[1] लाम।
सूर वदन रन रंग श्री, सूर विलोक ललाम ॥२४४॥

( छद भुजंगमप्रयात )

लवै राग वंधी वजौ राग मारू। कियौ अच्छरी अच्छ मंगल्ल चारू ॥
दुहुँ ओर निसान सो वज्जे जुझाऊ। उठै जीय जोधान जूझंत चाऊ ॥२४५॥
वजे श्रृंग सारंग भीरी मृदंगा। वजे वाँसुरी संष सहनाइ संगा ॥
वेजे दुंधभी ढोल ते संघ तूरं। लहै लोह सोभे गहे षग्ग सूरं ॥२४६॥
हसैं पेत दानें लसैं भूम माहीं। फिरे देवि गौरा गहे पीड वाहीं ॥
लिये संग वेताल ते दैं ताल ताली। सुरा पान कीने मनो मत्तवाली[2] ॥२४७॥
नचैं भूत भैरौ छुटे केस सीसं। करें जुग्गिनी पान दंमकंत हीसं।
तहाँ गौरि भरतार डौंरू वजावे। लसै चंद माथे महा सोभ पावै ॥२४८॥
जुरी डीठि फौंज करैं मारमारं। दुहु ओर सामंथ काढै हथ्यारं ॥
चलै तीर गोला मनौ मेघ धारं। लगे साँग हथ्थं जु बाजंत सारं ॥२४९॥
लगे षग्ग एकै गिरै सीस टूटे। कहूँ वान साँगी दुहुँ आँख[3] फूटै ॥
करें एक अर्धं जु अंगदु भालं। पियौ रक्त काली लई ईशमालं ॥२५०॥

---

१. वंधिय राम। २. मत्तवाही। ३. अनुमानित।

परै एक घाइल्ल घूमंत धाई । तिने देष सूरान के चित चाई ॥
फटो षोपरी गुंद फैलंत पिंडी । मानौ माथ मारग्ग फूटी दहिंडी ॥२५१॥
घनै धाइ बोले रकन्ते अभक्कै । बहै एक लोहू हिलक्की हिलक्कै ॥
जुरे जोर जोधा मही मारु भारी । लरैं लोह थक्कै मनो हार ज्वारी ॥२५२॥
तबै ग्यान चौहान वागै उठाई । पर्‍यो वृंद पछ्छी नमै वाजुताई ॥
उतै उत्तरी राइ तैं पील पेलै । महा मेघ भादो मनौ इंद्र ठेलै ॥२५३॥
तलै बीर लै हथ्थ हथ्थी जु धाये । वे मनौ बद्दला धाइ वेगै चलाये॥
षिलै षग्ग षुल्लै भये तेउ तारे । किलक्कार धावन्त दंती सथारे ॥२५४॥

(दोहा)

ग्यान राइ अगवानहीं, सूर पौहुचे आइ ।
नैन अरुन तामस भयौ, रिसि रन वल्लेइ धाइ ॥२५५॥
सूर सिंघ तह सिंघ जिमि, हथ्थ गही तरवार ।
करवाकिरन प्रकास किय, तसकरि कुंभ विदार ॥२५६॥

(छंद तोटक)

समसेर सम्हारत सूर लियं । धरनी गज मुत्तिय चौक कियं ॥
बहु[1] सुंडन टुंडन ठुंड कियं । निरषैं नभ नाइक अप्छरियं ॥२५७॥
सुरिता[2] बहु श्रोनत नीर वही । कफ फेन सुवार सिवार सही ॥
दर राइ धरे रन धाइ घनै । गज टापू वपारन स्याम वनै ॥२५८॥
घररात सुघाइल घूम परैं । जनु कोकन संभ्रम लोक करैं ॥
जल जातन ज्यौं उतमंग तरैं । पनहारिन जुग्गिन कुंभ भरैं ॥२५९॥
नृप उत्तर साँग सु हथ्थ लई । उत[3] सूर सु जोर सु को पदई ॥
कर सूर इतै कर षग्ग रह्यौ । कटि सीस मनौ वध केत रह्यौ ॥२६०॥

(दोहा)

तह रक्त जुग्गिन पियौ, ईस रची उरमाल ।
सूर सिंघ सिव रूप है, मदन दह्यौ तिहि काल ॥२६१॥

(छद मोतीदाम)

तहाँ तकि संभु रचै उरमार । गुहे गिरजा गज मुत्तिय हार ॥
रचौ गुर अप्छरि फूलनि माल । पियौ रक्त जुग्गिन आनन लाल ॥२६२॥

---

१. बौह । २. बौह । ३. उर ।

करै बल भच्छ किलक्कत येत । निरप्पर देष पुरांकित षेत ॥
भवैं भवगी घन गीध लिचान । भयानिक धूम उभ्यात ससान ॥२६३॥
वहै वहु केत वरातिय राह । सजै मिल डंकिनि प्रेत विवाह ॥
करे गज चर्मनि की इक ताहि । × × × ॥२६४॥
घरी सु घरी सिर तानौ मौर । ढरे नर केसन सीसन चौर ॥
भये तहाँ वाहन जंवुक स्वान । चढे फिरैं दूलह भूत गुमान ॥२६५॥
सिवा फिकरैं जनु गावहिं गान । रच्यौ जनु मंडफ भूमि मसान ॥
लिये पटि सूरन की कटछोर । करी पनरध्थ रकत्तनवोर ॥२६६॥
लियै कर हाडन की जयमाल । फिरे वर देषत डंकिनि काल ॥
सुहागिन जुग्गिनि अंग समेल । चरक्किय चारु चढ़ावहिं तेल ॥२६७॥
पिसाचन रच्छ रचैं ज्यौनार । सरव्वत श्रोन करैं मनुहार ॥
करे तहां प्रेत पिसाच अहार । × × × ॥२६८॥
मरोरत मुंड नचावत चाड़ । कटंकट दंत चचोरत हाड ॥
वचै इक फेरि रक्कत्त अघाइ । गिलै हकलीय अछंग वहाइ ॥२६९॥
गिरै छन अंग गही इक ओर । करे इसठीं इक जंवुक जोर ॥
करग्ग समंडि विहंडिय दंत । दुहुँदिस वेर मिटौ वह अंत ॥२७०॥
महां वल जुध्ध जु जीत्तिय सूर । भई धरनी धर श्रोनित पूर ॥
निरष्षत अंवर देव विमान । जयज्जय चारन सिद्ध वषान ॥२७१॥

( छप्पय )

सूर सिंव छत्रपती दीह उत्तर दल षंडिय ।
तास सीस लै ईसु मुंड माला उर मंडिय ॥
भिन्न भिन्न भव आय भाग एकादस लिन्नव ।
चौहुरि सेषरि ससवनि अंस एकत सम किन्नव ॥
इक सीस मदन महिपाल कौ सु लेन्निय सह गौनि किय ।
गुन गुनहु गुनिय पुहुकर कहै सुकितिक दुख दलन संघारिय ॥२७२॥

( दोहा )

गगन रुद्र रस गगन मिल, सागर कला ससंक ।
अग्नि वान अरु सिद्धि लै, नैन विलोकौ अंक ॥२७३॥
२८५३११६७०६११० ॥

( छप्पय )

प्रथम गगन अरु रुद्र गगन रस वेद वषानिय ।
नैन वेद वसु अग्नि खंड पंडव द्दग जानिय ॥

२५६३८४

दुति उभय अंवर अनादि निधि भाष उदधि गन ।
वेद खंड सुर्वान अग्नि पर प्रगट पच्छ भन ॥

२४६०११०

धर तीन सुन्न ससि तीन वसु वांन अग्नि अरु रत्न कर ।

३५७३४७६६१००

लिय भिन्न भिन्न भव भाग अपु सुशेष ईश वरनौ अपर ॥२७४॥

२१४२५८८८१०००

चार सुन्न ससि समुद वीर ससि समुद वषानौ ।
तिहि ऊपर वसु वेद खंड रजनी पति जानौ ॥

१३४८७१७२७००००

पंच सुन्न ससि रस विचार तिहि वार उदधि ससि ।

१७७१५६१०००००

वहुर सिंधु घट इन्दुवान अमतार कलावसु ॥

१६१०५१००

धर सप्त सुन्न सतमास वहि ससि जुग्गिन अरु भवनि भनि ।

१४६४१०१००००००

पुनि अष्ट सुन्न ससि अग्नि गुन तापर चंद प्रकास गनि ॥२७५॥

१३३१००००००००

नवम रुद्र नव सुन्न इन्दु दे आदि बखानहु ।

१२१०००००००००

दसम धरतु दस सुन्न इन्द्र तिहि ऊपर आनहु ॥

११००००००००००

ग्यारह अंवर इन्दु भाग भव सुन्न सुलिन्नव ।

१०००००००००००

रहिय शेष दस वर्ष अंसु एकल समकिन्नव ॥

निधि गगन माल आकास रचि एकादस अंकन करतु ।
३०१०१०१०१०१०
तम अंस सर्व सनि अरपिकर सुकंत सीस तियकर धरतु ॥२७६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं युद्ध खंडे शिवमाल
वर्ननो नाम नवमोध्यायः ॥९॥

(चौपही)

सूरसिंह आँनद अनुरागे । वीर खेत रन साधन लागे ॥
सुनतहि वीर नारि सब धाँई । सोवत कंत जगावन आई ॥२७७॥
आई मदन देवकी भामिनि । सत सों मही सती सहगामिनि ॥
आवत अंक कंत भर लीनौ । अंचल अंग अगौछा कीनौ ॥२७८॥
कहत प्रेम करुणा रस वैना । सोभित अमल कमल दल नैना ॥
सुकलित केस सीस विकरारा । मानौ अंधकाल निसि धारा ॥२७९॥
अहो कंत तिय प्रान पियारे । वेग न बोलतु रूसन हारे ॥
वदन मोर ह्वै रहे अबोला । प्रेमयुक्त बोलो किन बोला ॥२८०॥
किहि कारण मन कियौ उदासी । हौं तो हती सदा संग दासी ॥
इक रस प्रीति सदा निरवाही । अंत बेर सुर अप्सरि चाही ॥२८१॥
चितन चढ़ी तिय जगत उज्यारी । अब हम सौति भई सुर नारी ॥
जो पिय अमर नार मन मानी । हौन हौंहु रत ना बतरानी ॥२८२॥
इहि विधि करौं आपु वस कंता । होहि न सौति आद अनु अंता ॥
सकल देव मो कौतिक आवहि । त्रिदस त्रिया नहि नैन दिषावहि ॥२८३॥
यह कह भर सिंदुर सिरभंगा । सूर सैन से आइसु संगा ॥२८४॥

(दोहा)

मंदाकिन असनान कर, कियौ सन्त सहँ गौन ॥
पिय प्यारी पिय संग लै, मुदित चली सुर भौन ॥२८५॥
अदभुत भय वीभत्स त्रय, करुना रुदनरु हास ।
समर वीर श्रृंगार हुव, रस वस कौ आभास ॥२८६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेय जुद्ध
षडे सह गौन वर्ननो नाम दसमो अध्याय ॥१०॥

( चौपही )

सूर सिंध नरपत नर नाहा। किय सेव रूप मदन तिहि दाहा ॥
बहुर चले माया गढ माहीं। जीत्यो जहाँ नृपत कोउ नाहीं ॥२८७॥
अगम उच्च अति विषम पहारा। कठिन पंथ मानौ असि धारा ॥
तहाँ विवि कोट अमल अत भारी। काया माया नाम विचारी ॥२८८॥
काया कोट नगर चहुँपासा। माया कोट राज निज वासा ॥
काया कोट चार दरवाजा। उच्च उतंग अगम अति साजा ॥२८९॥
काम पौर मानौ कविलासा। आस पौ रतहँ देवी आसा ॥
मोहन द्वार देष मन मोहै। तेज द्वार तेज रवि सोहै ॥२९०॥
द्वार द्वार मैगल मैमत्ता। रछक सुभट बहुत बलवंता ॥
ते सब आइ मिले सुर ग्याना। भुव पत मदन मरन सुन काना ॥२९१॥
माया जीत मदन संवारा। लिय जयपत्र सूर तिहि वारा ॥
नगर लोग सब देषन आवहिं। चारन विप्र वंदि जन गावहिं ॥२९२॥
धन्य सूर छत्री बल रीती। मदन मार माया तिहि जीती ॥
ग्यान राइ राषे तिहि थाना। विजैपाल की फेरी आना ॥२९३॥
फिर उत्तर दिस कीन पयाना। ब्रह्म कुंड दिन प्रत नियराना ॥२९४॥
विद्यापत आगे उठि धावा। सूर सिंघ आगमन सुनावा ॥२९५॥
कही हेत रंभावत वाता। माया जुद्ध कथी विष्याता ॥
कलप लता सुन सुंदर बैना। आनँद नीर पसुक्कत नैना ॥२९६॥
जय मंगल जय जय नव व्याहू। मंगल विमल मोद सब काहू ॥
बाजत तूर नाद दरवारा। बाँधि मुक्तमनि वंदन वारा ॥२९७॥
सदन सेज सिंहासन साजा। फूलनि रचित चँदोवा राजा ॥
उलट कीर आयौ अगवानी। कलपलता की प्रीत वषानी ॥२९८॥

( दोहा )

मंदाकिन के तीर पर, सकल कटक चहुँ पास।
कलपलता के धाम पर, कियौ सूर परनाम ॥२९९॥
गृह गृहनी आइसु दियौ, अष्ट सिद्धि जिहि साथ।
कलपलता पदमिन करी, दरसन सूर सनाथ ॥३००॥

आगै आइ प्रेम रस प्यारी। आदर पर्घ करत मन हारी ॥
पैंडे पलक पाउँडे पारा। विमल चरन वरननि मनु मारा ॥३०१॥

करि दंडवत परिक्रमा दीनी । चित हित बरन बंदना कीनी ॥
सूर सिंघ लीनी उरलाई । प्रीत रीत रस 'दई बडाई ॥२०२॥
रंभावत के पाइन लागी । अत हित हरष प्रेम अनुरागी ॥
अष्ट नारि सहचरी सभागी । कलपलता के पाइन लागीं ॥२०३॥
दुहु दिस प्रीत प्रगट भई पूरी । ... ... ... ॥
बैठ्यो त्रियन मध्य नर नाहा । मानौ इंदु तराइन माहा ॥२०४॥
विहसत बदन चातुरी हासा । करत केल वहु भाति प्रकासा ॥
कलपलता की दासि सयानी । ल्याई कनक कुंभ भरि पानी ॥२०५॥

( दोहा )

दंपत चरन पषार कर, कलपलता धरि सीस ।
सदा सुहागिन कामिनी, मन, बच दई असीस ॥२०६॥

( चौपही )

आसन असन करी मनुहारी । मँदिर मद्धि सुष सेज समारी ॥
बैठे काम कुँवर तह जाई । रंभावत रस बात चलाई ॥२०७॥
मदन मुदित सौ पूँछी बाता । प्रफुलित बदन मनौ जल जाता ॥
कलपलता अँग सजौ सिगारा । जिहि विधि नवल वधू व्यौहारा ॥२०८॥
जदिप त्रीय तन नाँहि अधिकारा । सुंदरता कहँ कौन सिंगारा ॥
और नार आभरन बनावहिं । इहि अँग सँग अभरन छविछावहिँ ॥२०९॥

( दोहा )

होहि सिंगार सिंगार कौ, रूपमती के अंग ।
अभरन कौ अभरन करौ, कलपलता के संग ॥२१०॥

( चौपही )

अष्ट नार सुनि धाई आईं । तेल फुलेल अरगजा ल्याईं ॥
कलपलता करि लज्जित नैना । मधुर हास बोली मृदु बैना ॥२११॥
मो मन सदा यहै अभिलाषा । कहँ लगि कहौं आहि बहु साषा ॥
दंपति रूप रीझि ऋतु तोरौं । लैकर विजन बाउ कर ढोरौं ॥२१२॥
विनती पहिल यहै करवाई । त्रिया पति सौ कहि पठवाई ॥
मानौ जान सिवा सिव देवा । ठाढ़ी करौं जोर कर सेवा ॥२१३॥

( दोहा )

तुम मानौ रति रंग रुचि, वहाँ कर ढोरौ वाउ ।
आपु सेज पर पौढिये, दासि पलोटै पाउ ॥३१४॥

( चौपही )

रंभा सुनत अप्छरी बैना । भये हेर चित लज्जित नैना ॥
कलपलता सौं बोलत वानी । हौ तुम कंत सुहागिन रानी ॥३१५॥
करिये काम केलि रस हासू । सो नैनन सुष देप विलासू ॥
मो चित हेत प्रेम रस प्रीती । विद्यापति लन पूछौ रीती ॥३१६॥

( दोहा )

मुदित आदि सहचरि कियौ, कलपलता सिंगार ।
सेज गईं लै धाम मै, जहँ पिय प्रान अधार ॥३१७॥
विछुरन विरह विदा कियौ, यह भयौ प्रीत संजोग ।
कोककला मै कुसल दोउ, कियौ काम संभोग ॥३१८॥
प्रेम पान उन्मत्त ह्वै, करत काम कल केलि ।
रूप रंग रसना धुरी, रह्यौ रंग रस सेलि ॥३१९॥
इत रंभा संग सहचरी, आँनद मुदित अपार ।
गीत नाद वादित्र वहु, रचत सु मंगलचार ॥३२०॥
रैन विहानी जगत मै, मैन कहानी मान ।
दुहुँ त्रिय को पिय प्रेम रस, पौहुकर कहत बषान ॥३२१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचिते युद्ध षंडे कलपलता
मिलन जागरनो नाम एकादसमोऽध्यायः ॥११॥

( चौपही )

इहि विधि नाह नेह नव नारी । देव जु प्रेम पुजावन हारी ॥
दुहुँ मिलि मुदित एक रस ईठी । ज्यौ जुग नैन एक दिसि दीठी ॥३२२॥
सौत भाव उर आइ न काऊ । सज्जन मिलै परस्पर चाऊ ॥
रंभा कलपलता सँग प्रीती । कलपलता रंभा रस रीती ॥३२३॥
इहि सिंगार उहि सेज पठावै । वहै यह पाह सेज पर ल्यावै ॥
रूसन मान नैन नहिं देषा । कवि लोइन अद्भुत रस पेषा ॥३२४॥

इहि विधि अलक नंद तट वासा। काम कुमार वसे इक पासा॥
सघन विपन वन आँनद नाऊँ। वृद्ध कुंड तीरथ तिहिं ठाऊँ॥२२५॥
तिहि ठां आइ निकट नहिँ ग्रामू। केवल कलपलता कर धामू॥
सूर सैन तहँ नगर वसावा। परम रम्य सोभा अति पावा॥२२६॥
थ्यान राइ कहँ सौप्यौ काजू। उत्तर दिस माया पुर राजू॥
जो गुनियन गुन गीत वपानी। उपजहिँ जहाँ अठारह पानी॥२२७॥
कनक आदि सब धातु प्रमाना। उपजहिं बहुत जु वाजसिचाना॥
उपजहि सुरह धेनु थन पूरी। विजन वाल मृग मद कस्तूरी॥२२८॥
उपजहिं तुरग गूढ गज ठाठा। सुघर मधुर मधु सोभित हाटा॥
कदलि सानु अरु विद्रुम वेली। सौंठि पीपरे सहज सकेली॥२२९॥
निकटहिं नगर नराइन सेवा। देव प्रयाग जहाँ हर देवा॥
गिरि केदार जहाँ इमि होई। दिव्य देस जानहिं सब कोई॥२३०॥
परस मुदित मन कीन पयाना। वाजे विधि विधि वजे निसाना॥२३१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयं जुद्ध
षडे द्वादशमो अध्यायः॥ १२॥

(दोहा)

कियौ विजय मंगल सहित, सब उत्तर दिस जीत।
वहुरि चले चंपावती, रंभावति रसु रीत॥२३२॥

(चौपही)

दलटव उभे मास सम लागे। चंपानेर चले अनुरागे॥
आये नगर निकट अस्थाना। इक जोजन पर भयो मिलाना॥२३३॥
गुन गँभीर सुप जाइ सुनावा। जय सुन विजैपाल सुप पावा॥
आनँद मोद वहुत सुप माना। सनमुप चल्यौ करन सनमाना॥२३४॥

(दोहा)

मुदित सूर सनमुप चले, विजै पाल भुवपाल।
गगन रयन मुद्दिय तरनि, कोक सोक तिहिं काल॥२३५॥

(छंद पद्धरी)

सनमुष्य सूर चल विजैपाल। चतुरंग सेन सज सत्रु साल॥
मद्दगलित चलित कुंजर अपार। पिष्य मनौ कज्जल पहार॥२३६॥

रँग अरुन पीत ढलकंत ढाल । चंचला चौधि जनु मेघ माल ॥
मन पवन वेग हय चित्र भाइ । धावंत धरनि न सूझंत पाइ ॥२३७॥

बहु सुभट संग सोभित कुमार । गुन रूप रूप अति मत उदार ॥
नवत अरुन लोचन बिसाल । श्रुत मुक्ति कंठ सोवर्न भाल ॥२३८॥

मिल नैन नैन दुहुँ दलन संग । उत्तरिय सूर छाड़िय तुरंग ॥
इत नृपत छांड़ हय पहुम आइ । अभिलाष लाप जुत लिय बुलाइ ॥२३९॥

गह चरन कुँवर नृप विजयपाल । नृप लीन लाइ उर कंठ माल ॥
चढ़ि उभय भूप तच्छि छन तुषार । कीनौ पवेस नगरी मँझार ॥२४०॥

पूंछत मदन माया प्रकार । आनंद अधिक मानत उदार ॥
सुंदरीइ चढ़हिं दिव्यन अत्रास । सोहंत मनौ अप्छरि अकास ॥२४१॥

( दोहा )

सूर सिंध नृप संग मिल, राज मंदिर महँ आइ ।
परम मुदित पुसपावती, निरषत लेत बलाइ ॥२४२॥

( चौपही )

कलपलता निज धाम पठाई । रंभावति जननी पहँ आई ॥
कंठ लाइ भेंट्री नृप रानी । सजल नैन मुष गदगद बानी ॥२४३॥

ब्रह्म कुंड माया पुर बाता । पूछत हँसत मनौ जल जाता ॥
रंभावति सब बात सुनाई । कलपलता की कीन्ह बडाई ॥२४४॥

सुरपत श्राप पहुम पर बासा । सेज हरन अरु ब्याह बिलासा ॥
सुक संदेस देस उहि जाना । प्रीत भाव सहचलन बषाना ॥२४५॥

जिहिं विधि दासु सेवनहिं करई । यौ मम चित अनुसर मन रहई ॥
कलपलता पुन बोल पठाई । रानी देख लई उर लाई ॥२४६॥

आदर कुसल प्रश्न ब्यौहारा । असन पान परधान प्रचारा ॥
ज्यौं तनया रंभावति जानी । कलपलता पुन तिहि विध मानी ॥२४७॥

( दोहा )

सूर सिंध जुग नागरी, गुन आगरि सुकुमार ॥
करहि केलि चंपावती, दियौ वियोग बहार ॥२४८॥

जय मंगल मंगल मिलन, नव मंगल दिन होइ।
जो कछु कथा है बर्नवो, अब पुन बरनौ सोइ ॥२४६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं जुद्ध षंडे जय मंगल वर्ननोनाम त्रयोदसो अध्यायः ॥१३॥

( चौपही )

त्रिय पिय कलपलवा रंभावत। दुहुँ मिलि प्रेम प्रीत उपजावत ॥
उपमा जुगुल नैन जिमि पावत। मनौ कमल पर भ्रमर भ्रमावत ॥२५०॥
बरष एक तिहि दिन तैं बीती। जिहि दिन तै दिस उत्तर जीती ॥
रंभा उरहिं धर्‌यो आधाना। तात मात उर आनँद माना ॥२५१॥
रतन जोत हिम कर मह आई। दुहुँ मिलि अधिक परम छवि छाई ॥
एक जीभ मुष बरननि जाई। जनु पट ओट दीप छवि छाई ॥२५२॥
क्रम दिन मास मास नियराने। प्रसव दिवस तब आइ तुलाने ॥
सरद रैन जग जोत जुनाई। निस कातिक पून्यौ उजराई ॥२५३॥
साँझ तिमिर गज कुंभ विदारन। ससि हर सिंघ उयौ तिहि कारन ॥
केसर कनक किरन जिमि तारा। निकसै गगन कंदरा द्वारा ॥२५४॥
सोभत कमल जौन्ह जग जोती। मनौ सकल महि चंदन पोती ॥
सुत सुषि देप उडलि नद्यावा। छीर समुद जग ऊपर छावा ॥२५५॥
गगन हेत प्राची दिस दारा। कर सेत मेष चली अभिसारा ॥
नाइक चतुर पान गहि बूझै। अंगन अमल सेज नहिं सूझै ॥२५६॥
चंदन पचित सु कंचुकी सोहै। समझि न परहि पानि कुच जोहैं ॥
मुकतहार त्रिय धरैं उतारी। टूटहिं बहुर न पावहि नारी ॥२५७॥
एकहि सँग मानसर माहीं। हंसनि हंसु विलोकतु नाहीं ॥
सरद रैन अउ चंद उज्यारी। चंद्र उभय सोभित उचकारी ॥२५८॥

( दोहा )

निरषि सूर चंद्रोद यह, मान मोद मन लीन ॥
पुत्र जन्म तहि छिन भयो, चंद्र उदै जनु कीन ॥२५९॥
बहु बिध हास विलास बढ़ि, पहुकर परम हुलास ॥
अब दपत संपत भई, पूजी मनकी आस ॥२६०॥

( चौपही )

सुन सुष विजैपाल भुवपाला । आनँद मुदित भये तिहि काला ॥
कर असनान बोल दिज देवा । कीनी जात कर्म विधि सेवा ॥३६१॥
कर नंदी मुष पितर सराधू । जिहि विध कटहिं कोट अपराधू ॥
मनि मानिक हय हाटक हीरा । दीनै दान पटंवर चीरा ॥३६२॥
वहु जाचक षट दरसन आये । पंच सवद दरवार वजाये ॥
नेग रीत कुल धर्म अचारा । कीनै नृपत सकल व्यौहारा ॥३६३॥
बिप्रन विहँस आसिका बोली । सुत मैलौ पहुपावत ओली ॥
नवल नारि वहु मंगल गावहिं । पुत्र जन्म सुप सवहिं सुनावहिं ॥३६४॥
उतहि सूर उर आँनद माना । हय गज कनक दीन वहु दाना ॥
परम मुदित रंभा सुकुमारी । नैन चारु मुष चंद निहारी ॥३६५॥

( दोहा )

उदै चंद पूरन भयौ, उदौ चंद इहिं ठोउ ॥
गन गुनि पंडित मंडियौ, चंद सेन तिहि नाँउ ॥३६६॥
पहुकर कलि मै पुत्र फल, है जग जीवन सार ॥
धन्य जननि धन जय घरी, जहाँ पुत्र अवतार ॥३६७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेय जुध्य पडे चंद्रसेन
उतपत्य वर्ननो नाम पचदसमो अध्यायः ॥

( चौपही )

कलपलता बहु मंगल कीनौ । अगनित दान निछावर दीनौ ॥
सुषी सकल मिल मंगल साजा । आनद मुदित उदधि चित राजा ॥३६८॥
राषहिं धाइ पिवावहिं षीरू । मया करैं पहिरावहिं चीरू ॥
दिन दिन चंद कला जिम वढौ । रूप वेलि तरवर जिमि चढौ ॥३६९॥
वरस एक दूजी पुन लागी । चरनन चलै पेल अनुरागी ॥
बोलन मधुर तोतरी वतियाँ । लागत धाइ नृपत की छतियाँ ॥३७०॥
लसत कंठ मुकताहल माला । नैन कमल अरु वैन रसाला ॥
आनन इंदु मधुर मृद हासू । तात मात मन होत हुलासू ॥३७१॥
सूर सिंध सुत चंद कुमारा । विजै पाल कीरत रपवारा ॥
सौम वंस वरधन कुल नंदन । रंभा नैन चकोरन चंदन ॥३७२॥

पुपपावत के प्रान अधारा। नगर जीव सम जगत दुलारा॥
दुहँ पछ निरमल अति उजयारौ। अवहि कलपलता जिय प्यारौ॥२७३॥
विहँसत हँसत लसत लघु दतियाँ। लागे कहन अमी रस वतियाँ॥
इहि रस पंच वरष नियराने। सूर सिंध आँनद मह साने॥२७४॥
विजैपाल राजा सुर ग्याँना। प्रभु गुरु मान पिता कर माना॥
पुप्पावत माता करि जानी। विव गृहनी मन रंजन रानी॥२७५॥
राग रंग गुन ग्यान अपारा। वहु विनोद वर सैल सिकारा॥
कथा काव्य अरु चातुरताई। दीन मान रस रीति वढ़ाई॥२७६॥
सुह्रद संग क्रीड़ा परिहासा। सिसु लीला अरु तरुन विलासा॥
सुख संयोग भोग सुख मानें। रवि ससि उदय अस्त नहि जाने॥२७७॥

(दोहा)

पंच वरख चंपावती, उदित सूर कुमार॥
सुप संपवि संगति सहित, दंपति दरस उदार॥२७८॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं युद्ध पंडे सिसु लीला वर्नंनो नाम पंचदसमोध्यायः॥ १५॥

इति युद्धखंड

# वैरागर खंड

( दोहा )

सूर सिंह चंपावती, सुत सनेह नृप सोम ।।
सोह अग्नि संकल्प तन, करैं कुंड हिय होम ।। १ ।।

सुत सनेह कमलावती, निपट विकल विकरार ।
उरज ईस पूजा करैं, नैन जुगल जुग धार ।। २ ।।

( चौपही )

पंच बरष चंपावत छाये । माता पिता विरध विसराये ।।
निपट निठुर कलजुग की रीती । तज पितु मातु नारि सौं प्रीती ।। ३ ।।
जो दस मास मात उर धरही । पिता सदा प्रति पालन करही ।।
दूर देस तें आवत ब्याही । इनहिं छोड विरम्यो है ताही ।। ४ ।।
बाकी प्रेम प्रीति रस माते । सब कुटुंब सौं छांडे नाते ।।
यहि कामिनि रस कीन विगोवा[1] । तेहि नल वध है सर्वस खोवा ।। ५ ।।
यहि विधि मन मन झूरहिं राजा । पठवहिं कौन बुलावन काजा ।।
परसोतम चिंतामन पूतू । जो गुरु पुत्र सो कीनो दूतू ।। ६ ।।
लिषौ, पत्र संदेस पठायौ । पुत्र मान मन पीहर आयौ ।।
दंपति कहति करुन अति वैना । जल प्रवाह मोचित अति नैना ।। ७ ।।
सत्य सूर वैरागर हीरा । हिए वज्र रति जोन सरीरा ।।
माता पिता विरद विसराये । आपुन जाय स्वसुर गृह छाये ।। ८ ।।
तेरै नैन वधी त्रिय ईठी । रोवत गडी नैन महँ दीठी ।।
हमहिं नीद निसि आवत नाहीं । तुम निसि जाय भोग सुख माहीं ।। ९ ।।
तुम उर सालत हास विलासा । हम उर प्राय धुँवा को स्वासा ।।
पायौ पूत पूज हरि देवा । विरध वैस में करिहैं सेवा ।।१०।।

---

१—कीम वियोगा ।

विहि सुत तिय सुर तरु कर जानी। कौन आन मुष मेलहिं पानी॥
अबहूँ कछू धर्म उर लावहु। हमहिं जियत मुखआन दिखावहु॥११॥
बहुर मरे हमही घर ऐहौ। सूने सदन देष पछतैहौ॥
दसरथ छूट तुरत जिउ दीन्हा। हम जिय जरतजियत विधि कीन्हा॥१२॥
जो माया जिय तजी हमारी। लेव आय घर द्वार सम्हारी॥
करै कौन वैरागर धंधा। भये मात पितु अंधी अंधा॥१३॥

( दोहा )

गृह सेवा दुख मात पितु, लागी वेग गुहार।
बूडत गहिर समुद्र मैं, कर गहि लेव उबार॥१४॥

( चौपही )

परसोत्तम गुरु पुत्र नरेसा। चपावति ले चलै संदेसा॥
विजैपाल को दीनी पाती। आनंद सजन प्रीति रस राती॥१५॥
रंभावति को अभरन चीरा। पठये बहुत अमोलिक हीरा॥
चंद सेन पहरावन न्यारी। कुंडल मुकत माल षग वारी॥१६॥
रतन जरी पहुँची पहुँचाई। अतह मोल देषत मन भाई॥
चार मास तिहि मारग लाये। चंपावति परसोतम आये॥१७॥

( दोहा )

मिले कुँवर गुर पुत्र कौं, परसोतम तिहि नाम॥
आदर अरघ अनंत विध, कीनौ चरन प्रनाम॥१८॥

( चौपही )

परम जुडत अत सूर कुमारा। पूछत कुसल जु वारंवारा॥
माता पिता कुसल बहु बूझै। सजल नैन पाती नहि सूझै॥१९॥
आई सुरत तात परिवारा। भई अषंड मेघ जल धारा॥
परसोतम सब कह्यौ सँदेसा। सुनत ताह उर बढ्यो अँदेसा॥२०॥
विजैपाल को दीनी पाती। जो नृप लिषी प्रेम रसराती॥
रच भोजन ज्यौनारु अपारा। गुर सुत सहित भयौ तिहिं वारा॥२१॥
करि भोजन बैठे इक साथा। कहत हेत वैरागर नाथा॥
कमलावत पूजत हर देवा। तुव हितकरत रैन दिव सेवा॥२२॥

( दोहा )

सूर सूर सुमरन सदा, पलकन पल वसु जाम ॥
दृग मारग मन ध्यान धर, रस रसना तुव नाम ॥२३॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं वैरागर पडे दूत संदेस वर्ननो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

( चौपही )

सूर सिंध गुरु सुत कर साथा। चले निकट चंपावत नाथा ॥
परसोतम भुवपतहिं मिलावा। सौमेसुर संदेस सुनावा ॥२४॥
राजा सूर सिंघ लै संगा। गये जहाँ पुहपावति गंगा ॥
बैठे राज कुँवर इक ठाँऊ। रानी सुन्यौ पुत्र गुरु नाऊ ॥२५॥
कहत सूर अत आतुर बाता। अब हम गवन करै पर भाता ॥
पहुँपावत सुन रोवन लागी। रंभा सूर प्रीत अनुरागी ॥२६॥
कौन गुरागुरु पुत्र कहाऔ। इहाँ अक्रूर रूप ह्वै आयौ ॥
हम त्रिय साचु कहत गुरपूता। दूत न होहिं आइ जम दूता ॥२७॥
विजैपाल इमि बोलत बैना। सोभित सजल कमल दल नैना ॥
पंच वरष राषे हम राजा। वरपक रह्यो चंद हित काजा ॥२८॥
चंद्र हंस कछू होइ सयाना। तब निहचंत करौ प्रस्थाना ॥
है सुत मात पिता की सूठी। सासु ससुर की माया झूठी ॥२९॥
पितु गृह धाम धनी अधकारी। हौ हम घर पाहुन दिन चारी ॥
कछु दिन मिलै हमै सुष देहो। बहुर अंत अपने घर जैहो ॥३०॥
कहत सूर सुन कै यह बाता। अतहित प्रेम रीत रस राता ॥
तुव हित सफल सदा हम मानी। पाँचौ वरष सफल कर जानी ॥३१॥
अब कछु बात नहीं बस मेरे। रहबौ चलन हाँत प्रभु केरे ॥
बोले पलकु रह्यौ नहि जाई। सुक रिसाइ तौ जात बटाई ॥३२॥
अब आये प्रभु केर हँकारा। सेवक निमष रहन नहिं पारा ॥
आइसु अवधि जबहिं भई पूरी। तिहि छिन मरगु निचर घर दूरी ॥३३॥
करौं विदा पगु लागहि जाई। बहुर चरन फिर देषहिं आई ॥
जो जीवन है इहि संसारा। बिछुरौ बहुर मिलै इहि बारा ॥३४॥

राजा मान सत्य सब भाषा। पंडित बोल महूरत राषा॥
दिन दस मैं सुभ दिन ठहरावा। सुमत बोल सब सौंज करावा॥३५॥
हय गय हीर चीर अधकारा। देन अर्थ भंडार विचारा॥
बहु पुन अर्ध चंद्र के काजा। सर्वसु कीन संकलपु राजा॥३६॥
सूर सैन पुन मंदिर आये। गुन गँभीर रघुवीर बुलाये॥
कहत करौ मारग सब साजा। हम उताल चलिहैं गृह काजा॥३७॥
सबु विधि तुम देपहु सु विचारी। करौ निनार भार अति भारी॥
सो रनधीर साथ कर दीजै। निबहै संग संग सो लीजै॥३८॥
पट वितान हैवर अरु हाथी। ये तो नहीं संग के साथी॥३९॥

( दोहा )

चलो पंथ अत हरुव ह्वै, सँग न लेव कछु भार।
कठिन भूम परदेस ते, नाथ निवाहन हार॥४०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं वैरागर षडे डेरा
प्रस्थानो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

( चौपही )

अगुरिन गिनत सुदिन दिन आवा। गुन गँभीर दल सज्ज करावा।
आगन लीप चौकु द्विज दीना। गवन अचार सकल विधि कीना॥४१॥
भेरी ढोल मृदंग अपारा। बाजन बजे राज दरबारा॥
रंभावत सब सपी बुलाई। बाल सषी सगरी मिल आई॥४२॥
मया करौ मिलि लेव सहेली। वे दिन गये जु हम सँग पेली॥
अब हम चलीं दूर परदेसा। कत यह नैहर कत यह भेसा॥४३॥
कहँ बेली सरवर द्रुम बागा। करत आजु सब सुप कर त्यागा॥
नैहर मिलन कहँ सब लोगू। जैसे नदी नाव सनजोगू॥४४॥
यह कह कहै सपी जग गौना। जिहि घर जाइ बहुर नहीं औना॥
अब मुहि फेर कौन लै आवे। तात मात सुप आन दिषावै॥४५॥
अब हम जाइ ससुर गृह ठाँऊ। जहाँ सुनौ नहीं नैहर नाँऊ॥
मन की बात कहन नहिं परई। सासु ननद के भौहन रहई॥४६॥
चितन धरौं कछु नहिं कह आवा। दई हौंत अब आन सिलावा॥
यह कह सपी कंठ लग रोई। बाल वृंद रोवैं सब कोई॥४७॥

ठाँव ठाँव रोवैं नर नारी । चली छाँड़ सब नगर उजारी ॥
रोवत पिता मात ढिग आई । कहत कहाँ मुहि पठवत माई ॥४८॥
किहि कारन अत पालन कीना । जनमत क्यों न हलाहल दीना ॥
माता पिता तजी जिय माया । निरदइ दई करै नहीं दाया ॥४९॥
अब हौं आस करौं किहि केरी । पर हथ बाँध दई जनु चेरी ॥
जानत नहीं कहाँ लै जैहै । लेकर कौन कौन बैठेहै ॥५०॥
मैं तो मरम न येतौ जाना । तात मात नैहर अभिमाना ॥
अब यह सासु सासुरौ होई । मो सँग नाहिन सँवाती कोई ॥५१॥
दारुन ससुर कहत बड भूपा । नैन न देषौं ताकर रूपा ॥
मो मन मात बहुत डर आवे । सेव सेव का कह समुझावे ॥५२॥
कैसे बोलैं सासु गुसाइन । प्रथम जाइ परिहौं जब पाइन ॥
निठुर ननद के सहिहौ बोला । सहौ बिबस मुप रहौं अबोला ॥५३॥
चलहु चलहु चहुँ दिस ते होई । छिन भर राषि सके नहिं कोई॥
मो जिय ऊपर बाजत बाजा । यह चौंडोल सजत हम काजा ॥५४॥
रोवति बहु बिधि करत पुकारा । राषि लेव जननी इहि वारा ॥
कौ विषि देव षाइ मर जाऊँ । श्रवन सुनौ नहि बिछुरन नाऊँ ॥५५॥
जनम जगत बिछुरे नहि कोई । जिहि बिछुरन फिर मिलन न होई॥
सुत बिछोह क्यौं जीहौ माई । तुव बिछुरन मुहि सहौ न जाई॥५६॥
धुक धुक धरन परत मुरझानी । सषी सकल मुप मेलहिं पानी॥
चंद्र सैन कहँ लै अँकवारा । बरषत नैन मेघ जल धारा ॥५७॥
पिता पाइ पर सौंपत पूतू । रोवत होइ मंद आकूतू ॥
सो धन धाम सुनाम सो ठाऊँ । अब छिन येक रहन नहिं पाऊँ॥५८॥

(दोहा)

चंद्र सेन के बीछुरे, क्यौं जीहौं री माइ ।
पिता चरन जुग गहि रही, धरन परी मुरझाइ ॥५९॥

(चौपही)

विजैपाल रोवहि भर नैना । गद गद कंठ न आवहिं बैना ॥
चंद्र सैन है प्रान हमारे । धन जीवन नैनन के तारे ॥६०॥
देस राज गृह कर अधकारू । चंद्र सैन कर सकल [illegible] ॥
लाग भूप चरनन रंभावत । बहुर [illegible] [illegible] [illegible] ॥६१॥

कंठ लाग गहिवर हिय रानी। रावे कमल वदन कुम्हल्यानी ॥
किहि कारन मैं लाड लडाई। चली छाड अब भई पराई ॥६२॥
वार वार दुहिता उर लावै। हियें हेत सुष वैन सुनावै ॥
वरस द्वैस भरि रहन न दैहौं। सूर सहित तुहि वेग वुलैहौं ॥६३॥
एक वेर ससुरं ह्वै आवहु। वहुर वेग मुहि दरस दिषावहु ॥
यह कह वहुर लई उर लाई। मुषु चूमत उर लेत वलाई[1] ॥६४॥
मेरे नैन प्रान रंभावत। तिहि विधि कलपलता मन भावत ॥
तीसर और आहि नहिं कोई। रहियहु येक वहिन मिल दोई ॥६५॥
पति जानौ परमेसुर देवा। करियहु सूर सिय की सेवा ॥
इक चित सेव होहि प्रभु राजू। औरन लगत आइ कछु काजू ॥६६॥
है पति प्रान प्रान कर नाथा। जीवन जन्म आहि उहि साथा ॥
कलपलता पुन रोवन लागी। पुप्पावति के हित अनुरागी ॥६७॥
कहै सुनौ पुपपावत रानी। मैं सव सीष सीष परवांनी ॥
हौं दासी ये स्वामिन मेरी। निसु दिन आस करौ जिहि केरी ॥६८॥
करिहौं सेव देव कर मानौ। ज्यौं लछमी नाराइन जानौ ॥
अस रानी तुम चित जनु लावहु। रंभा कौं मम वाँहि गहावहु ॥६९॥

( दोहा )

मात पिता सषि भेंट कै, बोलन आवै बोल ।
नृप तनया मंगल सहित, आइ चढी चौडोल ॥७०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं वैरागर षंडे कुँवर सम दरसनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

( चौपही )

सूर सैन मंदिर महँ आये। नृप रानी मन नैननि भाये ॥
विजैपाल चरनन चितु लायौ। नृप गहवर हिय कंठ लगायौ ॥७१॥
मो चित नैन वूंद ढर पानी। मोती करहिं निछावर रानी ॥
कातर वचन चवै पुपपावत। तुव चरनन वाँधी रंभावत ॥७२॥

---

१. रंभावत की बाँह गहाई, यह पद अधिक है।

विजैपाल नृप दै कर सीसा। मन वच क्रम कर दीन असीसा॥
पुषपावत जु आसका दीनी। मंगल सहित विदा मिल कीनी ॥७३॥
करौ तिलक दधि रोचन रूपा। अछित मुकत भाल रचि भूपा॥
कुवँर चरन गहि भये असवारा। दिज वर पढत वेद अनकारा ॥७४॥
चढत सूर हय वाजन वाजे। पावस उमड मेघ जनु गाजे॥
सुमत बोल संग दाइज दीन्हा। गुन गभीर कौ सौंपन कीन्हा ॥७५॥
सहस नाग दस सहस तुरंगा। विविधि वसन सोभित बहुरंगा॥
कनक रतन मुकता मन हीरा। अगिनित दर्वि दीन वर वीरा ॥७६॥
दासी दास बहुत सँग दीनै। रूप सरूप जान नहि चीनै॥
नगर लोग पहुचावन आये। बहु प्रसाद नर नारिन पाये ॥७७॥

( दोहा )

वरनत चारन विप्र गन, कीरत करत अपार।
सौम वंस धन मात पितु, जहाँ सूर अवतार ॥७८॥

हय गज रथ चतुरंग दल, रवि छपि रैन अकास।
चक्कीय चक्क विछोह हुव, सकुचत कमल विकास ॥७९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर खंडे पयान वर्ननो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

( चौपही )

प्रथम मिलान सरोवर आये। सुमति सौज सब सौंपन ल्याये॥
बैठे निकट सूर सुकुमारा। बूझत विहस वात तिहि वारा ॥८०॥
हमहि राज दरसन अभिलाषा। इक गुन कहहिं अवहि गुन जासा॥
अगुवा एक संग कर दीजे। जिहि भरोस कर प्रान पतीजे ॥८१॥
जिहि मारग लै करे पयाना। तिहि मारग हम चलहि विहाना॥
जो मग सुगम होय अरु नीरा। और सुपित सुख रहे सरीरा ॥८२॥
ऐसौ पंथ वतावै सोई। सो अगुवा जो सन गुर होई॥
सुमति सुनत अगुवहि हँकरावा। आइसु मान ततछन आवा ॥८३॥
कहत सूर अगुवा सौं वाता। वैरागर मग चलौ प्रभाता॥
जो मगु सुगम जु नियरौ होई। उठि ऊषा मग चलिये सोई ॥८४॥

उत्तर अगुवा दीन सुजाना । मारग भेद कछू हम जाना ॥
सो विचार विनऊँ तुम आगै । सुनियौ एक चित्त हित लागै ॥८५॥
दूर देस बहु आइ न नीरा । कहत जाहि वैरागर हीरा ॥
ताहँ गवन विवि मारग आहीं । हीर हेत नर चाहत ताहीं ॥८६॥
एक पंथ नियरे नहि तासू । विरले निर्वाहि सकल नहि तासू ॥
उच्च उतंग सिषिर अति वाटा । षड्ग धार सूछम अत वाटा ॥८७॥
ताहर समुद गहिर गभीरा । दुहुँ दिस वाट दहच्छन तीरा ॥
वीच न कछू वसन कर ठाँऊ । वसगत ग्रेह नगर नहि गाँऊ ॥८८॥
इक चित चलै नगर ठहराये । करहिं न डीठ दाँहनै वाँये ॥
चलै चरन गिरहि ते गिराई । वूडैं उदधि रसातल जाई ॥८९॥
निवहे आइ निपट अत नीरा । लहे वेगि वैरागर हीरा ॥
उहि मग सुगम न निवहे भारा । निवहे नहीं कुटुम परवारा ॥९०॥
जोगी जती जाइँ उहि पंथा । तजहि वसन मुकुतुनु कर कंथा॥
अंवर छाँड डिगंवर होई । उहि अगमन मग निवहे सोई ॥९१॥
साधे भूष नींद अरु प्यासा । राषै येक हीर की आसा ॥
निवहे पाइ परम पद छाजा । गिर तै गिरै त विनसे काजा ॥९२॥
दूजे पथ चलै वनजारा । लादौ वनज संग परवारा ॥
मारग सरल तीर वहु ठाऊँ । ठाँव ठाँव वसे सव गाऊँ ॥९३॥
पंच चोर वर ये अति आहीं । सोवत साँज मूस लै जाहीं ॥
तिनि संग चोर आइ वहु ठाटा । पाथक सव मिल वाँधत घाटा ॥९४॥
जागैं पंथ सकल निस माहीं । तिहि कहँ कछू चोर भय नाहीं ॥
जो सोवे तौ आपन दूसा । तिहि को सर्वसु चोरन मूसा ॥९५॥

(दोहा)

पहुकर पथिक पयान करि, सावधान चित होइ ।
जो सोवे तौ मूसिये, जागत छलहि न कोइ ॥९६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं वैरागर पंडे पंथ वर्ननो नाम पचमोऽध्याय: ॥५॥

(चोपही)

उठे प्रात दल कीन पयाना । वाजे गहिर गरुव निसाना ॥
पट दरसननहि दीन वहु दाना । सव को विदा कीन सनमाना ॥९७॥

सुमत कीन बहु भाँत सनाथा। अगुवा कीन सूर के साथा॥
गुन गँभीर दाइज गनि लीना। सो रनधीर संग कर दीना॥९८॥
आप सुगम मग कीन पयाना। पंच कोस पै भयौ मिलाना॥
अदभुद ठावँ सरस्वती तीरा। लग्यौ चित्त वैरागर हीरा॥९९॥
मन रंजन दोऊ सँग दारा। दिन प्रति काटन पंथ पहारा॥
सावधान जागहिं सँग माहीं। जागत पंथ चोर भय नाहीं॥१००॥
परसोतम गुर पुत्र सुहावा। कहत कथा प्रस्थान सुभावा॥
सुभट संग आँनद अनुरागै। सँग रघुबीर चलत दल आगे॥१०१॥
गुन गंभीर सबन निर्वाहे। निसु दिन स्वामि धनी चितचाहे॥
वैरागर दिन प्रत नियराई। मन अभिलाष होत अधिकाई॥१०२॥
पंच मास मारग प्रस्थाना। मन अभिलाष प्रीत ब्रत जाना॥
तीस कोस वैरागर देसा। जहाँ आय सौमेस नरेसा॥१०३॥
तब परसोतम चले अगाऊ। मंगल मान बढ़ौ चित चाऊ॥
गयौ नगर वैरागर माहीं। जहाँ नृप सोम नाथ नरनाहा॥१०४॥
अरु कमला कमलावति रानी। मानौ रुद्र गंग रुद्रानी॥
परस मुदित परसोतम आवा। सूर सेन आगमन सुनावा॥१०५॥
त्रिय गावहिं मंगल बहु भाँती। दोऊ पुत्र बधू मन साँती॥
चंद्र सेन चंद्रोदय आया। सुप पत हृदय तापु नहिं गया॥१०६॥
विजैपाल बरनी सुप रीती। गाई एक परसपर प्रीती॥
उत्तर पंड विजय जय दाता। मदन जुद्ध जितयौ विष्याता॥१०७॥
सूर अस जग ऊपर छाई। सौमेसुर कहँ सबै सुनाई॥
भये चंद्र चँपावति राजा। विजैपाल अवनी पति छाजा॥१०८॥
कलपलता रंभावति प्रीती। दुहु कुल बधू पतिव्रत रीती॥
सब सुप कह्यौ नृपत के आगे। कमला सुन्यौ प्रेम अनुरागे॥१०९॥

( दोहा )

परसोतम बरनन कियौ, सकल कथा बहु भाइ।
दंपत सुप संपत भई, कवि सुप बरनन जाइ॥११०॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचिते वैरागर पुरी आगमन
आँनद वर्ननो नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

(चौपही)

सभा मध्य सोमेसुर आये। पंडित गनक गुनी हँकराये॥
सुभ दिन समय घरी ठहरावहु। सूर सैन कहँ मंदिर ल्यावहु॥१११॥
साधौ लग्न ग्रहन वर जोई। पुत्र वधू जुग परिछन होई॥
विप्रन समय सुदिन ठहरावा। परसोतम फिर लेन पठावा॥११२॥
कमल वदन कमलावति रानी। प्रफुलित वदन सूर जिय जानी॥
अंगन चंदन अगर लिपावा। गजमोतिन मिल चौक पुरावा॥११३॥
मुदित मोद मिल मडफ छावा। कनक कुंभ भरपूर धरावा॥
वहु मृदंग वाजे दरवारा। वंदि सुक्ति मनि वंदन वारा॥११४॥
घर घर तोरन रचित पगारा। घर घर मंडि कलस सव द्वारा॥
हाट वाट पाटंवर छाये। सुर विमान तहँ कौतिक आये॥११५॥
गावहिं गीत नाद नव नारी। चंद्र वदन चित चोरन हारी॥
चले सुभट सनमुष सुषमानी। दल चतुरंग संग अगवानी॥११६॥

(दोहा)

मुदित मनोरथ मिलन हित, मंगल सहित नरेस।
दिन दूलह दुलहिन उभै, कीनौ नगर प्रवेस॥११७॥

(छंद पद्धरी)

कीनौ जु गवन नगरी प्रवेस। हुव थकित पिष्य वैभव दिनेस॥
चतुरंग संग सैना अपार। धसिमसिय धरन सिर सेस भार॥११८॥
वज्जहित वंव नौवत निसान। घनघोर मेघ भादौ समान॥
उड अवन रैन लग्गी अकास। सकुचंत कोकनद कोक त्रास॥११९॥
आरूढ मत्त मातंग सूर। छवि मन कोटि विधि वदन पूर॥
सोहत मुकट सिर जटित हीर। निरषंत नैन नागरि अधीर॥१२०॥
झलकंत करन कुंडल विलोल। मनु हरत अमल मुत्तिय विलोल॥
रच भाल पौर केसरि वनाइ। नव इंदु सोभ वरनी न जाइ॥१२१॥
दुति दसन हीर तंम्मोल रंग। दाडिमी वीज मानौ तुरंग॥
मुसक्यात वात मृदु हास हास। चंचला चमंकि जनु इंद्र पास॥१२२॥
सित अरुन असित लोचन विसाल। उर लसत लाल मुत्तियनि माल॥
नागरिय नैरि निरषैं अवास। अप्छरीय वृंद मानौ अकास॥१२३॥

मनमथ्थ चापु भृकुटी कमान। वरुनीन लसै जनु पंचबान॥
थकि रहहिं नारि नागरि अधीर। अंचल न सुद्धि अभरन न चीर॥१२४॥

अनुगमित उभय भामिनिय संग। चौडोल चारु मानौं सुरंग॥
पालकीय संग सहचरी नार। जनु अवनि इंदु उडगन विचार॥१२५॥

( दोहा )

बाजत भेरि मृदंग धुनि, नौबत नाद अपार।
दिन दूलह बहु दल सहित, आये राज दुवार॥१२६॥

( चौपही )

त्रियनि सहित कमलावति रानी। आई सिव पौर सुषमानी॥
मंगल गानु करै नव नारी। बाजहिं नाद सोर अधिकारी॥१२७॥
परछन सौंज जुवति करि लीनी। चंदन वंदन ऐपन चीनी॥
दीप सूप अरु पूप रसाला। गुननि लिये गुनवंती बाला॥१२८॥
उरकै सूर अवनि भये ठाढे। मानौं मदन रूप छवि बाढे॥
दच्छिन वाम उभै कुल नारी। गुनन गरुव अरु जोवन वारी॥१२९॥
अरछि परछि कमलावति लीनी। बहु विधि विविधि निछावर कीनी॥
मातु चरन गह सूर सुजाना। लोचन वारि कीन अस्नाना॥१३०॥

( दोहा )

परम मुदित कमलावती, कंठ लाइ तिहि वार।
कुच लोचन हिय उमग करि, उडिल चली पयधार॥१३१॥
बहुन सहित कमलावती, गई नृपत के तीर।
चतुर उभै चरनन परीं, संग जुवति बहु भीर॥१३२॥
गावहि रहस बधावनें, पावहि अभरन चीर।
आवहिं देपन नागरी, धावहिं परम अधीर॥१३३॥
सौमेसुर आनंद मय, पुत्र बधुन सुप देष।
जान्यौ जीवन धन्य जग, मान्यौ जन्म विसेष॥१३४॥
दीनी सुप दिय रावनी, नष सिष अभरन चीर।
दोई त्रिमल विराजहीं, कमलावति के तीर॥१३५॥
चन्द्र वदन पंकज चरन, गज गामिन मग नैन।
लाज सील गुन लछिछनी, बोलहिं कोमल बैन॥१३६॥

दुहूँ पच्छ की लाडली, दुहूँ कुलन उजयार ।
सासु ससुर मन भावती, पत पिय प्रान अधार ॥१३७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरंचितेयं वैरागर पंडे राजा दरस
वरननो नाम सप्तमो अध्यायः ॥७॥

(चौपही)

सूर महलु जो कियौ निनारा । वरनन जाइ तासु विस्तारा ॥
रुक्म कोट मंडित चहुँपासा । जातरूप द्विज राज अवासा ॥१३८॥

कंचन पचित रचित मनि हीरा । मानिक मुक्त लगे चहुँ तीरा ॥
पाँति लाल मन गौप बनाये । बहु रंजन मनि कलस धराये ॥१३९॥

अंगन चौक फटिक मनि साजा । ता मधि अमल सरोवर राजा ॥
विद्रुम पारि रची दिसि चारी । मरकत मन की सिढी सँवारी ॥१४०॥

नाना वरन सरोवर सोहै । द्विज कुल केलि करत मन मोहै ॥
सुभ दिन समय महूरत चीनी । नृप रानी मिलि आइसु दीनी ॥१४१॥

जुवत सहित चलि सूर अवासा । मानौ सूर कियौ परगासा ॥
बाजत बादन मंगल चारा । गावहिं गीत तरुनि अनकारा ॥१४२॥

भनत विप्र वेदन धुन बानी । अरु बंदी जनु कहैं कहानी ॥
जुवती सहित चलत इमि सोहै । इंद्र सची संजुत मन मोहै ॥१४३॥

परम मुदित मंदिर महँ आयौ । रंभावती भलौ वरु पायौ ॥
दुलहिन अवनि नवल वर पायौ । मानौ प्रान भवन तन आयौ ॥१४४॥

प्रथम आइ अंगन भये ठाढे । सरवर देख हरख मन बाढ़े ॥
दोउ भामिनि सँग देखन लागीं । कंत प्रीति सरवर अनुरागीं ॥१४५॥

भये विवाद कोक नद कोका । पल मह आँनद पल मह सोका ॥
विहँसत सकुचि कमल विहँसाई । कुमुद सकुच पुनि सकुचत नाई ॥१४६॥

कोक वधू मानत रति केली । बहुरअमित फिर चलहि अकेली ॥
पुनि फिर आय मिलन पिय संगा । विछुर मिलन बाढौ आनंगा ॥१४७॥

अलि कुल निरख अचम्भौ होई । दिन अरु रैन न जानत कोई ॥
वहु छवि भेद मवन्द मिल चीन्हा । विय शशि बीच उदय रवि कीन्हा ॥१४८॥

(दोहा)

कमल कुमुद विहसैं मनों, भै कोकनद उदास।
पहुकर अचिरज एह मन, रवि शशि किये प्रकास॥१४९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं वैरागर खंडे गृह प्रवेस वर्ननो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

(चौपाई)

कमल वदन कमलावति रानी। डोलै परस मुदित सुख सानी॥
चतुर नारि सहचरी बुलाई। सेज सौंज सब साज कराई॥१५०॥
फूल सुगंध पान परधाना। मेवा मधुर विविध पकवाना॥
बहुत निछावरि सौंज पठाई। सो आनंद कवि बरन न जाई॥१५१॥
लै कर चली सबै मिलि दारा। करत मधुर धुनि मंगलचारा॥
बाजहिं पंच शब्द नव रंगा। झाँझ तूर अरु ढोल मृदंगा॥१५२॥
चतुर नारि उद्धत नव नागरि। रूप सरूप गुनन अति आगरि॥
कमलावति सो हास विलासा। अति हित हरषि करहि परिहासा॥१५३॥
परस धन्य कमलावति रानी। पाई पुत्र वधू रति रानी॥
अब जु समागम सेज पठाई। सो आनंद सुख बरनि न जाई॥१५४॥
नृप तनया रंभा सुकमारी। दुहुँ कुल विमल इंदु उजयारी॥
आवागमन आइ यहि ठाईं। सेज सौंज लै युवति पठाई॥१५५॥
सो प्रभु कृपा कौन अधिकाई। नैहर पूत जाय घर आई॥
कलपलता नव दुलहिन सोहै। तजि सुर राज नूर मन मोहै॥१५६॥
कमलावति, हँसि उत्तर दीना। नवस काल नव चाहिय कीन्हा॥
सखि अनजन तुम मरम न जानो। ज्ञान बिदा कहुँ भेद बखानो॥१५७॥
जहाँ फिरी नृप मदन दुहाई। गई लाज कुल कान बड़ाई॥
ते सिसु लाज कान डर करहीं। जिनके व्याह मात पितु करहीं॥१५८॥
जेहि घर व्याह काम करवावा। सो तो करै आपु मन भावा॥
छाँडौ लोग कुटम परिवारा। पाई जोग जुगति की धारा॥१५९॥
सो क्यों कर चित धीरज धरहीं। फिर घर आर समान सौं करहीं॥
मदन देव तब विरह बिडारैं। लाज काज उर रहन न पारै॥१६०॥

(दोहा)

पहुकर जहाँ मनोज नृप, करे अखिल तन राज।
ता तन को डर भजि चलौ, ज्ञान कानि अरु लाज ॥१६१॥

(चौपही)

यह कहि सहिचर सबै पठाई। सूर की सेज सवारन आई॥
मध्य धाम सुख सेज सवाँरी। दुहुँ दिस धाम दूजु वर नारी ॥१६२॥
पारस उभय ओर सहचारी। मुदिता आदि सबै सखि प्यारी॥
कलपलता को सखी सयानी। रूप मंजरी अरु कल्यानी ॥१६३॥

(दोहा)

सखी सकल निस जागहीं, गीत नाद धुनि होय।
विलसत पान सुगंध रस, परम मुदित सब कोय ॥१६४॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं वैरागर षंडे रैन
जागरनो नाम नवमोध्यायः ॥६॥

(चौपही)

होत प्रात कमलावति रानी। सुत गृह चली परम सुख सानी॥
देखत पुत्र वधू वर वासा। रूप रेख अरु हास विलासा ॥१६५॥
आई नगर नारि नव नागरि। रूप सरूप गरुव गुन आगर॥
चित्रिन हस्थिन संखिन धाई। पदमिनि अंग विलोकन आई ॥१६६॥
मुग्ध मध्य प्रौढा वरनारी। रूप रासि जोवन उजियारी॥
अष्ट नारि रस भेद बखानी। ते आई देखन रति रानी ॥१६७॥
पति स्वाधीन कहीं त्रिय सोई। पति जिहि प्रेम सदा वस होई॥
सुख संयोग परस्पर प्रीती। मदन मनोरथ आँनद रीती ॥१६८॥
सो त्रिय सुकवि कहहि अभिसारा। समय हेतु साहस युत हारा॥
समदूती अरु सहिचर आई। मदन सहाय जाय पिय पाई ॥१६९॥
वासक शैय्या नारि बखानी। वार जनी पति आगम जानी॥
रचे सेज श्रृंगार बनावे। मिलन मनोरथ मन उपजावे ॥१७०॥
नारि खंडिता वही कहावे। जेहि पति यामिनि अनत गँवावै॥
होत पलट आवे परभाता। सो तिय कहे व्यंग वर वाता ॥१७१॥

बिप्रलब्ध सो नारि जु गाई । कंत परठ . संकेतु बुलाई ॥
देखें जाय सदन सो सूना । वंचित सुप्प होहिं दुख दूना ॥१७२॥
बरनि. विरह उत्कंठा बाढी । सदन बिरह वेदन अति काढी ॥
प्रोषित पतिका नारि बखानी । पिय विदेस बिरहनि बिलखानी ॥१७३॥
सदन सेज श्रृंगार न भावै । विरह वियोग बहुत दुख पावै ॥
सुकवि कहत कलहंतर ताही । परे कलह करि अंतर जाही ॥१७४॥
मानि कंत अभिमानहि करही । बहुर वियोग विरह दिन भरही ॥
कठिन मान मानिनि अभिमानी । लघु मध्यम गुरु त्रिविधि वखानी ॥१७५॥
माननि त्रिबिधि कहत कबि धीरा । धीर अधीर तीसरी धीरा ॥
वचन बिलास सौंह परि पाऊँ । त्रिविधि मान कर त्रविधि उपाऊ ॥१७६॥
पति अपराध रोष नहि करहीं । धीरा नारि धीर चित धरहीं ॥
प्रगट सुरोष नैन युग नीरा । सो माननि कवि कहत अधीरा ॥१७७॥
त्रिविधि त्रिबिधि पुनि त्रिविधि बखानी । उत्तम मध्यम अधमा जानी ॥
मध्यम नित्य प्रीति व्रत चारी । पति व्रत शील सो उत्तम नारी ॥१७८॥
कर्कश बैन कर्कशा होई । अधमा नारि कहै सब कोई ॥
दिव्य अदिव्य जुगीत बखानी । तिनकी युग युग चलै कहानी ॥१७९॥
सीता सती और दमयंती । त्रिविधि नार बरनो गुनवंती ॥
सुकिय परकिया अरु गुन गाई । वार नारि रसिकन मन भाई ॥१८०॥
त्रिविधि नार बस नारि स्वभाऊ । संयोगिनि विरहिनि वो गाऊ ॥१८१॥

( दोहा )

मुग्ध मध्य लज्जा सु सम, पौढ़ा मान प्रकास ।
परकीया संयुक्त है, वारि युवति धन प्यास ॥१८२॥

बहु विधि अंतर भाय वहि, सो सुख बरनि न जाय ।
अष्ट नारि वरनन कियौ, सूछम सुगम सुभाय ॥१८३॥

पिय पयान जेहि अंग छिन, विरहिन आगपिय पास ॥
नवम भेद सोई नायका, बरनत परम उदास ॥१८४॥

( चौपाई )

देखन नवल नारि नव साई । नवल नारि मिल कौतुक आई ॥
देखि रूप सब बलि बलि जाई । रहीं मोह तन की सुधि नाहीं ॥१८५॥

एकनि नैन एकटक लाये । एकन प्रान वसीठ पठाये ॥
अंचल सिथिल हार हिय टूटे । उमगि उरज कंचुकि बँध छूटे ॥१८६॥
डगमग डगर डगहि डरवाला । बोलन आवहिं बोल रसाला ॥
चाहत कछू कछू कहि आवै । प्रेम पानि मद सुधि विसरावै ॥१८७॥
जे नहि छैल छली सुकुमारी । ते पुनि विवस टरे नहिं टारी ॥
जे प्रगल्भ ते निपट भुलानी । नैन प्रान पठये अगवानी ॥१८८॥
चित न चेत उर आतुरताई । विसर गई सब चातुरताई ॥
तन मन जोवन सवै विसारा । प्रेम खेल जनु सर्वस हारा ॥१८९॥
चली पलट कमलापति रानी । आनँद मुदित सवै सुखसानी ॥
आई धाम कांम सव कामिनि । चकित मनो भोली मृग भामिनि ॥१९०॥
लोचन आन रहे पिय पाहीं । पिय मूरति वसि नैनन माहीं ॥१९१॥

( दोहा )

पहुकर मत्त गयंद जिमि, कुल अंकुस कर फेरि ।
गुरुजन वहुगड दार मिल, आनी घर घर घेरि ॥१९२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं वैरागर खंडे
नवनायक वर्ननो नाम दसमोध्याय: ॥१०॥

( चौपाई )

यहि विधि परम मुदित भुवपाला । सव सुत संग वधू युग वाला ॥
एकहि अंग ऊन नहिं सोई । सब विधि सुखित वहुत दिन होई ॥१९३॥
सूर सिंह सव पुत्र सुजाना । जेहि कर खड्ग चहूँ दिस जाना ॥
प्रथमहिं नृपति दीन युवराजू । अव विशेष सौंपौ सव काजू ॥१९४॥
इक दिन कहत नृपति सों वाता । सूर स्वभाव मंत्र कर ग्याँता ॥
प्राची दिस पित पूरव राजू । उत्तर जीत लीन्ह इन आजू ॥१९५॥
दछिण विजैपाल नृप आँहीं । चंद्रसेन अधिपति किय ताहीं ॥
त्रिदिग राज्य तुमरे घर आवा । पश्चिम राज्य यतन ठहरावा ॥१९६॥
जो राजा संतोषी होई । तेहि कर नाम न जानै कोई ॥
चारहु चक्र राज्य अव कीजे । नाम प्रवल चक्रवै धरीजे ॥१९७॥
जो मैं राज्य रजायस पाऊँ । पश्चिम दिशहिं विजै कर आऊँ ॥
पश्चिम केर रजायस कीजे । दल रघुवीर संग कर दीजे ॥१९८॥

दिस पश्चिम जीतहि नर सोई । युग युग नाम अमर कलि होई ॥
तातें और वियौ नहि काजू । चक्रवती सोमेसुर राजू ॥१९९॥

( दोहा )

सूर मंत्र सोमेस सुनि, बाढ़ौ अति आनंद ॥
सत सुपुत्र जिय जान कर, मानौ पूरन चंद ॥२००॥
बोल राय रघुवीर कहँ, नागर चतुर सुजान ॥
अति आदर हित सों, दये सेना पति के पान ॥२०१॥
दिस पश्चिम दिग्विजय कहँ, राज रजायसु कीन ।
सूर सुभट चतुरंग ले, अखिल संग कर लीन ॥२०२॥
सहस नाग रथ द्वै सहस, हैवर वीस हजार ।
एक लच्छ पयदल वली, सकुचि सेस तेहि वार ॥२०३॥

( चौपही )

चलि रघुवीर पाय पति पाना । भई वंव अरु कीन पयाना ॥
प्रथमहि जीत इन्द्रपथ देशा । वद्रि नाम तहँ कहत नरेशा ॥२०४॥
लवपुर कोट शल्य जहँ वंदन । लिय कुसाव मेहर गढ़ नंदन ॥
ठट्ठा भक्खर अरु मुलताना । सिंधवार फेरी नृप आना ॥२०५॥
किय दिग्विजय सौमखट माहीं । पश्चिम शत्रु रह्यौ कोउ नाहीं ॥२०६॥

( दोहा )

सिंधु सरित पर्य्यन्त सव, धरिय धर्म धर पाय ।
सूर भूमि जिय जानिके, पार न उतरो जाय ॥२०७॥

( चौपही )

सब दिश फेरि सोम नृप आना । सेल सीस आयनु परमाना ॥
भरहि दंड अरु मानहि सेवा । पूजहि मनो अमरपति देवा ॥२०८॥
सकल संग अनुचर है आये । विविध रसाल पेस [illegible] ॥
हय कच्छी अरवी अरु वाजी । साँचकरन [illegible] लीन [illegible] ॥२०९॥
विविधि वसन पाटंवर लीने । [illegible] ॥
राय आय रघुवीर सुजाना । नृप बहु भाँति [illegible] ॥२१०॥

एकनि नैन एकटक लाये। एकन प्रान बसीठ पठाये ॥
अंचल सिथिल हार हिय टूटे। उमगि उरज कंचुकि बँध छूटे ॥१८६॥
डगमग डगर डगहि डरवाला। बोलन आवहिं बोल रसाला ॥
चाहत कछू कछू कहि आवै। प्रेम पानि मद सुधि बिसरावै ॥१८७॥
जे नहि छैल छली सुकुमारी। ते पुनि बिवस टरै नहिं टारी ॥
जे प्रगल्भ ते निपट भुलानी। नैन प्रान पठये अगवानी ॥१८८॥
चित न चेत उर आतुरताई। बिसर गई सब चातुरताई ॥
तन मन जोवन सबै बिसारा। प्रेम खेल जनु सर्बस हारा ॥१८९॥
चली पलट कमलापति रानी। आनँद मुदित सबै सुखसानी ॥
आई धाम कांम सब कामिनि। चक्रित सनो भोली मृग भामिनि ॥१९०॥
लोचन आन रहे पिय पाहीं। पिय मूरति बसि नैनन माहीं ॥१९१॥

( दोहा )

पहुकर मत्त गयंद जिमि, कुल अंकुस कर फेरि।
गुरुजन बहुगढ दार मिल, आनी घर घर घेरि ॥१९२॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेयं वैरागर खंडे
नवनायक वर्ननो नाम दसमोध्याय: ॥१०॥

( चौपाई )

यहि बिधि परम मुदित भुवपाला। सब सुत संग बधू युग बाला ॥
एकहि अंग ऊन नहिं सोई। सब बिधि सुखित बहुत दिन होई॥१९३॥
सूर सिंह सत पुत्र सुजाना। जेहि कर खड्ग चहूँ दिस जाना ॥
प्रथमहिं नृपति दीन युवराजू। अब विशेष सौंपौ सब काजू ॥१९४॥
इक दिन कहत नृपति सो बाता। सूर स्वभाव मंत्र कर ग्याँता ॥
प्राची दिस पित पूरब राजू। उत्तर जीत लीन्ह इन आजू ॥१९५॥
दच्छिण बिजैपाल नृप आँहीं। चंद्रसेन अधिपति किय ताहीं ॥
त्रिदिश राज्य तुमरे घर आवा। पश्चिम राज्य यतन ठहरावा ॥१९६॥
जो राजा संतोषी होई। तेहि कर नाम न जानै कोई ॥
चारहु चक्र राज्य अब कीजै। नाम प्रबल चक्रवै धरीजै ॥१९७॥
जो मैं राज्य रजायस पाऊँ। पश्चिम दिशहिं बिजै कर आऊँ ॥
पश्चिम फेर रजायस कीजे। दल रघुबीर संग कर दीजै ॥१९८॥

दिस पश्चिम जीतहिं नर सोई । युग युग नाम अमर कलि होई ॥
तातें और वियौ नहि काजू । चक्रवर्ती सौमेसुर राजू ॥१६६॥

( दोहा )

सूर मंत्र सौमेस सुनि, बाढ़ौ अति आनंद ॥
सत सुपुत्र जिय जान कर, मानौ पूरन चंद ॥२००॥
बोल राय रघुवीर कहँ, नागर चतुर सुजान ॥
अति आदर हित सों, दये सेना पति के पान ॥२०१॥
दिस पश्चिम दिग्विजय कहँ, राज रजायसु कीन ।
सूर सुभट चतुरंग ले, अखिल संग कर लीन ॥२०२॥
सहस नाग रथ द्वै सहस, हैवर बीस हजार ।
एक लच्च पयदल वली, सकुचि सेस तेहिं वार ॥२०३॥

( चौपही )

चलि रघुबीर पाय पति पाना । भई बंब अरु कीन पयाना ॥
प्रथमहिं जीत इन्द्रपथ देशा । बद्रि नाम तहँ कहत नरेशा ॥२०४॥
लवपुर कोट शल्य जहँ वंदन । लिय कुसाव मेहर गढ़ नंदन ॥
ठट्टा भक्खर अरु मुलताना । सिंधवार फेरी नृप आना ॥२०५॥
किय दिग्विजय सौमखट माहीं । पश्चिम शत्रु रह्यौ कोउ नाहीं ॥२०६॥

( दोहा )

सिंधु सरित पर्य्यन्त सब, धरिय धर्म धर पाय ।
सूर भूमि जिय जानिकै, पार न उतरौ जाय ॥२०७॥

( चौपही )

सब दिश फेरि सौम नृप आना । सेस सीस आयसु परमाना ॥
भरहि दंड अरु मानहिं सेवा । पूजहि मनो अमरपति देवा ॥२०८॥
सकल संग अनुचर ह्वै आये । विविध रसाल पेस कलि ल्याये ॥
हय कच्छी अरबी अरु ताजी । साँवकरन अरु लीन सिराजी ॥२०९॥
विविधि बसन पाटंबर लीने । तेजरताय जाय नहि चीन्हे ॥
राय आय रघुवीर सुजाना । नृप बहु भाँति कीन सन्माना ॥२१०॥

तेहि छिन भूप मिले जे कोई। सिरधर चरन रहे गहि ढोई ॥
सब कह नृपति मिले उर लाई। राज्य रीति रस दई बढ़ाई ॥२११॥
द्विजन आपु आरंभ करावा। नाम सौम चक्रवै धरावा ॥
सेवहिं जाय भूप दिस चारी। रहहिं मगन अब आयसु कारी ॥२१२॥
दान पुन्य सब जग्य अचारा। पुत्र पौत्र अरु लाड दुलारा ॥
बहु विधि सुख संयोग नरेशा। इन्द्र लोक वैरागर देशा ॥२१३॥
गृह कमला कमलावति रानी। पुत्र वधू निधि सिद्धि बखानी ॥
सूर सिंह पितु प्रान अधारा। सूर तेज अरु रूप अपारा ॥२१४॥
दान खर्ग विधि आदर पूरा। धरनी सूर सत्य व्रिय सूरा ॥२१५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयं वैरागर खंडे
दिग्विजय वर्ननो नाम एकादशमोध्यायः ॥११॥

(दोहा)

सूर सिंह पितु छत्र सिर, राज छत्र विय सीस।
धन यौवन लच्छण सुयश, पूरन फलत असीस ॥२१६॥

(चौपही)

सूर सिंह वैरागर माही। राजत तात छत्र सिर छाँही ॥
दया सिंधु कमलावति माता। मातु हेतु जग महँ विख्याता॥२१७॥
सुत सुख भोग सरस रस भोगू। मन रंजन युवती संजोगू ॥
द्वादस बरष बसत वैरागर। दिन दिन सुधमन वंछित आगर॥२१८॥
सुख संतान बहे विधि कीन्हा। मनवांछित फल सौमहिं दीन्हा॥
द्वै पूत रंभावति जाये। अश्वनि कुँवर मनो कलि आये॥२१६॥
इक सुत राज सिंघ छित छाँजा। तेहि प्रताप पुरहूत विराजा ॥
कलपलता पुनि जायौ पूतू। जेहि प्रसाद कीन्हौं पुरहूतू ॥२२०॥
तासु नाम सुन नरसिंघ भाना। मानों भान उदै जग जाना ॥
कियौ सौम नृप मंगलचारा। बहुविधि दान दियौ तेहि वारा॥२२१॥
गीत नाद वादित्र बधाई। उत्सव अधिक बरन नहिं जाई॥
सूर सिंह हय हाटक दीने। याचक जगत अयाचक कीने ॥२२२॥
अलख नगर पहिरावन दीने। कमलावती बधाई कीने ॥
रंभावति दिय अभरन हीरा। कलपलता पाटंबर चीरा ॥२२३॥

एक एक कर जन्म निनारा। बरनि न जाय बढ़ै बिस्तारा॥
श्रोता सुनत विलग जिन मानो। निज दूषन मो सिरपर आनो॥२२४॥

( दोहा )

रंभावति सुत दै बली, राजसिंह प्रथिराज।
कलपलता सुत कलपद्रुम, नरसिंह भानु विराज॥२२५॥
चंद्र सेन सब तें बडे, जे चंपावति देश।
गुरु स्वरूप पेखे नही, नैनहि सोम नरेश॥२२६॥
चार पुत्र चतुरंग अति, जगत विदित दिशि चार।
होय सफल संतान जेहि, तेहि प्रसन्न त्रिपुरारि॥२२७॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पुहुकर विरचितेयं वैरागर खडे
संतान वर्ननो नाम द्वादसमोध्यायः॥१२॥

( चौपही )

यहि विधि सूरसेन नृपराजू। बरसें तीसी कीन युवराजू॥
पिता राज सिर छत्र सुहावा। दुख चिंता कछु अंत न आवा॥२२८॥
जगत अनित्य जानि सब कोई। स्वर नर नाग नहीं थिर कोई॥
सौमेश्वर स्वर लोक सिधारे। इंद्र लोक देखन पगु धारे॥२२९॥
सूरसेन मन धीरजु कीन्हा। साहस युक्त सोच नहि चीन्हा॥
मंत्री नेगी द्विज वर आये। सूर सिंहासन लै वैठाये॥२३०॥
राजतिलक सिर छत्र धराई। चार दिसा महँ आन फिराई॥
केवल राज्य धर्म सन काजू। मानौ वियौ धर्म कौ राजू॥२३१॥
प्रजा चेम रचा अति होई। एकहि अंग दुखी नहि कोई॥
आश्रम धर्म वर्ण प्रति पाला। दान पुण्य अरु यज्ञ अचारा॥२३२॥

( छंद पद्धरी )

बैठियो राज जब सूर सेन। रसरास सरस सुख सुग्गहि देन॥
युग सत्य रीति कर करहिं राज। वहु भाँति यज्ञ आचार साज॥२३३॥
द्विज रहत नेम खट कर्म कर्म। नृप अन्न पाय पालंत धर्म॥
वरषंत मेह अनहद सुकाल। वहु फलित भूमि फल तरु रसाल॥२३४॥

गृह गृहनि होम मंगल अचार। कारज विवाह पुत्रावतार॥
वहु भाँति वृद्ध छवि नहिंन दीस॥ वय वृद्ध सुखित जंपहि असीस॥२३५॥
मद लोभ मोह अरु क्रोध काम। राखिय न देव नृप आन जाम॥
अरछिन्न पहुमि थिर रह न कोय। इन्द्रीय दवनकर भक्ति होय॥२३६॥
वहु भोग धर्म पतनीन संग। सव सुखित अंग नहिं सोग संग॥
ना करत भोग मति योग आनि। वृत्तन गृहस्त वैराग मानि॥२३७॥
राजाधिराज संसार सूर। जस जासु सकल महि रहिय पूर॥
इक छत्र राज्य वहु काल कीन। नित नितहि कीर्ति सोभत नवीन॥२३८॥

( दोहा )

सूरसिंह वहि विधि कियौ, वरष तीस लग राजु।
प्रजा सकल सुख मानहीं, मनहु प्रथम दिन आजु॥२३६॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचितेय वैरागर खंडे
राज्य वर्ननोनाम त्रयोदसमोध्यायः॥१३॥

( चौपही )

कथा सँछेपे कहत तेहि पाछें। विजेपाल राजाहि विगाछें॥
चंद्रसेन सिर तिलक करावा। सकल लोग मिल माथानावा॥२४०॥
चंद्रसेन कह सौंपो राजू। नेगी सुमति चलावे काजू॥
भई चाह वैरागर माहीं। पहुमी नृपति रहौ कोउ नाहीं॥२४१॥
पिता शोक रंभावति रानी। रोवहिं कमलवदन कुम्हलानी॥
वहुरि समझ मन धीरज कीन्हा। जगत अनित्य जानकर चीन्हा॥२४२॥
कलप कंत सन भाषत वैना। तपत चंद दरसन विन नैना॥
ताते विनती सुनिये मोरी। मानों नाथ आव मैं चेरी॥२४३॥
चंद सेन कहँ वोल पठावौ। राज्य तिलक सिर आपु करावौ॥
तव लगि सुमति चलावै काजू। जवलगि चंद्र चलहिं लै राजू॥२४४॥
जेहि दिन ते विछुरौ उहि वारा। वहुरि मिल्यौ नहि प्रान अधारा॥
अवकी वार मिलै जौ आई। तनमन करौ निछावर माई॥२४५॥
भ्राता सकल होंहि इक ठाऊँ। प्यासे नैन दरस अघवाऊँ॥
सुनत सूर रंभावति वोली। चंद्र सेन कह पठिए वोली॥२४६॥

आवैं बेगु गहरु जनि लावैं। तात मात कों दरस दिखावैं ॥
दरस हेतु तरसत हैं नैना। श्रवनन आनि सुनावे वैना ॥२४७॥
देखौ आय नवल नव भ्राता। मानहु मोद नैन जल जाता ॥
सुनत चंद पितु मातु हँकरा। अति उताल आये तेहिवारा ॥२४८॥
मिले आय अति आँनद पागे। चार मास तेहि मारग लागे ॥
तबहिं तजी सिसु बालक मोरे। अब बिलोक नवयौवन जोरे ॥२४९॥
रंभा रीति जन्म पुनि कीन्हा। नर नारिन पहिरावन दीन्हा ॥
चरननि परे सकल लघु भाई। अतिआनँद सुखबरनि न जाई॥२५०॥
चार पुत्र संग दंपति सोहै। सरस रूप गुण त्रिभुवन मोहै ॥
चक्रवती चारिहु चकराजा। मानो सूर्य पहुमि परछाजा ॥२५१॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयं वैरागर खडे
चंद्र दर्शनोनाम चतुर्दसमोध्यायः ॥ १४ ॥

( चौपही )

बसत सूर बैरागर माहीं। परम निचिंत चिंत कछु नाहीं ॥
चारौ पुत्र संग चतुरंगा। मनो ज्ञान सनकादिक संगा ॥२५२॥
सब सुख भोग पुत्र संयोगू। धन्य जन्म माने सब लोगू ॥
विब गृहनी जप तप हित पाई। पदमा पारवती जिमि गाई ॥२५३॥
यहि विधि सो सुख काल गँवावा। सो विस्तार बरन नहिं आवा ॥
बहुत गीत अरु नाद प्रकारा। होंहिं अमृत धुनि मंगल चारा ॥२५४॥
बहु गुन सब गुन आगर आवहिं। दूर देस तें सुनि यस धावहिं ॥
नट नटवा गायन बहु गुनी। रहे विमोह तान जिन सुनी ॥२५५॥
करनाटक सिंघल दिस वासा। अति अपार विद्या तिन पासा ॥
दिस दच्छिण तें गुनि जन आये। नट विद्या बहु खेलन धाये ॥२५६॥

( दोहा )

आये नट करनाट के, कर विद्या बहु ठाट।
देखन बैठे सूर नृप, भा सिंगारे भाट ॥२५७॥
चार पुत्र चतुरंग दल, रति पति पूत कुमार।
राज पुत्र सावंत सब, बैठे सभा सिंगार ॥२५८॥

चिंतामणि गुरु राज गुरु, ज्ञान उदधि गंभीर ।
ते परसोतम सत्त सहि, बैठे भुव पति तीर ॥२५९॥

( चौपाई )

नट नाटक जब औसर आवा । देस लोग सब देखन धावा ॥
आये सकल देस के लोगा । अवलोकन कौतुक संयोगा ॥२६०॥
बहु अभिलाषत प्रजा बहु कीनी । सूर सेन नृप आयसु दीनी ॥
बाइस खंड महल जे आंही । कनक कलस है ऊपर ताहीं ॥२६१॥
जबहि नृपति नट कौतुक होई । भर सब खंड चढे सब कोई ॥
सुख पूर्वक सब कौतुक देखहि । जीवन जन्म सफल कर लेखहि ॥२६२॥
जब नट रंगभूमि पर आये । आय ढोल मिरदंग बजाये ॥
बाजत तूर भेरि सहनाई । घन निसांन नौबत बहराई ॥२६३॥
घटि बढि खंड खंड पर चढे । मन अभिलाख सबन के बढे ॥
ऊपर खंड भीर बहु भई । तेहि पर लोल चित्त कछु ठई ॥२६४॥
कहिब कछुक उत्तर तुम आवहु । हम सम आय गहरु जिन लावहु ॥
ऊपर खंड बहुत है भीरा । हम चिंता चित होत अधीरा ॥२६५॥
इहि विधि बार बार हँकराये । जितने हते और पुनि आये ॥
तब मिल द्वै मिल भये मिल दोऊ । तेहि तर खंड दुचित भे ओऊ ॥२६६॥
पुनि पुनि आपु बराबर बोले । तिन ते उत्तर वहाँ ते डोले ॥२६७॥

( दोहा )

इहि विधि खंड इकीस लग, उतर उतर सब आव ।
सकल खंड सम सम भये, सो कछु जानि न जाय ॥२६८॥
मिले हते केहि विधि चढे, खंड खंड वहि भांति ।
पुनि केहि विधि सम सम भये, बाइस बाइस पांति ॥२६९॥
जो जाने लीलावती, के सरस्वती प्रसाद ।
सो पावै या भेद को, नातर कठिन विवाद ॥२७०॥

( अथ अक दोहा )

वेद वेद अरु अग्नि सुर, अनिल इन्दु रस वेद ।
यह संज्ञा सब जनन की, तब औरई न भेद ॥२७१॥

४६१३७३४४

( छप्पय )

प्रथम खंड रस उदधि वान वसुवेद गगन ससि ।

१०४८५७६६

वहुर वेद रस सिद्धि अग्नि स्वर वेद तिथि वारवसि ॥

७१५४७३७६४

त्रितिथि सिद्धि विव गगन वांन गुन-गनत पुरानहिं ।

३५००७१५

अंवर वसु पुनि सूर भाष रस निधि ससि जानहिं ॥

१६६७२८०

रस इन्दु कला गुन गनय द्रग यहि विचार ए जन वढिय ।

२३१६१६

पुनि वेद सिद्धि गुन जुग्गनिय सुगनन श्रेनि तापर चढिय ॥२७२॥

६४६८४

दिग्गज रस सुर गगन सिद्धि अरु सुन्नैन गनि ।

२०८०७६१०

वहुर सुन्नरस नाद सिद्धि वसु गगन अप्छ भनि ॥

२०८८६६०

दरसन पांडव गगन अग्नि निधि और अनुक्रम ।

६३०५६

वेद सुन्न ससिवान अंक पुनि तीन पृथ क्रम ॥

६१०४

वेद सुंन इन्दरस अनि कर शेष अंक उह विधि करहु ।

२३६१०४

पुनि गगन वेदरस भाव गनि पहुकर क्रमतें जिन टरहु ॥२७३॥

६४०

रस निधि वसु रस वरनि और पूरव क्रम दीजे ।

६८९६

बहुरि वेद द्रग वांन जलधि क्रम फेर गनिज्जे ॥

७५२४

वरठि उभै रस वेद चार अकन क्रम ठानहु ।

३६२

गगन नैन ससि समुकि वहुर क्रम ही परवानहु ॥
१२०
सर अनल इन्दु पुनि कम धरहु वेद ससि वहुरि क्रम ।
१४४१२६
वसु इन्दु वेद क्रम तासु पर गगन वान वसु वहुरि सम ॥२७४॥
१५०४१८
ससि पंडव अरु इन्दु वहुर ताही क्रम जांनहु ।
१५१
सप्त अंक मधि सेस ताहि पूरन क्रम मानहु ॥
उच्च खंड गुन गन अनिल अरु वेद वखानिय ।
४३०३
वहुर नाथ ससि वेद सेद आरोहन मानिय ।
४१६
वहुरि उतर जव सम भये, तासु अंक यहि विधिकरिय ।
द्रगवांन इन्दु सुर निधि गगन वहुर पच्छ कर विस्थरिय ॥२७५॥
२०९७१५२

(चौपाई)

नट विद्या वे खेलन लागे । सकल लोग कौतुक अनुरागे ॥
नागरि नारि नटीं वन आई । मनों इन्द्र अप्छरि छवि छाई ॥२७६॥
गुन सरूप अरु जोवन वारी । रूप स्वरूप पिया पिय प्यारी ॥
नृत्यहि तान गांन गुन गावैं । रसिकन मन रस रीति वढावैं ॥२७७॥
अति अपार विद्या दिखराई । सो कवि मुख कर वरनि न जाई ॥
वहुरि रूप माया विस्तारी । नट विद्या कर वहुत अपारी ॥२७८॥
प्रथमहि अग्नि कुंड उपजावा । अग्नि ज्वाल सव जग पर छावा ॥
देखत थकित भये सव कोई । अग्नि दाह क्यों उवरन होई ॥२७९॥
वहुर मेघ उन्नति ह्वै आये । अग्नि ज्वाल जल मेघ वुझाये ॥
वोले दादुर कुहकैं मोरा । चहुँ दिस ते गरजें घन घोरा ॥२८०॥
खोरिन सर सर पूरत पानी । विन वरषा वरखा ऋतु आनी ॥
नट मल्लार मधुर ध्वनि गाई । मेघ मलार तान उपजाई ॥२८१॥

बहुरि पवन अति चलेउ प्रचंडा। भैं बादर सब खंड विहंडा॥
अंबर अवनि असल भे दोऊ। बहुरि सुभेद न जानिय कोऊ॥२८२॥
मति सबकी तिहि ठाँव भुलानी। बहुरि अग्नि नहिं देखेउ पानी॥
नट बिद्या अति आय अपारा। वीज मंत्र बहु बिधि बिस्तारा॥२८३॥
बहुरि उच्च इक महल उचावा। ताहि चहूँ दिस बाग लगावा॥
नाना सरवर अरु अमराई। अनिवन फूल बरनि नहिं जाई॥२८४॥
सरवर एक रचिव गंभीरा। पारि पखान रचे चहुं तीरा॥
कमल कुमुद फूले तेहि माहीं। चकवा चकई खेल कराहीं॥२८५॥
मंदिर मांझें सभा सँवारी। विविधि बिछावन तहाँ निवारी॥
आनि फूल फल आगे धरे। कछुवक राते कछुवक हरे॥२८६॥
राजा देख परम सुख पायौ। विधिविधान नट और न आयौ॥
चिंता मणि सों करौ बढाई। वहि नट विद्या बहुत दिखाई॥२८७॥

( दोहा )

नट नाटक नैननि निरख, निरखन हिये हुलास।
बहुत दान नट कौ दयौ, उद्यम कृत्य प्रकास॥२८८॥

( चौपाई )

रीझ दान दीनौ नृप ताही। जिहि बिधि राज रीझ फल आही॥२८९॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरंचिते वैरागर खंडे
नटनाटक वर्ननोनाम पचदसोध्यायः॥ १५॥

( दोहा )

चिंतामणि इम उच्चरै, मै देखौ नट नाच।
बहि विद्या सब झूठ कर, कर दिखरायौ साँच॥२९०॥
पुरुष प्रकृति शिव शक्ति मन, मात पिता जिय जान।
गुन माया नटवत रच्यौ, सो नट नटी वखान॥२९१॥

( चौपाई )

गुनी एक नट नायक आवा। अद्भुत चरित आनि प्रगटावा॥
नैनानि कोई न देखहि ताही। जानै नहीं कौन यह आही॥२९२॥
जब आरंभ कला कर कीन्हा। तव लोगन नटनायक चीन्हा॥
तिहि कारन गुन यह प्रगटावा। सतरज तम कर ताहि सुभावा॥२९३॥

निगुन लाय कर डोर सवाँरी। बरत बाँध सब जगत पसारी ॥
एकहि डोर सकल जग बाँधा। सत्यसुभाय सकल गुन साँधा॥२६४॥
रज राजस तामस सम देखा। सगुन रूप गुन कियो विसेषा ॥
प्रगटी तहाँ नटी नव नारी। अपने कर करतार सवाँरी ॥२६५॥
रूप रेख अँग अँग अति सोही। सुर नर यच्छ रहे मन मोही ॥
अति सुंदर गुरु रूप अनूपा। जेहि देखत सोहै सुर भूपा ॥२६६॥

( दोहा )

पहुकर ईस विरंचि रचि, मे देखे सब मोंहि।
तिय माया मन मोहनी, नाहि रहे मन मोहि ॥२६७॥

( चौपाई )

तब खुल सगुन केर किवारा[1]। विद्या काजे प्रगट उघारा ॥
तर हरि केलि पला धरि राखा। धरती रसा नाम जु भाषा ॥२६८॥
ऊपर पला उतंग उठावा। तेहि कर नाम सार ठहरावा ॥
जसतर हर तस ऊपर देखा। बहुर न नैंन टिपारा लेखा ॥२६९॥
विना खंम्ह विन ईंट पखाना। महल कीन जनु तान विताना॥
आपु राव अरु आपुहि राजा। चौदह खंड महल उनि साजा॥३००॥
सप्त खंड धवलग्न न होई। संध्या दून कियौ उन सोई ॥
धरे वार वित्र दीप अटारी। तर हर सुवन होहि उजयारी ॥३०१॥

( दोहा )

इती शक्ति रसना नहीं, वरनि बखानों ताहि।
जल ऊपर मंदिर रच्यौ, यह अद्भुत गति आहि ॥३०२॥

( चौपाई )

तब नट नटी बैठ इक ठाँई। ले माटी मूरति उपजाई ॥
जलमन खींच बयार बढावे। अग्नि तापकर ताहि चढावै ॥३०३॥
गगन शब्द कर बोलत झाँई। यहिविधिमूरति बहुत बनाई ॥
बहु विधि रूप बरनि नहि आवै। कौतुक होय विलोकत भावै ॥३०४॥
आपुन कीन खेल विस्तारा। आपुहि आपु सकौ हंकारा ॥
देखहि सुनहिं चलहि अरु हेरहि। खाय पियहि अरु विधिविधि टेरहि॥३०५॥

---

१–गुरु। २. टिवारा

मूरति रूप लच्छ चौरासी । तेहि कर नाम आपु अविनासी ॥
देखत हेतु सकल उपजाहीं । उभय बहुर विनासै छिनमाहीं ॥२०६॥
सो विचार सब कहै निनारा । कौन विनासन भंजन हारा ॥
कौन जियै अरु को पुनि मरही । जीवन कौन परब्रह्म करही ॥२०७॥
सो मुहि गुरु यहि भाँति बताई । अरु गुनियन यह बहु विधि गाई ॥
एकै काल अलख करतारा । जेहिकी जीत होय उजियारा ॥२०८॥
पारब्रह्म परमेश्वर स्वामी । सब व्यापक हरि अंतरयामी ॥
सकल विस्व तेहिकर विस्तारा । एक जोति सब घट उजियारा ॥२०९॥
जेहि सु इन्द उद्दित आकासा । तेही शक्ति पुरष कर वासा ॥
फिर घर मध्य चंद नहि देखा । सो गुनियन जो बूझहि लेखा ॥२१०॥
हौ बूझौ पंडित तुव पासा । चंद नाम किधौ घट करवासा ॥
सबही में सबते जु नियारा । खोजे पावहिं खोजन हारा ॥२११॥

( दोहा )

इक घट गंगा जल भरौ, एक भरौ जल और ।
प्रतिभासै सम दुहन में, चंद तजै नहि ठौर ॥२१२॥
सब ऊपर इक धाम है, जानत सकल जहान ।
पूरब पच्छिम चार दिस, सीच मंत्र सध्यान ॥२१३॥
पर ब्रह्म परमात्मा, जो गुरु दियौ बताय ।
अलख अगोचर प्रगट है, सब घट रहौ समाय ॥२१४॥

( चौपही )

बहुरि कहौ मन माहिं विचारी । केहि ठाँ रहे कौन उनहारी ॥
निर्गुन सर्गुन सिरजन हारा । एक देह बहु भांति सवांरा ॥२१५॥
पुरुष प्रकृति सिव सक्ति कहावे । दंपति रूप जगत उपजावे ॥
पंच तत्व कर जगत उपावा । पंच नाम परमेश्वर गावा ॥२१६॥
रुधिर रेत पाँचो मिल होई । यहि कर भेद न जानै कोई ॥
माता अंस रुधिर तन जाही । अरु पितु अंस वीर्य्य कह ताही ॥२१७॥
रुधिर रेत कर पिंड सँवारा । सो तो जगत विदित संसारा ॥
मरन भयौ इक द्वैकर नासा । अरु सब वस्तु रहे तन पासा ॥२१८॥
रुधिर रेत कर जगत उपावे । वहै प्रान संजीवन कहावे ॥
जो भर जन्म ज्ञान गुन लेखौ । विना पंच कछु और न देखो ॥२१९॥

जहाँ पंच एकते ह्वै जाही। ज्योति रूप ठहरावै ताही॥
पवन तेज रसना जल काना। गगन वाय नासिका बखाना॥३२०॥
गगन पवन मिल बोलहि बोला। बोलहि घन अरु दुन्दुभि डोला॥
जेहि रस वस्स सु पृथ्वी काया। इन्द्री प्रकृति बखानत माया॥३२१॥
तेहि गुन पुरष मिले संघाती। जग उपजाव पँचकर भाँती॥
पंच विवाहित पंचहु दासी। पंचहु नास पंच अविनासी॥३२२॥
विनसें अंस लेहि तब बाँटी। मिल प्रजंत माटी में माटी॥३२३॥

(दोहा)

परमेश्वर तह पंच है, जगत विदित यह काज।
निगम दिया नर कर लियें, आपुन खोजत जात॥३२४॥

(चौपही)

सुख दुख भोग बुद्धि अरु भोगू। केहि गुन पाप पुन्य अरु रोगू॥
सो विचार सब कहैं अगाऊ। कर्म काल अरु कहत स्वभाऊ॥३२५॥
तिनहू केर भेद है न्यारा। सामादिक उपजै संसारा॥
खेत जोत रितु ऊपर बीजै। उपजै अवस बीज बिनु छीजै॥३२६॥
कालहि पाय वास सब केरा। जोउ पावे विनसे यहि वेरा॥
सकल काल सब परत न साही। गिरवर तरवर समुद सुखाही॥३२७॥
सुख दुख बुद्धि कर्म दुख होई। कर्म प्रधान कहै सब कोई॥
जामतु बीज आय वहि जैसा। निसंदेह उपजै वह तैसा॥३२८॥
जगत अनित्य कर्म ही नीरा। केवल विमल नामु हर हीरा॥
कामिनि कनक और हय हाथी। ये तौ नही संग के साथी॥३२९॥
सुकृत संग और नहिं कोई। क्यों नहि भजत हरी तिहिंसोई॥
ममता चित्त करो जनि कोई। है प्रभु और न दूजौ होई॥३३०॥
काम क्रोध मद लोभ अपारा। उहि तौ अग्नि रूप संसारा॥
तृष्णा तन ते न्यारी नाही। ज्यों वड्वानल सागर माहो॥३३१॥
धनही धनते ज्वाला होई। बुझत जबहि जब सोवनु होई॥३३२॥

(दोहा)

चिंतामणि इम उच्चरै, एसौ यह संसार।
विष्णु भक्ति वैराग युत, ताहि न लावहु वार॥३३३॥

( चौपही )

मुक्ति संग है और न कोई । क्यों न भजे हरि से हितु होई ॥
कलि प्रतिपाल बाल सुत दारा । मनो ग्वाल गोचारन हारा ॥३३४॥
सुनत सूर उपज्यौ वैरागा । विष्णु भक्ति बाढौ अनुरागा ॥
सब संपति तह त्रिन कर जानी । विष्णु भक्ति निश्चै उर आनी ॥३३५॥
चारिहु सुतन चार दिस राजू । दीनो बाँटि सवन सब साजू ॥
चंद्र सेन कह दच्छिण दीन्हा । जे नृप विजैपाल की चीन्हा ॥३३६॥
गुह्यग सहित उदधि के पारा । दीनो सहित अर्थ भंडारा ॥
पूरब दिस पितु पूरब राजू । राज्य सिंह कह दीनो काजू ॥३३७॥
उपजहिं जहाँ अमोलिक हीरा । सुंडाहल उपजहिं बलवीरा ॥
पृथ्वीराज दिस पश्चिम पाई । तुरंग बहुत उपजै अधिकाई ॥३३८॥
पाटंवर उपजहिं जर तारा । दिल्लिय नैरि तहाँ अधिकारा ॥
कलपलता सुत नरसिंह भाना । उत्तर देस भई तेहि आना ॥३३९॥
मया देस पुर नगर कुमायूँ । पर्वत राज्य दीन चित चाऊ ॥
धुर भटंत नेपाल के दारा । खाँनि अठारह जहाँ प्रकारा ॥३४०॥
आपुन कीन बहुत सिव ध्याना । उभय घरनि मिलि कियौ पयाना॥
लियौ भाट चिंतामणि संगा । विष्णु भक्ति दीनी जिन अंगा ॥३४१॥
कछू दास अरु दासी लीने । दुजन ग्राम सासनि कर दीने ॥
कासी वास कहिय मति सोई । धन्य धन्य भाषै सबु कोई ॥३४२॥
सुंदर सूर सुबुद्धि उदारा । गोरख ज्ञान सनिक अवतारा ॥
कासीवास कियौ तिन जाई । इतनी कथा सुकवि गुन गाई ॥३४३॥

( दोहा )

कवि पहुकर वरननि कियौ, भवरस कथा प्रकार ।
सुनत श्रवन सुख पायहैं, सुकवि सवारन हार ॥३४४॥

( चौपही )

चला जात पृथ्वी संसारा । विनसत देह न लागे वारा ॥
सुरनर नाग राय अरु राने । जे उपजे ते सबै समाने ॥३४५॥
आगे पाछे सबै समाहीं । हमही बैठे मारग माहीं ॥
अच्छिर चार कहै इहि ठाऊँ । रहै हमार प्रथी मे नाऊँ ॥३४६॥

जो नर सुजन आनि कलि होई । सुने सम्हार करैं सब कोई ॥
औ संसार जो आय अपारा । विवरे बूझत बूझन हारा ॥२४७॥
रामनाम कौ कीजे भेरा । केवट सुकृत संग सब केरा ॥
जो राँचे पर धन पर दारा । सेवत बूढे कारी धारा ॥२४८॥
सतगुरु गुन यह मोह बताई । केवल कृस्न नाम भजि भाई ॥
गनिका गीध अजामिल तारे । रामनाम जे सबै उधारे ॥२४९॥

( दोहा )

पहुकर वेद पुरान मिल, कीनो यही विचार ।
यहि संसार असार मे, राम नाम है सार ॥२५०॥
वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरिनाम ।
प्रीत जोत जिय जगमगै, हरै त्रिविधि तन तामु ॥२५१॥
सत संगति सत बुद्धि उर, विव घरनी संग लाय ।
ज्ञान वान प्रस्थान करि, तजै विषै सुखपाय ॥२५२॥
तातेँ तत्व लहै सुकर, सूझ देख मन माँहि ।
कोई तेरे काम नहिं, तू काहू कौ नाहिं ॥२५३॥
परधन पर दारा रहित, पर पीरहिं मन लाय ।
काम क्रोध मद लोभ तज, विजय निसान बजाय ॥२५४॥
पहुकर भव सागर गरुव, निपट गहिर गंभीर ।
राम नाम नौका चढे, हरिजन लागैं तीर ॥२५५॥

इति श्री रसरतन काव्ये कवि पहुकर विरचितेयं वैरागर षंडे ज्ञान वैराग्य सत्ता राज्य तत्व वर्णनो नाम षोडसमोध्यायः ॥१६॥

॥ इति शुभम् ॥

संवत् १६६१ अगहन मासे कृष्ण पक्षे तिथि चतुर्थी ॥४॥ रविवासरे— श्रीमान् महाराज कोमार श्री दिवान सतरजीतजू देवकी अज्ञानुसार

हस्ताक्षर—
कुँवर कन्हैयाजू
उपनाम (वलभद्र) कवि

# रसबेलि

विद्वत्कुलमनोभृङ्गरसव्यासङ्गहेतवे

—भानुदत्त

रसवेलि बरनि पुहकर सुकवि गिरा फूल आँनद लसत ।
अलिगण सुमत्त वर जग सुहरसु ये प्रसिद्ध जुग जुग हँसत ॥

—पुहकर

# रसबेलि

## ( मुग्धा )

नवल नवोढ़ा अब लाजहिं लपेट लीनो,
काम करतूति नाहिं रसै जाके अंग मैं।
ताहि तजि अतुराई चातुरी सों वस करै,
धीरे धीरे धीर ह्वैहैं धरै चित्त संग मैं॥
वाही की प्रतीति वढ़ै वाकी रुचि बात कहै,
मनु कर लियै रहै आवै जो अनंग मैं।
पुहकर त्रिभुवन नाथ कवि चित्र पिय,
ऐसे मिलि जाहु जैसे मिलै जलु रग मैं॥१॥

## ( पराधीन )

बातनि लगाई सौंह षाई सँग ल्याई करि,
स्वाइवै कौ सेज पर साथ लै उलारी है।
नैक निधरक भई त्यौंही नींद आइ गई,
उठी हरबराइ सखियन की विचारी है॥
पुहकर कहै पास पौढ़ी पिय आविजानि,
चकित असित भय चित्त भई भारी है।
साहसी सकसकाइ सकै न उसास लेइ,
चाहि रही भुराइ कै ससेकी अध्यारी है॥२॥

## ( विसुधरति नवोढ़ा )

नवला नव जोवन लाज प्रधान,
प्रकास प्रकास अवेजुवगी है।
कवि पुहकर श्री मुरली धर जू,
भरि नैन विलोकित भौ सी भगी है॥

धीर धरौ दिन द्वै वलि जाऊँ,
हिलाइ लियै हित ही सौं पगी है।
रतिया न रचै जैसे और तिया,
वतिया न लगै छतिया न लगी है॥४॥

## ( अंकुरित यौवना )

मन ही मन मैं अभिलाष वढ़ै,
जौ अलीकुल लीजुक वास वसी सी।
कवि पुहकर श्री मुरलीधर के,
हित मैं दरसी सुख की सरसी सी॥
निसि अंत भयौ विनु भानु उदै,
उनमान मनौ छिति छाँह लसी सी।
वाल दसा मधि जोवन को रँग,
यौं झलकै जनु जावक सीसी॥५॥

## ( अज्ञात यौवना )

लाज वढी मुसक्याति सकाति,
गही कछु नैननि चंचलताई।
वक्र भई विवि भौंहे कछूक,
कछू कटियौ छुटि कै घटि आई॥
जानै नही यतौ जोवनु आगम,
यौं उपमा कवि पुहकर पाई।
ज्यौं जल मै ससि कौ प्रतिवींवु,
सु यौं तन मै झलकै तरुनाई॥६॥

## ( मध्या )

चाहै चित्र चौपरि तो खेलिवे कौ चारुमुखी,
लोचननि चपक पजीर अरुझाई कै।
श्रवननि सुनत सवनि पास पीय गुन,
कहिवे कौ मानौ गति रसना भुलाइ कै॥
पुहकर कहै पिय प्यारीको परस भावै,
रति भव भरी है अलप रुचि आइ कै।
कामिनी लजीली सरसीली सव रूप गुन,
मध्य को सुमध्या वस सोहति सुभाइ कै॥८॥

( पौढ़ा स्वकीया )

फूलनि की सेज स्याम रोहिनी रवन सुखी,
राजति रास कस गमना घन दामिनी।
काम केलि करत कुमार दोउ काम रूप,
जागत जगावत जुन्हाई जीति जामिनी॥
पुहकर पियहिं उरज वर उर लावै,
बार बार मानिनी रिझावै गज गामिनी।
कोकिल के कल कोक कला मे प्रवीन प्यारी,
कुहुकि कुहकि उठै कोक कैसी. कामिनी॥९॥

( पौढ़ा परकीया )

बोलु थपौ पिय प्रेम निरन्तर,
लच्छिन लच्छिन ते अधिकानै।
मृदु मंडित हास हँसे दुति यौं,
तहँ साध मयी तुम ही सिषि जानै॥
फेरि कही समुझौ मन मै,
मन तौ मन मोहन हाथ विकानै।
कवि पुहकर नैन दलाल भये,
तिहि काल दियौ सरवैन वयानै॥१०॥

( गुप्तहरन )

हौं तौ हँसि बोलति न वीर हूँ सौ मेरी वीर,
काहू के न तीर वैठौं सखिया न भावहीं।
नीरौ नभ रैनि जाति बीरौ न दुहावति हौं,
और जे अहीरी जाहि परिक दुहावहीं॥
सौहै न पत्याति कोऊ साँच कौ न मानतु है,
पुहकर मारि मेरौ मन मुरि जावहीं।
कान न सुनै री कहूँ कानन रहत कान्ह,
ऐतौ दुखहाई मोहि दोपन लगावहीं॥११॥

( स्वयं दूतिका )

माखन दुराइ षाइ सापु न तनकु तिन्है,
वोरहू के चोर देषौ काम गिरधारी पै।

चोरि चोरि लीनें है सुदीनें वहु जवननि,
अव निसि फूल लेत फूल फुलवारी के ॥
आपु तो वै जागती हैं वाटिका अकेली दुरि,
देषौ तुम कैसे लैहौ मेरी रखवारी के।
पुहकर प्राननाथ सुनत सुजान राइ,
चातुरी के वैन वृषभानु की कुमारी के ॥१३॥

## ( धीरा )

कहा भयौ प्रीतम की पतिया,
वतिया सुख ही सुख की विसराये।
कहा भयौ रोषु रुखाई धरें,
सव अंगनु सील सँकोच जनायें ॥
कवि पुहकर प्रेम पगी अँखियाँ,
सखियाँ मिस कै सव देति वताये।
पूरन ह्वै प्रगट्यौ गुन अंगनि,
नागरी नेह दुरें न दुराये ॥१४॥

## ( चिंतासच )

वेलि मुरि पात[1] मुर लाति है कनक वेलि,
छाया के मिटत छाया मानौ सुख छाई है।
पुहकर कहे वृत्त मान थान विघटन,
चीता करि चन्द्रमुखी चकत ह्वै आई है ॥
वार वार विरचि विचारति है और ठौर,
ठौर ठौर दौरे मनु लागी लोलताई है।
आगम वसंत वह पातनि को पातु होत,
त्यों त्यों तरुनी को तनु पीतता[2] जनाई है ॥१६॥

## ( अधीरा )

सौंहनि पत्यानि मैं न जानी हो तिहारी वात,
कपट की प्रीति पिय परम प्रवीन हौ।
वचननि और करतूति और ठौर ठौर,
और मन और और ठौर ठौर लीन हो ॥

---

१. मुरिझात । २. पीतता ।

जोई गंगा न्हाई तेई पाये फल पाइ परे,
ताही के सिधारौ नाथ जाही के अधीन हौ।
दुरद के रदन ज्यौ देषिबे के और न्यारे,
नये नये नेह करि नहे ही नवीन हौ ॥२१॥

(धीरा)

बालम विलोकि उठि आदर कै ठाढ़ी भई,
दीरघ उसासैं लै लै धीरता जनाई है।
भौहैं निसि सौंही मुसक्याहि नैन सैननि मैं,
बैननि पा लागि चित्त चारु चतुराई है॥
पुहकर कहें रोस रस मैं रसीली बाल,
लाल तन हेरि फेरि धरत रुखाई है।
परम प्रवीन पिय प्राननाथ साथ सुनु,
कीजै नारि मनमानी रति जु सुहाई है ॥२२॥

(लक्षिता)

जानतु हौं गई तुम वाटिका विहार हेत,
जल करि कंचुकी की नाभि भींजियतु है।
सरस मै न्हाइ फल भूषन समेत आपु,
अलि यौ ? संकु को बुलाइ लीजियतु है॥
पुहकर कहै मैं पठाइ पिय पास प्यारी,
बात की तौ बात आनि ताहि दीजियतु है।
नागरी निठुर अरु तैसेय कुटिल कान्ह,
सषिन की वीर ऐसौ पीर कीजियतु है ॥२३॥

(प्रोषिता)

आवति है आए घर जाति पुनि सँग लागि,
नैननि की नींद कैधों नाह अनुगामिनी।
वर की कमान काम कान लागी तान वान,
मारत निसान प्रान कैसे सहै कामिनी॥
कहै कवि पुहकर मुरलीधरन कान्ह,
बिछुरे तें दुसह दुहेली भई दामिनी।
उठी भारी पिया विनु सुनिहै विरह वैरी,
सूनी भई सेज तव दूनी भई जामिनी ॥२४॥

( विरहिनी )

आरसी अरति उर कोकिला पुकारि आइ,
वार वार बोलै तातै वधू विकरार है।
पुहकर सुकवि घनसार घसि तन लावै,
सीतल अनिल कैंधौ अनल की जार है॥
अँगार सिंगार हार पंच बान मारे मार,
कहाँ गृह कहाँ द्वार सुधि न सम्हार है।
निसि भये ससि की किरन लागै सर सम,
अगर सुगंध मद लागत असार है॥२५॥

( खंडिता )

नैन अरुनाई वरनी है ललनाई चलि,
आए पगु धरनी पै धीर को धरत हौ।
कौने कियौ हितु कौनै लियौ चितु पुहकर,
प्रभु नित नए नेह त्रिया रसरत हौ॥
नींद के उनींदे नैन बैन करौ चतुराए,
आय भले मेरौ धाम काहे को डरत हौ।
हारु धरौ हिय हरि पिय हौ हमारे तुम,
काहे काजे भौंहे तानि सौंहनि करत हौ॥२६॥

( कलहंतारिता )

कैंधो कहूँ जाइ कछू आन कही करी है री,
कैंधो अनजानत ही मोतें चूक परी है।
कैंधौ और नाइका के नेह अनुरागे पिय,
छाँड्यो हिय हेतु निठुराई जिय धरी है॥
पुहकर कहे प्रान पति जू पराये भए,
एती करतूति तौ करम गति करी है।
तुही लै खुवाइ सखी विविध विचारि करि,
मो गति तौ विरह वियोग वर हरी है॥२७॥

## ( विप्रलब्धा )

आली की प्रतीति मान प्रीतम की प्रीति जानि,
सोरहू सिंगार साजि आई कुंज धाम जू।
सूनी सेज देखि ससिमुखी मृग नैनी नारि,
तवही चढ़ाइ चापि लियौ कर काम जू॥
उलटि न सकति है रह्यौ न परै अध्यारी,
दूती तन हेरि करि जपै सिव नाम जू।
कहै कवि पुहकर आतुरी अतन तन,
चातुरी चकृत चहूँ ओर चाहै वाम जू॥२८॥

## ( उत्कंठिता )

काहै तै न आए कैधौ मन मै रिसाए पिय,
कैधौ विरमाये कहूँ चित्त मैं विचार ही।
तारा गन गनि गनि तरनी की छाँह देखे,
पल पल सारे पलु निसि न विसारही॥
कहू रहे अलसाइ कहूँ परजंक पौढ़े,
कहूँ वजै वीना ससि रथहि न रार ही।
मिलन के हेत उत्कंठा अति वाढ़ी चित्त,
पुहकर प्रान नाथ पंथहिं निहारही॥२९॥

## ( अभिसारिका )

घूमै घन चहूँ ओर वरखत षंड जोर,
सूझतु न नैननि पिया सी स्याम जामिनी।
सहस कपाच तन सिंघिनी विलोकि वन,
चंपति फनिंद फन कंपति न भामिनी॥
मनि कौ उदोत होत चरन धरति धनि,
पुहकर अंग अंग दमकति दामिनी।
हेतु को हथ्यार सौ सुभट के सौ अधिकार,
जोग कैसो सारु अभिसारु करै कामिनी॥२१॥

## ( स्वाधीनपतिका )

तैसे भूमि पल्लव लटिकि दुहूँ ओर रहे,
जाति कटी कामिनी सुपंथ वृन्दावन के।
पंकज की पाँखुरी बिछाइ प्रभु आगें आगें,
कोयल परम पद जानि राधा धन के॥
पुहकर कहै प्रतिविंबनि के पेखे भेद,
कहि न सकत सेस सहस वदन के।
कमल के दल कैसो प्यारी के चरन तल,
कैधों ए नवल कर कुंज स्याम घन के॥२२॥

मध्यमा

## ( कवित्तु छप्पै )

राजति अलक सुकंठ मनहु सारद वर वारद।
सुहृद भुंमि सुभ देस सलिल सज्जन श्रुति आरद॥
प्रगट पत्र बहु नेद मदन अंकुरि करि सोहै।
ललित लता लहलहै सुनत रसिकन मनु मोहै॥
रसवेलि बरनि पुहकर सुकवि गिरा फूल आनद लसत।
अलि गण सुमत्त वर जग सुहरसु ये प्रसिद्ध जुग जुग हसत॥२७॥

[ इति रसवेलि पूर्णः। लिख्यितं चित्रु दसकत सुषदेव चित्री
गुरप्रताप श्रीराम कृष्ण ( कृपा ) सहाय रहै ]

# संक्षिप्त शब्दार्थसूची

[ रसरतन के पाठकों के लिए दुरूह शब्दों तथा उनके अर्थ की एक संक्षिप्त सूची दी जा रही है। शब्दों के आगे लिखे अंक छंद की संख्या के सूचक हैं। ]

## आदि खंड

अघ १ पाप
अटक १ कष्ट, बाधा
निरलेष १ लेख के परे
त्रैपुर १ तीन लोक
घोष २ अहीरों की बस्ती
मघवा २ इंद्र
गौव २ गौ वृंद
कप्पाल ३ खोपड़ी
फनिंद्र ३ सर्प
मैन ३ कामदेव
चमी ३ कोमल
तमी ४ रात्रि
सुज्झिय ४ सूझता
बुज्झिय ४ बूझता
पौहप ४ पुष्प
सभ्रोविस्था ६ शुभ्रवस्त्रा
वीनादंडी ६ वीणापाणि
म्यां ६ माम् [ मुझे ]
पातोयं ७ पान, रक्षा करें
वागेसं ८ वागेश्वरी
आरूढ़ ९ चढ़ी हुई
अवतंस ९ उत्पन्न
सर्वानी ९ सर्वाणी, शिवपत्नी
सुमृत १० स्मृति
ब्रह्मसुता १० सरस्वती
सिध्यमुखी ११ गणेश
निर्वाहनं ११ पूरा कराने वाले
जेमि १२ तरह
कंठह १२ कठ मे
अपनाम १३ अपना नाम
चतुरानन १५ ब्रह्मा
दै १५ तै, से
सिरजै १६ सृजता है।
भोरो १७ भोला
सुमति १७ बुद्धि
कोविद १८ काव्यरसिक
गाहक्कन १९ ग्राहक
व्रात १९ व्राती
मंथानिय २० मथानी
कड्ढिय २० काढ़ा

वागेसुर २० वागेश्वरी
कहिहेत २० के लिए
मुहि २० मुझे
दिज्जह २० दीजिए
गरुव २० भारी
चौदा २१ चौदह
तैन २१ इस कारण
प्रगटिहै २३ प्रकट होगी
जुक्ति २४ उक्ति
पौहमपति २६ पृथ्वीपति
आदिलवली २६ न्यायवीर
सकवदी २७ शकारि विक्रमादित्य
छंदी २७ छन्दोवद्ध किया
चकवै २६ चक्रवर्ती
खुरसाना २६ खुरासान
सहसफनी २६ शेषनाग
अदल ३० न्याय
जगतगुरू, जगपाल, जगतनायक, जगवंदन } ३१ मुगलबादशाहों की उपाधियाँ
आलमपनाह ३१ विश्वरक्षक
नरनाह ३१ नरनाथ
तेगवृत्ति ३१ खड्गवृत्ति
तरनि ३१ सूर्य
करन ३२ कर्ण
वलिदान ३२ दान में वलि के समान
गोरिक्ख ३२ गोरखनाथ
भनिजै ३२ कहा जाता है
सौंदुर्ज ३२ सौंदर्य

गनिज्जै ३२ गिना जाता है
पीरहरन ३२ पीड़ा हरने वाला
दीह ३३ दीर्घ
कच ३३ केश
वपानिय ३३ वखाना
वहुर ३३ पुनः
तुच ३३ त्वचा
जिम्भ ३३ जीभ
विश्नोति ३३ विस्तृत
भनि ३३ भने गए।
दलगर्जन ३४ सेनाका नाश करनेवाला
लोइनि ३५ लोचन
भुव ३५ भ्रुव, भौंह
सरूप ३५ सुरूप
तुषार ३७ घोड़े
सुडाहल ३७ हाथी
सत्तरि ३७ सत्तर
विवि ३७ दो
कोटि ३७ करोड़
पयद्दल ३७ पयदल सेना
निस्सान ३७ युद्ध वाद्य
गज्जहि ३७ गरजते हैं।
उडुगन ३७ तारे
संकि ३७ डरकर
हलहिं ३७ व्याकुल
कमठ ३७ कच्छप
मुदी ३७ मुँद गये
तरनि ३७ सूर्य
वनराइ ३८ वनराजि

रेनुका ३८ वालुका
चाइ ३८ चाव
मौजें ३८ लहरें
किंकिर ३६ दास
षानै ३६ स्थान
पव्वय ४० पर्वत
रिसाना ४० क्रुद्ध
सैल ४१ सैर
मेर ४१ मेरु
उच्छलिय ४२ उछला
हच्चिय ४२ छा गई
थरहरिय ४२ काँप गए
साइर ४२ सागर
पिसान ४२ पीसा हुआ,
षलभल ४२ कोलाहल
कविलास ४३ कैलाश
मसाम ४३ देश विशेष
लाट ४३ गुजरात
परसि ४३ फारस
रसाल ४३ रसमय
सविता ४४ सूर्य
नौवत ४४ नौबत ( राजकीय वाद्य )
मूकि ४४ छोड़ना
डोगॅरनि ४४ पहाड़ियाँ, डूँगरी
डौडाँ ४४ नौकाएँ
ठाँ ४६ स्थान
विक ४६ वृक
कवि-विधि ४६ कवि समय या रूढ़ि
निर्विस ४८ विना विष के

जगाति ४६ मुगलकालीन टैक्स, ज़कात
चित्रक ५० चीते
सुक ५० शुक, तोते
सिंचान ५० वाजपक्षी
तूल ५१ रुई
कोवॅल ५१ कोमल
विवि ५१ दूसरा
चवै ५२ कहता है
सुधीर ५४ मर्यादापूर्ण
प्रवान ५४ प्रमाण
पारथ ५४ अर्जुन
दरसन ५५ याचक
पयोत्र ५५ पौत्र
तामधि ५६ उसमे
जतनु ५८ यत्न
अभार ५८ भार
मिलाना ५६ सम्मिलन
सपनन्तर ६२ स्वप्न मे
ततच्छन ६४ तत्क्षण
षदकर्मी ६५ छः प्रकार के कार्य करनेवाले।
पारि ६६ घाट
थापि ६६ स्थापित करके
असिवल ६७ खड्गवल
संभरी ६७ शाकभरि देश
नच्छत्र ६६ मुहूर्त
सम्हरधनी ६६ शाकभरि नरेश
नेगी ६६ नेग पानेवाले, भृत्य
दधिजात ७४ चंद्रमा

तन ७६ शरीर से
समहूर ७७ मसहूर
वार पारह ७७ सीमा
तनै ७८ तनय
आउ ८० आयु
राँक ८० रंक
विनानिय ८१ विज्ञानी
पारसपरस ८१ पारस स्पर्श, दानी
वितीती ८२ व्यतीत हुई
आपून ८२ मौलवी
नजम ८३ पद्य
नसर ८३ गद्य
अवियात ८३ वैतवाजी
उभै ८४ उभय
भाजन ८७ पात्र
कछुवक ८८ कुछ
मेच्छि ९३ मूँछ
विसराओ ९५ भूलो
अगुरी ९५ अँगुली
दूषन ९६ दोष
समारी ९६ सँभाल लो
चाहि ९८ चाहकर
वरनिवै ९८ वरनन करने की
अच्छरि ९९ अप्सरा
जोगिनी ९९ योगिनी
सारु ९९ लोहा
वज्जिय ९९ वजा
अभूर १०३ वहुत
ताराइन १०६ तारों की तरह
जराव ११२ जड़ना
श्रियं ११३ श्री
डौरूं ११४ डमरू
पटरॉग्यनि ११६ पटराज्ञी
आधान ११६ गर्भ
मावस ११८ अमावस्या
कुहू ११६ अमावस्या की रात्रि
अनगन ११६ अत्यंत
दर्व १२० द्रव्य
दुरायै १२६ छिपावे
मूरि १२७ औषध
मकरध्वज १३० कामदेव
छठी १३३ छठी उत्सव
लाष १३८ लाख, लहटी
खगनि १३८ पक्षी
परिहाना १३८ काट कर ढेर करना
गिदुक १३९ कंदुक
लच्छनि १३९ लक्षण
चटषारा १३९ पाठशाला
परमानी १४२ प्रमाण, सीखा।
वैस १४९ वयस
वहरावै १५० वहलाना
चॉचरि १५१ गीत विशेष
परमानहु १५३ मानो
सौज १५५ सामान
वैर वधू विकरार १५७ शत्रुनारियों को वेकरार करनेवाले
वलय १५९ घेरा
वह्मनीक १६० ब्रह्मोपासक

गुज्जरघर १६२ गुर्जर, गुजरात
जगंम १६६ साधु
तैन १६७ उस
विनव १६८ विनती की
वारन १६६ हाथी
तंत १७२ तंत्र
ब्रह्मन्न १७२ ब्राह्मण
गजनि १७४ मारने वाली
पिष्षियै १७४ देखिए
जनु १७७ जैसे
जोषिता १७७ योषिता, पत्नी
मद्धि १८२ मध्यम
कुटम १८३ कुटुंब
अवर्ष १८४ असफल वर्ष
षीरू १८८ दूध
वितीतन १८८ व्यतीत होने
आरि १८६ कसर
वैस १६० वयस
जुगत १६१ मुक्त
ऊषह १६१ ऊषा
सरसी १६१ सरोवर
ष्याल १६२ सुधि
विगलत्त १६३ विगलित
अचान १६४ अचानक
मुषह १६४ मुख
पौढ़ाई १६५ सुलाई
बधावति १६६ बँधाती
पॉनूस १६८ पानूष या फानूस
मोपै १६६ मुझसे
दुरग १६६ द्राभा, धूपछाहीं
पच्छिम २०१ पद्म, बरौनी
अनियारे २०१ अनीवाले, नुकीले
सींवँ २०१ सीमा
कुंडिल २०२ कुंडल
पारस २०२ पार्श्व
मुत्तियगन २०२ मोतियों की लड़ी
दारौं २०३ दाड़िम
छामि २०५ पतली
श्रोणि २०५ नितंब
भंगुर २०५ लचक
पैज करि पान २०५ प्रतिज्ञा करके बीड़ा उठाया।

## स्वप्न खंड

राजति १ सुशोभित
सहारौ ३ सँभाला
सर ५ समान
आगरि ८ आकर, भरी हुई।
सारंग ६ सूर्य
पुलक्कित ११ पुलकित
हुव ११ हुआ
ठॉम १३ ठॉव
उपाइ १३ उपाय
परतिच्छ १५ प्रत्यक्ष
परसपर १७ परस्पर
पैनाइ १६ तीखा करके

उनमदन २० उन्मादन वाण
हाटक २२ स्वर्ण
अवास २३ आवास
मनि २४ मणि
मुक्ति २४ मोती
वाउ २५ वायु
जाइ २५ जाति, जूही
चाउ २५ चाव
जामिनीय २५ यामिनी
भृंगार २६ भँवरे
सोहंत २७ अच्छा लगते हैं
द्वार पालकवार २७ द्वारपाल लोग
सूर २८ सूर्य, सूरसेन
कंद्रप ३० कामदेव, कंदर्प
विगासु ३० विकास
उहि ३० वही
मूरत्ति ३० मूर्ति
निछियावर ३१ न्योछावर
तृपित ३१ तृप्ति
सज्जित ३२ सजाकर
मृगमद ३२ कस्तूरी
तिलक ३२ तिलक
ओप ३२ आभा
बिबि ३३ दोनो
दल्ल ३४ दल
अचिरज ४० आश्चर्य
वितई ४० व्यतीत की
चेटकु ४० जादू
संप ४१ शङ्ख

गुन ४२ कारण, गुण
वैसी ४२ बैठी,
थिर ४३ स्थिर
अपनपौ ४४ चेतना
बुंद ४५ बूँद
अग्गह ४५ आगे
हथ्थहिं ४५ हाँथोंसे
बुल्लहिं ४५ बोलती है
संक ४५ शंका
पषारहिं ४६ पखारती हैं
पै ४६ परंतु
वहुरि ४८ पुनः
जूड़ीयो ५० ज्वर
जनाई ५० ज्ञात
माँझ ५० बीच में
बलाइ ५० बलैया
अरस्याइ ५० अलसाकर
फेरि ५० फिर
त्रंनु ५३ तृण
पच्छ ५३ पंख
नौन ५५ नमक
त्रिय ५६ स्त्री
अंजुल ५७ अँजुरी
वेगही ५७ तीव्र
सुकुँवारी ६३ सुकुमारि
उसास ६४ उसाँस
उपज्जिय ६५ उपजा
उपाइ ६५ उपाय
कदाचि ६५ कदाचित्

अग्यान ६७ विक्षिप्त
गति ६७ दशा
हैम ६८ हिम जल
चक्कृत ६८ चकित
चितवै ६८ देखती है।
अनेग ७० अनेक
दुज ७२ ब्राह्मण
घनसार ७६ कपूर
छिरकि ७८ छिड़क कर
भीनहिं ८१ भिगा हुआ
झारै ८४ पटकती है
कफ्फ ८६ कफ
बात ८६ वायु
बेदनि ८६ वेदना
ओषद ८६ औषधि
साँति ८७ शांति
आहि ८८ है
षिन ६३ क्षण
सीयरौ ६३ शीतल
नेमु ६४ नियम
बत्तरी ६६ बातें
जुरत ६८ जुड़ते हैं ( मिलते )
तत्तु १०१ तत्त्व
थोर १०२ थोड़े
गहिर १०३ गहरा
प्रतिच्छ १०४ प्रत्यक्ष
वषानत वेदहूँ १०५ वेदों ने बखान किया है
द्रग १०७ नयन
हस्थ १०८ हाथ
विवरत १०८ विवर्ण होता है।
प्रमान ११० प्रमाण
बत्तियाँ ११० बातें
जिवाई ११२ जीवित
बाल ११२ बाला
बारता ११५ वार्त्ता
निमषत ११५ एक क्षण बाहर रहो
एकंत ११६ एकांत
निआदरु १२० निरादर
मंदनि १२३ धीरे से
मृद १२४ मृदुल
नवला १२४ नवोढ़ा
हिदौ १२४ हृदय
मनमथ्थ १२५ मनमथ, काम
सामादिक १२६ साम दाम दंड भेद
ढिग १३४ पास
सरबर १३४ सरोवर
सजहि १३७ बनाती है।
हौ १३६ मै
तसकर १४० चोर, तस्कर
काढ़ि १४४ निकाल
विसवासी १४४ विश्वासघाती
विरदतु १४७ वृत्तांत
लुब्भियह १४८ लुब्धक
पचि १४८ अच्छी तरह
समर्थ्य १४६ समर्थ
उदवेग १५१ उद्वेग
विस्थर १५२ विस्तार

फैननि १५३ फेन
थल १५३ पृथ्वी
करमतु १५३ आरी, करपत्र
वित्त १५६ वृत्ति
चेत १६१ चेतना
अतन १६१ अत्यंत
छुधा १६२ क्षुधा
जनावै १६८ प्रकट होता है
षोडस द्वादस भूषन १७० षोडस शृंगार द्वादस आभरण
वल्लभ १७१ प्रिय
गुनानं १७१ गुणों को
पग १७४ निश्चेष्ट
ररै १७६ रटती है।
बिथति १८१ व्यथित
आभरन १८१ आभरण
सारंग नैनि १८४ मृगनैनी
झारा १८६ ज्वाला
षेह १६१ राख
मंद १६२ मद्धिम
निरदय १६५ निर्दय
ठामु १६५ ठाँव
गाऊँ १६५ ग्राम
विछुट्टिय २०० छूटी
टुट्टिय २०० टूटा
जदिन २०० जिस दिन से
तंतु २०५ तंत्र
मंतु २०५ मंत्र
पऊष २०५ पियूष
छीन २०६ क्षीण
असित २०८ कृष्ण
घटसुत २०८ अगस्त
ताली दल आमा २०६ पीला
तार २१३ नेत्रतारक
परजंक २१५ पर्यंक
मुँहि २१८ मुख
कंप्पौ २१६ काँपा
पटरागनिय २१६ पटराज्ञी
दुराये २२३ छिपाये
गंधर्प २२५ गंधर्व
नियरानी २२६ समीप
विकरार २२७ वेकरार
वरषि २२७ वर्ष
निस्चै २३२ निश्चय
अगम निगम २३३ वेद पुराण
मनकाम २३२ मनोकामना
सोभं २३४ शोभित
तमं २३४ अँधेरा
जागंत २३५ जागते
सुचै २३६ पवित्र, शुचि।
प्रफुल्लिन्त २३७ प्रफुल्लित
वारिज्ज २३७ कमल
जद्दिप २४० यद्यपि
सर्वरी २४३ रात्रि
निदाइ २४४ निद्रित
वरूनी २४६ वरौनी
सरवस्स २४८ सर्वस्व
फेरि २४८ पुनः

सुद्दि २४६ मुझे
चरक्ख २५० वर्ष
अवरेष २५४ देखकर
पषान २५६ पाषाण
परसन्न २५६ प्रसन्न
हेत २५६ हेतु
वीछुरौ २३४ बिछुड़ो
घटवाइ २६४ घटाव
नीदि २६५ निद्रा
पलंक २६६ पलंग
पलक २६६ पलक
नठी २६६ नष्ट हुई
पमुक्कि २६७ छोड़कर
परेषौ २६७ विचार
दुती २६६ द्वितीयाचद्र
छुवै २७६ छूकर
सचुपाई २८५ शांत हुई
कामिन २८६ कामिनी
चष २८६ नेत्र
चषी २८६ देखा
कृत्रि २८७ कृति
मावसि २८७ अमा
आदरिय २८६ आदर दिया
आइसु २६१ आज्ञा

## चित्र खंड

सहाइ २ सहायता
परवीन ५ प्रवीण
वहै १० वही
भरथ षंड १६ भरत खंड
पिष्यौ १६ देखा
अगाऊ १८ आगे
चाऊ १८ चाव से
अनुहारी १६ छवि
अवरेषहिं २१ रेखाकित
तलफहिं २३ तड़पते है
द्यौष २५ दिवस
फदा २५ पाश
मित्ता २८ मितवा
आलवाल २६ थाला
तटक २६ ताजा, टाटक
तूर ३४ तुरही
जुरै ३४ एकत्र हुए
पषराये ३४ जीन कसे
भावंता ४३ प्रिय
बच ४४ वचन
सुप्नतुल्य ४८ स्वप्न तुल्य
छीन ५२ क्षीण
कौतिक ५४ कौतुक
वेझौ ५६ वेध्य, निशाना
हौर ५७ हौरे
डाह ६१ दाह
पारौ ६१ पारा
नातर ६३ नहीं तो
टोवै ६४ जोहता है
जाके ६६ जिसके

झुरडवै ६७ विसूरना
घाइल ६६ आहत
भुग्गवै ७६ भोगे
कोक ७६ कोक शास्त्र
निरनै ७६ निर्णय
ठगौरी ८२ ठगने वाली वस्तु
दृदा ८३ दुःख
परगासा ८५ प्रकाश
निश्रटति ८६ घटती
कलियानी ६० काली
पंच आभरण १०१ पंच वस्त्र
दुल्लभु १०४ दुर्लभ
हाटकहाट १०६ स्वर्ण हाट
सुधा ११६ स्वधा
मकरध्धुज १२० मकरध्वज
वितीत १२२ व्यतीत
गुनियनि १२३ गुनीजन
आसिका १३३ आशीर्वाद
इकत १४२ एकांत
कैसहु १५१ किसी प्रकार भी
परख्यौं १५४ परखूं
विछुरौ १५६ विरह
नागवल्ली १६२ नागलता
सिपी १६२ मयूर
विलोल १६३ चचल
रद १६४ दाँत
चंचु १६४ चोंच
अत्तियाँ १६५ अत्यत
कुनित १६६ क्वणित
हिराई १६६ खोई हुई
पयूष १७३ पीयूष
घाइ १७३ घाव
लायौ १७३ लगाया
पेस १७५ पेश
भाँती १७८ तरह
साँती १७८ शाति
दिषरावहु १७८ दिखाओ
जगम १८३ तात्रिक
श्रीय १८७ लक्ष्मी
चाडिली १८६ प्यारी
प्रकिति १६५ प्रकृति
तृगुन २०४ त्रिगुण
परमानत २०६ प्रमाणित
पतियानौ २०७ विश्वास किया
रसभेद २१२ प्रेम रहस्य
वृषमानी २१४ सूर्य
नैकु २१४ जरा भी
नौतम २१७ नूतन
पंष २१६ पंख
अघवाऊँ २१६ तृप्ति
परिपाटी २२० रीति
गुन २२० डोर
जिय दाता २२१ जीवनदाता
बाँह २२२ भुजा, वाहु
सिष्य २२२ शिष्य
ठाठिहैं २२४ आयोजित करेंगे
अवसिमेव २२५ अवश्यमेव
वंध २२७ कसम

ओप २२८ प्रकाश, छाया
थापे २३८ अल्पना
बँधावनै २३८ बधाई
काढ्यौ २४० निकाला
तरल २४१ चंचल
दुतिया २४१ द्वितीया
हिंडोला २४२ झूला
पलान २४३ काठी
चितैयनि २४६ देखने वालियों का
घरग्घर २५० घर-घर
सोग २५१ शोक
वहिक्रम २५२ वयक्रम, हमउम्र
सचुपावौ २५६ शांति पाता
निमष २५८ निमिष, पल भर

## विजयपाल खंड

तुलान्यौ ६ तुलित हुआ, आया
परदार ७ पहरेदार
अँचवत १० आचमन करते
जट १३ जड़े
निर्वाहन १६ निवाहना
पतिया २३ पत्र
वाचीं २३ पढ़ीं
गहग्गह २४ आनंदोत्सव सूचक
मुंदरी २५ अँगूठी
पत्री २६ पत्र
दंद २७ द्वंद्व
धूता ३० ठगने वाला
उताल ३३ शीघ्र
आइहै ३४ आयेंगे
गहिर ३४ विलम्ब
ढील ४२ ढिलाई ( विलंब )
चक्कवै ४८ चक्रवर्ती
हॅंकारियौ ५१ बुलाया
नेवति ५२ निमंत्रित
आखंडल ५८ इंद्र
सिषरावहीं ६१ सिखातीं
पीहर ६२ पितृगृह
तरुवरै ६३ तरुवर
अगेती ६४ आगे की ओर
परिष्यवो ६६ समझाना
षोई ७८ नष्ट
विरलि ८२ विरली
मानिवी ८३ मानना
वस ८३ बश
पुरिष ८५ पुरुष
गुन ८६ रस्सी, गुण
नाउ ८६ नाव
ग्राम ८६ स्वरग्राम
षस ६० खस
गूँदे ६१ गूँथना
सूप ६२ दाल
अनभावन ६७ अप्रिय
वसिकरन ६८ वशीकरण

पून्यौ ६६ पूर्णिमा
वारी १०० वाली
उश्न ११६ ऊष्ण
उतसंग ११७ गोद, साथ
गही ११८ धारण करो
उराहनौ १२२ उलाहना
चोप १२२ रुचि पूर्वक
वारि देहुँ १२३ निछावर कर दूँ
हिरनाछी १२६ मृगनैनी
तिमग १३१ सूर्य
पाकसासन १३१ अग्नि
उव्वरहिं १३१ उबरते, बचते
जुहार १३३ दर्शन
दुरद १३४ हाथी
विभौ १३६ वैभव
जुध्य १३७ युद्ध
निस्साना १४० निशान, विजयसूचक वाद्य।
लजियावहु १४१ लज्जित करो
सीधरै १५२ पूरा हो
ग्रामेस १५२ ग्रामपति
पहिराइ १५४ खिलकत देकर
पाठयौ १५४ भेजा
सुरप्पत १५६ सुरपति
अभलापु १५७ अभिलाषा
तत छन १५६ तत्क्षण
विष्याता १६० विख्यात
दिवावहु १६१ दिलाइए
विरतंतु १६३ वृत्तांत
पानिगहन १६६ पाणिग्रहण
अखिल १७० अखिल पूरा
वोट १७३ ओट
निमष १७३ निमिष
वोषद १७५ औषधि
अवसिमेव १७५ अवश्यमेव
पहुमी १७८ पृथ्वी
वच्छ १८४ बछड़ा
थभै १८४ थमता
नालकेलि १८८ नारियल
नाई १६२ भाँति
मंगलीक १६४ मांगलिक, याचक
इंदौर १६८ इंद्रलोक, कोलाहल
मैंमत्त १६८ मदमत्त हाथी
वद्दला १६८ बादल
वग्गरी १६६ वक समुदाय
पावसी २०२ वर्षा की
षरक्कैं २०२ खनकते
झिल्ली २०२ झींगुर
पलानैं २०३ जीन, काठी।
लग्गाम २०७ लगाम
रेसम्म २०७ रेशमी
झलकंति २११ झलक
नगरवाल २१२ नागरिक
तम्मोल २१२ ताम्बूल
डिढय २१८ दृढ़
डाढार २१८ फण
वागलिय २१८ वल्गायुक्त

रिषीस गनं २२३ ऋषिगण
अखिया २२४ आँखें
सिढ़ियाँ २२४ सीढ़ियाँ
अचिर्ज २२५ आश्चर्य
रितुपति २२४ ऋतुपति ( वसंत )
सोहनु २३४ सुहावना
पुरानहि २३५ पुराणों में
षग २३८ पक्षी
मनकुम ? २३८ कमल ?
पत्तनं २३८ पत्ते

## अप्सरा खंड

विवाँननि १ विमानों से
निघटत ४ वीतते-वीतते
काच ११ काँच ( शीशा )
मानसर १२ मानसरोवर
पसारी १२ फैलादी
तोर १३ तोड
डसी १५ डसाई हुई, बिछाई ।
सराप २३ श्राप
गहरू २८ विलंब
निहिच्चै ३१ निश्चय
अप्छर ३६ अप्सराएँ
सहस्र मसाल ३८ हजारों मसाल
किरन्नि ३८ किरणों
इलात ३६ अलात, उल्का
हीव ६६ हृदय
घौरि ७० लेप
वेसरि ७२ नथुनी
तमोल ७६ पान
कय्यूर ७७ केयूर
सुष दाइका ८० सुख देने वाली
उभी ८२ झुकीं, आईं ।
मृगमद ८३ कस्तूरी
कचोरा ८३ कटोरा
दीपद्युत ६२ दीप-ज्योति
अच्छ १०२ आखें
सिथलित १०८ शिथिल हुए
अहिपतिनी ११० सर्पिणी, वेणी ।
सकुचे १११ संकोच
फूलझरी ११४ फुलझरी
ल्हास ११५ उल्हास
ताजनु ११७ तर्जन, ताडन
लंकु १२१ कटि
जिरह जेवि १२३ कवच
परगल्भ १२६ प्रगल्भ
उजैरो १३१ उजाला
करकि १५० चटक गयी
करचूरी १५० हाथों की चूड़ी
पीक की लीक १५० पान की लालिमा
लकीर
रेष १५१ रेखा
चद्रचूड़ १५१ शिव, उरोजों के लिए ।
उरहनो १५४ उलाहना
वहाई १५६ बहा दिया
वगसे १६५ बख्श दिया

सुषदाइक १७१ सुखदायक
सिध्यि १८० सिद्धि
लच्छिता १८३ लक्षिता, जिसकी रति प्रकट हो गई हो
मुरजा २१० मुरज, पखावज
छाड़ि २२४ छोड़कर
जॅग्य २२७ यज्ञ
मुकत २२८ मुक्त
धरनि २३१ धरती
चक्रत २३२ विस्मित
करौती २३६ आरी, करपत्र

## चंपावती खंड

खरक्के १ खड़कती है
जनावत ४ उद्घाटित
दिसि ५ दिशा
गाँऊ ५ गाँव
अचवहिं ८ आचमन करते
पुरषारथ १० पुरुषार्थ
अहँकार १२ अहंकार
छाड़ १२ छोड
गहवरि १३ गह्वर भाव से
कासमीर १४ काश्मीर
कंथा १५ कथरी
सेल्ही १५ पतली डोर जैसी वद्धी
तन बासुहिं २० तन-गंध
घार २२ खाल, गहरा
विग २४ वृक, बाघ
अचिकि २६ अचानक, घबराकर
सीरी २७ ठंढी
पीरी २७ पीत
वीरी २७ बीड़ा, कान का आभूषण
नीरी २७ अश्रु
ताई २६ तक
जीजे ३६ जिये
अश्वनि ३७ क्वार के
छाँहरी ३७ छाँव
मुरछित ४५ मूर्च्छित
घालि ५६ रखकर
पौरिक ६८ पौरिया
मढ़ी ७१ मठ, कुटी
सिज्या ७६ शैया
मूर ८३ मूल
गैवर ८४ गजवर, हाथी
फरहिं ६५ फलते
हिराइ ६६ मिट गयी
अंब १०१ आम
पार १०८ घाट
पाइर ११७ पायल
कटाच्छनि ११८ कटाक्षों की
जपै १२७ कहता नहीं
बिस्तुरी १२७ बिसरी हुई
कावि १२७ कोई
कदलि दल १३५ केले के खंभे
चवग्गुनु १४५ चौगुना

बरई १५० तंबोली
गवाष १५२ गवाक्ष
षिषिरि १५६ शिखर
बिस्सेसि १५८ विश्वेश्वर
दरी १६१ गुफा
भोई १६५ भिंगोकर, भुलाकर
गाह २०० गाथा
निरंतर २२१ हर बार
अघाऊँ २२७ तृप्त हूँ।
जेहरी २४३ पाजेब
गुंज २४६ गुंजा
नरवे २६३ नरपति
घाइ २६१ घात
बिभास २६४ मलिन
चैनु २६६ चैन
सेव २६७ सेवा
मकर धरकेत ३०४ कामदेव
अंमारी ३२२ हौदे पर का मंडप
चौडोल ३२२ शिविका
सहनाइय ३२५ शहनाई
लोइन्न ३३० लोचन
मैन चटसार ३३५ काम पाठशाला
लोह मुंद्र ३३६ लोहे की अँगूठी
वसीठि ३४६ दूत
नेर ३६३ नगर
चाह ३७० खबर
कौंचि ३७६ कोने मे
पट्टकुट ३६२ शिविर

## स्वयंवर खंड

समोये ११ इकत्र किया, समेटा
हैवर १२ घोड़े
मंडप छाहन २१ मंडपाच्छादन
पल्लव चूत २४ आम्र-पल्लव
जबूनद २६ यमुना
चुभि ३७ धँसी
पारावत ३७ कबूतर
सावक ३८ बच्चे
करभ ३६, हाथी का बच्चा
करेलै ३६ कड़ेर
छाम ३६ क्षाम, क्षीण
जोतिक ४० ज्योतिष
किरवान ४३ कृपाण
कोडवार ४४ कोटपाल
गुरज ४४ गदा
धुरज ४४ दृढ़
पोतिहू ४८ चमकीले काँच, या मणि
कुदेरे ४६ टंकित किया है
पचवांन ५० कामदेव
मयूख ५२ चंद्रमा, किरण
अंतरच्छ ५३ अंतरिक्ष
आलोम ५६ लोमहीन
वेनी ५६ वेणी
उवै ५६ उदित
आड ५६ सिर का आभूषण
वनक ५६ शोभा

तरौना ५६ कान का गहना
डाहन ६० ईर्ष्या से
कचपाटी ६२ केश पत्रावली
वदन ६१ होड़
पातिंगी ६५ पतले अंग वाली
असपत्ति ७१ अश्वपति
जोइ ८२ जोह कर
गडुवा ८६ टोंटीदार लोटा
छुही ८८ लेप लगाना
हिरन्य ८८ स्वर्ण
गुरन्नित ८६ गुरु, पुरोहित
अनूपक ६१ अनुपम
वानि ६१ शोभा
चिराक ६७ चिराग
कौलं ६८ कमल
वरिंग १०४ वरी
चढ़िग १०४ चढ़ी
वढ़िग १०४ वढी
कोरी १०८ ताजी
सुआर २२५ खाद्य
चौर १३५ चँवर
नाग १२६ हाथी
पमरथ्थ १३८ चादर
रवेक १४० रकावी
अथर्वन १५२ अथर्ववेद
उपरैना १५३ अँगरखा
झारी १५४ गडुवा
नौवद १८६ नौवत
पूप १६३ पूआ

लोचई १६४ पूड़ी
दार १६६ दाल
वक्कल १६६ वोकला, छिलका
माष १६८ उरद
छाग २०० वकरा
तीतुरी २०१ तीतर
लवा वटेर २०१ छोटे पक्षी
सूला २०१ शोरवा
ताहरी २०२ तहरी
अषनी २०२ शोरवा
वृंताक २०४ भटा
निमौन २०६ निमोना
चहलै २०८ द्रव, गीला
सीरक २२७ शीतलपाटी
यौरावत २३४ ईरावती
चात्रिक २३५ चातक
षवास २३७ रसोइये
निदाइ २५६ निद्रा
अलराये २८२ दुलरा कर
वहुरि २८३ पुनः
जुरत २८३ मिलते ही
डंदित २८६ दंडित
नीरी २८७ नजदीक
तत्तु २६१ तत्त्व
दंद २६४ द्वन्द्व
रेही ३०१ रेखा
सिथिल ३०२ शिथिल
उँनीनी ३०२ उनींदी
लोइन ३०३ लोचन

सिषापन ३०६ सीख
प्राचीन ३११ पीछे
परपंचु ३१३ प्रपंच
तमोर ३१६ पान
बिजन ३१७ व्यजन
परजाली ३१७ प्रज्ज्वलित
चंगपती ३१६ सेनापति
सुंडाहल ३२१ हाथी
सरवर ३२३ वरावर
बाटनहार ३३१ बाँटने वाला
त्रिवलीय ३३२ त्रिबली
पंच सब्द ३४३ पाँच प्रकार के बाजे
षट दरसनहिं ३४८ छः प्रकार के याचक

घुँघुवारे ३५६ घुँघराले
निचोल ३५६ चोली
पहिर ३५६ पहनकर
विषु लायौ ३६१ विष लगाया
बिदारन ३६३ विदीर्ण करने वाली
चोज ३७२ उत्साह
कंचुकियं ३७३ कंचुकी
सरै ३७६ हिलती है
अपुनुपौ ३८१ चेतना
सलिता ३८२ सरिता
अरुझानी ३८२ उलझ गयी
हुतासन ३८७ अग्नि
अरूपित ३८८ अर्पित

## युद्ध खंड

संघात ४ साथ
उसासन ६ उष्ण श्वासें
वंब ११ वारूद के पलीते
दर्प्पक १२ घंमडी
अग्नित १३ अगणित
समसेर १३ शमशेर [ तलवार ]
झमंकि १३ झूमकर
अमरापति १३ इद्र
पसरीरु १८ फैली हुई है
पट्टुली २० तख्ता, पीढ़ा
मरूवौ २० मरूगी
सेती २१ से
दादुल २५ दादुर
तरप्पति २५ तड़पती है

ब्रह्म उरूष २६ ब्रह्मवर्ष
गहिल २७ गर्भिल
कुंभसुत ३५ अगस्त
घमारी ३७ एक नृत्योत्सव
जक ४० वकता है
हाला ४० शरावी
जौन्ह ४८ ज्योत्स्ना
तूल ५२ रूई
गारुरि ५४ गारुड़ि, सर्पविष उतारने वाला
गहन ५५ ग्रसन
राह ५५ राहु
दुहेली ५५ दुःखेली
परचाई ६४ परछाईं, प्रज्वलित

बरोसी ६५ बोरसी, अँगीठी
सरवन ६६ अप्सरा [ सुर वनिता ]
अंत्रपट ७५ अंतरपट
हुतासन ७६ अग्नि
पील ८० हाथी
केवरौ ८१ केतकी
चिनगी ९२ चिनगारी
दसचारि ९७ चौदह
बिजन १०८ व्यजन
ढोरौ १०८ डुलाऊँ
अघवावहु १०९ तृत कराओ
संघाता ११४ समूह
जिहिर १२० जिस
उनमाना १२८ अनुमान
चाहि १३२ इच्छा
बिगावर १३६ बिहंगवर
मनधूता १३८ मन को भुलाने वाला
पारासर १३८ व्यास
दुजराज १४० पच्छिराज
एती १५० इतनी
सुरवन १५८ सुरवनिता
औरन १६८ दूसरे
दंपत १८६ दंपति
राता १९० रक्त, लाल
रव १९७ ईश्वर
झिंदूर २०५ नील गाय
अनुसाइज २०५ वन्य पशु
कूरे २११ क्रूर, कुरूप
छीपन २१२ सीपी
जहारू २२७ अभिवादन
नातरु २१८ नहीं तो
निविंति २२० निमित्त
पुरहूता २२८ इंद्र
पैक २२९ पाइक, पैदल
सनाहा २३० कवच
सहनाइ २३४ शहनाई
मारुव २३४ युद्ध राग
अनी २३८ सेना
उच्छाह २४३ उत्साह
सावथ २४४ सामंत
भैरो २४८ भैरव
हींस २४८ दाँत निकाल कर हँसना
सांग २४६ साँगी, नोक
बाजुताई २५३ बाज पक्षी
दंती २५४ हाथी
करवाकिरन २५६ कड़वाँक तलवार
टुंडन २५७ बाणा, कटा हुआ
वपारन २५८ चर्बी, मेद
जलजातन २५९ कमल
भवैं २६२ घूमते हैं
सिवा २६६ शृंगालिनें
पनरथ्य २६६ विवाहक वस्त्र
श्रोन २६८ शोणित, खून
लिन्नंव २७२ लिया
अग्गौछा २७८ अंग छालन
पौर २९० खड, पौरि
पलौटे ३१४ पैर, दबाना
ईठी ३२२ इष्टित, लीन

चंपानेर ३३३ चंपा नगर, चंपावती
आधाना ३५१ गर्भ
उडलि ३५५ उद्वेलित
नद्यावा ३५५ समुद्र
ओली ३६४ क्रोड़, गोद
तोतरी ३७० तुतली

## वैरागर खंड

विरध ३ बृद्ध
विगोबा ५ नष्ट किया
झूरहि ६ चिंता करते
मुष ११ मुख
गुहार १४ पुकार
निहचंत २९ निश्चिंत
हॉत ३२ हाँथ
हॅकारा ३३ बुलाने वाला
सौंज ३५ सामान
निनार ३८ अलग
हरुव ४० हल्का
कौन ५० कोने
संघाती ५१ साथी
चौंडोल ५४ पालकी
आकूतू ५८ अकूत, अतिशय
अभारू ६१ कार्य-भार
परवांनी ६८ स्वीकार किया
अनकारा ७४ अतिशय
चक्रीय ७९ चकवी
चक्र ७९ चकवा
निवहिं ७८ पार लगते
वाटा ८७ रास्ता
ताहर ८८ वहाँ का
वसगत ८८ वस्ती
डिगंवर ९१ दिगंवर
मूखिये ९९ छिन जाता है
साँती १०६ शांति
मंडफ ११४ मंडप
पाटंवर ११५ रेशमी वस्त्र
सुषमानी ११६ सुखमाना
पिष्ष ११८ देखकर
धसिमसिय ११८ धसक गए
वज्जहित ११९ वजते
मुत्तिय १२१ मोती
विलोल १२१ चंचल
तंमोल १२२ ताबूल
निनारा १३८ अकेले
मधि १४० बीच
विद्रुम १४० मूगा
चीनी १४१ चीन्ही
अनकारा १४२ अनेक प्रकार का
विय १४८ दूसरा
दारा १५९ स्त्री
परठ १७२ सकेत
काठी १७३ निकाला
वसीठ १८६ दूत
विसारा १८९ भूला
चकित १९० चौंकता हुआ

भरहि २०८ देते थे
पेस २०६ पेश
कलि २०६ करके
साँवकरन २०६ श्यामकर्ण
सिराजी २०६ सिराज़ के
जंपहिं २३५ बोलते

बिगार्छें २४० मरे
खोरिन २८१ गली
पारि पखान २८५ पत्थर के घाट
भटंत ३४० भूटान
भेरा ३४८ पार उतरने का सहारा

---